श्री प्राणनाथजी और उनका साहित्य

लेखिका :

डा० राजबाला सिडाना

एम० ए०, पीएच० डी०,

श्री १०८ प्राणनाथजी महाराज

THESIS SUBMITTED FOR THE DEGREE OF Ph. D. OF
THE UNIVERSITY OF BOMBAY

1968

SHREE PRANNATH AND HIS POETRY

GUIDE :
Dr. C. L. Prabhat,
M. A. Ph. D.,
Head of Hindi Department,
K. C. College,
BOMBAY.

Chairman,
Board of Studies in Hindi
&
Board of Post-Graduate Teaching in Hindi
University of Bombay.

AUTHOR :
Raj Bala Sidana.

प्रथम संस्करण २००० प्रति
असाढ़ सुद बीज

मूल्य दस रुपये

बुद्ध जो शाके २९१
वि० स० २०२६
सन १९६९

श्री निजानन्द सम्प्रदाय के आद्याचार्य
श्री १०८ देवचन्द्रजी महाराज

सादर समर्पण

अपने धर्मगुरु

तथा

प्रेरक

आचार्य श्री श्री १०८ महाराज श्री धर्मदासजी जी

को

राजबाला सिडाना

प्राक्कथन

श्री प्राणनाथजी छत्रसाल शिवा युग के एक प्रबुद्ध विचारक थे। उन्होंने एक समन्वयात्मक दर्शन की प्रतिष्ठा ही नहीं की, युग की क्षयग्रस्त रूढ़ मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह किया और युगानुकूल नये जीवन-मूल्य सामने रखे। जन्म से गुजराती होते हुए भी उन्होंने अपनी आत्माभिव्यक्ति और साधनात्मक सन्देश के लिए अपने युग की व्यापक-भाषा हिन्दी का प्रयोग किया। वैसे उन्होंने फारसी, सिन्धी, अरबी और संस्कृत में भी काव्य-रचनाएं कीं। इस प्रकार श्री प्राणनाथजी का महत्व एक विचारक, धर्म-गुरु और निजानन्द सम्प्रदाय के प्रचारक-प्रवर्तक के रूप में ही नहीं, राष्ट्र भाषा के शिल्पी और साहित्य सर्जक के रूप में भी है।

इस बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न महाप्राण व्यक्ति के सम्बन्ध में अभी तक शोध-कार्य नहीं हुआ है, न राष्ट्रभाषा हिन्दी में और न उनकी मातृभाषा गुजराती में। भाषा साहित्य और साधना की दृष्टि से जो कृतियां इतनी महत्वपूर्ण हैं, उन पर शोध-कार्य न होने का मुख्य कारण यही है कि प्रणामी साहित्य की यह सामग्री अभी तक धार्मिक साधकों के पास और मन्दिरों में, अज्ञातवास में पड़ी है, उसे प्राप्त कर पाना बड़ा कठिन है। पुराने मन्दिरों के अधिकांश महन्त तथा पुजारी कुलजमस्वरूप की प्राचीनतम प्रति को दर्शनीय मानते हैं, वे किसी को इसे पढ़ने अथवा इसकी प्रतिलिपि नहीं करने देते। सम्भवतः प्रणामी इस बात से डरते हैं कि लोग प्राणनाथजी को (उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण के कारण) गलत न समझ बैठें और उन्हें मुसलमान न कहने लगें। इसीलिए वे प्राणनाथजी की 'श्रीमुख वाणी' को प्रणामी समाज तक ही सीमित रखना चाहते हैं।

इन कठिनाइयों के बावजूद प्राणनाथजी और उनके सम्प्रदाय के सम्बन्ध में विद्वानों ने कुछ महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस कार्य को दो भागों में रखा जा सकता है- (१) पाश्चात्य लेखकों द्वारा किया गया कार्य, और (२) भारतीय लेखकों द्वारा किया गया कार्य। पाश्चात्य लेखकों में आर० बी० रसल, एफ० एस० ग्राउज, एच० एच० विल्सन, जार्ज ग्रियर्सन, हेग आदि का नाम उल्लेखनीय है। इनके द्वारा प्राणनाथजी-सम्बन्धी जो उल्लेख हुए हैं, वे यद्यपि अत्यन्त संक्षिप्त हैं पर उनका विशेष महत्व है: क्योंकि इन्हीं उल्लेखों के आधार पर डा० ताराचन्द, क्षितिमोहन सेन तथा भारतीय साहित्यकारों ने भी प्राणनाथजी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का विवेचन किया और प्राणनाथजी का नाम सम्प्रदाय से बाहर, साहित्यिक क्षेत्र में आ सका।

भारतीय लेखकों में रामचन्द्र शुक्ल, डा० रामकुमार वर्मा, मिश्रबन्धु तथा परशुराम चतुर्वेदी का नाम उल्लेखनीय है : पर इनके द्वारा प्रस्तुत सामग्री सम्प्रदाय के मूल ग्रन्थों पर आधारित नहीं है ; और जो है, वह भी अत्यन्त संक्षिप्त । चतुर्वेदीजी ने यद्यपि अन्य लेखकों की तुलना में अधिक विस्तार से उल्लेख किया है, पर प्राणनाथजी के महान व्यक्तित्व को देखते हुए वह सामग्री भी अपर्याप्त ही मानी जायेगी ।
इन साहित्यिक तथा इतिहास ग्रन्थों के अतिरिक्त खोज-रिपोर्टों में भी प्राणनाथजी के जीवन तथा काव्य से सम्बन्धित कुछ उल्लेख मिलते हैं ।

प्राणनाथजी के जीवन पर प्रकाश डालने वाली विशेष सामग्री प्राणनाथजी के शिष्यों तथा साम्प्रदायिकजनों की रचनाओं में ही मिलती है । इस सामग्री को तीन भागों में रखा जा सकता है :

(१) प्रकाशित पर साहित्यकारों को अनुपलब्ध

इस श्रेणी में दो तरह की रचनाएं आती हैं-(क) प्राणनाथजी की जीवनी सम्बन्धी रचनाएं और दूसरा प्राणनाथजी के दार्शनिक मतों की व्याख्या करने वाली रचनाएं । जीवनी सम्बन्धी रचनाओं में मुख्यतः 'बीतक-साहित्य' की गणना की जाती है । बीतक साहित्य के भी दो भाग किये जा सकते हैं-एक भाग में वे बीतकें रखी जा सकती हैं जो प्राणनाथजी के शिष्यों द्वारा लिखी गयी हैं और दूसरी ऐसी बीतकें हैं जो भक्त-कवियों द्वारा लिखी गयी हैं । भक्त-कवियों द्वारा लिखी गयी बीतकों में छत्रसाल के समकालीन कवि ब्रजभूषण-कृत 'वृत्तान्त मुक्तावली' छत्रसालजी के पौत्र और हृदय शाह तथा उनके पुत्र के समकालीन दरबारी कवि 'बख्शी हंसराज-कृत 'मिहिरराज चरित्र' तथा किसी गुजराती कवि लल्लूभट्ट-कृत 'वर्तमान दीपक' (गुजराती) का नाम मुख्य रूप से उल्लेखनीय है । वर्तमान दीपक वृत्तान्त मुक्तावली का प्रकाशन तो काफी वर्ष पूर्व हो चुका है, 'मिहिरराज चरित्र' का प्रकाशन अभी कुछ समय पूर्व ही आंशिक रूप में हुआ है-जितना अंश प्राणनाथजी की जीवनी से सम्बन्धित था, वह तो प्रकाशित कर दिया गया है और जो दर्शन से सम्बन्धित था, वह अप्रकाशित छोड़ दिया गया है ।

शिष्यों की रचनाओं में लालदास-कृत बीतक, करुणावती-कृत बीतक, नवरंग स्वामी-कृत बीतक आदि का नाम उल्लेखनीय हैं। करुणावती-कृत बीतक अप्रकाशित है। लालदास-कृत बीतक तथा नवरंग-कृत बीतक का प्रकाशन कुछ समय पूर्व हो चुका है ।

नवरंग-कृत बीतक की खण्डित प्रति ही प्रकाशित हुई है।

बीतक-साहित्य के अतिरिक्त जीवनी सम्बन्धी कुछ परवर्ती साम्प्रदायिकजनों की रचनाएं-निजानन्द चरितामृत, चरित्र दिग्दर्शन, श्री जागनी लीला, धर्माभियान आदि-भी उपलब्ध हैं। इन रचनाओं का आधार बीतक-साहित्य ही है। इनमें वर्णित घटना-क्रम बीतकानुरूप ही हैं, अन्तर सिर्फ यही है कि 'बीतक-साहित्य' पद्य में और ये रचनाएं गद्य में हैं। इन कृतियों में मौलिक सामग्री का सर्वथा अभाव है।

दर्शन से सम्बन्धित प्रकाशित रचनाओं में 'वैराट निरूपण', 'पातालथी परमधाम', 'सृष्टि विज्ञान वर्णन', 'सम्प्रदाय सिद्धान्त', 'श्री परमपद मार्ग-दर्शक' (गुजराती), 'विज्ञान सरोवर' आदि उल्लेखनीय हैं।

शिष्यों तथा भक्त-कवियों की रचनाओं के अतिरिक्त प्राणनाथजी की रचनाओं के संग्रह 'तारतम सागर' का, जोकि लगभग तीन सौ वर्षों से अप्रकाशित रूप में था, प्रथम बार प्रकाशन १९६५ ई० में हुआ है। यद्यपि इसके पूर्व भी इसका प्रकाशन हो चुका है, पर आंशिक रूप में ही हुआ है पूर्ण रूप में नहीं।

यह समस्त प्रकाशित सामग्री साहित्यकारों तक नहीं पहुंच सकी है। यदि इसपर शोध-कार्य करवाया जाये तो भाषा और गद्य-साहित्य की दृष्टि से यह सामग्री बड़ी उपादेय सिद्ध होगी।

(२) अप्रकाशित

श्री प्राणनाथजी के जीवन पर प्रकाश डालनेवाली अधिकांश सामग्री अप्रकाशित है। पांच छः वर्षों से यद्यपि प्रणामी-साहित्य का प्रकाशन कार्य किया जा रहा है, पर अभी तक सम्पूर्ण हस्तलिखित सामग्री का प्रकाशन नहीं हो सका। इस अप्रकाशित सामग्री में जीवनी साहित्य में-स्नेह सखी-कृत बीतक, बीरजी-कृत बीतक, करूणावती कृत बीतक, बहुरंग स्वामी-कृत बीतक तथा चिन्तन के क्षेत्र में लालदास-कृत बड़ी वृत, जुगल-दासजी-कृत बड़ी वृत, लालदास कृत छोटी वृत और जुगलदास कृत छोटी वृत, शेखजी मीरजी का किस्सा, भट्टाचार्य-कृत विद्वद्मनो आदि का नाम उल्लेखनीय है। शेखजी मीरजी का किस्सा तथा विद्वद्मनी (संस्कृत) से बहुत ही कम लोग परिचित हैं। ये दोनों कृतियां पन्ना (आधुनिक मध्यप्रदेश) में, प्रणामी मन्दिर में प्राप्य हैं। इनका दर्शन कुछ इनेगिने लोगों को ही हो सका है : समस्त प्रणामियों के लिए इसे पढ़ना तो दूर दर्शन कर सकना भी असंभव है। बहुत प्रयत्न करने पर शेखजी मीरजी का किस्सा तो प्राप्त हो सका, परन्तु विद्वद्मनी नहीं।

(३) सम्प्रदाय के आचार्यों और साधकों से मौखिक रूप से प्राप्त

इस श्रेणी में कुछ अलौकिक घटनाओं के अतिरिक्त 'साधना' सम्बन्धी उस सामग्री को रखा जा सकता है जिसका उल्लेख प्रणामी-साहित्य में नहीं हुआ पर जिससे उनकी साधना-पद्धति तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व का बोध होता है।

इस समस्त, प्रकाशित, हस्तलिखित तथा मौखिक सामग्री के आधार पर प्राणनाथजी के जीवन-वृत, साधना तथा दर्शन का विवेचन इस शोध प्रबन्ध में किया गया है।

प्रणामी साहित्य में प्राणनाथजी के 'जीवनी' संबन्धी सामग्री काफी उपलब्ध है, दर्शन सम्बन्धी सामग्री भी पर्याप्त है, पर उनकी 'साधना पद्धति' पर विस्तार से विवेचन नहीं किया गया। कला का पक्ष तो पूर्णतः ही अछूता छोड़ दिया गया है।

इस शोध-प्रबन्ध में इस अछूते क्षेत्र-कला-के साथ ही साधना पर भी विस्तृत विवेचन किया गया है। प्राणनाथजी की रचना 'प्रकाश ग्रन्थ, में 'एक सौ आठ' पक्षों का जो वर्णन मिलता है, उसी के आधार पर उनकी आराधना, आराधक और आराध्य का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया गया है। इसी तरह दर्शन का विवेचन भी, विशेषतः अखण्ड भूमि का वर्णन उपरोक्त ग्रन्थों के अलावा उनके परिक्रमा ग्रन्थ के वर्णनों के आधार पर किया गया है।

दर्शन. साधना व कला के अतिरिक्त उनके जीवन-वृत तथा उससे संबन्धित प्राप्त सामग्री की प्रामाणिकता की जांच का भी प्रयत्न किया गया है।

इस सामग्री के आधार पर इस शोध-प्रबन्ध के दो खण्ड किये गये हैं।

प्रथम खण्ड के चार अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में श्री प्राणनाथजी के युग की उन परिस्थितियों का विवेचन किया गया है जिसने उनके जीवन तथा दर्शन को प्रभावित किया और जिसकी अनुगूंज उनके साहित्य में है।

दूसरे अध्यायमें अध्ययन की आधारभूत सामग्री का अध्ययन प्रस्तुत है। जिसमें मुख्य रूपसे बीतक-साहित्य, सम्प्रदाय में दीक्षित लेखकों की रचनाएं, साहित्यिक इतिहास, खोज रिपोर्ट. इतिहास ग्रन्थ लोकगीत और शिला-लेखों से प्राप्त सामग्री का समालोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

तीसरे अध्याय में श्री प्राणनाथजी के व्यक्तित्व का विवेचन किया गया है जिसमें उनके जन्म-काल तथा स्थान, शिक्षा-दीक्षा और वैराग्य, धर्माभियान, पंडितों से शास्त्रार्थ तथा अलौकिक घटनाओं आदि का अध्ययन सम्मिलित है।

चौथे अध्याय में साहित्यिक कृतित्व का विवेचन है, जिसमें उनकी रचनाओं के संग्रह 'तारतम सागर' का रचनाकाल, उसकी प्राचीनतम प्रति और उसकी अनुलिपियों तथा उनकी रचनाओं के रचना-क्रम और उनकी प्रामाणिकता का समावेश है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, प्रणामी साहित्य में 'जीवन-वृत' सम्बन्धी सामग्री तो पर्याप्त उपलब्ध है, पर प्राणनाथजी के साहित्य को प्रभावित करने वाली तत्कालीन परिस्थितियों तथा प्राणनाथजी के जीवन पर प्रकाश डालने वाली रचनाओं और प्राणनाथजी की रचनाओं के संग्रह 'तारतम सागर' की प्राचीनता, रचनाकाल आदि का समालोचनात्मक अध्ययन तो न के बराबर हुआ है। इस तरह इस खण्ड के पहले, दूसरे और चौथे अध्याय की सामग्री पूर्णतः मौलिक है और तृतीय अध्याय की सामग्री का जीवनी-साहित्य में यद्यपि परम्परागत उल्लेख मिलता है, पर उस साहित्य में दी गयी तिथियों की प्रामाणिकता की जांच करने का प्रयत्न इस शोध-प्रबन्ध में पहली बार किया गया है। दूसरा, इस अध्याय में जीवन-सम्बन्धी सामग्री, जो बिखरी हुई थी, एकत्र कर सुनियोजित रूप से रखने का प्रयत्न किया गया है। जैसे, किन्हीं ग्रन्थों में श्री प्राणनाथजी के बाल्यकाल की लीलाओं का वर्णन है (स्नेह सखो-कृत बीतक), तो किन्हीं में जन्म-सम्बन्धी घटना का (चरित्र दिग्दर्शन) और किसी में शास्त्रार्थ का सविस्तर विवेचन है (वर्तमान दीपक)। किन्हीं रचनाओं में उनके परिवार का उल्लेख नहीं है (विज्ञान सरोवर), तो किन्हीं में औरंगजेब को प्राणनाथजी द्वारा लिखे पत्रों का मात्र नामोल्लेख है, पर उसके विषय का अभाव : तो किन्हीं रचनाओं में सिर्फ पत्रों (नलुओं) में लिखे गये विषय का ही उल्लेख है (बड़ा मसौदा)। कुछ रचनाओं में प्राण नाथजी और पंडितों में हुए शास्त्रार्थ का उल्लेख भी अति संक्षिप्त हुआ है, तो किसी में हुआ ही नहीं। इस समस्त बिखरी हुई सामग्री को एकत्र कर क्रम में रखा गया है।

द्वितीय खण्ड में प्रथम (पांचवे) अध्याय में प्राणनाथजी की दार्शनिक मान्यताओं अखण्डभूमि, बेहदभूमि और हदभूमि तथा अक्षरातीत, अक्षर और क्षरपुरुष का अध्ययन

किया गया तथा श्री प्राणनाथजी के इस मत की विभिन्न प्रचलित दर्शन-धाराओं से तुलना की गयी है ।

'परमधाम प्रणालिका' में भी यद्यपि परमधाम, अक्षरधाम पच्चीस पक्ष, प्रणव ब्रह्म, ब्रह्माण्ड की रचना और इसका कारण तथा महारास और त्रिविध लीला का सविस्तर वर्णन किया गया है, पर अन्य दार्शनिक रचनाओं-तारतम प्रणालिका, वेदों की प्रणालिका, पाताल से परमधाम आदि, की तरह इसमें भी तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास नहीं किया गया और अधिकांश सामग्री 'छोटी वृत' तथा 'बड़ी वृत' के अनुरूप ही हैं ।

इन उपरोक्त रचनाओं में विशेषकर 'छोटी वृत' व 'बड़ी वृत' तथा 'चरचनी' में परमधाम के पच्चीस पक्षों का वर्णन विस्तार से किया है । संसार की उत्पत्ति के कारण तथा क्षर पुरुष (हदभूमि), जीव, प्रलय, सृष्टि आदि का संक्षेप में वर्णन किया गया है । पर, इस शोध-प्रबन्ध में खिलवत ग्रन्थ, प्रणालिका, वेराट, गुरु-शिष्य-संवाद, विज्ञान सरोवर, सृष्टि-विज्ञान-वर्णन, वर्तमान दीपक, आदि में ब्रह्माण्ड, जीव, संसारोत्पति के कारण तथा संसार के विस्तार सम्बन्धी जो सामग्री बिखरी पड़ी थी, उसके आधार पर 'क्षरपुरुष' (विशेष कर मृत्युलोक और इस दृश्य-जगत् की वस्तुओं) का विवेचन किया गया है : परमधाम के पच्चीस पक्षों का उल्लेख संक्षेप में किया गया है क्योंकि इससे सम्बन्धित पर्याप्त सामग्री बड़े ही सुनियोजित रूप में मिलती है । इसका संक्षेप में वर्णन करने का दूसरा कारण यह भी है कि इसका इस शोध-प्रबन्ध से सीधा सम्बन्ध नहीं है, सिर्फ ब्रह्म और ब्रह्मपुरधाम के प्रसंग में ही इसका विवेचन किया गया है ।

इस खण्ड के दूसरे अध्याय में श्री प्राणनाथजी की 'साधना पद्धति' का विवेचन किया गया है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि प्राणनाथजी की साधना पद्धति पर स्वतंत्र रूप से प्रकाश नहीं डाला गया । कहीं इसका उल्लेख 'दर्शन' के साथ हुआ है (सम्प्रदाय सिद्धान्त व परमपद मार्ग-दर्शक) तो कहीं प्रणामियों को ईश्वर की आराधना कैसे करनी चाहिए, इस प्रसंग में संक्षेप में उल्लेख किया गया है (तारतम की पुकार) । 'परमार्थ दर्शन' द्वितीय भाग) में केवल प्रेम-लक्षणा भक्ति और सत्संग के माहात्म्य पर ही प्रकाश डाला गया है । साधना पद्धति के सर्वांगों का (साधक और साध्य तथा एक सौ आठ पक्षों का) उल्लेख उसमें भी स्वतंत्र रूप से नहीं किया गया है ।

हरिद्वार में विभिन्न मतावलम्बियों से शास्त्रार्थ करते समय प्राणनाथजी ने उन्हें अपनी साधना-पद्धति की जो रूपरेखा बतायी थी, जिसका उल्लेख बीतक-साहित्य में मिलता है, उसके आधार पर तथा प्रकाश ग्रन्थ में दिये गये 'एक सौ आठ' पक्षों के विवरण', विभिन्न ग्रन्थों में मिले साधना-सम्बन्धी संक्षिप्त उल्लेखों तथा समाज में प्रचलित साधना के तरीकों के आधार पर प्राणनाथजी की साधना का सुनिश्चित स्वरूप निर्धारित किया गया है।

तीसरे अध्याय में भावानुभूति और अभिव्यक्ति-भाषा, अलंकृति, उलटबांसियां, गीतितत्व आदि का विवेचन है।

परिशिष्ट भाग में बुद्धनिष्कलंकावतार तथा इमाम मेंहदी के प्रगट होने की तिथियों का उल्लेख, सनन्ध, कीरन्तन और क्यामतनामा ग्रन्थ में उल्लिखित तिथियों के आधार पर किया गया है। इसके अतिरिक्त, इसमें कैलेंडर फार्मूला, आचार्य परम्परा, चित्र और सहायक ग्रन्थों की सूची भी दी गयी है।

प्रणामी साहित्य (प्राणनाथजी की रचनाओं) का मूल्यांकन करने पर ज्ञात होता है कि भाषा, धर्म, साहित्य तथा संस्कृति की दृष्टि से यह हिन्दी-साहित्य की एक अमूल्य गुप्त निधि है. जिसके प्रकाश में आने से केवल प्रणामियों को, प्राणनाथजी की अंतिम निवास-भूमि बुन्देलखण्ड को, और उनकी जन्मभूमि गुजरात को ही नहीं, वरन् भाषाविज्ञों, साहित्यकारों, समस्त देश तथा भेदभाव-रहित समाज की स्थापना चाहने-वाली मानव जाति को भी गर्व होगा और वे इससे लाभ उठा सकेंगे।

प्राणनाथजी की निम्न चौपाई से प्रेरणा पाकर ही इस गुरुतर कार्य को हाथ लगाया गया है –

खोज बड़ी संसार रे तुम खोजो, साधो खोज बड़ी संसार।
खोजत खोजत सत्गुरु पाइए, सत्गुरु संग करतार'॥

इस प्रबन्ध लेखन में जो भी सफलता मिली है उसका समस्त श्रेय श्रद्धेय गुरुवर डा० प्रभात को जिनके निर्देशन में यह कार्य किया है तथा श्री श्री १०८ आचार्य श्री धर्मदास जी को है जिन्हों ने शोध काल में समय समय पर सामग्री दे कर सहायता की है और जिन्होंने इसके शीघ्राति शीघ्र प्रकाशन के लिए सिर्फ हमें प्रेरित ही नहीं किया वरन् इस का प्रकाशन कराके धर्म, साहित्य और समाज सेवा का जो

परिचय दिया है वह सराहनीय है। इनके प्रति कृतज्ञता किन शब्दों में व्यक्त करूं। अपने को असमर्थ पाती हूँ।

श्री मंगलदासजी महाराज (सूरत) व श्री जगमोहनदासजी मेटिया, श्री कृष्णप्रियाचार्य (भरोड़ा-आनन्द) तथा श्रीपद्मावतीपुरी (पन्ना) के उन समस्त महानुभावों के प्रति अनुगृहीत हूँ जिन्होंने समय-समय पर इस सामग्री के संचयन में सहयोग दिया है। आदरणीय रणछोड़दासजी वीरजी (भाटापारा म० प्र०), प्रो० एम० बी० जायसवालजी तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के प्रति अत्यन्त आभारी हूं जिनकी सहायता से मैंने पाताल से परम-धाम तक के चित्र और हस्तलिखित ग्रन्थों के फोटो प्रिंट्स प्राप्त किये हैं।

पूज्य पिताजी तथा आदरणीय भाई साहब के प्रति कृतज्ञता व्यक्त न करना, धृष्टता होगी : उनकी अनवरत प्रेरणा और सहायता के बिना यह अध्ययन-कार्य पूरा न होता।

राजबाला सिडाना

संवत् २०२५
बम्बई

दो शब्द

'श्री प्राणनाथजी और उनका साहित्य' नामक इस ग्रन्थके प्रकाशन से मैं स्वयं आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। प्रस्तुत ग्रन्थ में साढ़े तीन सौ वर्ष से साहित्य में बिखरी घटनाओं और अनेक लोकोक्ति परम्पराओं का जिस समालोचनात्मक शैली में प्रतिपादन किया गया है, वह सर्व प्रथम होते हुए भी प्रशंसनीय है।

मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी कि साहित्यान्वेषकों के परिशीलन के लिये पुस्तकों, घटनाओं और दार्शनिक तथ्यों का सही निर्देश दे सके ऐसी पुस्तक लिखी जाय। ऐसे ग्रन्थके अभावमें साहित्यिकोंने जो गलती की है वह वस्तुतः उनकी नहीं हमारी कमजोरी थी कि उनको अनुकूल साहित्य नहीं मिल सका।

यद्यपि यह सर्वमान्य है कि भक्ति साहित्यका मूलस्रोत महापुरुषों की अंतर्निनाद है और उसमें भक्तों की श्रद्धा विश्वास ही परम पुरुषार्थ है। परन्तु आज की बाह्य-परिस्थितियों और साहित्यिकों की अभिरुचिके ऊपर प्रतिबन्ध नहीं लगा सकते। कभी वह समय था जब धार्मिक साहित्य श्रद्धा और विश्वास की परिधिमें सीमित रहता था, अब तर्क और बुद्धि की कसौटी पर कसा जाने लगा है। इस मन्थन से साहित्यिक तो लाभ उठायेंगे ही जहां तक मेरा विश्वास है धर्म प्रेमी सज्जन अधिक से अधिक लाभान्वित होंगे।

जिससे मैं खुश हूँ वह 'बाला' का तप और कठोर श्रम है, जिसका परिणाम साहित्य द्वारा समाजको महती सेवा। इस सेवा के उपलक्ष्य में उन्हें केवल हृदय से आशीर्वाद ही दे रहा हूँ और चाहता हूँ उनके हृदय में समाज सेवा की भावना सदैव बनी रहे।

इस पुस्तक के प्रकाशन में शास्त्री देवकृष्ण शर्मा की गहरी दिलचस्पी थी। पुस्तक के आद्योपान्त मनन के साथ प्रूफ संशोधन आदि में विशेष सूझ-बूझ से काम लिया है अत एव इन्हें आशीर्वाद देता हूँ। साथ ही चरचनी विशारद महन्त जगमोहन दासजी तथा श्री लक्ष्मीदासजी वाणीविशारद आदि को जिन्होंने पुस्तक प्रकाशन में विशेष अभिरूचि दिखाई है उन्हें भी धन्यवाद देता हूं।

पुस्तक के प्रकाशन में सहयोग देने वाले (प्रिंटर) नटवरलाल वो. व्यास और (कम्पोजिटर) छबीलदास शर्मा तथा हरकृष्णलाल सिडाना आदि जिन्होंने प्रेमसे काम किया है ये भी आशीर्वाद के पात्र हैं।

श्री महाराज धर्मदासजी

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

खण्ड–प्रथम

प्रथम–खण्ड का वर्ण्य-विषय

अध्याय १ पृष्ठभूमि

प्राणनाथजी का युग-परिस्थिति और परिवेश

श्री प्राणनाथजी का जन्म गुजरात के नवानगर (जिसका आधुनिक नाम जामनगर है) में हुआ था वहीं उनका शैशव और यौवन बीता। इसी राज्य में वे दीवान के रूपमें कार्य करते रहे और यहीं उनको दीक्षा मिली। इस प्रकार, जन्म से लेकर वैराग्य तक (सं० १६७५-१७२२ तक) वे अधिकतर अपनी जन्मभूमि नवानगर (जामनगर) में ही रहे। सं० १७२२ में प्राणनाथजी अपनी जन्मभूमि को छोड़कर धर्माभियान पर निकले। और आठ वर्ष तक गुजरात, कच्छ, मेड़ता (राजस्थान), 'अरब' आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए दिल्ली पहुंचे। फिर, मथुरा, हरिद्वार (उत्तर भारत), अनूपशहर उदयपुर, मन्दसौर, अवन्तिपुरी (उज्जैन), औरंगाबाद (महाराष्ट्र), रामनगर, गढ़ा, आदि में धर्मोपदेश करते हुए 'बुन्देलखण्ड' पहुंचे। बुन्देलखण्ड में मऊ, बिजावर, कालपी चित्रकूट, ओरछा, कलिंजर आदि का भ्रमण किया और पन्ना को अन्तिम निवास स्थान बनाया। जीवन के अन्तिम दिन इन्होंने बुन्देलखण्ड में ही व्यतीत किये, जहां छत्रसालजी ने इनका शिष्यत्व ग्रहण किया। इस प्रकार प्राणनाथजी का कार्यक्षेत्र प्रमुख रूपसे गुजरात, राजस्थान और मध्यप्रदेश रहा है। इसलिए प्राणनाथजी के व्यक्तित्व और दर्शन को प्रभावित करने वाली राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का अध्ययन मुख्यतः गुजरात, मध्यभारत तथा बुन्देलखण्ड को दृष्टिमें रखते हुए किया गया है।

१. राजनीतिक परिस्थिति

प्राणनाथजी के बारे में प्रचलित है कि ये सूर्यवंशी क्षत्री थे और इनका सम्बन्ध त्रेता-युग के भगवान रामचन्द्र के वंश * से था। इनके पिता केशव ठाकुर जामनगर के जाम (शासक) के दीवान थे। उसके बाद ज्येष्ठ पुत्र श्यामलिया ठाकुर ने यह पद सम्भाला तत्पश्चात् इन्होंने ही यह पद संभाला। जिस व्यक्ति को भौतिक भोगों के प्रति आसक्ति न हो, उसे राजनीति के तंत्र नहीं उलझा सकते। पर दीवान होने के नाते इन्हें राजनीति में सक्रिय भाग लेना पड़ा। संसार से अनासक्ति और ईश्वर के प्रति आसक्ति के बावजूद तत्कालीन हिन्दू राजाओं को मुगलशासन के अत्याचारों के सामने सिर न झुकाने के लिये कहना और छत्रसाल बुन्देला को औरंगजेब द्वारा

---

*—विस्तार के लिए देखिए, 'जीवन वृत्त' अध्याय

जनता पर किये गये अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित करना, इस बातका प्रमाण है कि वे अपने युग की राजनीति के प्रति तटस्थ भाव धारण करके नहीं बैठे थे।

उस युग की राजनीति का मूल स्वर था वीरता और बलिदान से परिपूर्ण संघर्ष। यह संघर्ष दो प्रकारका था—

(क) मुगल शासकों का प्रान्तीय शासकों से संघर्ष:
(ख) प्रान्तीय शासकों के आपसी झगड़े।

और इन सभी संघर्षों का परिणाम था अशांति और क्लांति। विश्वासघाती औरंगजेब ने पिताको बन्दी बनाकर तथा भाइयोंका वध करके केन्द्रीय शासन (दिल्ली) हथिया लिया था, और अब वह समस्त छोटी-छोटी रियासतों को अपने अधीन कर, संपूर्ण भारत पर अपना राज्य स्थापित करना चाहता था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने दक्षिण की ओर भी कदम बढ़ाये, जिस ओर कि अभी तक किसी भी मुगल-शासक ने आंख उठाकर भी नहीं देखा था। अपने इस महान स्वप्न की पूर्ति के लिए उसे आजीवन संघर्षरत रहना पड़ा-कभी मराठों से, कभी बुन्देलों से और कभी राजपूतों से संघर्ष करना पड़ा। हिन्दू शासक ही विशेषकर उसके कोपभाजन थे।

विभिन्न रियासतों को अपने अधीन करने के उद्देश्य से उसने सर्वप्रथम प्राणनाथजी की जन्मभूमि गुजरात की ओर अपने कदम बढ़ाये। अहमदाबाद में उस समय मुराद शासन * कर रहा था। उसने जनवरी, १६५८ ई० में सूरत पर चढ़ाई करके उसे अपने अधिकार में कर लिया था+ और अब वह मालवा पर भी अधिकार करना चाहता था। मालवा में जसवन्त सिंह शासन कर रहा था। 'जसवन्त' की सैनिक-शक्ति मुराद की सैनिक-शक्ति से अधिक थी। इसलिए मुराद को औरंगजेब से सहायता मांगनी पड़ी। इसी बीच जसवन्तसिंह ने उज्जैन के पश्चिम से, बांस वाडा होते हुए कचरन्द से छः मील दूर घेरा डाल दिया। मुराद को भी औरंगजेब का सन्देश प्राप्त हुआ। कुछ समय बाद दोनों भाइयों ने मिलकर जसवन्त को पराजित किया और मालवा पर आधिपत्य करते हुए १४ फरवरी को मुगल सेनाएं मन्दसौर को बढ़ीं १।

---

* यदुनाथ सरकार हिस्ट्री आफ औरंगजेब, संस्करण १ और २ पृ० ३१०
+ वही, पृ० २८६ १ वही यदुनाथ स. हि पृ. ३१०

गुजरात पर अधिकार करने के बाद औरंगजेब ने वहां बड़ी कड़ाई से शासन किया। इस कड़ाई से शासन शायद ही कभी पहले किसी भी प्रांत पर किया गया हो। उस समय गुजरात में डाकुओं ने बड़ा आतंक फैला रखा था, उनके दमन के लिए ही औरंगजेब को इस प्रकार का रुख अपनाना पड़ा[१]।

यह हुआ गुजरात का केन्द्र से संघर्ष। परन्तु गुजरात के भिन्न भिन्न शासकों व पड़ोसी राजाओं में भी संघर्ष होता रहता था, जिसके कारण वे मुगल शासकों के विरुद्ध सशक्त कदम न उठा सके और पराजित हुए। गुजरात में ही नहीं, बुन्देलखण्ड में भी पहाड़सिंह और चम्पतराय बुन्देला में आपसी वैमनस्य था[२] और वे एक-दूसरे को नीचा दिखाने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहते थे। इससे स्पष्ट है कि प्रांतीय शासकों का सिर्फ केंद्र से ही संघर्ष नहीं था, वे आपस में भी लड़ते-रहते थे जिससे उनकी सैनिक शक्ति का ह्रास हुआ और वे मुगल शासक औरंगजेब का डटकर सामना न कर सके। इस संघर्ष ने गुजरात की स्थिति को डांवा-डोल कर दिया था। जनता में भय और असुरक्षा का भाव भर गया था और सामाजिक व्यवस्था तथा नैतिक मूल्यों का विघटन हो रहा था।

२. सामाजिक परिस्थिति–

धार्मिक दृष्टिसे गुजराती समाजको दो वर्गों में रख सकते है-(१) हिन्दू, (२) मुसलमान। ये वर्ग केवल धार्मिक ही नहीं थे। धर्म ने सामाजिक वैषम्य की दीवारें भी इनके बीच खड़ी कर दी थीं। यहां तक कि कुछ रियासतों में तो इनके धार्मिक आचार ही नहीं, सामाजिक कर्तव्य और अधिकार भी भिन्न थे। इतना होने पर भी दोनों एक-दूसरे की संस्कृति से प्रभावित हुए बगैर न रह सके[३]। उदाहरण के लिये मुसलमानों में मृत्युपरान्त 'फतीहा' पर गरीबों में भोजन बांटना आदि रीति-रिवाजों पर हिन्दुत्व का प्रभाव देखा जा सकता है। जहांगीर के समय में हमें ऐसे कई रीति-रिवाजों का ब्यौरा मिलता है जिसे मुसलमानों ने हिन्दूओं से ग्रहण किया है[४]।

सामाजिक दृष्टि से सबसे अधिक सम्पन्न व सुखी, शासक-वर्ग था। इस वर्ग में भोग-विलास व वैभव की पराकाष्ठा देखने में आती है। इनकी सत्ता न्याय पर नहीं, कराल दण्ड की शक्ति पर आधारित थी। छल और प्रवंचना शासक समाज के सहायक और संगी थे। राजा व्यक्तिगत रूप से भला भी होता, तो आन्तरिक और बाह्य संघर्ष उसे भलाई के मार्ग से फिसलाने का पूरा-पूरा प्रयत्न करते रहते थे। समाज का दूसरा शक्तिशाली वर्ग, पुरोहित-वर्ग था। हिन्दूओं में ब्राह्मण, मुसलमानों में सैयद, जैनों में यति आदि इसी वर्ग में आते हैं। ब्राह्मण का धर्म के क्षेत्र में एक-छत्र साम्राज्य था। इनके बिना कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न नहीं होता था। पर धीरे-धीरे लोगों के हृदय में इनके लिए श्रद्धा कम होती जा रही थी। संभवतः इसका कारण यह था कि मध्यकाल की आर्थिक परिस्थिति में 'नियम अनुशासन' की उपेक्षा करने वाले, श्रुतिवेचक और ज्ञान तथा धर्म के पथ से हटकर केवल भिक्षा के क्षेत्र में उतरने वाले ब्राह्मण काफी संख्या में हो गये थे।

तीसरा वर्ग वैश्यों का था, जो सुखी था, परन्तु जिसका सम्मान ब्राह्मण और क्षत्रियों से कम था। यह वर्ग चतुर और सम्पन्न था। बड़े बड़े व्यवसायों पर इसका अधिकार था। स्वयं लालदास, जो कि प्राणनाथजी के प्रमुख बारह शिष्यों में से एक थे, धनी-मानी और सम्पन्न व्यवसायी थे। इनके अधिकार में ऐसे अनेक समुद्री पोत (जहाज) थे और विदेशों से व्यापार करते थे। उस समय हमें सूरत में नाथाजी जैसे धनी पुरुषों का भी विवरण मिलता है जो कि अनेक व्यवसायियों की आर्थिक सहायता करते थे। ये खेती की ओर कम और व्यवसाय की ओर अधिक ध्यान देते थे। खेती करना मजदूरों या दासों का कार्य होता जा रहा था। अर्थ-लक्ष्मी इस व्यवसायी वर्ग में धर्म-भीरु अधिक और साधक धर्मात्मा लोग कम थे। विरोध, संघर्ष और अशांति, व्यापार के शत्रु होते हैं, कदाचित् इसी लिए ये संघर्षों से दूर रहना चाहते थे।

इस युग में शूद्र वर्ग की दशा शोचनीय थी। अस्वास्थ्यकर और घृणित समझे जानेवाले सेवा-कार्यों को करने का ही उन्हें अधिकार प्राप्त था। केवल अछूत ही नहीं, वेश्याएं आदि भी धार्मिक सभाओं में आ-जा नहीं सकते थे। विधवाओं को भी सत्संग करने और धार्मिक विचारों के आदान प्रदान करने का अधिकार नहीं था इसके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में और कई छोटे वर्ग थे-

(क) वंशोचारक तथा लेखक वर्ग, जिसमें चारण भाट आदि आते हैं;

(ख) दस्तकार और कलाकारों का वर्ग;

(ग) खेती तथा सेवा व्यवसायी लोगों का वर्ग।

ये वर्ग आर्थिक रूप से पराश्रित अधिक थे और समाज में सम्मान कम, दया अधिक पाते थे।

यातायात के साधन–

रेल' बैलगाड़ी, बग्घी, हाथी, खच्चर, घोड़े, डोली, सुखपाल, जहाज, नाव आदि के द्वारा यातायात होता था। इनमें से अनेक का प्रयोग प्राणनाथजी ने यात्राओं में किया था।

डाक व्यवस्था–

कुछ-कुछ दूरियों पर डाक चौकियां होती थीं जहां पैदल डाकिये डाक पहुँचाया करते थे। यह व्यवस्था अकबर और जहांगीर के समय में प्रचलित थी[१]। तोते द्वारा भी पत्र भेजने की व्यवस्था थी। जैसलमेर की राजकुमारी ने तोते द्वारा ही छत्रसाल को पत्र भेजा था।

विवाहोत्सव–

हिन्दुओं में; पति पत्नी से उम्र में बड़ा होता था। जबकि मुसलमानों में इस प्रकार का बन्धन नहीं था। उन में बूढ़ा व्यक्ति एक बहुत ही कम उम्र वाली लड़की से भी शादी कर सकता था और अपने से बड़ी उम्रवाली औरत से भी। हिन्दुओं में एक-पत्नी प्रथा प्रचलित थी। वह दूसरा विवाह तभी कर सकता था, जब उसकी पहली पत्नी की मृत्यु हो जाये या उसके कोई सन्तति न हो या संक्रामक बीमारी की शिकार हो। सन्त तुकाराम ने भी, जिनकी प्रथम स्त्री दमा की शिकार थी, दूसरा विवाह किया था[२]। स्वयं प्राणनाथजी ने प्रथम स्त्री की मृत्युपरान्त दूसरा विवाह किया था। यह द्वितीय पत्नी, जिसका नाम तेजबाई था, प्राणनाथजी से उम्र में भी काफी छोटी थी।

हिन्दू व मुसलमान दोनों में किसी धनी परिवार के व्यक्ति की मृत्युपरांत 'देहरी' (Tombs.) बनायी जाती थी। प्राणनाथजी के अनुयाइयों में आज भी

---

१ पी. एन. चोपडा: सम आस्पेक्ट्स आफ सोशल लाइफ ड्यूरिंग मुगल-एज २– वही, पृ० २०

'देहुरी' बनाने का प्रचलन है। गरीब लोग धनाभाव में जिस स्थान पर व्यक्ति का अन्तिम संस्कार किया जाता था, वहां कुछ दिन तक दीपक जलाकर रखते थे और धनी मुसलमान देहुरी बनवाकर वहां पर मुल्ला से कुरान का पाठ करवाते थे। फ-तीहा हो जाने पर गरीबों को भोजन कराया जाता था।

राजा या बादशाह से मिलना बड़ा कठिन होता था। उसके लिए पहले सरदारों या दरबारियों से मिलना होता था; और कभी-कभी तो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें भेंट-स्वरूप रिश्वत भी देनी पड़ती थी। कुल मिलाकर शासक से मिलना बड़ा ही खर्चीला तथा कठिन होता था। प्राणनाथजी को स्वयं औरंगजेब से तथा भावसिंह से मिलने के लिए ऐसी अनेक दिक्कतों का सामना करना पड़ा था[१]।

३. आर्थिक परिस्थिति–

उस समयकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। शाहजहां के समय में तो भारतीय सं-पत्ति ने विदेशों के लोगों तक को प्रभावित किया था। बुखारा, फारस, तुर्की, अरब आदि के राजदूत तथा फ्रांस और इटली से आनेवाले यात्रियों आदि को आंखों में यहां की सम्पत्ति और ऐश्वर्य ने चकाचौंध पैदा कर दी थी[२]। 'कोहनूर' और 'तख्ते ताऊस' उनके लिये आश्चर्य की वस्तु थी। परन्तु औरंगजेब के निरन्तर युद्धों में लगे रहने और युद्ध में होनेवाले खर्चों आदि के कारण उसके शासन के अन्तिम काल में आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं रह गयी थी। गुजरात राज्य की भी आर्थिक व्यवस्था अच्छी नहीं थी। समय पर जाम राजा द्वारा कुतुबखां को धन न दे सकने के कारण, जाम-दीवान प्राणनाथजी को सजा भोगनी पड़ी थी।

मध्य-युग में जनता का जीवन भी सुखमय था। खेती में केन्द्र अधिक हस्तक्षेप नहीं करता था। भूमि अधिकारियों को उपज का कुछ हिस्सा राज्य को देना होता था। प्राचीन समय में उपज का १।६ या १।४ हिस्सा, अकबर के समय १।३ और औरंगजेब के समय में १।२ हिस्सा, कुल उपज का दिया जाता था[३]। भूमि के

१–हंसराज-कृत 'मिहिराज चरित्र'

२–यदुनाथ सरकार हिस्ट्री अफ औरंगजेब, पृ० २६५

३–डा० ताराचन्द सोसाइटी एण्ड स्टेट इन मुगल पीरियड पृ० ७२

आम होने से बेकारी नहीं थी। कर्मचारियों को बादशाह की ओर से किसानों के सुख-साधनों का ध्यान रखने का विशेष रूप से आदेश था। १

आर्थिक व्यवस्था केवल खेती पर ही निर्भर नहीं थी, इसका सम्बन्ध व्यापार से भी था। उस समय के व्यापार कताई-बुनाई, धातु-कार्य, बढ़ईगीरी, मिट्टी के बर्तन बनाना, चमड़े का काम आदि थे। व्यापार एक ही गांव या दो पड़ोसी गावों में होता था, पर छोटे पैमाने पर। यह थी ग्रामोद्योग की व्यवस्था।

व्यापार बड़े पैमाने पर भी होता था। यहां की व्यापारिक वस्तुओं को बहुत ही ख्याति प्राप्त थी भारतीय तलवारें और अस्त्र सदा पुरस्कृत होते थे। भारतीय तांबे और शीशे के बर्तन तथा सोने का और चांदी के जेवरात भी प्रसिद्ध थे। भारतीय सुनारों और जवेरियों की बुद्धि को विश्व-भर में भूरि-भूरि प्रशंसा होती थी। भारतीय नावों और जहाजों का निर्माण भी उच्च कोटि का था।

पारिक्सन (Parikson.) का कथन है कि जहाज बनाने में, भारतियों ने अंग्रेजों से शायद सीखने की बजाय सिखाया अधिक है२।

यह व्यापार विदेशों से गुजरात व कच्छ के बन्दरगाहों से बंजारों के काफिले भेजकर भी होता था और समुद्री बेड़ों द्वारा भी, जो कि खम्भात, बंगाल, उड़ीसा आदि से आते-जाते थे३।

व्यापारिक क्षेत्र में कपड़े की मिलों का भी बहुत ही महत्व था। गुजरात में मुख्य केन्द्र थे-अहमदाबाद और सूरत। पियरार्द (Pyrard of lavas.) जिसने पूर्वी प्रदेश की यात्रा की थी, भारत के व्यापार और संस्कृति के बारे में लिखता है, "खम्भात, सूरत तथा अन्य देश भारत के अन्य भागों से अच्छे हैं। ये यातायात तथा व्यापार में अन्य भागों को सुविधा प्रदान करते हैं४।

सल्फर और आरसैनिक सूरत से मंगाकर बुरहानपुर में बारूद बनाने के लिए भेजे जाते थे५।

१-वही० पृ० ४९, २-वही, पृ० ५२, ३-वही; पृ० ५३,

४-डा० ताराचन्द्र सोसाइटी एण्ड स्टेट इन मुगल पीरियड, पृ० ५४

५-यदुनाथ सरकार हिस्ट्री आफ औरंगजेब, पृ० ३४३

इससे स्पष्ट है कि मध्य-युग के बड़े पैमाने पर होने वाले व्यापार में गुजरात का महत्वपूर्ण स्थान था। उस युग में आज की तरह बैंक आदि नहीं थे, धनी व्यापारियों के वर्ग थे जो कि व्यापार में धन लगाते थे और छोटे व्यापारियों की आर्थिक सहायता करते थे। गुजरात के नाथजी और दक्षिण के चेतीस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं[१]।

प्राणनाथजी के शिष्य पोरबंदर के लक्ष्मण सेठ (लालदास) के पास भी निन्यानवे जलपोत थे जिनके द्वारा वे विदेशों से व्यापार करते थे। एकाएक उनके समस्त पोत नष्ट हो गये। चतुर्दास ब्राह्मण ने, जो लक्ष्मण सेठ के यहां काम करते थे, लक्ष्मण सेठ से कहा कि दूसरे लोगों से धन लेकर आप अपना काम चलायें। लक्ष्मण को यह बात नहीं जची, दूसरों को व्यापार आदि के लिए धन उधार देने वाला व्यक्ति स्वयं उधार ले, यह कैसे संभव था। अतः ये घर-बार छोड़कर प्राणनाथजी की शरण में आगये और आगे चलकर उनकी गणना प्राणनाथजी के प्रिय शिष्यों में होने लगी।

४. धर्म और दर्शन

प्राणनाथजी का युग धार्मिक आन्दोलनों का युग था। एक ओर मुस्लिम शासक हिन्दुओं को मुसलमान बनाने में लगे थे तो दूसरी ओर हिन्दू धर्माधिकारी अपने धर्म की रक्षा में अनेकों कष्ट सहकर भी, प्रयत्नशील थे। जिस अनुपात में हिन्दुओं को मुसलमान बनाया जाता था। उससे कहीं अधिक दृढ़ता से वे अपने धर्म की रक्षा का प्रयत्न करते। कहीं-कहीं राजपूतों, बुन्देलों और सिक्खों द्वारा इस अत्याचार का खुल्लमखुल्ला विरोध करने के भी उदाहरण मिलते हैं। कहीं नाथ पंथियों की आवाज थी, तो कहीं हठयोगियों का स्वर। कहीं वैष्णव भक्ति और सूफी प्रेम तत्व की आवाज़ बुलन्द थी, तो कहीं निर्गुणवादी संत-मत पनप रहा था। ब्रह्मवाद और मायावाद का ढोल पीटकर कमाने-खानेवालों की भी कमी नहीं थी। रामानुज, निम्बार्क, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य आदि के अनुयायियों का भी बोलबाला था। इनसे प्राणनाथजी का शास्त्रार्थ भी हुआ था, जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी रचना (कीरतन ग्रन्थ) में किया है[२]। शंकर के अद्वैतवाद, रामानुज के विशिष्टद्वैतवाद, वल्लभका शुद्धाद्वैतवाद मध्व के

१—डा० ताराचन्द सोसइटी एण्ड स्टेट इन मुगल पीरियड, पृ० ५५, 　　४—वही, पृ० ५६

२—आये चारों सम्प्रदाय के साधुजन, चार आश्रम चार वर्ण, चारों खूटों के गावते गुन आये नवनाथ चौरासी सिद्ध, बरसयानर सकल या विध,

द्वैतवाद, निम्बार्क के द्वैताद्वैतवाद की धारा भी बह रही थी। (इसका सविस्तार वर्णन आगे किया गया है।) वैदिक परम्परा के विरोध में जन्मी बौद्ध-धारा भी प्रवाहित थी जो महायान संप्रदाय से क्रमशः सिद्धनाथ और सन्तों तक पहुँची थी। उस समय यद्यपि जैन धर्म भी चल रहा था, परन्तु उसमें अधिक गत्यात्मकता नहीं थी। दक्षिण में ईसाई धर्म पनप रहा था। उसके उपदेशक- ईसाई पादरी-वहां पहुँच चुके थे। संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्राणनाथजी के युग में मुख्यतः तीन धर्म प्रचलित थे, हिन्दू-धर्म, जिसका विभिन्न रूपों में प्रचार हो रहा था, मुस्लिम धर्म और ईसाई-धर्म प्राणनाथजी ने इन तीनों धर्मों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया। इसके अलावा और भी अनेकों मत प्रचलित थे[१]। इनमें से अधिकांश की स्थिति पाखण्ड-पूर्ण और अप्राकृतिक थी।

५. साहित्य और कला

श्रीप्राणनाथजी का आविर्भाव काल सं० १६७५-१७५१ है। इस युग की अधिकांश रचनाएं धार्मिक प्रेरणासे की गयी हैं। धार्मिक प्रेरणा से रचे गए इस काव्य की प्रमुख तीन धाराएं प्रवाहित हो रही थीं जिसमें एक धारा थी मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा कृष्ण के लोक-रंजन और लोक-रक्षण स्वरूप को लेकर चलने वाली वैष्णव साहित्य की धारा। दूसरी राम रहीम एक कहकर हिन्दू-मुस्लिम तथा ऊंच-नीच का भेदभाव मिटाने वाली सन्त-साहित्य की धारा और तीसरी थी 'इश्कमजाजी' से इश्कहकीकी की ओर बहनेवाली सूफी-साहित्य की धारा। इन धाराओं के अलावा एक और धारा प्रवाहित हो रही थी, वह थी रीति-काव्य की। रीतियुगीन साहित्य में कृष्ण के लोक रंजक रूप को ही अधिक महत्व मिला है, क्योंकि कृष्ण के इस रूप में भक्ति के साथ रीतिकालीन साहित्य के मूलतत्व शृंगारिकता और अलंकार प्रियता के लिए भी स्थान था। शृंगारिकता के अलावा इस युग में वीरगाथाओं की भी मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही थी। मतिराम और बिहारी ने शृंगारिकता-प्रधान काव्य की रचना की है तो 'शिवराज भूषण' 'शिवा-बावनी', 'छत्रसाल दशक' आदि में भूषण ने अन्याय-

१-आये गथ चौरासी जो अरहन्ती, दत्तजी, 'दशनामी' जो महन्ती, आये 'सकल उपासी', वेदान्ती जिन हद कर दई नवधा भक्ति जुदी कर गाई। पाई-प्रेम युक्ति यूं आये सुख व्यास बड़ी मति आए षट्-दर्शन पट्शास्त्र भेदी, बहत्तर फिरके अथर्वन वेदी ('कीरन्तन, प्रकरण ५५)

दमन में तत्पर, हिन्दू-धर्म के संरक्षक दो इतिहास प्रसिद्ध वीरों (छत्रसाल और शिवाजी) को लेकर वीर-काव्य की।

कला की दृष्टि से भी इस युग का विशेष महत्व नहीं है। यह युग कला के निर्माण का नहीं, ह्रास का युग था। मुगलकाल में एक और शाहजहां ने ताजमहल, जुम्मा मस्जिद और मकबरे आदि बनवाकर स्थापत्य और शिल्प कला के निर्माण में योगदान किया तो औरंगजेब ने मन्दिर तथा मूर्तियों को तोड़कर स्थापत्य, शिल्प तथा चित्रकला का नाश किया। संगीत कला की भी यही स्थिति थी। अकबर के शासन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने वाला संगीत भी औरंगजेब के युग में अपना अस्तित्व खो बैठा था।

प्राणनाथजी की रचनाओं में समकालीन परिस्थितियों का प्रभाव और अनुगूंज :

साहित्य अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। विशेषकर 'परजनहिताय' साहित्य में तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियों की प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनायी देती है। प्राणनाथजी द्वारा रचित साहित्य जिसका मुख्य उद्देश्य धर्म के नाम पर हो रहे अत्याचारों और रूढ़िवादिता को समाप्त करना था, युग के प्रभावों से कैसे अछूता रह सकता था। यह वह समय था जब हिन्दू जनता औरंगजेब की धर्मान्धता का शिकार बनी हुई थी। उस पर 'जजिया' नामक कर लगा हुआ था। जो गरीब जजिया देने में असमर्थ थे, उन्हें तरह-तरह के कष्ट देकर मुसलमान बानाया जाता था। इसका उल्लेख प्राणनाथजी की 'कीरन्तन' रचना में इस प्रकार मिलता है-

असुर लगाए रे हिन्दुओं पर जेजिआ वाको मिले नहीं खान पान
जो गरीब न दे सके जेजिआ तायें मारकरें मुसलमान

श्रीप्राणनाथजी ने उसकी इस नीति को परिवर्तित करने के लिए अथक परिश्रम किया। वे सं० १७३४-३५ में स्वयं दिल्ली गये। उन्होंने बादशाह को समझाने का प्रयत्न किया कि- हिन्दुओं पर अत्याचार करने से तुम्हें 'सबाब' (धर्मफल) नहीं मिलेगा[1]। तुम्हारा यह

१-सवाब तिन्हों को होवही, छोटा बड़ा जो जीव, एक ही नजरों देखही, सबका खाविन्द पीव ॥ २३ ॥

कार्य 'धर्म-सम्मत' नहीं, धर्म-विरोधी है[1]। मुसलमान का धर्म है कि वह नेकी-बदी से दूर रहे, खुदा से हमेशा डरता रहे, खून करना तो दूर रहा, उसे खूनी की संगत भी नहीं करनी चाहिए—

'प्यारा नाम खुदाए का फेरे तसबी लगावे तान,
खूनी की सोहबतें न करे या दीन मुसल्मान।
भली बुरी किन की नहीं डरता रहे सुभान,
खूनी की सोहबतें न करे या दीन मुसलमान[2]।

खुदा की दृष्टि में हिन्दू-मुस्लिम का कोई भेदभाव नहीं, यह भेद तो हमने स्थापित किया है। तुम्हारे समस्त पैगम्बर, इमाम मेंहदी सहित अ-मुस्लिमजाति में ही अवतरित हुए हैं

ऊपर मायने न होवे पहिचान, ए तुम सुनियो दिल के कान,
हमेशा आवत हैं ज्यों, अब भी फेर आए हैं त्यों॥ १९॥
सब पैगम्बर यहूदी खिलके, जाए देखो दीदे दिल के,
ए तो आए हिन्दुओं दरम्यान, जिनको तुम कहते कुफरान
तुम ढूंढो अपने खिलके माहिं तिनमें तो साहिब आया नाहिं
जिनको तुम कहते काफिर जात, सो तो सब की करसी सिफायत
रब्ब न रखे किसी का गुमान, वह तो गरीबों पर मेहरबान
ऐसी हिन्दुओं की कही सिफत, आखिर हिन्दुओं में मुल्क नबूवत
और आप हजरत रसालत पनाह, जो हिन्द फकीरों में पातशाह[3]॥

श्री प्राणनाथजी सोलह माह तक दिल्ली में रह कर इस्लाम-अनुयायियों से संघर्ष और शास्त्रार्थ करते रहे। लालदास आदि बारह शिष्यों ने औरंगजेब तक उपरोक्त पैगाम पहुँचाने का अथक प्रयत्न किया (विस्तृत उल्लेख 'जीवन-वृत्त' अध्याय में किया गया है)। मुल्ला, काजी, कोतवाल आदि ने बादशाह से कहा कि हमें शक है कि ये फकीर वेश धारी शत्रु-पक्ष के जासूस हैं। अतः आपको इनसे रूबरू बातें नहीं

(सनन्ध, प्रकरण ४० शीर्षक-सनन्ध खण्डनी जाहिरियों की), १-डिवाइन हाउस आफ स्वामी श्रीप्राणनाथजी, पृ० ६

२ सनन्ध, प्रकरण २१, शीर्षक-'रहनी मुस्लिम की' ३-कयामतनामा, प्रकरण १

करनी चाहिये। आप इनको हमारे सुपुर्द कर दें ताकि हम वास्तविकता जान सकें। भाइयों के खून से हाथ रंगने वाला बादशाह इससे सशंकित हो उठा और उसने इन धर्मवीरों को उपरोक्त कर्मचारियों के सुपुर्द कर दिया, जिन्होंने इन सत्याग्रहियों को अनेकों तरह से कष्ट दिया। शिष्यों की दुख-गाथा सुनकर श्री प्राणनाथजी ने निश्चय किया कि ये लातों के भूत बातों से मानने वाले नहीं, इन्हें युद्ध से ही सन्मार्ग पर लाया जा सकता है धर्म-नीति से नहीं। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने भारत के विभिन्न भागों में जाकर राजाओं को संगठित करने का प्रयत्न किया। औरंगजेब के अत्याचारों के सामने घुटने टेकने वाले और आपस में वैमनस्य रखने वाले शासकों को खरी-खोटी सुनाई, उन्हें आपसी वैमनस्य भुलाकर, संगठित होकर जुल्मों से लोहा लेने की सलाह दी-

राजा ने मलो रे राणो राय तणो, धर्म जाता रे कोई दौड़ो,
जागो ने जोधा रे उठ खड़े रहो, नींद निगोड़ी रे छोड़ो ॥१॥
छूटत है रे खड्ग छत्रियों से, धर्म जात हिन्दूआन,
सत न छोड़ो रे सतवादियो, जोर बढ़या तुरकान ॥२॥
त्रैलोकी में रे उत्तम खण्ड भरत का, तामे उत्तम हिन्दू धरम,
ताके छत्रपतियों के सिर, आए रही इत सरम ॥३४॥[१]

परन्तु औरंगजेब के डर के कारण हिन्दू राजा संगठित न हुए तो अकेले छत्रसाल बुन्देला ने ही औरंगज़ेब का विरोध किया–

बातसुनी रे बुन्देले छत्रसाल ने, आगे आये खड़ा ले तलवार।
सेवा ने लई सारी सिर खेंचके, साइयें किया सेनापति सिरदार[२] ॥

राजनैतिक ही नहीं, तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों की अनुगूंज भी उनके साहित्य में है।

वर्ण-व्यवस्था, जो प्रारम्भ में 'कर्म' पर आधारित थी, मध्य-युग तक आते-आते जन्म पर आधारित हो गयी थी। 'तजिये चण्डाल चाहे प्रवीण' कहकर शूद्रों पर किये जाने वाले अत्याचारों के विरुद्ध उन्होंने आवाज उठायी और 'पूजीय विप्र यद्यपि

१-कीरन्तन, प्रकरण ५१ २ कीरन्तन, प्रकरण ५७

गुण हीना पर' खुलकर कुठाराघात किया। उनके अनुसार 'चण्डाल' जो सदाचारी है, जिसका हृदय निर्मल है, जिसके हृदय में भगवान 'रमते' हैं, 'बाह्याडम्बरों में फंसे ब्राह्मण से उत्तम और पवित्र है—

एक भेष जो विप्र का, दूजा भेष चाण्डाल।
जाके छुए छूत लागे, ताके संग कौन हवाल ॥ १५ ॥
चाण्डाल हिरदे निर्मल, खेले संग भगवान्।
देखलावे नहीं काहू को, गोप राखे नाम ॥ १६ ॥
विप्र भेष बाहिर दृष्टि, षट्कर्म पाले वेद।
स्याम खिन सुपने नहीं, जाने नहीं ब्रह्म भेद ॥ १७ ॥
उदर कुटुम्ब कारने, उत्तमाई देखावें अंग।
व्याकरन बाद विवाद के, अर्थ करें कई रंग ॥ १९ ॥
अब कहो काके छूए, अंग लागे छोत।
अधमतम विप्र अंग, चाण्डाल अंग उद्योत ॥ २० ॥
(कलस)

इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मणों के अनैतिक व्यवहार के कारण द्विज-शूद्र का परंपरागत सम्बन्ध विशृंखल हो रहा था और वर्ण निर्णय का आधार जन्म को नहीं, कर्म को मानने का उद्घोष होने लगा था।

ब्राह्मण जीवन इतना निकृष्ट कोटि का था जिसे देखकर यही कहना पड़ता था कि 'ब्राह्मण' होना पूर्वजन्म के सुकर्मों का फल नहीं, बरन् दुष्कर्मों की सजा है—

असुर थकी सम खाधा विभिषणे, आगल श्री रघुनाथ।
तम सूं कपट करूं तो कुळी माहें, ब्राह्मण थाऊं आप ॥ (कीरंतन)

हिन्दू और मुसलमान के भेद भी श्री प्राणनाथजी ने कोई महत्त्व नहीं दिया। वे मुसलमानों के विरोधी नहीं थे, मुसलमान शासकों के उत्पीडन के विरोध में थे। उनके अनुसार हिन्दू-मुसलमान का भेदभाव व्यर्थ है क्योंकि अन्ततोगत्वा दोनों एक ही हैं, एक ही खुदा की औलाद हैं, एक ही भूमि पर पैदा हुए हैं, एक ही भूमि के अन्त-

जल और हवा का सेवन करते हैं और अन्तिम राह-मृत्यु-भी दोनों की एक ही है। अन्तर सिर्फ यही है कि मरने के बाद एक राख है तो दूजा खाक-

ब्राह्मण कहे हम उत्तम, मुसलमान कहे हम पाक।
दोनों मुट्ठी एक ठौर की, एक राख दूजी खाक[१]॥

जनता में भेदभाव पैदा करके उनमें आपसी विद्वेष बढ़ाने वाले उनके धर्माधिकारी 'मुल्ला' और 'पंडित' हैं, जिनकी वाणी जनता के लिए ईश्वरीय वाणी है-

पढ़े मुल्ला आगे हुए, सो तो सब खाए गुमान।
लोगों को बतावहीं, कहें हम पढ़े कुरान॥ ४॥
राह बतावें दुनी को, कहें ए नबी कहेल।
लिख्या और कतेब में, ए खेलें और ही खेल[२]॥ ६॥

इन धर्माधिकारियों का मुख्य उद्देश्य जनता से धर्म के नाम पर धन प्राप्त करना है, उनकी आध्यात्मिक उन्नति करना नहीं, इसी लिए तो धर्म और धार्मिक ग्रन्थों को व्याख्या करते हुए वे अनर्थ करते हैं। ऐसे धर्म विमुख पंडितोको प्राणनाथजी ने बहुत फटकारा है

उदर कारन बेचे हरि, मूढ़ एही पायो रोजगार।
मारते मुख ऊपर इनको, ले जासी जम के द्वार॥

जनता को गुमराह करने वाले इन पंडितों और मुल्लाओं का उन्होंने विरोध किया है, परन्तु किसी धर्म की निन्दा नहीं की। "जिन जानो शास्त्रो में नहीं, है शास्त्रों में सब कुछ"-कहकर यदि वैदिक धर्म का सम्मान किया है तो 'जो कछू कह्या वेद ने सोई कह्या कतेब' कहकर इस्लाम धर्म का भी उतना ही सम्मान किया है जितना हिन्दू-धर्म का। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम, दोनों धर्मग्रन्थों का अध्ययन और मनन किया और बताया कि दोनों के मूलभूत सिद्धांत एक ही हैं, अन्तर सिर्फ 'भाषा' का है—

बोली सबों जुदी परी, नाम जुदे धरे सबन
चलन जुदा कर दिया, ताथे समझ न परी किन[३]

प्रत्येक धर्माधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह 'नाम-रूप' के इस भेद को समाप्त

१—सनन्ध, प्रकरण ४०, २—सनन्ध, प्रकरण ४०, ३—खुलासा, प्रकरण १२

कर समस्त मानव जाति को एकता के सूत्र में बांधे, ऐसा प्रयत्न करने वालों को ही सवाब (सुफल) मिलेगा—

पर सवाब तो तिन को होवहीं, छोटा बड़ा सब जीउ
एकै नजरों देख हीं, सबका खाविंद पीउ

उन्होंने स्वयं भी ऐसा करने का प्रयत्न किया—

ताथे हुई बड़ी उरझन, सो सुरझाऊं दोय ।
नाम निशान जाहेर करूं, ज्यों समझे सब कोय[१] ।।

और उस समय व्यवहार रूप से हिन्दू-मुस्लिम धर्म की एकता की जो आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति श्री प्राणनाथजी ने अपनी रचनाओं, 'सनन्ध' 'खुलासा, मारफत सागर' और 'क्यामत नामा' द्वारा पूरी की । इन रचनाओं में उन्होंने नाम. रूप की गुत्थी को पूरी तरह सुलझाने का प्रयत्न किया है ।

भाषा के क्षेत्र में भी उन्होंने इस भेदभाव को मिटाने का प्रयत्न किया है । उनकी अधिकांश रचनाओं की भाषा भी उर्दू मिश्रित हिन्दी है जिसे उन्होंने 'हिन्दुस्तानी' भाषा कहा है । उनके मतानुसार संसार में प्रचलित विभिन्न भाषाओं में हिन्दी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो समस्त भाषाओं से सरल और बहुमत की भाषा है—

बिना हिसाबे बोलियां, मिने सकल जहान ।
सबसेसुगम जान के, कहूँगी हिन्दुस्तान ।।
बड़ी भाषा एही भली, जो सब में जाहिर ।
करने पाक सबनको, अंतर माहें बाहेर[२] ।।

हिन्दी के राष्ट्रीय रूप को उन्होंने तीन सौ वर्ष पूर्व पहिचान लिया था ।

'नारी' के बारे में भी उनके विचार उदार थे । कबीर, तुलसी आदि की तरह नारी को आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग को बाधा नहीं माना है । वे स्वयं भी विवाहित थे । उनके शिष्य भी पारिवारिक जीवन को हेय नहीं समझते थे । उन्होंने ऐन्द्रिकता का विरोध अवश्य किया है, परन्तु पारिवारिक या सामाजिक जीवन का नहीं ।

१-खुलासा, प्रकरण १२, २-सनन्ध, प्रकरण १,

श्री प्राणनाथजी का व्यापक दृष्टिकोण

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो गया है कि श्री प्राणनाथजी का दृष्टिकोण, सिर्फ अपने युग तक ही सीमित न होकर विश्वजनीन और राष्ट्रीय महत्व का था। राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में फैली हुई कुरीतियों को दूर करने के लिए उन्होंने जो मार्ग अपनाया, उसकी आज भी उतनी ही उपादेयता है जितनी मध्य-युग में थी। उदाहरण के लिए तत्कालीन राजनीति को ही लें-श्री प्राणनाथजी का राजनीति से घनिष्ठ सम्बन्ध था। उन्होंने अपना लौकिक जीवन 'प्रधान मन्त्री के रूप में शुरू किया था। वे राजनैतिक दाव पेंचों से पूरी तरह परिचित थे, उन्हें इस बात का अनुभव हो गया था कि धर्मरहित राजनीति अभिशाप है। वे अपने युग की राजनीति को धर्म का पुट देना चाहते थे, इसीलिए वे राजनीति से विरक्त हो, धार्मिक क्षेत्र की ओर प्रवृत्त हुए। राजनीति की तरह सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में भी उनकी मौलिक देन है। यह वह समय था जब समाज 'वर्ण-व्यवस्था' के आधार पर कई भागों में विभाजित था। शूद्रों और विधवाओं को सामाजिक जीवन में उपेक्षाओं का सामना करना पड़ता था। उन्हें धार्मिक सभाओं में भाग लेनेका हक नहीं था। नारी को मोक्ष के मार्ग की रुकावट समझा जाता था। ढोर, गंवार, पशु और नारी, ये ताड़न के अधिकारी माने जाते थे। श्री प्राणनाथजी श्रेष्ठ कलाकार की तरह हवा का रुख पहचानते थे। उन्होंने अनुभव किया कि ये कुरीतियां अधिक दिनों तक नहीं टिकेंगी। जब गुरुपुत्र बिहारीजी ने उनसे कहा कि विधवा औरत, और नीच जाति (निम्न वर्ग) के लोगों को अपने धर्म में दीक्षित नहीं करना तो श्री प्राणनाथजी ने इसकी अवज्ञा की और कहा, 'लूला पांगला जो साथ, इन्द्रावती न छोड़े तिन को हाथ' अर्थात्-आर्थिक परिस्थितियों और वर्ण-व्यवस्था ने जिन व्यक्तियों को पंगु बना दिया है, मैं उनका हाथ नहीं छोड़ सकता। उनका यह कथन उनके साहित्य तक ही सीमित नहीं था, व्यवहारिक जीवन में भी उसे स्थान मिला था। ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र, मुसलमान, सिक्ख, कबीर-पंथी, वल्लभ-पंथी, गरीब अमीर सभी तरह के लोग उनकी शिष्य मण्डली में थे और उनमें किसी तरह का भेदभाव नहीं रखा जाता था। इस शिष्य मण्डली में नारियां भी थीं। उन्हें उतना ही सम्मान प्राप्त था' जितना पुरुषों को। इस तरह उन्होंने एक वर्गविहीन समाज का आदर्श कायम किया।

धार्मिक क्षेत्र में श्री प्राणनाथजी कर्मकाण्ड के विरोधी थे। आत्मा की पवित्रता

की उपेक्षा कर बाह्य शुचता को महत्व देने वाले कर्मकाण्डियों और धार्मिक ढोंगियों को फटकारा है—

> धनी न जाये किन को धूतो, जो कीजे अनेक धुतार
> चेहेन ऊपर के कई करो, पर मन न छोड़े बिकार
> सात बेर चौका दियो, लकड़ी जलाओ धोय जल
> बाहर अंग करो अस्पर्श, पर आत्मा न होय निर्मल
> सौ माला वाओ गले में, द्वादश करो दस बेर
> जोलो प्रेम न उपजे पीउ सो, पर मन न छोड़े फेर[१]।

'सन्त वाणी' ऐसे ढोंगियों पर सदा प्रहार करती रही है[२], परन्तु श्री प्राणनाथजी जैसे कथनी और करनी में अभेद रखने वाले विरले ही हुए हैं। आधुनिक युग में गांधीजी का ही एक ऐसा उदाहरण मिलता है, जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के नारे के साथ प्रार्थना सभाओं में गीता और कुरान का पाठ एक साथ किया था। यही काम तीन सौ वर्ष पूर्व श्री प्राणनाथजी ने किया। उन्होंने 'ईश्वर अल्लाह एक ही नाम' का सिर्फ नारा ही नहीं लगाया, वरन् अपनी धार्मिक सभाओं में कुरान और पुरान दोनों का सम्मान किया। उनके संरक्षण में निर्मित 'बंगला' तथा गुम्मट (अथवा गुम्बद) मन्दिर की बनावट भी मस्जिद के अनुरूप ही है। इस मन्दिर पर एक ओर 'कलमा' (ला इला इल इल्लाह) तो दूसरी ओर 'तारतम मन्त्र' (श्री निजनाम श्री कृष्णजी अनादि अक्षरातीत) उर्दू में लिखा है और मध्य में 'दरगाह मुकद्दस हजरत महमद इमाम, मेंहदी साहेब आखिरु-ल-जमान्' लिखा है। हिन्दू-मुस्लिम और अन्य जातियों के लोग श्री प्राणनाथजी के समय में एक साथ बैठकर भोजन करते थे। जिसका उल्लेख ग्राउज,[३]

१—कीरन्तन, प्रकरण १४

२—"मूड मुड़ाये हरि मिले
तो सब कोई लेमुड़ाए,
बार बार केमूड़ते
भेड़ न बैकुण्ठ जाए।"

३—'एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल' के अन्तर्गत 'ए. सैक्ट आफ प्राणनाथ'।

वूल्जले हेग,[१] विल्सन,[२] डा० ताराचन्द,[३] और क्षितिमोहन सेनने[४] भी किया है। अपने इस समन्वयवादी दृष्टिकोण के कारण उन्हें अपने विरोधियों के कटु वचनों का शिकार भी होना पड़ता था। मुसलमान आरोप लगाते थे कि ये हिन्दूओं की निशानी 'तिलक' लगाते हैं और धार्मिक ग्रन्थ के रूप में कुरान पढ़ते हैं और हिन्दू कहते कि ये हिन्दू होकर पुराण के साथ साथ कुरान पढ़ते है, स्वयं इमामत का दावा करते हैं और इस्लाम का प्रचार करते हैं, अतएव ठग[५] हैं। श्री प्राणनाथजी की सहिष्णुता महान थी, वे उन सबका शांतिपूर्वक उत्तर देते और अहिंसात्मक मार्ग का अनुसरण करते हुए अपने मार्ग पर अडिग रहे।
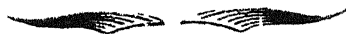
१—'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया', भाग ४, —पृ० २२०　　　२—हिन्दू रिलीजन, पृ० १२०

३—इंफ्ल्यूएंस आफ इस्लाम आन इंडियन कल्चर पृ० १९८

४—मैडीवल मिस्टीसिज्म आफ इंडिया, पृ० १५८

५—करें हिन्दु लड़ाई मुझसों, दूजे शरीयत मुसलमान,
पाया अहमद माशूक हक्का, अब छोडूं नहीं फुरकान　(खुलासा, प्र. १)

अध्याय–२

अध्ययन की आधारभूत सामग्री

इस दृश्य जगत् के प्रति उदासीन भक्तों की लेखनी से आत्मचरित्र लिखे जाने की आशा नहीं की जा सकती। 'सन्तन कौ कहा सीकरी सौं काम' में सामान्यतः उस युग के अधिकांश महान सन्तों की भावना व्यक्त हो जाती है, परन्तु श्री प्राणनाथजी का जीवन-दर्शन इससे कुछ भिन्न था। वे अपने युग के एक महान भक्त ही नहीं थे, लोक-जीवन को एक नयी दिशा देने के लिए सचेतन रूप से सक्रिय सामाजिक नेता भी थे। आध्यात्मिकता के बावजूद 'लौकिक' के प्रति ऐसी अतिशय एकांत विरक्ति उनमें नहीं थी जिससे व्यक्ति सामाजिक संदर्भ से कट कर शाश्वत में डूब जाता है। वे 'लौकिक' के नहीं लौकिकता में डूबने के विरोधी थे उन्होंने अपने मत को निः–संकोच भाव से व्यक्त किया और अपने प्रिय शिष्यों को संप्रदाय के सम्बन्ध में मुक्त भाव से ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा दी थी, उनकी रचनाओं में भी आत्मोल्लेख हुए हैं, ये उल्लेख अप्रत्यक्ष, प्रसंगवश और संक्षिप्त हैं। पर, इन उल्लेखों का विशेष महत्व इसलिए है कि उनके आधार पर बीतक-साहित्य के उल्लेखों की प्रामाणिकता की परीक्षा की जा सकती है। यह सामग्री महत्वपूर्ण होते हुए भी उनके जीवन-वृत्त की सम्पूर्ण रेखाएं स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

श्री प्राणनाथजी के जीवन पर प्रकाश डालने वाली विशेष सामग्री प्राणनाथजी के शिष्यों व सांप्रदायिक जनों की रचनाओं में मिलती है। श्री प्राणनाथजी की अलौकिक भक्ति की प्रसिद्धि हुए लगभग तीन सौ वर्ष से भी अधिक हो चुके हैं। सम्प्रदाय प्रवर्तक, और शिष्यों तथा जनता द्वारा पूज्य एक ऐसे दुर्दम्य व्यक्तित्व के संबन्ध में, जिसकी ख्याति इतने लम्बे समय से हो, अतिशयोक्तियों और काल्पनिक घटनाओं का प्रचलित हो जाना स्वाभाविक ही है। इसीलिए इस समस्त सामग्री को प्रामाणिकता की परीक्षा अनिवार्य है।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से श्री प्राणनाथजी के जीवन से संबन्धित समस्त सामग्री को दो वर्गों में रखा गया है:—

(१) बहिर्साक्ष्य- श्री प्राणनाथजी के जीवन पर प्रकाश डालने वाली अन्य लोगों की रचनाएं-

(क) समकालीन बीतक साहित्य-श्री प्राणनाथजी के समकालीन शिष्यों द्वारा रचे गये 'बीतक' ग्रन्थ।

(ख) शिष्यों का बीतकेतर साहित्य।

(ग) सम्प्रदाय के बाहर के भक्त कवियों द्वारा लिखे गये ग्रन्थ।

(घ) आधुनिक रचनाएं-सम्प्रदाय में दीक्षित लोगों की रचनाएं, खोज रिपोर्ट, आलोचना-ग्रन्थ आदि।

(ङ) अन्य-जनश्रुतियां, लोकगीत, शिला-लेख आदि।

(२) अन्तर्साक्ष्य- कवि की अपनी रचना में आये आत्मोल्लेख। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, ऐसे उल्लेख संक्षिप्त और प्रसंगवश हुए हैं, जिसका उल्लेख यथा-स्थान किया जायेगा।

समकालीन बीतक साहित्य

'बीतक'

निजानन्द सम्प्रदाय में श्री प्राणनाथजी के जीवन पर प्रकाश डालने वाली रचनाओं को 'बीतक' अथवा 'वृत्तान्त' कहा जाता है, जैसे-लालदास कृत बीतक, वृजभूषण कृत 'वृत्तान्न मुक्तावली', नवरंग स्वामी कृत 'बीतक' आदि। इस प्रकार यह बीतक-साहित्य जीवनी-साहित्य का ही एक अंश है। भक्तमाल, अर्द्धकथा, चौरासी वैष्णवन की वार्ता आदि की तरह 'बीतक साहित्य' मध्यकालीन भक्तों के सम्बन्ध में बहुत-सी उपादेय सामग्री प्रस्तुत करता है।

बीतक 'वार्तिक' का अपभ्रंश रूप है। इसका प्रयोग वार्तिक अथवा 'जीवन-वृत्तान्त' के लिए आज भी 'हल्लार-जनपद'[१] (गुजरात) में होता है। 'लालदास-बीतक' में यत्र-तत्र उल्लिखित-'अब कहूं आगे की बीतक' से भी स्पष्ट है कि इसका प्रयोग 'वार्तिक' अथवा 'वृत्तान्त' के लिए ही हुआ है। वैसे 'बीतक' शब्द गुजराती का है, जिसका अर्थ होता है आप-बीती। यही वीतक शब्द बाद में बीतक हो गया[२]।

श्री प्राणनाथजी के जीवनी के अध्ययन की सामग्री प्रस्तुत करने वाले इस बीतक-

१-प्रो० एम० बी० जायसवाल प्रथम प्रणाम, पृ० १

२-भगवत गो मण्डल, भाग ८। पृ० ८१४८

साहित्य की दो परम्पराएं मिलती हैं—

(अ) ऐसी बीतकें जिनमें श्री प्राणनाथजी के साथ उनके गुरु श्री देवचन्द्रजी और शिष्य छत्रसालजी का भी उल्लेख हुआ है। लालदास कृत बीतक, वृत्तान्त मुक्तावली आदि बीतकें इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं।

(आ) दूसरी परम्परा में ऐसी बीतकों का उल्लेख किया जा सकता है जिनमें श्री प्राणनाथजी के गुरु श्री (देवचन्द्रजी), श्री प्राणनाथजी और श्री छत्रसालजी के साथ (अथवा अतिरिक्त 'वृज', 'रास' और 'जागनी लीला' का भी उल्लेख हुआ है। 'नवरंग स्वामी कृत बीतक' 'बोरजी कृत बीतक', 'बख्शी–हंसराज कृत मिहिराज चरित्र' आदि में इसी परम्परा का निर्वाह किया गया है।

१. लालदास कृत बीतक–

कुरान, गीता और भागवत के विद्वान व्याख्याता लालदासजी श्री प्राणनाथजी के मुख्य शिष्यों में से थे। 'चतुरा' नामक ब्राह्मण ने इनकी भेंट श्री प्राणनाथजी से करवाई थी। इन्होंने 'तारतम मन्त्र' (दीक्षा) लगभग सं० १७२५ में लिया। ये पोरबन्दर (काठियावाड़) के एक धनी व्यापारी थे। इनके पास निन्यानवे जलपोत थे। इनका वास्तविक नाम लक्ष्मण सेठ था[१]। ये लोहाणा जाति के थे। इनका जन्म और धामगमन संम्वत् अज्ञात है, पर प्रसंगवश कुछ ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिसके आधार पर इनकी उपस्थिति वि० सं० १७५२ तक मानी जा सकती है[२]। सं० १७२९ में इनके समस्त जलपोत नष्ट हो गये तथा व्यापार में भी काफी क्षति हुई। यहां तक कि 'गुरु' को देने के लिए भी इनके पास कुछ न बचा। ये खाली हाथ ही श्री प्राणनाथजी से सूरत में मिले। तब से अन्त तक उनके साथ रहे[३]।

१–चतुरे आए अरज करी, लाल चाहे करें दीदार लछमन उनका नाम है तालीब धनी निरधार
(लालदास कृत बीतक, पृ० १०२, प्रकरण २५, चौ० ४

२–श्री 'प्राणनाथजी के 'धामगमन (श्रावण बदी ४. वि० सं० १७५१) के दूसरे दिन से पन्ना में लालदास जी ने बीतक लेखन का कार्य आरंभ किया और भादों बदी अष्टमी (कृष्ण जन्माष्टमी) के दिन समाप्त किया। इसके पश्चात लालदास की भी इहलीला समाप्त हुई।' प्रथम प्रगाम, पृ० ५, लालदास कृत बीतक (जामनगर प्रकाशन भूमिका पृ० ११ १२ तथा–'वि० सं०१७२९ से लगभग १७५२ तक स्वामी श्री लालदासजी और आप (मकुन्ददासजी) दोनों मग्न रहे।' –परमहंस नवरंगजी कृत बीतक भूमिका पृ० ८

३–लालदास संग चले, खली लेकर हाथ, निबाहें आखर लों, चले राज के साथ।
– लालदास कृत बीतक, पृ० १४४ प्रकरण ३३, चौ० ११

संप्रदाय में लगभग १७ बीतकें प्रचलित हैं, परन्तु सर्वाधिक मान्यता लालदास कृत बीतक को ही प्राप्त है। श्री प्राणनाथजी के कुलजम-स्वरूप के बाद इसी का स्थान है और इसकी जितनी (हस्तलिखित) प्रतियां उपलब्ध हैं, उतनी किसी अन्य बीतक की प्राप्य नहीं है। सम्प्रदाय में 'बीतक' शब्द से प्रायः लालदास की बीतक ही बोध होता है।

इस बीतक में कहीं भी रचना काल का उल्लेख नहीं है। इसके रचना-काल के बारे में लोगों के भिन्न मत है—

(१) श्री श्री १०८ श्री धर्माचार्य धर्मदासजी (जामनगर के खीजड़ा मन्दिर के गद्दी-पति के अनुसार बीतक की रचना सं० १७५१ में, श्री प्राणनाथजी के धामगमन से पूर्व, प्राणनाथजी के निर्देशन में हुई

(२) श्री दुष्यन्त (निजानन्द संप्रदाय में दीक्षित 'प्रणामी') के अनुसार इसकी रचना सं० १७५१ में श्री प्राणनाथजी के धामगमन के पश्चात छत्रसालजी के निर्देशन पर हुई[१]।

(३) डा० मातावदल जायसवाल आदि कुछ लोगों के मतानुसार इसकी रचना की आज्ञा तो स्वयं श्री प्राणनाथजी ने दी थी, परन्तु इसकी रचना उनके धामगमन के बाद हुई[२]।

निम्न कारणों से बीतक का रचना काल—वि० सं० १७५१ से पूर्व ठहरता है—

(क) श्री प्राणनाथजी का धामगमन वि० सं० १७५१, श्रावण बदी चौथ को हुआ, और श्रावण बदी पंचमी को बीतक का पाठ शुरू हुआ। इस परम्परा का निर्वाह आज भी किया जाता है। श्रावण बदी तीज व चौथ को उपवास किया जाता है और पंचम को बीतक-पाठ आरंभ होता है।

धामगमन के दूसरे दिन ही बीतक का 'पाठ' होना तभी संभव था जब इनकी रचना श्री प्राणनाथजी के जीवन-काल में ही हुई हो। अर्थात्, इसका रचना-काल सं० १७५१ से पूर्व ठहरता है।

(ख) इस बीतक में समस्त घटनाओं का उल्लेख काल-क्रम के अनुसार हुआ है। इसका अन्त प्राणनाथजी के दैनिक कार्यक्रम (अष्ठ प्रहर की सेवा) और सेवकों के

१—मुक्तिपीठ, पृ० ३१, ३२ २—प्रथम प्रणाम, पृ ५-६

नामोल्लेख के साथ हुआ है। प्राणनाथजी की धामगमन तिथि का अन्त में उल्लेख न होना ही इस बात को प्रमाणित करता है कि इसकी रचना प्राणनाथजी के जीवन-काल में ही हुई। यद्यपि कुछेक प्रतियों में धामगमन की तिथि का उल्लेख मिलता है परन्तु यह यथा क्रम नहीं हुआ है। अर्थात् इसका उल्लेख 'अष्ट प्रहर' (दिनचर्या) के बाद होना चाहिए था, जैसा कि प्राणनाथजी के धामगमन के पश्चात् रचित 'वृत्तान्त मुक्तावली' में हुआ है। किसी प्रतिलिपि में इस तिथि का उल्लेख श्री देवचन्द्रजी के कुटुम्ब के वर्णन के पूर्व हुआ है[1] तो किसी प्रतिलिपि में प्राणनाथजी के जन्म के साथ[2]। मूल प्रति में इसका उल्लेख किस प्रकरण में हुआ है, अथवा हुआ है या नहीं-यह मूल प्रति (जोकि अब प्राप्य नहीं है[3]) के अभाव में कुछ भी कह सकना असंभव है। विभिन्न प्रतियों में मृत्यु संम्वत् का अप्रासंगिक तथा विभिन्न स्थानों (प्रकरणों) में उल्लेख होने से इस बात का संकेत मिलता है कि मूल प्रति में धामगमन तिथि का उल्लेख नहीं हुआ। मूल प्रति की प्रतिलिपियां तैयार करते समय (जो संभवतः उनके धामगमन के बाद तैयार की गयी हैं) अपनी स्मृति हेतु विभिन्न प्रतिलिपिकारों (शिष्यों) ने यत्र-तत्र-अपनी सुविधानुसार इसका उल्लेख कर लिया हो (मूल प्रति मिलने पर हो सकता है कुछ और तथ्य प्रकाश में आये)।

इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि बीतक की रचना प्राणनाथजी के निर्देशन में, उनके जीवन-काल में सं० १७५१ से पूर्व हुई।

श्री प्राणनाथजी के निर्देशन में तथा लालदास जैसे उनके विश्वासपात्र तथा प्रत्यक्ष अनुभवी शिष्य द्वारा इसकी रचना होने के कारण प्राणनाथजी के व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए यह सर्वाधिक विश्वसनीय व महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करती है। संभवतः

१—लालदास कृत बीतक-जामनगर प्रकाशन, २-वही, क्षेत्र मन्दिर (पन्ना) मे प्राप्य हस्तलिखित प्रति

३—भरोड़ा (गुजरात) निवासी श्री कृष्ण प्रियाचार्य (महंत भरोसादास) के पास एक बीतक है, जिसे वे लालदास की हस्तलिखित (मूल) प्रति मानते है। इसे लालदास द्वारा लिखित मानने में दो बाधाएं हैं—(क) इस प्रति के प्रथम चौदह पृष्ठों में बड़ीवृत्त लिखि गयी है, यदि यह मूल प्रति है तो इससे की गयी प्रतिलिपियों का आरम्भ 'बड़ी वृत्त' से न होकर 'भविष्य पुराण में, राजा कहे जुग-चार' प्रकरण से क्यों हुआ है, (ख) यदि यह लालदास द्वारा ही लिखी गयी है तो इसमें दो तरह का हस्त-लेख क्यो है ? इन शंकाओं के होते हुए, किसी ठोस प्रमाण के अभाव मे इस बीतक को लालदास द्वारा लिखित मूल प्रति कैसे माना जा सकता है !

इसीलिए अन्य बीतकों से अधिक इसकी प्रतियां मिलती हैं। प्रत्येक मन्दिर तथा प्रणामी सद्‌गृहस्थों के घर में इसकी हस्तलिखित प्रतियां ही प्राप्त हैं (कुछ समय पूर्व ही इसका प्रकाशन हुआ है)।

बीतक के रचयिता—

इस बीतक के अधिकांश प्रकरणों के अन्त में लालदास का नामोल्लेख न होकर 'महामति' की छाप मिलती है। 'महामति नाम' प्राणनाथजी के अनेक उपाधि नामों में से एक है। जहां कहीं लालदास का नामोल्लेख हुआ है, वह अन्य पुरुष के रूप में ही हुआ है[1]। इसलिए बीतक प्राणनाथजी द्वारा लिखित आत्मचरित्र लगता है। परन्तु कुछ घटनाओं का वर्णन लालदासजी उत्तम पुरुष में करते हैं—

चले पीछे दिन तीसरे, पहुँचे हादी[2] कदम।
मिलाप कर बातें करी, जो बीतक भई हम[3] ॥

यहां 'हम' का प्रयोग लालदासजी के लिए ही हुआ है। कहीं-कहीं लालदास वक्ता के रूप में भी उपस्थित हुए हैं—

फेर लाल आगे की कहूं, जो झगड़े की बुनियाद[4]

अधिकांशतः ऐसे प्रकरणों में, जहां लालदास वक्ता के रूप में उपस्थित हुए हैं, 'महामति' नाम का प्रयोग भी साथ में हुआ है—

श्री 'महामति' कहे ऐ मोमिनो, ए सरत करो याद
फेर लाल आगे की कहूं, जो झगड़े की बुनियाद[5] ॥

इस प्रकार एक ओर यह प्राणनाथजी द्वारा लिखित 'आत्मचरित्र' प्रतीत होता है तो दूसरी ओर लालदास की रचना। अतएव प्रश्न उठता है कि इसका लेखक कौन है?

इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य विचारणीय हैं—

(क) निजानन्द सम्प्रदाय में यह प्रबल मान्यता है कि यह बीतक लालदास-कृत है।

(ख) वृत्तान्त मुक्तावली के रचयिता वृजभूषण भी इसको लालदास-कृत ही मानते हैं।

१—'लालदास संग चले ले कर खाली हाथ' —वही, प्रकरण ३३, चौ० ११

२—'हादी, प्राणनाथजी का उपाधि-नाम है, ३—वही, पृ० ३०२, प्र० ५१ चौ० ४२

४—वही, पृ० १८१ प्र० ३१ चौ० ११२, ५—लालदास कृत बीतक, पृ० १४१ प्र० ३५ चौ० ११२

सुनिकै चरचा धाम धनी की, सतरि साथ मिले नर नारी।
श्री लालदास कृत बीतक माहिं, नामठौर सब उन्हीं उन्हारी[1] ॥

यदि इसे लालदास-कृत ही माना जाये तो प्रश्न उठता है कि 'महामति' नाम के प्रयोग और यत्र-तत्र लालदास का अन्य पुरुष के रूप में उपस्थित होने का क्या कारण है ? इसका उत्तर सम्प्रदाय के लोग इस प्रकार देते हैं—

(क) श्री प्राणनाथजी ने धाम-गमन के पूर्व ही लालदासजी को अपनी उपाधि 'महामति', देकर बीतक की रचना का कार्य सौंपा था। लालदास ने गुरु-आज्ञा को शिरोधार्य किया और पूरी ईमानदारी से अपने को अलग रखकर इसी उपाधि के नाम से रचना की, जहां कहीं आत्मोल्लेख की आवश्यकता हुई, अन्य रूप में उपस्थित हुए और कहीं कथनकार के रूप में। जहां कहीं कथनकार के रूप में उपस्थित हुए हैं, 'महामति' के नामोल्लेख के बाद ही अपना नामोल्लेख किया है।

(ख) 'महामति' नाम का उल्लेख करने में प्राणनाथजी के प्रति लालदासकी अटूट श्रद्धा और गुरु के समक्ष अपने को तुच्छ समझने की प्रवृत्ति भी हो सकती है।

(ग) इस उपरोक्त मान्यता के अलावा अपनी रचना को अन्य के नाम से करने की प्रवृत्ति में तत्कालीन परिस्थिति का भी प्रभाव है। प्राणनाथजी के जीवन-चरित्र लिखने वालों में यह प्रवृत्ति और भी प्रबल थी। लालदास के समकालीन बृजभूषण ने भी 'वृत्तान्त मुक्तावली' के बहुत से प्रकरणान्तों में अपने नाम के साथ-साथ इस रचना के लिए प्रेरित करने वाले, अपने संरक्षक छत्रसाल का भी नामोल्लेख किया है—

कागद वेद कतेब के, कही हकीकत 'राज'[2]।
छत्रसाल सो बरनि के, बृजभूषण सिरताज[3] ॥

कई स्थलों पर तो सिर्फ छत्रसाल का ही नामोल्लेख हुआ है

महामति पति देवचन्द्र की, कीरति चरित विशाल।
जगपालक कसमलहरण, गाई नृप छत्रसाल[4] ॥

१—वृत्तान्त मुक्तावली पृ० २०९ प्र० ४७ चौ० १२
२—प्राणनाथजी का उपाधि-नाम
३—वृत्तान्त मुक्तावली पृ० १५२, प्र० ३७ चौपाई ११२
४—वृत्तान्त मु० पृ० ४१

स्वयं प्राणनाथजी ने भी अपनी रचना क्यामत-नामा के प्रकरणों के अन्त में छत्रसाल का ही नामोल्लेख किया है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि वस्तुतः इस बीतक के रचनाकार लालदास हैं, जिन्होंने युग प्रभाव और अपूर्व श्रद्धा के कारण अपने संरक्षक और प्रेरक गुरु श्री प्राणनाथजी का रचनाकार के रूप में नामोल्लेख किया है। बीतक के अतिरिक्त लालदासजी द्वारा रचित पुस्तकें 'छोटीवृत्त' 'बड़ीवृत्त' 'चरचनी' (परमधाम के पच्चीस पक्षों का चित्र) भी प्राप्त हैं। 'छोटीवृत्त' तो प्रकाशित हो चुकी है, परन्तु 'बड़ी वृत्त' की हस्तलिखित प्रति ही प्राप्त है।

इन रचनाओं में पूर्णब्रह्म परमात्मा के निवास-स्थान रंगमहल और परमधाम की 'गलियों,' बाग' 'बगीचों' .सागर' 'पर्वत' आदि का वर्णन है, जिसका सविस्तार उल्लेख 'दर्शन' और 'साधना' अध्याय में किया गया है।

२. करुणावती-कृत बीतक

इसके रचयिता प्राणनाथजी के गुरुभाई जैराम भाई कंसारा थे। 'प्रणामी' जैरामभाई को परमधाम की 'करुणावती' सखी का अवतार (वासना) मानते हैं और इसी नाम के आधार पर इनके द्वारा रचित बीतक को 'करुणावती कृत बीतक कहा जाता है। ये श्री देवचन्द्रजी के शिष्य और प्राणनाथजी के गुरु-भाई थे। इनका जन्म दीक्षा और धामगमन काल अज्ञात है। निम्न तथ्यों के आधार पर इनका दीक्षा-काल संवत् १७०३ से पूर्व ठहरता है-

गुरु-आज्ञा पर प्राणनाथजी वि० सं० १७०३ में अरब गये। इसके बाद जैरामभाई और प्राणनथजी का पुनर्मिलन विक्रम संवत् १७२२ में प्राणनाथजी के दीपबन्दर जाने पर हुआ। जब प्राणनाथजी दीपबन्दर पहुँचे तो जैरामभाई ने उन्हें अपने घर ठहराया। प्राणनाथजी ने इन्हें गुरु श्री देवचन्द्र के धामगमन पर और गुरु-पुत्र बिहारीजी को गद्दी पर बैठाने के समय न पहुँचने के लिए उपालम्भ दिया। इस व्यवहार से स्पष्ट है कि ये दोनों सिर्फ पूर्व परिचित ही नहीं थे, बरन् स्नेही मित्र भी थे। यह घनिष्ठता जैरामभाई के सं० १७०३ से पूर्व इस धर्म में दीक्षित होने का प्रमाण है। तब से (सं० १७२२ से) अन्त तक इनका सम्पर्क प्राणनाथजी से बना रहा।

'करुणावती बीतक' में इन्होंने प्राणनाथजी का जीवन-चरित्र लिखा है। इनके द्वाराप्रस्तुत सामग्री भी विश्वसनीय है, क्योंकि जैरामभाई का प्राणनाथजी से लगभग[1]

[1]–दोनों में किसने पहले दीक्षा ली, जब तक यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हो जाता तब तक इस विशेषार्थक सूचक शब्द 'लगभग' का प्रयोग करना उचित ही होगा।

सं० १६८७ (प्राणनाथजी का दीक्षा-काल) से अन्त तक सम्पर्क था। यद्यपि सं० १७०३ से१७२२ तक दोनों अलग रहे, परन्तु जब दोनों स्नेही सं० १७२२ में पुनः मिले तो स्वभावतः इस बीच की घटनाओं का जिक्र एक-दूसरे से किया होगा। अतः संक्षेप में कहा जा सकता है की 'करुणावती-कृत बीतक' में प्राप्य सामग्री का आधार प्रत्यक्ष अनुभव है।

३. नवरंग स्वामी-कृत बीतक

मुकुन्ददास (नवरंग) का जन्म वि० सं० १७०५ में ज्येष्ठ बदी नौमी को गोपीपुरा (सूरत) में श्री राघव नामक धनाढ्य व्यापारी के घर हुआ१। इन्हें संस्कृत तथा गुजराती का अच्छा ज्ञान था। ये वेद-शास्त्र के मर्मज्ञ थे। लगभग पच्चीस वर्ष की आयु में, जब प्राणनाथजी वि० सं० १७२९ में सूरत पहुँचे, तब इन्होंने तारतम्य मन्त्र लिया२ और अपना शेष जीवन उन्हीं की सेवा में समर्पित कर दिया। वे १७२९ से १७५१ तक, प्राणनाथजी के जीवन में घटनेवाली घटनाओं के प्रत्यक्ष साक्षी थे। इनकी गणना प्राणनाथजी के मुख्य शिष्यों भीम, लालदास, ऊधौ, केशव, श्याम, छत्रसाल आदि में होती है। इनका नामोल्लेख प्राणनाथजी की रचना 'सनन्ध' में भी हुआ है-

सुनियो भीम मुकुन्द जी, ऊधौ केशव श्याम
हम पाती पढ़ी महमद की, पाई हकीकत धाम३

जब कोई पंडित प्राणनाथजी से शास्त्रार्थ के लिए आता, तो उसे सर्वप्रथम इन्हीं से शास्त्रार्थ करना पड़ता था। ये विक्रमी सं० १७७५ में माघ वदी दशम को (मलिया-बाद, में परलोकगामी हुए४। इन्हें परमधाम की 'नवरंग' सखी का अवतार माना जाता है और इनके द्वारा रचित बीतक को नवरंग स्वामी-कृत बीतक' कहा जाता है५। (नवरंग स्वामी की देहुरी सूरत-गोपीपुरा में है और मलियाबाद वाले नवरंग मुकुन्ददास पहली मुकुन्ददास थे ऐसा लोगोंका मत है)।

१-नवरंग स्वामी-कृत बीतक, भूमिका पृ० ५, २-कुछ लोगों के मतानुसार इन्होंने देवचन्द्रजी से दीक्षा ली। देखिए, गुरु-शिष्य संवाद, परिशिष्ट, 'ग्रन्थकर्ता की गुरुता' पृ० ५९

३-सनन्ध अंतिम प्रकरण, 'बड़ी पत्री' शीर्षक,-- ४-नवरंग-कृत बीतक, भूमिका पृ० ६

५-नवरंग स्वामी कृत दो बीतक उपलब्ध हैं-(१) सुन्दर सागर (२) नवरंग स्वामी कृत बीतक

नवरंग स्वामी-कृत बीतक के रचना-काल का उल्लेख बीतककार ने नहीं किया। संकलनकर्ता के अनुसार इसका रचना-काल सं० १९२९-५२ है[1]। किस आधार पर संकलनकर्ता ने इस तिथि को मान्यता दी है, इसका उल्लेख नहीं हुआ है परन्तु इसका रचना-काल सं० १७५२-७५ मानना अधिक युक्ति-संगत है, क्योंकि इसमें प्राणनाथजी की धामगमन-तिथि के उल्लेख से यह स्पष्ट है कि इसकी रचना प्राणनाथजी के 'धामगमन' के बाद हुई। इस प्रकार इसका रचना-काल सं० १७५१ के बाद ही ठहरता है।

इस बीतक की रचना लालदास आदि की बीतक से भिन्न शैली में हुई है। लालदास-कृत बीतक का आरंभ 'प्रथम भविष्य पु ाण में राजा कहे जुग चार' से होता है। इसका आरंभ 'अथ तीनों स्वरूपों' की बीतक से होता है। शेष घटनाओं का उल्लेख भी अन्य बीतकों की तरह क्रम तथा विस्तार से नहीं हुआ है

कुछ ऐसी घटनाओं का भी उल्लेख इस बीतक में मिलता है जिसका उल्लेख न तो अन्य बीतकों में ही हुआ है और न ही जिसकी पुष्टि 'अन्तर्साक्ष्य' से होती है-

या समे घर घरोने फूल बाई, सो स्वयं धाम परम निज सुहाई
पुत्र उभय सहित जो जेही, या समय भई कसौटी तेही[2]

'पुत्र उभय जो जेही' से ज्ञात होता है कि प्राणनाथजी के पुत्र भी थे जबकि अन्य बीतकों में इसका उल्लेख नहीं हुआ। उनके 'पुत्र' नहीं थे, इसकी पुष्टि स्वयं उनकी रचना से होती है-

"मेरी औरत है इन हाली, सो नहीं जनने वाली[3]"

यद्यपि इसका सम्बन्ध 'इब्राहीम पैगम्बर' से है परन्तु भावार्थ में इसका सम्बन्ध प्राणनाथजी से माना जाता है, जिसके अनुसार प्राणनाथजी का नसली पुत्र नहीं था, उन्होंने परमात्मा से 'नजरी पुत्र' की मांग की थी और यह 'नजरी पुत्र' छत्रसाल थे।

कहीं-कहीं तिथियों का उल्लेख भी गलत हुआ है। प्राणनाथजी का द्वितीय विवाह सं० १७१६ में हुआ था[4], परन्तु मुकुन्ददास ने सं० १७२१ में इनकी सगाई

१-वही, पृ० ८
२-वही, पृ० ४२, चौ० १२
३-क्यामतनामा बड़ा, प्र० १४ चौ० १८
४-विस्तार के लिए देखिए 'जीवन-वृत,

होने का जिक्र किया है—

संवत सतरे एक बीसे, आये कर सगाई बाबी से[1]

मुकुन्ददासजी वि० सं०१७२९ में प्राणनाथजी के सम्पर्क में आये, इससे पूर्व की घटनाओं तथा तिथियों में भूल की संभावना हो सकती है क्योंकि उनकी जानकारी प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित नहीं है। जिन घटनाओं की जानकारी उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव से हुई उसमें ऐसी भूल नहीं दिखायी देती। जैसे, प्राणनाथजी के 'धामगमन की तिथि' के उल्लेख में -

संवत सत्रह एकावन माहीं, श्रावण बदी तीज जो आहीं
समाध विषै आप जो साधी, सुरत मूल स्वरूप सो बांधी[2]

यही नहीं, इस बीतक की रचना सं० १७५१ के बाद हुई जिससे तीस वर्ष पूर्व की घटनाओं के उल्लेख में गलती होने की संभावना है।

मुकुन्ददास द्वारा रचित 'बीतक' के अलावा निम्नलिखित पुस्तकें भी प्राप्त हैं-

१-रास
२-चिद्बिलास
३-तांत्रिक मत
४-कीर्तन ग्रन्थ
५-भगवत गीता
६-रोशन नामा
७-किरतन जन्म समय के
८-रामत मूल सनमंध की
९-तारतम को परनालिका[3]
१०-जकड़ी दूसरी (या काजी महमूद की जकड़ी[4])
११-रस सागर
१२- बीतक[5]
१३-अष्ट पदी
१४-छांदोग्योपनिषद्
१५-खोज के कीर्तन
१६-जकड़ी
१७-श्री ठकुरानीजी के (या दूसरे) जन्म समय के कीरतन
१८-रेखता
१९-गुजराती केदारो
२०-बड़ा रोसन नामा
२१-लीला प्रकाश
२२-योगारम्भ
२३-गुरु शिष्य संवाद
२४-षट्शास्त्र
२५-कीर्तन बसंत
२६-हिंडोला
२७-धाम की वृत्त
२८-पन्द्रह आंकड़ी
२९-कबीर खोज
३०-किरंतन वृत्त

१—नवरंग-कृत बीतक, पृ० ४३   २-वही, पृ० ७८

३-कहीं-कहीं सिर्फ 'प्रणालिका' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। केवल 'प्रणालिका' के प्रयोग से तारतम प्रणालिका तथा वेदों की प्रणालिका दोनों हो सकती हैं।   ४-प्रथम प्रणाम, पृ० ४०

५-जिसका विवेचन किया जा चुका है।

इस 'वाणी' का संग्रह 'दास बानी' नाम से विख्यात है । इस संग्रह में सोलह हजार से भी अधिक चौपाइयां हैं[1] । उपरोक्त तीन प्रकरणों (रचनाओं) में से बीतक के अलावा (जिसका विवेचन किया जा चुका है) रोशन-नामा, गुरु-शिष्य संवाद, प्रणालिका श्री प्राणनाथजी के 'जीवन' दर्शन' तथा समन्वयवादी दृष्टिकोण के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करती हैं ।

तारतम की प्रणालिका –

यह रचना अभी अप्रकाशित है । इसका रचना-काल भी अज्ञात है । प्रणालिका में वेदों और परमधाम का वर्णन है और अन्त में प्राणनाथजी के जीवन पर प्रकाश डाला गया है—

"श्रीजी साहिब जी'[2] को जन्म भयो .... तब खुलासा, खिलवत,
परिक्रमा, सागर, सिन्गार, सिन्धी, मारफत सागर, कयामत नामा करी ॥
सब साथ की नजर खोली ॥ तब साक्षात निजधाममें उठ बैठे ॥
श्री किताब प्रणालिका[3] की सम्पूर्ण भई[4] ॥

रोशन नामा –

श्री प्राणनाथजी हिन्दू-मुस्लिम झगड़े को व्यर्थ मानते थे । उनके मतानुसार भाषा के अन्तर के कारण ही दोनों जातियां आपस में झगड़ती हैं । हिन्दू , जिसे मृत्युलोक, स्वर्गलोक, अक्षर-धाम और परमधाम तथा परमात्मा कहते हैं, मुस्लिम उसे नासूत, मलकूत, जबरूत और लाहूत व अल्लाह कहते हैं । इसी तरह कुरान और पुराण के अनेकों समानार्थक शब्द प्राणनाथजी ने अपने शिष्यों को बताये थे, जिसे उन्होंने लिपिबद्ध कर लिया । रोशन नामा में ऐसे शब्दों का ही उल्लेख है ।

१–जनश्रुति के अनुसार यह ग्रन्थ तीस हजार से भी अधिक चौपाइयों का संग्रह था (गुरु-शिष्य संवाद, भूमिका–लेखक ने इनके द्वारा रचित ३६ हजार पद माने हैं, पृ० १०)

२–प्राणनाथजी के उपाधि–नामों में से एक है – प्राणनाथजी तो हमने अभी से कहना शुरू किया । उनके सामने हम उन्हें 'श्रीजी' अथवा 'स्वामीजी' कहते हैं । – शौर्य पुंज छत्रसाल, पृ० ६९

३–कहीं सिर्फ 'प्रणालिका' शब्द का ही उल्लेख हुआ है और कहीं 'तारतम प्रणालिका' नाम से इस रचना का उल्लेख मिलता है । ४ प्रणालिका, पन्नालाल शर्मा के वैयक्तिक संग्रह की हस्तलिखित प्रति, पृ० ३६

गुरु-शिष्य संवाद –

मुकुन्ददास ने क्षर, अक्षर और अक्षरातीत परमात्मा के स्वरूप धाम, लीला आदि से सम्बन्धित प्राणनाथजी से प्रश्न किये थे। उसका जो उत्तर प्राणनाथजी ने दिया, उसे ही इस रचना में संगृहीत किया गया है[१]। इससे प्राणनाथजी के 'दार्शनिक विचारों' का पता लगता है।

इसकी प्रकाशित प्रति प्राप्त है, जिसके प्रकाशक रणछोड़दास बीरजी धर्मप्रेमी वृद्ध व्यक्ति हैं। इसके प्राक्कथन तथा परिशिष्ट में प्राणनाथजी और मुकुन्ददास के साथ-साथ तारतम-वाणी और दास-वाणी की कुछ चौपाइयों का भी यत्र-तत्र उल्लेख किया गया है।

४. बीरजी-कृत बीतक –

बीरजी का जन्म-काल और स्थान आदि अज्ञात हैं। कुछ लोगों के मतानुसार ये वि० सं० १७५८ में उपस्थित थे[२]। पन्ना के गुम्मट मन्दिर में प्राप्त कुलजम की प्राचीनतम प्रति (वि० सं० १७५८) का लेखक भी इन्हें ही माना जाता है, जिसका आधार कुलजम की इस प्रति के अन्त की निम्न पुष्पिका है–

> "सं. १७५८ चेत सुदी ११ एतवार मुकाम परना किताब कुलजम फैर के जिलद् बनवाई, श्री राजजी ने हुकम साहेब के से सुधारी, बंदा खाकी ब्रह्मसिष्ट हक हादी रूहों की पाऊं खाक निसबती किताबसुधारतलबीरजी।"

परन्तु इस पुष्पिका से कहीं भी बीरजी के इस प्रति के लेखक होनेका उल्लेख नहीं मिलता, सिर्फ सुधारकर्ता के रूप में ही नामोल्लेख हुआ है और ये सुधारकर्ता भी तलबीरजी हैं, बीरजी नहीं[३]।

निम्न आधार पर इस बीतक का रचना-काल लालदास-कृत बीतक (मिडूढा प्रेस प्रकाशन) के भूमिका-लेखक प्रो० जायसवालजी ने सं० १७५१-५८ माना है।

१-गुरु-शिष्य संवाद, प्राक्कथन, पृ० ९

२-देखिए लालदास-कृत बीतक, अलाहाबाद प्रकाशन, भूमिका

३-विस्तार के लिये देखिए-'साहित्यिक कृतित्व' अध्याय

१५ वें पृष्ठ पर जहां से बीतक आरंभ होती है, लालदास के हस्तलेख में लिखा है-"प्रथम केताब को मंगलाचरण।" जायसवालजी के अनुसार लालदास वि० सं० १७५१ तक उपस्थित थे, और इस बीतक का 'मंगलाचरण' लालदास के हस्तलेख में होने के कारण यह सं० १७५१ की रचना ठहरती है। निश्चित तिथि ज्ञात न होने के कारण इसे १७५१-५८ की रचना माना गया है क्योंकि इसके रचयिता बीरजी (उपरोक्त आधार पर) वि० सं० १७५८ तक उपस्थित थे।

इस बीतक का रचना-काल वि० सं० १७५१-५८ मानने में निम्न बाधाएं हैं-

(क) 'मंगलाचरण' लालदासजी के ही हस्तलेख में है इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं।
(ख)'कुलजुम सरूप' के अन्त में दी गयी पुष्पिका के आधार पर इन्होंने बीरजी की उपस्थिति सं० १७५८ तक मानी है।

पर, जैसा कि ऊपर सिद्ध किया जा चुका है कि उपरोक्त पुष्पिका के लेखक तत्वीरजी हैं, बीरजी नहीं, फिर किस आधार पर इसे १७५१-५८ की रचना माना जाये। ठोस प्रमाणों के अभाव में इसका रचना-काल निश्चित कर सकना असंभव है।

बीरजी-कृत इस बीतक की पृष्ठ संख्या १४८ है। यह प्रति अत्यन्त जीर्णावस्था में है। अन्तिम पृष्ठ का कुछ भाग फटा हुआ है जिससे कुल चौपाई संख्या का योग नहीं है और पुष्पिका न होने से लेखक के नाम और लेखन-तिथि का भी उल्लेख नहीं मिलता।

बीतक की शैली-

इस बीतक की लेखन-शैली लालदास-कृत बीतक के अनुरूप ही है। इसके मुख्यः तीन भाग हैं-

(अ) परमधाम लीला — प्रकरण १७, चौपाई ५९०
(आ) बृजरास-लीला — प्रकरण १९, चौपाई ५००
(इ) जागनी लीला — श्रीदेवचन्द्रजी और प्राणनाथजी की बीतक, जो कि इस बीतक के ५३ वें पृष्ठ से आरंभ होती है। इस लीला के चार खंड हैं-

प्रथम भाग

आदि-श्रीदेवचन्द्रजी की बीतक, "भविष्य पुराण में राजा कहे जुग चार'

अन्त-श्रीप्राणनाथजी के सूरत पहुँचने तक कुल प्रकरण २०, चौपाई १३०३

दूसरा भाग

आदि-सूरत से औरंगाबाद की बीतक
अन्त-औरंगाबाद से आकोट तक की बीतक प्रकरण १६, चौपाई १२३८

तीसरा भाग

आकोट से पन्ना तक की बीतक प्रकरण ८, चौपाई ५७४

चौथा भाग

अष्ट प्रहर की बीतक, चौपाई ७६४

बीतककार की समस्या (क्या इस बीतक के लेखक 'बीरजी' हैं ?) – इस बीतक का अन्तिम पृष्ठ फटा हुआ है जिससे लेखक का नामोल्लेख इसमें नहीं हुआ है, अतएव प्रश्न उठता है कि किस आधार पर बीरजी को इसका रचयिता माना गया है ? लालदास बीतक (अलाहाबाद प्रकाशन) की भूमिका में, भूमिका-लेखक ने निम्न आधार पर इसे बीरजी-कृत माना है-

"गुम्मटजी में सुरक्षित कुलजम, १७५८ की प्रति के अक्षरों की बनावट बिल्कुल वही है जो बीरजी की बीतक में है।" और कुलजम की इस प्रति को वे बीरजी द्वारा लिखित मानते हैं। कुलजम की इस प्रति के लेखक बीरजी नहीं, जैसा कि पहले सिद्ध किया जा चुका है। अब प्रश्न उठता है कि यदि इस बीतक के लेखक बीरजी नहीं, तो कौन है ? रचयिता का पता लगाने के लिए निम्न तथ्य विचारणीय है-
(क) प्रकरणान्त में बीतक-परम्परा के अनुसार लेखक की छाप में बीरजी का उल्लेख न होकर यत्रतत्र लालदास का उल्लेख हुआ है—

मेहेमत कहे ए मोमिनो, ए सरत करो याद
फेर आगे कहूं 'लाल जो झगड़े की बुनियाद[1]

(ख) 'छाप के अतिरिक्त इसकी शैली और 'लाल' के साथ मेहेमत (महामति) का उल्लेख भी लालदास बीतक के अनुरूप ही है। जिससे यह लालदास द्वारा लिखित ज्ञात होता है। 'परन्तु इसे लालदास-कृत मानने में निम्न बाधाएं हैं-

१-भगोड़ा में प्राप्त हस्तलिखित प्रति-जागनी लीला-के प्रथम खण्ड' प्रकरण २० की अन्तिम चौपाई।

बीरजी को इस बीतक का रचयिता मानने वालों के मतानुसार इस बीतक के १५ वें पृष्ठ पर जो 'प्रथम केताब को मङ्गलाचरण' लिखा है, वह लालदास के हस्त-लेख में है। यदि इस 'मङ्गलाचरण' को लालदास के ही हस्तलेख में मान लिया जाये तो बीतक के शेष हस्तलेखन और इस पंक्ति के हस्तलेखन में अन्तर होने के कारण इस बीतक का लेखक लालदास को नहीं माना जा सकता।

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि यह बीतक लालदास-कृत बीतक की प्रतिलिपि है। जिसके प्रतिलिपिकार बीरजी (नामक कोई व्यक्ति) हैं। लालदास कृत बीतक और इस बीतक में यदि कोई अन्तर है तो उसका कारण 'अनुलिपि' है (अर्थात्, प्रतिलिपियों की प्रतिलिपियां होने के कारण कुछ अन्तर हो जाना स्वाभाविक है)।

लालदास, करुणावती तथा नवरंग स्वामी कृत बीतकों का तुलनात्मक अध्ययन –

मुकुन्ददासजी अन्य दोनों शिष्यों की अपेक्षा प्राणनाथजी के सम्पर्क में बाद में आये। नवरंग कृत बीतक' में समस्त घटनाओं का उल्लेख भी सविस्तार नहीं हुआ है, जैसा कि उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है। जहां तक प्रत्यक्ष अनुभव और घटनाओं के सविस्तार वर्णन का प्रश्न है, नवरंग कृत बीतक से लालदास तथा करुणावती कृत बीतक को अधिक महत्व मिलता है।

इन दोनों बीतकों (करुणावती कृत बीतक और लालदास-कृत बीतक) में भी निम्न कारणों से लालदास बीतक को अधिक महत्व प्राप्त होता है—

दोनों बीतकों में वर्णित घटनाओं तथा तिथियों में एकरूपता मिलती है। दोनों का रचना-काल अज्ञात होने से यह अनुमान लगाना कठिन है कि कौन-सी बीतक किस बीतक का आधार है। अथवा यह भी संभव है कि ये अन्योन्याश्रित न हों और दोनों की रचना स्वतंत्र रूप से हुई हो। रहा प्रश्न एकरूपता का, इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रसंगवश अथवा शिष्यों द्वारा पूछे जाने पर प्राणनाथजी ने स्वयं कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया हो, जिसे उनके शिष्यों ने लेखनीबद्ध कर लिया हो। जिसका संकेत 'वृत्तान्त मुक्तावली' की निम्न चौपाई में मिलता है

"देवचन्द्र सतगुरु के चरित, महामत[1] साथ सो कहे[2]"

१–प्राणनाथजी का उपाधिनाम २–वृत्तान्त मुक्तावली, पृ० ३५, प्र० १०, चौ० ६२

इससे स्पष्ट है कि प्राणनाथजी अपने गुरु तथा अपने बारे में शिष्यों को बताते थे। जैसा कि निम्न पद से ज्ञात होता है कि प्राणनाथजी ने छत्रसालजी को अपने विषय में बताया था—

छत्रसाल प्रति यह सकल, कही धनीने जौन
ब्रज भूषण, लव एक सों, वर्णि कहत अब तौन[1]

यद्यपि जैरामभाई प्राणनाथजी के सम्पर्क में लालदास से पूर्व आये, परन्तु दोनों बीतकों में प्राप्त सामग्री में एकरूपता के आधार पर लालदास-कृत बीतक को भी उतना ही महत्व मिलता है जितना करुणावती की बीतक को। दोनों बीतकों की तिथियों और घटनाओं में समानता होने से लालदास द्वारा प्रस्तुत सामग्री के तथ्यनिष्ठ होने का प्रमाण मिलता है।

यदि लालदास बीतक की रचना प्राणनाथजी के आदेशानुसार और उन्हीं के जीवन-काल में ही हुई है तो इस बीतक को करुणावती की बीतक से अधिक महत्व प्राप्त होता है। वैसे भी लालदास बीतक में श्री प्राणनाथजी के जीवन सम्बन्धी उल्लेख करुणावती से अधिक विस्तार में किया गया है।

मुक्तिपीठ आदि के आधार पर[2] यदि इस बीतक की रचना छत्रसाल के आदेशानुसार भी मान ली जाये तो भी इस 'बीतक' के तथ्यनिष्ठ होने में संदेह नहीं, क्योंकि "छत्रसाल प्रति यह सकल, कही धनी ने जौन" से स्पष्ट है कि प्राणनाथजी का जीवन-वृत्तान्त छत्रसालजी ने उन्हीं (प्राणनाथजी) की जबानी सुना। इतना ही नहीं, दीक्षा लेने के बाद से अन्त समय तक लालदासजी प्राणनाथजी के साथ रहे, इसलिए प्राणनाथजी के जीवन में घटित होनेवाली अधिकांश घटनाओं के ये प्रत्यक्ष-दर्शी भी थे। इन्हीं समस्त कारणों से प्राणनाथजी के शिष्यों द्वारा लिखित विभिन्न बीतकों में इसी बीतक की सामग्री को सर्वाधिक विश्वसनीय मानकर अध्ययन के लिए आधार बनाया जा सकता है।

(आ) समकालीन तथा परवर्ती भक्त कवियों की रचनाएं

श्री प्राणनाथजी का सम्बन्ध राजाओं से भी रहा है। बुन्देलखण्ड के शासक छत्रसालजी उनके मुख्य शिष्यों में से थे। इस राज्य से सम्बन्धित जिन कवियों ने छत्रसाल

१–वृत्तान्त मुक्तावली, पृ० १५८ प्र० ३ चौ० ६६

२–मुक्तिपीठ, पृ० ३१,३३

के साथ उनके श्रद्धेय गुरु प्राणनाथजी का भी जीवन चरित लिखा है, उनमें बृजभूषण हंसराज, गोरेलाल आदि का नाम उल्लेखनीय है। इनकी रचनाओं के नाम क्रमशः 'वृत्तान्त मुक्तावली' 'मिहिरराज चरित्र और' 'छत्रप्रकाश' है। प्रथम दोनों बीतकों का सम्बन्ध प्राणनाथजी से है। छत्रप्रकाश में प्राणनाथजी का उल्लेख प्रसंगवश हुआ है। इसके अतिरिक्त एक बीतक-'वर्तमान दीपक' गुजराती में भी लिखी गयी, जिस के रचयिता लल्लू भट्ट (लाल सखो) हैं।

१. बृजभूषण-कृत वृत्तान्त मुक्तावली

भूषण तीन हुए हैं-भूषण, मधुकर भूषण, बृजभूषण। तीनों छत्रसालजी से संबन्धित थे। बृजभूषण कौन थे, कहां के निवासी थे, यह अभी शोध का विषय है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि वे वि० सं० १७५५ के आसपास बुन्देलखण्ड में थे। अभी तक इनकी एक मात्र रचना 'वृत्तान्त मुक्तावली' ही प्रकाश में आई है, जो छत्रसाल के निर्देशानुसार प्राणनाथजी के बाद सं० १७५५ में लिखी गयी थी[१]। ये प्राणनाथजी के समकालीन थे। इस बीतक का आधार लालदास-कृत बीतक है, जिसे उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है-

> सुनिकै चरचा धाम धनी की, सतरि साथ मिले नर नारि।
>
> श्री लालदास कृत बीतक माहिं, नाम ठौर सब उन्हीं उन्हारी[२]॥

'लालदास-कृत बीतक' के बाद इसी बीतक का स्थान है। इसकी मूल प्रति उपलब्ध नहीं, सिर्फ हस्तलिखित और प्रकाशित प्रति ही प्राप्य है।

इस में वि० सं० १७३५ तक की घटनाओं का क्रम वही है जो लालदास-कृत बीतक में है। १७३५ में कुम्भ के मेले पर विभिन्न सम्प्रदाय वालों से हुए शास्त्रार्थ में ही कुछ अन्तर मिलता है। लालदास-कृत बीतक में शास्त्रार्थ का उल्लेख उतने विस्तार से नहीं हुआ जितने विस्तार से वृत्तान्त मुक्तावली में हुआ है।

दूसरा उल्लेखनीय अन्तर प्राणनाथजी के धामगमन की तिथि का उल्लेख है। लालदास कृत बीतक अष्ट प्रहर (दिनचर्या) के बाद ही समाप्त हो जाती है परन्तु इस बीतक में परिशिष्ट भाग के पूर्व प्राणनाथजी के धामगमन हिजरी सं० ११०५

१-वृत्तान्तमुक्तावली भूमिका पृ० १२ २-वृत्तान्त मुक्तावली, पृ० २०९ प्र० ४७ चौ० १२

(वि० सं० १७५१) में होने का उल्लेख है[1]। यह बीतक बुन्देलखण्डी तथा ब्रजभाषा में, चौपाई, छन्द पद्धति में लिखी गयी है।

श्री प्राणनाथजी के साथ-साथ इसमें उनके गुरु श्री देवचन्द्रजी तथा शिष्य छत्रसालजी का भी विवरण है; अर्थात् इस बीतक के तीन भाग हैं-

प्रथम भाग : जो प्राणनाथजी के धर्म-गुरु तथा प्रणामी धर्म के संस्थापक श्री देवचन्द्रजी की जीवन घटनाओं पर प्रकाश डालता है।

द्वितीय भाग : श्री प्राणनाथजी के जीवन से सम्बन्धित।

तृतीय भाग : जो प्राणनाथजी के शिष्य तथा बुन्देलखण्ड के शासक छत्रसालजी से संबन्धित है।

२. बख्शी हंसराज-कृत मिहिरराज-चरित्र -

ये केशवराय के पुत्र थे[2] और छत्रसाल के पौत्र (हृदयशाह के पुत्र) सभासिंह के दीवान थे। इनका जन्म वि० सं० १७४० में पन्ना[3] (बुन्देलखण्ड) में हुआ। इनकी निम्न रचनाएं उपलब्ध हैं-

(क) मिहिरराज चरित्र
(ख) सनेह सागर
(ग) श्री कृष्णजूकी पाती
(घ) श्री जुगल स्वरूप विवाह पत्रिका
(ङ) फाग तरङ्गिनी
(च) चुरि हारिन लीला

अभी तक सिर्फ मिहिरराज चरित्र का ही प्रकाशन हुआ है, वह भी पूर्ण नहीं। प्रतिबिम्ब लीला भाग इस प्रकाशित प्रति में नहीं है। मिहिरराज चरित्र का रचना-काल कविने इस प्रकार दिया है-

राम गगन वसु इन्दु धरि[4], शुभ बसन्त गिन लीन
माघ शुक्ल बुद्ध पंचमी, ता दिन ग्रन्थ यह कीन[5]

अर्थात्, इसका रचना-काल १८०३ माघ सुदी (बसन्त) पंचमी, बुधवार को ठहरता है।

इसकी अधिकांश घटनाओं का क्रम लालदास-कृत बीतक के अनुरूप ही है। कुछ अन्तर इस प्रकार है—

१-वृत्तान्त मुक्तावली, पृ० ४४८ प्र० ८० चौ० ३,
२-मिहिरराज चरित्र, भूमिका पृ० ३
३-वही भूमिका, पृ० १
४-राम ३, गगन, -० वसु-८ इन्दु (चन्द्र)-१-१८०३,
५-मिहिरराज चरित्र पृ० १ प्र० १ चौ० ६

(१) लालदास ने बीतक का आरंभ चतुर्युग नृप वर्णन के साथ किया है[१]। परन्तु मिहिरराज चरित्र का आरंभ वन्दना से हुआ है[२]।

(२) बीतक में लालदास ने अपना वंशोल्लेख नहीं किया। हंसराज ने प्रथम अपने संरक्षक नृप के वंश का उल्लेख किया है और फिर अपना। फिर गणेश आदि की बन्दना व क्षमा-याचना करने के बाद चार युग के राजाओं का वर्णन किया है। इसके बाद सं. १७३५ तक की घटनाओं में दोनों बीतकों में समानता है।

(३) लालदास-कृत बीतक में हरिद्वार (सं० १७३५) की घटनाओं का विस्तार से वर्णन है और दिल्ली की घटनाओं का संक्षेप में। परन्तु मिहिरराज चरित्र में स्थिति ठीक इसके विपरीत है। इसके बाद 'पन्ना' (सं० १७४०) तक दोनों बीतकों का वर्णन समान है।

(४) पन्ना पहुँचने पर छत्रसाल प्राणनाथजी के प्रश्नोत्तर के रूप में, बख्शीजी व्रजरास का वर्णन करते हुए लालदास का साथ छोड़ देते हैं। इस वर्णन के बाद पुनः लालदासका साथ देने लगते हैं।

(५) इस बीतक में अष्ट प्रहर का वर्णन भी नहीं मिलता।

(६) इसमें जाग्रत साथियों (दीक्षित लोगों) का नामोल्लेख भी लालदास-कृत बीतक की तुलना में कम हुआ है।

(७) इसमें व्रज, रास और प्रतिबिम्ब लीला का भी सविस्तर वर्णन हुआ है।

अर्थात्, 'जीवनी' के अध्ययन के लिए अगर लालदास-कृत बीतक इससे अधिक उपयोगी है तो 'दर्शन पक्ष' के लिए मिहिरराज चरित्र महत्वपूर्ण है।

हस्तलिखित और प्रकाशित प्रति में अन्तर—

(क) प्रकाशित प्रति में बृज, रास का वर्णन हस्तलिखित प्रति की अपेक्षा संक्षेप में हुआ है, और 'प्रतिबिम्ब लीला' खण्ड का भी प्रकाशन नहीं किया गया जबकि हस्तलिखित प्रति में बृज रास के साथ प्रतिबिम्ब लीला का भी वर्णन हुआ है।

(ख) हस्तलिखित बीतक के प्रथम प्रकाश (अध्याय) में प्राणनाथजी की बन्दना, फिर अपने संरक्षक राजा का वंश और बाद में अपने वंश का कवि ने वर्णन किया है। इसके बाद गणेश आदि की वन्दना है परन्तु प्रकाशित प्रति में 'प्रथम प्रकाश'

१—'भविष्य पुराण में राजा कहे जुग चार'—लालदास कृत बी० प्र० १,　　२-मिहिरराज चरित्र प्र० १

में प्राणनाथजी की वन्दना है । राजवंश और कवि का वंशोल्लेख 'प्रथम प्रकाश में न होकर भूमिका में किया गया है ।

३. लल्लू भट्ट-कृत वर्तमान दीपक (गुजराती भाषा में)

लल्लू भट्ट का जन्म लगभग वि० सं० १८९० में हुआ था। साठ वर्ष की आयु में सं० १९५० में निर्वाण (मृत्यु) प्राप्त किया१ । बीतक के मंगलाचरण तथा उपसंहार में इन्होंने आत्मोल्लेख किया है जिसके अनुसार ये खेड़ा जिल्ला में अलिन्द्रा गांव (गुर्जर देश) के रहने वाले औदिच्य ब्राह्मण थे२ । इनके गुरु सूरत के तत्कालीन महन्त श्री लालाजी थे३ और साम्प्रदायिक विद्याभ्यास' जामनगर के महन्त श्री जीवरामदासजी महाराज के पास रहकर किया४ ।

'वर्तमान दीपक' का रचना-काल सं० १९३६-४४ है जिसका उल्लेख स्वयं बीतक कार ने उपसंहार में किया है५ । इसका आधार 'लालदास-कृत बीतक' तथा 'वृत्तांत मुक्तावली है६ । फिर भी इन दोनों में अन्तर है—

(१) इसमें प्राणनाथजी के परिवार का वर्णन विस्तृत तथा सुनियोजित रूप से हुआ है । इन्होंने केशव ठाकुर (प्राणनाथजी के पिता) के सात पुत्रों का उल्लेख किया हैं७, जबकी अन्य बीतकों में श्री प्राणनाथजी के पांच भाई होने का ही उल्लेख मिलता है ।

१-देखिए वर्तमान दीपक (द्वितीय संस्करण) भूमिका, पृ० ५, २-वही उपसंहार पृ० ६१२ किरण ८७

देह मारो गुर्जर देश मां औदिच्य टोडक विप्र वेष मां ।
खेड़ा थी दक्षिण मां गाम, अलिन्द्रा छे तेनू नाम ॥

३- नमो नमस्तेऽस्तु विशालबुद्धये, विराजमानाय च सूर्यपत्तने ।
सतां महासद्गुरवे कृपालवे, लालाजि संज्ञाय चिरन्नमामि ॥ – वही भूमिका पृ० ५

४- पुर्यां सदा नूतनसंज्ञकायां विराजमनाय सदाश्रिताय।
श्री जीवरामाय गुरूत्तमाय पुनः पुनः सत्यविदे नमामि ॥ – वही पृ० ५

५- वर्तमान करवा इच्छा थई, साल ओगणीसो छत्रीस महीं ।
तेने पूर्ण कीधुं हाल, ओगणीसो चुमालीसनी साल ॥ – उपसंहार

६-वही, भूमिका, ७-वर्तमन दीपक, पृ० ११३

(२) वर्तमान दीपक में इन दोनों बीतकों की अपेक्षा प्राणनाथजी तथा पण्डितों में हुए शास्त्रार्थ का विस्तृत वर्णन है।

(३) कुछ महत्वपूर्ण तिथियों का भी उल्लेख, जोकि उपरोक्त दोनों बीतकों में नहीं हैं, मिलता है, जैसे अहमदाबाद की घटना तथा प्राणनाथजी के द्वितीय विवाह तथा फूलबाई (प्रथम पत्नी) की मृत्यु तिथियों का उल्लेख कितने स्पष्ट रूप से हुआ है-

संवत सतर फागण आठ, श्यामाये मुक्यो ठाठ[1]

-- -- --

आगल श्यामा देह थी गयां, आठ वर्ष ते चाल्या थयां[2]

-- -- --

संवत सतर सोल सवार, चैत्र सुद अेकम रविवार[3]

अर्थात्, प्रथम पत्नी-फूलबाईका धामगमन सं० १७०८ में हुआ और इनके धामगमन के आठ वर्ष बाद सं० १७१६ में प्राणनाथजी ने द्वितीय विवाह किया। परन्तु फूलबाई का धामगमन सं० १७१२ में, देवचन्द्रजी के धामगमन के बाद हुआ और चार वर्ष बाद सं० १७१६ में प्राणनाथजी ने पुनर्विवाह किया[4]।

हिन्दी भाषा में तो अनेकों बीतकें प्राप्य हैं परन्तु गुजराती भाषा में यही एकमात्र बीतक होने के कारण गुजराती भाषा-भाषियों के लिए तथा कुछ महत्वपूर्ण तिथियों और घटनाओं के स्पष्ट उल्लेख के कारण, यह 'बीतक' अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा उपयोगी है। इसमें श्री देवचन्द्रजी तथा प्राणनाथजी के जीवन-चरित्र की घटनाओं का वर्णन अत्यन्त सरल भाषा में किया गया है।

गोरेलाल-कृत छत्रप्रकाशः—

यह रचना बीतक परम्परा में नहीं आती। इसके रचयिता छत्रसाल के दरबारी कवि गोरेलाल हैं तथा सम्पादक श्यामसुन्दरदासजी हैं। इसका प्रतिपाद्य (विषय) छत्रसाल हैं और प्राणनाथजी का नामोल्लेख प्रसंगवश, छत्रसाल के धार्मिक गुरु के रूप में ही हुआ है। प्राणनाथजी के 'जीवनों' का उल्लेख इसमें नहीं मिलता। छत्र-

---

२ वही पृ० १९० चौ० २८ ३- वही पृ० १९१ चौ० ३४

प्रकाश की खण्डित प्रति ही उपलब्ध है[१]। पूर्ण प्रति मिलने पर संभवतः प्राणनाथजी से संबन्धित इससे अधिक सामग्री प्राप्त हो सके।

वैसे तो सम्प्रदाय में बहुरंग स्वामी-कृत बीतक, स्नेह सखी-कृत बीतक, दरबार की बीतक, आदि सत्रह बीतकें विभिन्न रचयिताओं की प्राप्त हैं। परन्तु उपरोक्त छः बीतकों को ही सम्प्रदाय में अधिक मान्यता मिली है। चूंकि अन्य बीतकें इन्हीं को आधार बनाकर लिखी गयी हैं। इन बीतकों में प्राणनाथजी के जीवन में घटित होने वाली अलौकिक घटनाओं, जिसका उल्लेख लालदास-कृत बीतक आदि 'बीतकों' में नहीं हुआ है, और जिसका आधार 'जनश्रुति' ही थी, का भी समावेश हुआ है। जैसा 'दरबार की बीतक'[२] का आधार तो लालदास-बीतक ही है परन्तु इसमें अलौकिक घटनाओं तथा कुछेक प्रमाणों का सविस्तार उल्लेख हुआ है। इसी तरह 'स्नेह सखी' कृत बीतक में प्राणनाथजी की बाल-लीलाओं का भी उल्लेख हुआ है—

कबहुक लाल पौढ़ाये के, जब जाये बाहर मात।
तब भवन में हुई धूम, भारी लीला आये साक्षात।
कबहुक रास विलास लीला, हुई थेई थेई कार।
करत निरत प्यारे सखियन संग, सुन्दर नवलकुमार।
कबहुक परस्पर करत हांसी, परस्पर बृज बाल।
इन विध धन बाई भवन में, होय नानाविध के ख्याल।
वेद बचन पहुँचे नहीं जाको, जो अक्षर पार सुहाये।
देख अचरज ताको धनबाई, हुलरावत सुख पाये।
भये पांच बरष के लालन, तब लौं लीला कीन्ह।
तां उपरांत विचार के, बालक चेष्टा कीन्ह।

१—छत्रप्रकाश के सम्पादक स्वर्गीय श्यामसुन्दरदास के मतानुसार यह प्रति अपूर्ण है।

२— इसका पाठ प्रत्येक वर्ष एक माह तक सावन वदी पंचमी से कृष्णा जन्माष्टमी तक बंगलाजी मन्दिर (पन्ना) में होता है। इसके संकलनकर्ता परमहंस महाराज श्री मेहरदासजी हैं। इसके अलावा इनका बनाया हुआ 'बैराट' का पट (नक्शा) और चम्चनी (परमधाम की बृत्त) भी प्राप्त है।

चमत्कारिक घटनाओं का भी इसमें उल्लेख मिलता है, जैसे, प्राणनाथजी के जन्म से पूर्व सूर्य का धनबाई (प्राणनाथजी की मां) के मुंह में प्रवेश होना।

(इ) आधुनिक रचनाएं

इस श्रेणी में दो तरह की रचनाएं आती हैं। एक तो ऐसी रचनाएं हैं जो अपनी सम्पूर्णता में प्राणनाथजी का उल्लेख करती हैं। ये रचनाएं हैं, 'धर्माभियान, 'श्री निजानन्द्-कल्पद्रुम' 'महाप्रभु श्री प्राणनाथजी,' 'चरित्र दिग्दर्शन, विज्ञान सरोवर' आदि। ये रचनाएं बीतक शैली पर की गयी हैं अर्थात् इसमें बीतक की तरह प्राणनाथजी के गुरु श्री देवचन्द्रजी, प्राणनाथजी और उनके शिष्य छत्रसाल का उल्लेख मिलता है। 'धर्माभियान' और 'चरित्र दिग्दर्शन' में प्राणनाथजी की जीवनी का विस्तृत विवेचन मिलता है। 'चरित्र दिग्दर्शन' का आधार लालदास-कृत बीतक और स्नेह सखी-कृत बीतक है, तथा धर्माभियान का आधार लालदास-कृत बीतक वृत्तान्त मुक्तावली, श्री निजानन्द चरितामृत, वैराट पट दर्शन, विज्ञान सरोवर, बुन्देलखण्ड केसरी महाराजा छत्रसाल, मुक्ति पीठ, बीतक दर्शन, आनन्द सागर, प्रथम प्रणाम, द्वितीय प्रणाम आदि हैं. जैसा कि लेखक श्री मुरलीदास धामीजी ने स्वयं स्वीकार किया है। 'निजानन्द्-कल्पद्रुम' में प्राणनाथजी के परिवार का यद्यपि विस्तृत उल्लेख मिलता है, पर धर्माभियान का उल्लेख बहुत ही संक्षेप में हुआ है। धर्माभियान के समय विद्वानों से हुए शास्त्रार्थ का उल्लेख तो प्रायः नहीं के बराबर हुआ है। 'विज्ञान सरोवर' में भी प्राणनाथजी की जीवन-सम्बन्धी संक्षिप्त उल्लेख मिलता है। 'महाप्रभु प्राणनाथजी' का प्रकाशन द्वितीय विश्वधर्म के सम्मेलन के अवसर पर, अंग्रेजी में 'लॉर्ड प्राणनाथ' के नाम से हुआ था। 'महाप्रभु प्राणनाथ' इसी 'लार्ड प्राणनाथजी' का हिन्दी अनुवाद है। इसमें प्राणनाथजी के व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों का संक्षेप में अध्ययन किया गया है।

अपनी सम्पूर्णता में प्राणनाथजी का उल्लेख करने वाली कुछ ऐसी रचनाएं भी हैं जो बीतक-शैली से मुक्त हैं। इनमें प्राणनाथजी के व्यक्तित्व का विवेचन जीवन घटनाओं के क्रम से नहीं हुआ और न ही इनमें प्राणनाथजी के गुरु श्री देवचन्द्रजी और शिष्य छत्रसालजी के व्यक्तित्व का विवेचन आवश्यक समझा गया है। ये रचनाएं हैं-'तारतम की पुकार', 'महामति प्राणनाथ मार्ग', 'डिवाइन हाउस आफ

श्री प्राणनाथजी', 'प्रणामी धर्म' और 'महाराजा छत्रसालजी का संक्षिप्त परिचय आदि । दूसरी तरह की वे रचनाएं हैं जिनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय प्राणनाथजी नहीं। ऐसी रचनाओं में उनका उल्लेख प्रसंगवश हुआ है । ये रचनाएं हैं-वैराट पट दर्शन, परमहंस जुगलदासजी प्रणीत बड़ी पत्री, आनन्द सागर, गुरु-भक्त शौर्यपुंज-छत्रसाल, परमहंस चरितामृत, महाराजा छत्रसाल, छत्रसाल बावनी, आदि ।

'गुरुभक्त शौर्यपुंज छत्रसाल,' 'छत्रसाल बावनी' और 'महाराजा छत्रसाल' में प्राणनाथजी का उल्लेख छत्रसालजी के आध्यात्मिक गुरु के रूप में हुआ है, 'परमहंस चरितामृत' में प्राणनाथजी का उल्लेख 'प्रेमसखी' और 'इन्द्रावती सखी' (प्राणनाथजी का उपाधि-नाम) की 'भेंट' के प्रसंग में हुआ है तथा 'वैरा-पट-दर्शन,' तारतम की प्रणालिका और वेदों की प्रणालिका में प्रणामी-दर्शन' के विवेचन-प्रसंग में हुआ है।

ये आधुनिक रचनाएं, इस निजानन्द सम्प्रदाय में दीक्षित लोगों की हैं । इन रचनाओं का आधार 'बीतक साहित्य' है, इनमें लेखकों की मौलिक देन बहुत ही कम है । मौलिक सामग्री प्रस्तुत करने वाली रचना के रूप में आनन्द-सागर का नाम उल्लेखनीय है । इसमें लेखक ने वेदों और उपनिषदों का उद्धरण देकर प्राणनाथजी को बुद्ध निष्कलंकावतार तथा उनके उपाधि-नामों को 'वेद-सम्मत' सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । इसमें आठ तरंग हैं । प्रथम छः तरंगों में अक्षरातीत ब्रह्म और उसकी अनादि शक्तियों का प्रेम संवाद, सुमंगला शक्ति से संसार की उत्पत्ति, अक्षर तथा ब्रह्म प्रियाओं का व्रज में कृष्ण तथा गोपी रूप में प्रगट होना और उनकी व्रज तथा रासलीलाओं का वर्णन है, जिसकी पुष्टि श्रुति स्मृति के प्रमाणों से की गयी है । अन्तिम दो तरंगों में रासलीला के बाद ब्रह्म प्रियाओं का परमधाम को जाना और मनोरथ शेष होने से पुनः इस विश्व में अवतीर्ण होना और परमात्मा को भूल जाने का वर्णन है । उन्हें जाग्रत करने के प्रसंग में श्यामाजी का देवचन्द्रजी के रूप में व पूर्णब्रह्म श्री राज का प्राणनाथजी के रूप में प्रगट होने का वर्णन है और अष्टम तरंग में निजानन्द संप्रदाय के मन्तव्य विषयों का वर्णन किया गया है । यह ग्रन्थ संस्कृत में है । इन संस्कृत श्लोकों का हिन्दी अनुवाद भी इसमें मिलता है ।

इन आधुनिक रचनाओं में मिलने वाली सामग्री का उल्लेख यथा-स्थान किया जायेगा।

'बुन्देलखण्ड केसरी महाराजा छत्रसाल बुन्देला' के अन्त में प्राणनाथजी और

छत्रसालजी की भेंट सम्बन्धी पत्र की एक प्रति दी गयी है, जिसका उल्लेख इस अध्याय के अन्त में किया गया है।

यहाँ 'गौरी शंकर 'द्विवेदी' के 'बुन्देल वैभव' का नाम भी उल्लेखनीय है जिन्होंने प्राणनाथजी और इन्द्रामती (इन्द्रावती) को भिन्न माना है तथा अन्तमें प्राणनाथजी के नाम से एक ऐसे पद का उल्लेख किया है जिसे शैली और वर्ण्य विषय के आधार पर प्राणनाथजी का मानने में संकोच होता है। इन्होंने प्राणनाथजी की चौदह रचनाओं में से कुछेक का नामोल्लेख भी किया है जो त्रुटिपूर्ण है[१]।

साहित्यिक और ऐतिहासिक ग्रन्थ तथा खोज रिपोर्ट—

साहित्यिक ग्रन्थः—

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों में मिश्रबन्धु,[२] डा० रामकुमार वर्मा,[३] डा० रामचन्द्र शुक्ल[४] तथा श्री परशुराम चतुर्वेदी[५] ने प्राणनाथजी तथा प्रणामी धर्म का उल्लेख किया है। इनमें प्रणामी साहित्य की मौलिक सामग्री का उपयोग नहीं किया गया, इसलिए इनमें प्राप्त सामग्री पूर्ण रूप से प्रामाणिक नहीं है, और अत्यल्प भी है। केवल 'उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा' में ही चतुर्वेदीजी ने 'धामी सम्प्रदाय' के शिर्षक के अन्तर्गत इस सम्प्रदाय का कुछ विस्तार से उल्लेख किया है किन्तु यहाँ भी मौलिक सामग्री के अभाव में प्राणनाथजी के जीवन से सम्बन्धित जो सामग्री प्राप्य है, वह त्रुटिपूर्ण और अविश्वसनीय है जिसका उल्लेख यथा-स्थान किया जायेगा। 'मोडर्न लिटरेरी हिस्ट्री आफ हिन्दुस्थान' में भी प्राणनाथजी का उल्लेख मिलता है[६]।

इतिहास ग्रन्थः—

साहित्यिक, धार्मिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व पूर्ण होने पर भी श्री प्राणनाथजी के विषय में 'भारतीय इतिहासकार' प्रायः मौन हैं। यत्रतत्र जो उल्लेख हुए हैं, वे संक्षिप्त और अपर्याप्त हैं। औरंगजेब युग के लेखक प्रोफेसर

१—बुन्देल वैभव, तृतीय भाग, पृ० २९४—२९५
२—मिश्रबन्धु विनोद, भाग ३ ३—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २७८—७९
४—गोस्वामी तुलसीदास पृ० ११ ५ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ५२७—३७
६—जार्ज ग्रियर्सन, माडर्न, लिटरेरी हिस्ट्री आफ हिन्दुस्तान' पृ० १०१

'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया' में 'वूल्जले हेग' ने शाहजहां-काल के साहित्यकारों का उल्लेख करते हुए प्राणनाथजी का उल्लेख भी कुछ पंक्तियों में किया है[1]।

"दी ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आफ दी सेंट्रल प्रोविंसेज आफ इण्डिया" में आर०वी० रसल ने प्राणनाथजी तथा प्रणामी सम्प्रदाय का विवेचन, 'ग्राउज' और 'हेग' की तुलना में, अधिक विस्तार से किया है और यह अधिक विश्वसनीय भी है क्योंकि इस लेख से ज्ञात होता है कि लेखक स्वयं पन्ना गया था और इस विषय से सम्बन्धित कुछ सामग्री भी उसे तत्कालीन महाराजा (जिसका नामोल्लेख नहीं किया गया) से प्राप्त हुई थी। इस पुस्तक में 'धामी प्राणनाथजी सैक्ट' शीर्षक वाला यह लेख १९१६ ई० से पूर्व का है क्योंकि पुजारियों की जिस वेशभूषा का उल्लेख इसमें किया गया है, वह प्राचीन है (आज कल उसका प्रचलन कम हो गया है)। इसमें निजानन्द सम्प्रदाय और प्राणनाथजी के अनुयायियों का वर्णन ही मुख्य रूप से किया गया है। प्राणनाथजी सम्बन्धी उल्लेख कम हैं।[2]

क्षितिमोहन सेन[3] तथा एच० एच० विल्सन[4] ने भी प्राणनाथजी और उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण का उल्लेख किया है। विभिन्न सम्प्रदायवालों के 'तिलक' का

---

1 Pran Nath a chhatri of Panna in Bundelkhand wrote a number of poems which attempts reconcile Hinduism and Islam, their language itself being marked by Persian and Arabic words.
: Cambridge History of India - 1937, Vol. IV, pp. 220-21.

2 'The Dhami now say also that their founder Pran Nath was an incarnation of Krishna, and they observe the Janam Ashtmi or Krishna birthday as their principal festival ....Mehraj Thakur was himself the disciple of one of Deochand..........as there is a temple at Panna consecrated to Deochand as the Guru or Preceptor of Pran Nath and it follows that the sect originated in the worship of Krishna, and was refined by Pran Nath into a purer form of faith.
: The Tribes and castes of the Central provinces of India-R. B. Russul
& Hiralal, Vol. I, pp. 216

3 Medieval Myaticiam of India - by Kshitimohan sen, pp. 158.

4 H. H. wilson : Hindu Religions, pp. 220.

उल्लेख करते हुए डी० ए० पै ने भी प्राणनाथजी का नामोल्लेख किया है[1]।

खोज रिपोर्टः–

खोज रिपोर्टों में प्राणनाथ नाम के दो व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है। एक का उल्लेख रस औ श्रृंगार विषय पर लिखे गये 'रस तरंगणि' नामक ग्रन्थ के रचयिता के रूप में हुआ है और द्वितीय का 'धामी सम्प्रदाय' के प्रवर्तक के रूप में[2] (द्वितीय, धामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक-प्राणनाथजी का ही सम्बन्ध इस शोध-प्रबन्ध से है)।

धामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक प्राणनाथजी की विभिन्न रचनाओं अथवा उनके कुछ अंशों-प्रकरणों का विवरण विभिन्न खोज रिपोर्टों में मिलता है, जिसका संक्षिप्त विवरण यहां दिया जा रहा है।

हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का त्रैवार्षिक विवरणः–

सन	वर्ष विवरण	सम्पादक	विशेष विवरण
१. १९२०-२२	ग्यारवां त्रै० वि	डा० हीरालाल	प्राणनाथजी का विवरण
२. १९२३-२५	बारहवां त्रै० वि०	" "	" "
३. १९२६-२८	तेरहवां त्रै० वि०	" "	प्राणनाथजी अच्छे रचयिता नहीं थे, फिर भी विभिन्न भाषा मिश्रित प्रचुर सांप्रदायिक सा-साहित्य प्रस्तुत किया।
४. १९२९-३१	चौदहवां त्रै० वि०	डा० बड़थ्वाल	प्राणनाथजी को रचनाओं प्रकाश, परिक्रमा आदि के कुछेक प्रकरणों का उल्लेख।
५. १९३२-३४	पन्द्रहवां त्रै० वि०	डा० बड़थ्वाल	एक ही नाम के दो विभिन्न सन्त-कवियों- रस- तरंगणि के लेखक प्राणनाथ और धामी सं प्रदाय के प्रवर्तक प्राणनाथ का उल्लेख।
६. १९३८-४०	सत्रहवां त्रै० वि०	पं०विद्याभूषण मिश्र	प्राणनाथजी को विभिन्न रचनाओं का उल्लेख।

1–डी० ए० पै मोनोग्राफ्ज आन द रिलीजियस-सेक्ट्स इन इंडिया अमाग द हिन्दुज, पृ २४

2–देखिए सं० डा बड़थ्वाल पन्द्रहवां त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९३२–३४)

इन खोज-रिपोर्टों में विराट चरितामृत, तीनों सरूपों की बीतक, तारतम, रामत रहस की, प्रकरन सागरन का, लीला नौतनपुरीकी, जंबूर कलस फुरमान, धनीजीके चले की चौपाई, वेदान्त के प्रश्न, प्रेमपहेली, श्रीधाम पहेली प्रगटवाणी, तारतम्य आदि हस्तलिखित रचनाओं का विवरण मिलता है। धनीजी के चले की चौपाई, लीला नौतनपुरी की, आदि रचनाएं प्राणनाथजी के शिष्यों की हैं। प्रकरन सागरन का, जंबूर कलस आदि स्वतंत्र रचनाएं न होकर प्राणनाथजी के 'रास', 'सागर' 'कलस'आदि ग्रन्थों के प्रकरण (पद) हैं। इनमें से कुछ रचनाएं ऐसी हैं जिनमें दो या दो से अधिक ग्रन्थों के प्रकरणों का समन्वय है, जिसका सविस्तार उल्लेख 'साहित्यिक कृतित्व' अध्याय में किया गया है।

(ई) अन्य (विविध)

मन्दिरों की दीवारों पर लिखे श्लोक, चौपाइयां आदि--गुम्मटजी मन्दिर और बंगलाजी मन्दिर (पन्ना) की दीवारों पर कुछ श्लोक और चौपाइयां उधृत हैं जो इस प्रकार हैं-

गुम्मटजी मन्दिर पर दक्षिण दिशा में, मेहराब के बाहरी ओर उर्दू में लिखा है :-

हक हक हक

बरोज जुम्मा

आखरी तारीख २७ मुहर्रम ११०६

साल यक हजार यक सद शष

खाकसार नारायणदास

प्राणनाथजी को उनके शिष्य पूर्णब्रह्म परमात्मा का अवतार मानते थे, इसीलिए 'हक' (परमात्मा) के नाम से सम्बोधित करते थे। हक-आखरी तारीख' से स्पष्ट है कि यह उल्लेख प्राणनाथजी के 'धामगमन' से सम्बन्धित है। इसके अनुसार प्राणनाथजी का धामगमन हिजरी संवत् ११०६, मुहर्रम महीने की २७ तारीख, शुक्रवार को हुआ, जिसका उल्लेख मारफत सागर के अन्त में केशवदासजी ने भी किया है[१]।

इस मेहराब के अन्दर की ओर लिखा है "निजनाम श्री कृष्ण जी।" इसी मन्दिर के पश्चिम की ओर-के मेहराब बाहर उर्दू में लिखा है—

---

१ देखिए, 'साहित्यिक कृतित्व' अध्याय

दरगाह मुकदस हजरत महमद इमाम
मेंहदी साहब आखरल जमां

ला इलाह इल इलाह मुहमद	श्री निजनाम श्रीकृष्णजी अनादि अक्षरातीत
रसूल अल्लाह अलह वसलम	सो तो अब जाहिर भव सब विध वतन सहित

उत्तर दिशा की गुमटी पर अन्दर की ओर लिखा है:-

राजजी

पूर्व दिशा में बाहर की ओर अरबी में आयत लिखी है। यह आयत स्पष्ट पढ़ने में नहीं आती। महमद, ईसा, अहमद मेंहदी आदि कुछ शब्द ही स्पष्ट पढ़े जाते हैं। इस आयत का सम्बन्ध निम्न चौपाई से बताया जाता है:-

महमद मिले ईसा मिने तब एहमद हुए स्याम
एहमद मिले मेंहदी मिने, तीनों मिल भए इमाम

जिसके अनुसार महमद ईसा और इमाम मेंहदी में सिर्फ नाम का अन्तर है, इनके रूप में अवतरित होने वाली 'शक्ति' एक ही है।

इसी मेहराब के अन्दर की ओर संगमरमर के पत्थर पर एक संस्कृत श्लोक लिखा हुआ है, पर वह स्पष्ट पढ़ने में नहीं आता। इसलिए पूरा श्लोक तो नहीं लिखा जा सका; जितना भाग पढ़ने में आ सका, वह इस प्रकार है—

श्री इन्द्रावतीजी श्री प्राणनाथजी अंस प्रगट होने का प्रमाण—

उक्तं च सुन्दरी तंत्रे शिव वाक्यम्
पद्मावती केन सर्दे विंध्यपृष्ठे विराजिता
इन्द्रावती नाम सा देवी भविष्यति कलौयुगे
तारतम्यासिनाच्छिद्य, कलौ कलिमलासुरान्
दत्वा स्वदैवतं बुद्धि, बलं चानेष्यति प्रियाः
अनन्त नाम्ना विख्याता भविते इन्द्रावती सखी
पुरुषाकारशुद्धेनश्च पवित्ररूप-माहवान्
बुद्धश्चावतरिष्यति कलिकर्मवति दुखहा
चित्रकूटे वने रम्ये विजयाभिनन्दो भवेत्[१]

१—इसका अधिकांश भाग संस्कृत विद्वान् पं० प्यारेलालजी (प्रणामी) की सहायता से पूरा किया गया है।

बंगलाजी मन्दिर की दीवारों पर श्री प्राणनाथजी, उनके गुरु (निजानन्दाचार्य) श्री देवचन्द्रजी और श्री प्राणनाथजी के शिष्य छत्रसालजी से सम्बन्धित निम्न उल्लेख मिलते हैं—

श्री प्राणनाथ प्रभु

स्वप्नेन शरीरमभिप्रहत्याऽसुप्तः सुप्तानभिचाकशीति ।
शुक्रमादाय पुनरेति स्थानं हिरण्मयः पुरुष एकहंसः ॥
प्राणो ह्येषः सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी ।
आत्मक्रीड़ आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥
परित्य भूतानि परित्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनाऽऽत्मानमभिसंविवेश ॥
कलेरन्ते बुद्धरूपी जनानामनुकम्पया ।
अवतीर्यासिना ज्ञानरूपेणाच्छिद्य संशयम् ॥
कृष्णलीलामयं ग्रन्थं नारास्ताञ्छ्रावयिष्यति ।
तदा ते नन्दिनो भूत्वा चैकोभूय सम ततः ॥
ब्रह्माविष्णुहरश्चैव गणेशो वसवो गुरुः ।
पद्यैकैकेन ते देवाः स्तोष्यन्ति परमेश्वरम् ॥
प्राणनाथः पराभक्तिः प्राणनाथ परोमतः ।
प्राणनाथः परोधर्मः मोक्षदः सर्वप्राणीनाम् ॥
अनुलोमे विलोमे च परस्परं विग्रहो भवेत् ।
विक्रमस्य गतेऽब्दे सप्तदशाष्ठत्रिकं यदा ॥
बुद्धश्चावतरिष्यति कल्किर्भवति दुखहा ।
चित्रकूटे वने रम्ये विजयाभिनन्दनो भवेत् ॥

श्री निजानन्द स्वामी

आयो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुते पुरूणि ।
धास्युर्योनिं प्रथम आविवेश यो वाचमनुदितां चिकेत ॥
नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महोदेवस्य पूर्वस्य धाम ।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन्नु ॥

यस्ते शोकाय तन्वंऽरिरेच क्षरद्धिरण्यं शुचयोऽनुस्वाः ।
मरुदेशे कुले शुद्धे नृरूपं सा धरिष्यति ।
चन्द्रनामा पुमांल्लोके हरिष्यत्यशुभां गतिम् ॥
अभाविनो भविष्यन्ति मुनयो ब्रह्मरूपिणाः ।
उत्पन्ना ये कलियुगे प्रधानपुरुषाऽऽश्रयाः ॥
आनन्दकन्दं प्रभुदेवचन्द्रं व्रजेशरूपेण पुरापिजातम् ।
प्रविश्य प्राप्तं प्रियप्राणनाथं परेशपूर्णं शरणं प्रपद्ये ॥

छत्रसाल सम्बन्धो निम्न उल्लेख मिलता है—

एही टीका एही पांवड़ो एही निछावर आई ।
श्रीप्राणनाथजी के चरण पर 'छता' बलि बलि जाई ॥

इस मन्दिर में 'हव्सा' (प्रबोधपुरी) का चित्र भी है जहां बानी उतरी और जहां प्राणनाथजी लगभग एक वर्ष 'नजरबन्द' रहे ।

(ख) लोकगीत

प्राणनाथजी के अनुयायी विभिन्न भाषा-भाषी लोग हैं । इसलिए लोकगीत (जिसे प्रणामी 'भजन' कहते हैं) भी भिन्न भाष.ओं-गुजराती, मारवाडी, नेपाली, पंजाबी बुन्देलखण्डी में हैं । इन भजनों में प्राप्य सामग्री 'बीतक साहित्य' से अभिन्न है । इनका उल्लेख यथा-स्थान किया जायेगा ।

(ग) जनश्रुतियां

श्री प्राणनाथजी ने शूद्रों को धर्म में स्थान देकर, समाज में फैली हुई कुरीतियों पर कुठाराघात करके तथा औरंगजेब के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाकर समाज के समस्त वर्गों के हृदय में स्थान बना लिया था । राजाओं से लेकर शूद्र वर्ग तक के हृदय में प्राणनाथजी के लिए श्रद्धा थी । इस श्रद्धा ने उनके व्यक्तित्व को अनेक अलौकिक कथाओं का केन्द्र बना दिया । इन कथाओं से अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण सामग्री तो नहीं मिलती, पर उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व की व्यंजना होती है जिसका उल्लेख 'जीवन वृत्त' अध्याय में किया गया है[1] ।

१—देखिए, 'जीवन वृत्त' अध्यायके अन्तर्गत 'अलौकिक घटनाएं' शीर्षक

श्री प्राणनाथजी और छत्रसालजी की भेंट-सम्बन्धी पत्र

(मंगलवार, अप्रैल २१, १७३० ई०)

॥ श्री ॥

श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री छत्रसाल जू देव के बांचने येते श्री महाराज कोमार श्री दिमान जगतराज जू देव को आपर हम लड़ाई करके महेवा मऊ से आवत जात रहत हते दस पांच रोज रहे तो येक दिन सिकार खेलवे को गये डांग में एक आदमी लंगोटी लगाये बैठो हतो हमने समझी कै जो भेष बनाये हमारे मारवे को आव है हमने ऊसै पूछी कै तै को है कहां आवो न बोलो तलवार हमने ऊ को ऊजेई बोलो के बच्चा न मार मैं तुमारे अच्छे के लाने आवो हैं हम बैठ गये बोलो कै बच्चा तुमारो नाम छत्रसाल है हमने कही कै हां बोलो कै बच्चा तै बड़ा प्राकर्मी है और बड़ा परतापी भयो है हम औ तै पकही है ऊ जनम येक संग रहे हैं विन्द्रवासिनी में बहुत दिन तपस्या करी है उतै हमारो धूनि के नेगर चमीटा गड़ो है सात हाथ के नीचे जो तोकी विसवास न होवे तो चमीटा उषार मंगवा हमने कहो के मौको का चमोटा को करने है मोरे पास न धन आये लड़कन के लाने रियासत को उपाय करत फिरत हौ जो कछू न्याव लड़ाई करै मिल जै है तो अछी है फिर कही कै बच्चा हम प्राणनाथ हैं तोरे पास येसी धन है कै काहू के पास न कड़ है हम ने कही कै महाराजा मोरे पास कछु धन नहीं आये लूट मार में जो कुछू मिलो सो फौज को षवावत हौं तब बोले कै तै परना चल हम तोको धन बताइये उन के कहे से हम परना को आये और प्राननाथजी सोउ आये परना में गौंड राजा हते परना के गियोड़े आये हमने कहो कै महाराज कहां रूपने है तब बोले परना से द्षन तरफ हमको रूपने है ऊ जघा पै आये बोले कै बच्चा हम ई जघा वै रूपत हैं और कही कै जा जाधा पेजरा करके कही जाये ये ही जघा पै तुम दसहरे को बीरा उठाइयो तोरी फतै हु है और बल में तो को धन बतावों सो परना से दो कोस लौ लुवा गये बोले कै यहां षोद सो वहां सुपेन ककरा मिलो गोला हमने कही कै महाराज जो का आये तब बोले यहो धन है जो हीरा है परना से सात आटकोस लो की लंबाई चौड़ाई में हीरा है हमने बन के पांव छुये परना में गौड़ राजा हते वन को अपने बस में करो उनको कछु जागीर लगा दई परना में द्षल करो हमने कहा कै महाराजा हुकुम होय तो मैं मऊ

को जावो कही कै मैं राजा नहीं होत न मेरे पिता राजा भये हैं न मैं हूं हों सो कही कै तोरे भाग में राज बदो है तैं कै रे राजा न हू है तोरी उमर सौ बरस के नीचे को है पंतो देष ले है तब हम ने कही कै महाराज कुंवर लो तो है नहीं आये पंती नातीं की को चलावे कही कै तोरे ऐसे कुंवर हू है कै काहू कै न भयें हू हैं और येक से येक बड़के कुंवर हू हैं वा नाती पंती हू हैं संवतु सतरा से बत्तीस की सालमें महाराज पिराननाथ जू पेजरा में रुपे वा वही साल हम परना के राजा भये ऊ दषत पै हमने पचीस लाष की जाघा कमाई हती जितने हीरा मिलत गये महाराज पिराननाथ जू सब सामान बनावत गये बनने हुकम दवो कै बच्चा बहुत सामान हो गयो है फिर संवत सतरा सौ पैंतीस की साल मैं मन्दिर महाराज को बनबावो हमने बिनती करी कै महाराज येक आद तला आप के नाम कौ बन जाये सो कही कै बच्चा तला न बने चल हम जगा बताइत है चौपर बन जाये ऊ जघा पै गये सो कहीं के सुदन कर हमने सुदन चौपरा को करो और कही कि यहां षुदावो यहा धन है षुदवावो तो एक बड़ो भारी बटुआ पीतर को कड़ो ऊ मैं मुहरें कड़ी वे येक हन्डा लोहे कौ ती में सवालाख रुपैया कड़े ईतरा का हाल महाराज प्राननाथ जू ने करो हतो वैसाख सुदी १५ सम्वत् १७८७ मुकाम महेवा।"

यह पत्र छत्रसालजी के ही हस्तलेख में है, इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं है। इसमें वर्णित तिथियां और घटनाएं त्रुटिपूर्ण हैं। इसके अनुसार प्राणनाथजी और छत्रसालजी की भेंट वि० सं० १७३२ में ठहरती है और सं० १७३५ में मन्दिर का निर्माण हुआ परन्तु सं० १७३५ में प्राणनाथजी हरिद्वार, 'कुंभ मेले' पर गये थे, इसका साक्षी बीतक साहित्य है। यहीं पर उन्होंने अपना 'शाका' चलाया था जिसकी पुष्टि अन्तर्साक्ष्य से होती है—

> "सोलह सौ लगा रे शाका सालवाहन का, संवत सत्रह सौ पैंतीस
> बैठा रे शाका बिजयाभिनन्द का, यूं कहे शास्त्र और ज्योतिष"[१]

हरिद्वार से वापिस प्राणनाथजी दिल्ली आये। यहां आठ माह रहे। फिर अनूपशहर आमेर, सांगानेर, उदयपुर, रामपुर दुधलाई, मन्दसौर, सीतामऊ, नौलाई, उज्जैन, बुरहानपुर, औरंगाबाद आदि स्थानों से होते हुए सं० १७३८ में आकोट, कापस्तानी

१—कीरनतन ग्रन्थ, प्र० ५७ चौ० १८

में धर्मोपदेश करते हुए रामनगर पहुँचे, यहां दो वर्ष रहे[1]। रामनगर से छत्रसाल के भतीजे देवकरण के साथ छत्रसाल का निमन्त्रण पाकर पन्ना के लिए रवाना हुए। अर्थात् प्राणनाथजी पन्ना लगभग संवत् १७४० में पहुँचे। जिसका उल्लेख 'बीतक साहित्य' में मिलता है। 'बीतक' जिसकी रचना छत्रसालजी के निर्देशन में हुई,[2] के अनुसार 'भेंट' सं० १७४० में हुई;[3] तो स्वयं छत्रसालजी अपने इस पत्र में संवत् १७३२ में प्राणनाथजी से भेंट होने का उल्लेख कैसे कर सकते थे? 'जायसवालजी और भगवानदासजी गुप्त के अनुसार यह पत्र सं० १७८७ में, 'भेंट' के लगभग सैंतालीस वर्ष बाद लिखा गया जिससे वृद्धावस्था में स्मृति क्षीण होने के कारण ऐसी त्रुटि की संभावना है। इसे मान लेने पर भी निम्न कारणों से इसे छत्रसाल का हस्तलिखित पत्र मानने में सन्देह होता है–

१. जैसा कि इस पत्र से स्पष्ट है कि छत्रसाल को 'महाराज पद', जिसकी उन्हें जीवन पर्यन्त आशा नहीं थी, प्राणनाथजी से भेंट होने के फलस्वरूप मिला। अतः ऐसी महत्वपूर्ण अभूतपूर्व घटना की तिथि भूल जाना असंभव है।

२. श्री प्राणनाथजी छत्रसालजी के आग्रह पर पन्ना पधारे थे। स्वयं छत्रसालजी ने अपने भतीजे देवकरण को प्राणनाथजी को बुला लाने के लिए भेजा था (इसका साक्षी 'प्रणामी साहित्य' हैं.) अतएव वे स्वयं कैसे लिख सकते हैं कि प्राणनाथजी मुझे जंगल में फकीर वेश' में मिले।

३. यह पत्र मंगलवार २१ अप्रैल, १७३० ई० को लिखा गया। २१ अप्रैल को शुक्रवार पड़ता है, मंगलवार नहीं। सैंतालीस वर्ष पूर्व की घटना में भले ही गलती की संभावना रहे, परन्तु उसी दिन की तारीख के उल्लेख करने में तीन दिन की भूल हो जाना अस्वाभाविक है (क्योंकि मंगलवार २१ अप्रेल को न होकर उससे तीन दिन पूर्व अर्थात् १८ अप्रैल को ठहरता है)।

४ क्या छत्रसालजी ने इसके पूर्व कभी हीरा नहीं देखा था? जोकि हीरे को पत्थर

१–धर्माभियान–परिशिष्ट

२–विस्तार के लिए देखिए, इसी अध्याय के अन्तर्गत 'लालदास-कृत बीतक' शीर्षक

३–बीतेगा उन्तालीस, दसेगा चालीसा; तब कोई होसी मरद मरद का चेला, नानक गुरु दिखाव मांई सांच सांच दीबेला। बृजभूषण-कृत वृत्तान्त मुक्तावली, पृ० ३५८ प्र० ६५चौ० ४९

समझ कर प्राणनाथजी से पूछ रहे थे कि यह 'ककरा' (पत्थर) क्या है ?

५. जैसा कि स्वयं पत्रकार ने स्वीकार किया है, पन्ना भूमि उस समय गौड़ राजा के आधीन थी; उसे जागीर देकर, बिना युद्ध किये ही इस हीरमयी भूमि से उसे बेदखल कर दिया गया-इस बात पर सहज ही विश्वास नहीं होता। यह उल्लेख किसी श्रद्धावान भक्त के दिमाग की उपज लगता है।

६. इस पत्र के उल्लेखों में विरोधाभास है। प्रथम बार छत्रसालजी प्राणनाथजी से कहते हैं कि मैं लड़कों के लिए रियासतों का बन्दोबस्त कर रहा हूं, और बाद में स्वीकार करते हैं कि मेरे पुत्र नहीं हैं जैसा कि उनके इस वाक्य से स्पष्ट है-'पुत्र तक तो है नहीं नाती पंती की बात कौन करे।

७. इस पत्र की भाषा भी ढाई सौ वर्ष पूर्व की नहीं है। यह पत्र आधुनिक बोलचाल की भाषा-बुन्देलखण्डी भाषा-में लिखा गया है। यद्यपि 'ख' के लिए 'ष' के प्रयोग से भाषा के प्राचीन होने का संकेत मिलता है[1] परन्तु बीच-बीच में खड़ीबोली का प्रयोग[2] मिलने से इसे शुद्ध प्राचीन 'बुन्देलखण्डी भाषा' नहीं कहा जा सकता।

१-बुन्देलखण्ड के प्राचीन हस्तलिखित साहित्य में 'ष' का प्रयोग बहुधा 'ख' के लिए मिलता है।

२-"तब बोले यही धन है जो हीरा है"-यह वाक्य खड़ी-बोली का है। जबकि पूरा पत्र बुन्देलखण्डी भाषा में है, तो यह एक वाक्य ही खड़ी-बोली में क्यों लिखा गया यह विचारणीय है।

अध्याय–३

जीवन–वृत्त

जन्म–तिथि और जन्म–स्थान

जैसा कि पिछले अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है, प्राणनाथजी के जीवन–वृत्त के अध्ययन के लिए सर्वाधिक विश्वसनीय स्रोत 'बीतक-साहित्य' है। इस (बीतक साहित्य) के अनुसार प्राणनाथजी का जन्म नवानगर (जामनगर, सौराष्ट्र) में वि० सं० १६७५ की आश्विन कृष्णा चतुर्दशी, रविवार के दिन, प्रथम पहर को हुआ था[१]। लल्लू भट्ट आदि कुछ बीतककारों ने प्राणनाथजी की जन्म-तिथि तो यही दी है, पर मास भादों दिया है[२]। यह अन्तर संभवतः विभिन्न तिथियों से मास का प्रारम्भ मानने के कारण पड़ा है क्योंकि कुछ लोग पूर्णिमान्त मास मानते हैं और कुछ अमावस्यान्त (हो सकता है कि लल्लूजी आदि बीतककारों ने अमावस्यान्त मास माना हो और लालदास आदि ने पूर्णिमान्त)। पूर्णिमान्त मास मानने वालों का जब आश्विन मास होगा, उस समय अमावस्यान्त मास माननेवालों का भादों मास ही रहेगा। इसीलिए लालदास आदि बीतककारों ने प्राणनाथजी का जन्म आश्विन में माना है और लल्लूजी आदि ने भादो मास में।

श्री प्राणनाथजी का जन्म आश्विन मास में ही मानना अधिक ठीक है क्योंकि

(१) आज भी प्रणामी (निजानन्द सम्प्रदाय के भक्त) आश्विन मास मे ही 'जन्म चतुर्दशी' मनाते हैं।

(२) सम्प्रदाय में यह मान्यता है कि प्राणनाथजी का जन्म रविवारको हुआ था[३]। रविवार

---

१ संवत सोलह सौ पचहतरा, 'आसो' वदी चौदस नाम।
प्रथम जाम और वार रवि, प्रगटे धनी श्रीधाम ॥१८॥ लालदास बी० जा० संस्करण पृ० १३

सोलह मैं पचहोत्तरा, 'आश्विन' मास सुहाई।
चौदस तिथि अरू बार रवि, प्रगटे प्रभु इत आई ॥ वृत्तांत मुक्तवली पृ० १४७

२ संवत सोल पंचोतरे, चतुर्दशी रविवार।
'भादरवा' वदी पक्ष मां, धर्यो पुरुषोत्तम अवतार ॥ ४६ ॥

प्रथम पोहोर दिवस चढये, प्रगट थया परब्रह्म।
आव्या अक्षर पारथी, ज्यां नहीं उपासना कर्म ॥४७॥ वर्तमान दीपक, किरण १६

३–लालदासजी ब्रजभूषण तथा लल्लूजी आदि बीतककारों के अलावा परवर्ती जीवनी लेखकों ने भी प्राणनाथजी
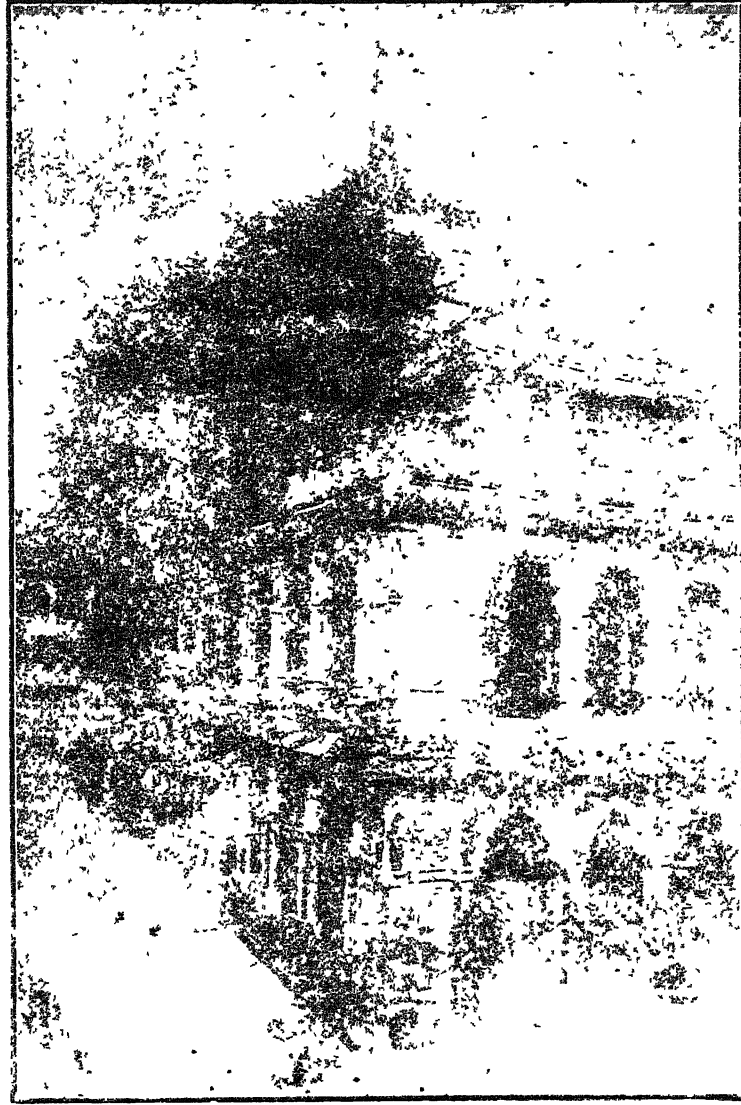
खिजड़ा मन्दिर (जामनगर)
श्री निजानन्द सम्प्रदाय के आदि-आचार्य श्रीदेवचन्द्रजी
का प्रमुख स्थान तथा प्राणनाथजी का दीक्षा-स्थान

आश्विन मास की चतुर्दशी को ही पड़ता है, भादों कृष्णा चतुर्दशी को नहीं। यद्यपि 'एन इंडियन एफरमिस' के अनुसार वि० सं० १६७५ आश्विन कृष्णा चतुर्दशी (ई० सन् १६१८, ७ अक्तूबर) को बुधवार था, पर कैलेंडर फार्मूला से गणना करने पर ७ अक्तूबर, १६१८ ई० को रविवार ही ठहरता है, बुधवार नहीं, और भादों कृष्णा चतुर्दशी को शुक्रवार पड़ता है [२]।

अतएव रविवारको मान्यता देने पर प्राणनाथजी का जन्म आश्विन मास में ही मानना पड़ेगा।

स्नेह सखी की बीतक में प्राणनाथजी के जन्म से सम्बन्धित एक रोचक घटना का उल्लेख मिलता है। धनबाई जब ईश्वर आराधना कर रही थीं तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो सूर्य देव बिम्ब-रूप होकर मेरे मुंह में प्रविष्ट हो गया है। तत्पश्चात् प्राणनाथजी ने उनकी कोख से जन्म लिया। श्रद्धावान भक्तों में अपने महामहिम गुरु की महत्ता प्रदर्शित करने के लिए इस प्रकार की घटनाओं के प्रचलन के सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं। इससे अनुवर्तियों में मिहिरराजजी के प्रति आदर व्यक्त होता है।

नामः— मूल नाम और उपाधियां

इनका बचपन का नाम मिहिरराज था[३]। इनकी जन्म-कुण्डली बनाने वाले

का जन्म रविवार को ही माना है (देखिए, 'दूसरा प्रणाम' पृ० ३) तथा (बुन्देलकेसरी महाराजा छत्रसाल बुन्देला, पृ० २०९) लोक गीतों के अनुसार भी प्राणनाथजी का जन्म रविवार को हुआ

(क) रविवारे राज पधारया रे, नवा नगर नौतनपुरीमां

(ख) पुरुषोत्तम प्रगट्या छे पश्चिम देशमा,

भादरवो महीनेरे कृष्ण पक्षमा, चतुर्दशीने योग हतो 'रविवार' जो

अर्थात्, जीवनी-लेखकों एवं सम्प्रदायवालों ने निर्विवाद रूपसे प्राणनाथजी का जन्म रविवार को माना है।

१ देखिए, परिशिष्ट

२ पिल्लै के 'एन इंडियन एफरमिस' के अनुसार इस दिन, वि० सं० १६७५ भादों कृष्णा चतुर्दशी (ई० सन १६१८, ७ सितम्बर) को सोमवार था परन्तु उपरोक्त फार्मूले से गणना करने पर यह शुक्रवार पड़ता है जिससे सिद्ध होता है कि एन इंडियन एफरमिस' त्रुटिपूर्ण है, इसमें उद्धृत दिवस गलत है।

३—श्री मेहराज ने (आ नाम 'श्रीजी' ना जन्मनु-बचपणनु हतु) तत्कालिक इहा लई आवो। —बीतक—पद द० पृ० १६

पंडितों ने कहा कि ये साधारण पुरुष नहीं, अवतारी पुरुष हैं[१]। ये अज्ञान-रूपी अंधेरे को दूर कर ज्ञान-रूपी प्रकाश फैलायेंगे, इसका नाम 'मिहिर (सूर्य)-राज' रखा गया। मिहिरराज नाम अन्वर्थक संज्ञा है, 'मिहिर' नाम सूर्य का है और सूर्य के समान जो प्रकाश करनेवाला हो, उसका नाम 'मिहिरराज' ठीक ही है[२]। धीरे-धीरे मिहिर-राज से महिराज- मेहराज हो गया [३]।

श्री प्राणनाथ नाम तो उनके शिष्यों ने उन्हें अपनी आत्मा (प्राणों) का उद्धारकर्ता मान कर दिया[४]। आपसी बातचीत में शिष्य उनके लिए इसी (प्राणनाथजी) नाम का प्रयोग करते थे और उनके समक्ष अथवा प्राणनाथजी से, वार्तालाप करते समय 'श्रीजी' अथवा 'स्वामीजी' कहते थे[५]।

'आनन्द सागर' में 'प्राणनाथ' नाम की व्याख्या इस प्रकार की गयी है-

प्राणरूपाः प्रियाः सर्वास्तासां नाथोऽक्षरात्परः ।
तेनासौ प्राणनाथो हि नाम्ना ख्यातः प्रियेश्वरः ॥

अर्थात् 'प्राण-रूप सब प्रिया हैं और उनके नाथ अक्षर से पर अक्षरातीत हैं। तत्स्वरूप होने से आपका नाम प्राणनाथ है'[६]। इसकी पुष्टि में रचयिता ने निम्न श्रुतियों के श्लोकों को उधृत किया है

"प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन्विद्वान् भवते नातिवादी ।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः" ॥ (मु० उ० ३ अ० १-४

अर्थात्, यह प्राणनाथ (नाम के एक देश-प्राणः से सम्पूर्ण नाम का ग्रहण होता है) निश्चय ही विश्व के सब प्राणियों के पूजनीय व शोभित होंगे। जो ब्रह्मवेत्ता-माया और ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को पूर्णतया जानते हुए भी वितण्डावादी नहीं होंगे

१-पत्री तो ल्याव्या रे ज्योतिषी जन्मनी, ब्रह्म सरीखे भारी कोई अवतार जो । — लोकगीत

२-विश्राम सरोवर, पृ० २० ३-प्राणनाथ निज मूल पति श्री मेहराज सुनाम, तेज कुंवरी श्यामा जुगल, पल पल करूं प्रणाम ।' —मुकुन्ददास के फुटकर पद

४-श्री निजानन्द स्वामी ने पहिचान लिया कि मूल स्वरूप ही मेहराज के रूप में प्रगट हुये हैं — अपनी दिव्य वाणी के द्वारा प्राणी-मात्र को जन्म-मरण की पुनरावृत्ति से बचानेवाले तारतम महामन्त्र का प्रचार करेंगे इसलिए प्राणनाथ के नाम से प्रख्यात होंगे' । — धर्माभियान, पृ० ८, ५- गुरुभक्त शौर्यपुंज छत्रसाल पृ० ६९

६—वही (आनन्द सागर) पृ० ३७३

अर्थात् व्यर्थ वाद-विवाद नहीं करेंगे, किन्तु आत्मा में क्रीडा करनेवाले और आत्मानन्दी होंगे अर्थात् परमात्म स्वरूप में विचरने वाले होंगे। ब्रह्मज्ञों में उत्तम यह अन्य ब्रह्म ज्ञानियों की भांति अकर्मण्य न होंगे, किन्तु ब्रह्म साक्षात्कार रूप उपदेश देने में तत्पर होंगे अर्थात् सबको मोक्ष-भागी बनावेंगे[1]। और—

प्राणाधिपः सञ्चरति स्वकर्मभिः (श्वेता० उ० ५-७)

प्राणनाथ (प्राणाधिपः) स्वकर्म द्वारा जगत् में संचार करेंगे[2]।

इसके अतिरिक्त उनके महामति, इन्द्रावति, इमाम मेंहदी, हक, बुद्धनिष्कलंकावतार, हादी, आखरी महमद आदि अनेक उपाधि-नाम हैं—

बुद्धनिष्कलंकावतार "निष्कलङ्का च या बुद्धिः पूर्णानन्दात्मिका परा।
तया बुद्ध्या वर्त्तमानो निष्कलङ्कसुबुद्धकः॥ ५३॥

अर्थात् पूर्णानन्द को प्रकाश करनेवाली कलंकरहित जिसमें स्वप्नादि माया-जन्य कलंक नहीं है, ऐसी परावुद्धि से युक्त होने के कारण प्राणनाथजी का नाम निष्कलङ्क बुद्ध है[3]।

विजयाभिनन्दबुद्ध: ईन्द्रियाणां जयस्सम्यग्विजयः परिकीर्तितः।
प्रौढाज्ञानासुराणां वा छेदनं ज्ञानहेतिना॥ ५४॥
ईदृशं विजयं यश्च स्वाभिनन्दति सर्वदा।
तेनासौ सद्भिराख्यातो विजयाद्यभिनन्दनः॥ ५५॥

अर्थात् अपने योग-बल द्वारा इन्द्रियों को सब प्रकार से वश करने का नाम विजय है अथवा तारतम्य ज्ञान-रूपी तलवार से अज्ञान-रूप असुरों के छेदन करने को विजय कहते हैं। इस प्रकार की विजय का जो सदा अभिनन्दन करे, अर्थात् बढ़ावे वह 'विजयाभिनन्दन' है। स्वामी प्राणनाथजी में उपरोक्त गुण का पूर्णतया समावेश होने के कारण आपका नाम 'विजयाभिनन्दन' है जो सर्वांग में संघटित और अन्वर्थक है[4]।

महामति: स्वामिन्यात्माऽक्षरातीतस्याज्ञावेशो तथारुचिः।
मूलबुद्धिस्तु यत्रैकीभूताः स्युः स महामतिः॥५६॥

1—वही, पृ० ३७४ 2-वही, पृ० ३७४—७५ 3—आनन्द सागर' सप्तम तरंग, पृ० ३७७
4-वही पृ० ३८०—८१

पञ्चानां हि समाहारा–देतेषामत्र कीर्तितः ।
श्री महामतिनामासौ श्रीमान् ब्रह्ममुनीश्वरः[1] ॥५७॥

अर्थात्, श्यामाजी की आत्मा, अक्षरातीत परमात्मा की आज्ञा, आवेश और तेज एवं मूल बुद्धि अर्थात् निजबुद्धि[2]-ये पांचों वस्तु जिस स्वरूप में विराजमान हों, उसे 'महामति' कहते हैं । जिसका उल्लेख स्वयं प्राणनाथजी ने भी किया है—

श्री धनीजी को जोश आतम दुल्हन, नूर हुकम बुद्धिमूलवतन
ए पांचों मिल भई महामति, वेद कतेबों पहुंची सरत[3]

इन्द्रावती[4]

गुरु इन्हें परमधाम की इन्द्रावती सखी का अवतार मानकर इसी नाम से सम्बोधित करते थे । व्रज में भी इनका नाम 'इन्द्रा' सखी था। इनकी अधिकांश रचनाओं में 'इन्द्रावती' की ही छाप मिलती है । मिहिरराज नाम से उन्होंने बहुत ही कम रचनाएं की हैं ।

श्री राजः–

श्री प्राणनाथजी को 'पूरण ब्रह्म परमात्मा' का अवतार माना गया है । 'पूरण ब्रह्म परमात्मा' को 'प्रणामी', 'श्री राज' के नाम से सम्बोधित करते हैं । पूरण ब्रह्म का अवतार मानने के कारण 'प्रणामी' इनके लिए भी 'श्रीराज' का प्रयोग करने लगे ।

'बुद्धिनिष्कलंकावतार' और 'इमाम मेंहदीः–

'निजानन्द सम्प्रदाय' में हिन्दू और मुस्लिम दोनों जातियों के लोग दीक्षित थे । हिन्दू इन्हें वेदों में वर्णित, कलियुग में होने वाले बुद्धनिष्कलङ्कावतार कहते थे और

१–वही पृ० ३८१

२–आनन्द सागर के लेखक शर्माजीने मूल-बुद्धि और निजबुद्धि को एक ही माना है परन्तु ये दोनों अलग हैं । 'मूल बुद्धि' 'ब्रह्म मुनियों' की है और 'निजबुद्धि' 'अक्षर ब्रह्म' की बुद्धि को कहा गया है । 'महामति' में जाग्रन बुद्धि (क्षरब्रह्म की बुद्धि) है 'निजबुद्धि' नहीं । ३–'प्रकाश ग्रन्थ' प्र० ३७ चौ० ९५

४–सुन्दरी तन्त्र— पद्मावती केन शरदे विन्ध्यपृष्ठे विराजते ।
इन्द्रानाम सा देवी भविष्यति कलौयुगे ॥
– गुम्फजा मन्दिर का शिलालेख

मुसलमान ग्यारहवीं सदी में आनेवाले इमाम मेंहदी मानते थे-

"पहिले लिखिया फुरमान में आवसी ईसा इमाम हजरत
मारेगा दज्जाल को, करसी एकदीन आखत
बेदों कह्या आवसी, बुद्ध ईश्वरों का ईश
मेट कलियुग असुराई, देसी मुक्त सबों जगदीश ।"

परिवार:-

श्री प्राणनाथजी 'ठाकुर' थे । ठाकुर शब्द क्षत्री का पर्यायवाची है । उत्तर भारत और गुजरात, दोनों में यह इसी अर्थ में प्रचलित है । उनके पिता के नाम के आगे ठाकुर शब्द उनके वंश की ओर संकेत करता है । अन्य अनेक प्रमाण भी उन्हें 'क्षत्री' ही सिद्ध करते हैं-

(क) सम्प्रदाय के आचार्य भक्तों का मत है कि प्राणनाथजी सूर्यवंशी, रामचन्द्रजी के पुत्र 'लव' के वंशज, लोहाणा क्षत्री थे[1] ।

(ख) जनश्रुति के अनुसार प्राणनाथजी ने छत्रसाल से कहा था-"अच्छा चलो, हम भी अपने क्षत्रीय के ऋण से मुक्त हो जायेंगे -- कोई यह तो न कहेगा कि क्षत्री होकर युद्ध का मुंह नहीं देखा, दूसरों को उत्तेजित ही करते रहे[2]

इनके पिता का नाम केशव ठाकुर और मां का नाम धनबाई था[3] । केशव ठाकुर दीवान थे और यह पद प्राणनाथजी को विरासत में मिला था ।

केशव ठाकुर के अन्य दो भाई और थे-माधवजी और गोकुलजी । गोकुलजी संसार से विरक्त रहे । माधवजी के दो पुत्र थे जिनका नाम क्रमशः हरिवंश और हरोवीर था[4]

१-आप लोहाणा जाति के क्षत्री थे । महाराजा 'लव' के वंश में ही राठौर हैं । ये सब सूर्यवंशी हैं । कन्नौज के राजा जयचन्द की अधीनता में एक जोधपुर नामक राज्य था । उनके अधिकार में वहां चौरासी जागीरदार थे । इनका एक समय राजा से विरोध हो गया, इसलिए सरदार सिंधु देश में चले गये । वहां पर लोहे के गढ़ में निवास करने से इन सरदारों का नाम 'लोहवास' हो गया । इसी का अपभ्रंश होते-होते 'लोहाणा' हो गया । - निजानन्द कल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृ० ४८-४९

२-शौर्यपुंज छत्रसाल पृ० ७६, ९७, ३-पिता केशव ठाकुर के माता धनबाई नाम, वर्त० दी० पृ० ९४

४- वर्तमान-दीपक पृ० ९२-९५

माधवजी क्या काम करते थे, इसका उल्लेख नहीं मिलता। केशवजी जामराजा के दीवान थे। ये न्यायप्रियता और ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध थे१। केशवजी के पांच पुत्र थे जिनके नाम हैं-हरिवंश, सामलिया, गोवर्धन, मिहिरराज और ऊधो ठाकुर। लल्लूजी के अनुसार प्राणनाथजी छः भाई थे- श्यामल, चतुर्भुज, उधवजी, गोवर्धन और मिहिरराज ठाकुर। लल्लूजी ने प्राणनाथजी को सबसे छोटा भाई माना है, जबकि मुकुन्ददास आदि ने ऊधो ठाकुर को। लल्लू भट्ट ने श्यामलिया ठाकुर को बड़ा भाई माना है और मुकुन्ददास ने हरिवंश को। मुकुन्ददास के अनुसार हरिवंश ठाकुर प्राणनाथजी के सगे, बड़े भाई थे अर्थात् केशव ठाकुर के ही पुत्र थे और लल्लूजी के अनुसार हरिवंशजी माधवजी के पुत्र थे अर्थात् प्राणनाथजी के चचेरे भाई २।

लालदास-कृत बीतक के उल्लेखों के अनुसार प्राणनाथजी सात भाई ठहरते३ हैं

---

१ वही पृ० ९४ २-तारतम प्रणालिका (हस्तलिखित) पृ० ३५ ३-लालदास-कृत बीतक —

अब कहूं कबीला 'श्री मिहिराज' का, करी श्री देवचन्द्रजी मेहर
आवे नहीं हिसाब में, ए जो करी फेर फेर
केशव ठाकुर पिता कहियत, माता बाई धन
श्री इन्द्रावतीजी की वासना, सौंपया तन मन धन
भाई गोवरधन कह्या जासो, पहिले श्री देवचन्द्रजी मिलाप
भई प्राप्त श्री मिहिराज को, हक्के मेहर करी आप
वासना ठाकुर गोवरधन की, गुणवन्ती बाई नाम
और भाई उद्धवजी, गोविंदजी इस ठाम
और चतुर्भुज कह्या, घर धनयानी पद्मा
ए आप साथ में, थे कबीले बीच जमा
स्त्री उद्धवजीथ की, नाम बाई भान
ए साथ में आई नहीं, कर न सकी पहिचान
और भाई ठाकुर श्री श्यामलजी, ए पीछे ल्याए ईमान
सीत बाई सेवा मिने, है प्रेमजी को पहिचान
× ×
हर वंस के घर में, मेघबाई है नाम
इनका बाई की वासना, श्री देवचन्द्रजी कही इस ठाम

गोवर्धन, मेहराज, गोविंदजी, उद्धवजी, चतुर्भुज, ठाकुर श्री स्यामल, हरिवंश। प्रथम छः नाम तो 'वर्तमान दीपक' के अनुरूप हैं। अन्तर केवल क्रम में है। इस अन्तर का कारण यह है कि लल्लूजी के इस क्रम का आधार जन्म है और लालदासजी ने यह क्रम दीक्षा-ग्रहण के अनुसार रखा है। 'हरिवंश' का उल्लेख भी लालदासजी ने इसी क्रम से किया है। हरिवंश प्राणनाथजी के सगे भाई थे या चचेरे, इसका उल्लेख उपरोक्त प्रकरण (पद) में नहीं मिलता, जबकि लल्लू भट्ट ने स्पष्टतः इन्हें माधवजी का पुत्र कहकर चचेरा भाई माना है। सम्प्रदायवालों का मान्यता है कि हरिवंश ठाकुर प्राणनाथजी के सगे ज्येष्ठ भ्राता थे। लालदास-कृत बीतक पर आधारित 'वर्तमान दीपक' के अनुसार केशवजी का एक और पुत्र था, जिसका नाम ठाकरशी था[1]। लालदास-बीतक में ठाकरशी का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। लल्लूजीकी भूल का कारण संभवतः 'लाल बीतक' की यह पंक्ति है-'और भाई ठाकुर श्री स्यामलजी'। इन्होंने ठाकुर श्री (जोकि ध्वनि से 'ठाकरशी' के समीप ठहरता है) और 'स्यामलिया' को अलग मान लिया है। वस्तुतः ठाकुर श्री स्यामलजी दो विभिन्न व्यक्ति-ठाकुर श्री और स्यामलजी-न होकर एक ही व्यक्ति 'श्री स्यामल ठाकुर' हैं। ठाकुर श्री स्यामलजी और श्री स्यामल ठाकुर में केवल शब्द क्रम का अन्तर है।

इसके अतिरिक्त, प्राणनाथजी के परिवार-सम्बन्धी निम्नांकित उल्लेख भी मिलते हैं-

श्री प्राणनाथजी के पिता केशव ठाकुर थे। माता का नाम धनबाई था। चतुर्भुज की स्त्री पद्मा थी। उद्धवजी की पत्नी का नाम मानबाई था। हरिवंश की पत्नी मेघबाई थी और हरिवीर की स्त्री का नाम सुन्दरी था। हरिवीर का पुत्र-वंश नहीं था, एकमात्र पुत्री थी जिसका नाम मेघबाई था मेघबाई का विवाह गांगजी के पुत्र श्यामजी से हुआ था[2]। इसी के द्वारा प्राणनाथजी के परिवार के सदस्य श्री देवचन्द्र के सम्पर्क में आये और 'निजानन्द सम्प्रदाय' में दीक्षित हुए थे। प्राणनाथजी के परिवार सम्बन्धी और अधिक उल्लेख प्रणामी साहित्य में नहीं मिलते।

शिक्षा-दीक्षा और गुरु-

शिक्षा श्री प्राणनाथजी की लौकिक शिक्षा के बारे में समस्त बीतककार मौन हैं। परवर्ती प्रणामी साहित्य में ही उनकी शिक्षा-संबन्धी निम्न उल्लेख मिलता है-

"जब श्री प्राणनाथ प्रभु की पांच वर्ष की अवस्था हुई तो आप सम्पूर्ण चमत्कारी

१-'ठाकरशी सुत आतमा' - वर्तमान दीपक, पृ० ५४ २-वर्तमान दीपक किरण ६, पृ० ५२

लीलाओं का संवरण कर प्राकृत बालक की तरह बाल-लीला करने लगे एवं कुछ काल में ही कुलोचित, राष्ट्रोचित तमाम विद्याओं को आपने हासिल कर लिया"[1]। एक दीवानके पुत्र और क्षत्रिय बालक को उस समय जो शस्त्र-शास्त्र और राजनीति की शिक्षा दी जा सकती थी, वही प्राणनाथजी को भी मिली। इनकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि इन्हें हिन्दी और गुजराती के अतिरिक्त संस्कृत और फारसी का भी अच्छा ज्ञान था। ये भाषाएं इन्होंने व्यवहार से ही सीखीं, पण्डित अथवा मौलवी से इसकी शिक्षा नहीं लीं[2]। प्रणामियों की धारणा है कि प्राणनाथजी अवतारी पुरुष थे। वे जहां जैसी भाषा की आवश्यकता होती, सहज ही उसका प्रयोग कर लेते थे। उनके अनुसार समस्त जग को शिक्षित करने वाले परमात्मा के अवतार को शिक्षा की क्या आवश्यकता थी[3]।

गुरु और दीक्षा काल

इन्होंने अगहन सुदी नवमी, सं० १६८७ को बारह वर्ष की आयु में निजानन्द सम्प्रदाय के आदि आचार्य श्री देवचन्द्रजी से दीक्षा ली थी[4]। दीक्षा-सम्बन्धी एक रोचक घटना का उल्लेख मिलता है- गुरु देवचन्द्रजी ने जामनगर में भट्टजी नामक किसी विद्वान से चौदह वर्ष तक भागवत सुनी। वहीं इनकी भेंट गांगजी नामक व्यक्ति से हुई। गांगजी केशव ठाकुर के सम्बन्धी थे (केशव-कुल की कन्या मेघबाई[5], गांगजी की पुत्र वधू थी)। कहा जाता है कि श्री देवचन्द्रजी को चौदह वर्ष भागवत कथा श्रवण करते हुए व्यतीत हुए तो श्री कृष्णजी ने इन्हें दर्शन दिया और उनकी कृपा से इन्हें अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई। ये 'परमधाम' तथा परमात्मा के 'शुद्ध-साकार'

---

१ चरित्र दिग्दर्शन पृ० ६७ २—न मैं पढया फारसी, न हरफ आरब। सुनयो न कान कुरान को,

पर खोलत मायाने सब ॥५॥ — सनन्ध, प्र० १५

३—महामति-प्राणनाथजी भाग पृ० ९

४—सोरह सै सत्तासिया, अगहन नवमी शुक्ल।

मिले धनी सों तब भए, जगत रीति से लुक्ल ॥६३॥

\+ × +

ऊपर बारह वर्ष के, दस दिन अरु द्वै मास।

आई धनी सों तब मिले, लखी वासना खास ॥६१॥ -वृत्तान्त मु० पृ०१४८ प्र० ३७

५- विस्तार के लिए देखिए इसी अध्याय के अन्तर्गत 'परिवार' शीर्षक।

स्वरूप का वर्णन करने लगे, तथा निजानन्द सम्प्रदाय की नींव डाली[1]। इस सम्प्रदाय में सर्वप्रथम गांगजी भाई दीक्षित हुए। इन्होंने गुरु देवचन्द्रजी को अपने घर रखा। यहां नित्य प्रति चर्चा (धर्मोपदेश) होती। और भगवान कृष्ण लोगों को दर्शन देते। इसका उल्लेख मेघबाई ने अजबाई (प्राणनाथजी की भाभी) से किया। अजबाई ने गोवर्धन ठाकुर को वास्तविकता जानने के लिए गांगजी के यहां भेजा[2]। गोवर्धनजी देवचन्द्रजी के धर्मोपदेश से बहुत प्रभावित हुए और नित्य प्रति चर्चा श्रवण के लिए आने लगे। प्राणनाथजी भी इनके साथ जाने की जिद् करने लगे। गुरु आज्ञा से ये इन्हें देवचन्द्रजी की शरण ले गये जब इन्होंने (प्राणनाथजी ने) गुरु चरणों में साष्टांग दण्डवत किया तो ६९ पत्र प्राणनाथजी के जेब से गिरे[3]। इसका उल्लेख उन्होंने स्वयं अपनी रचना 'सनन्ध' में किया है—

"यूं उनोहत्तर पातियां लिखी धाम धनी पर"

इससे देवचन्द्रजी ने अनुमान लगा लिया था कि 'जागनी' कार्य प्राणनाथजी द्वारा होगा, और इन्हें अन्य शिष्यों से अधिक सम्मान मिलने लगा।

दिन-दिन प्राणनाथजी में ईश्वरीय अनुराग बढ़ने लगा। दोनों भाई सांसारिक कार्यों के प्रति उदासीन हो गये। सांसारिक कार्यों के प्रति इनको अरुचि देखकर इनके बड़े भाई सामलिया ठाकुर ने इन्हें बुरा-भला कहा और गुरु श्री देवचन्द्रजी के लिए भी अपशब्दों का प्रयोग किया ये गुरु का अपमान न सह सके और भाई को मारने के लिए तलवार निकाल ली। माता धनबाई ने दोनों में बीच-बचाव करवाया और केशव ठाकुर के घर आने पर उन्हें सारी घटना कह सुनाई। पिता ने कहा कि दोनों भाई देवचन्द्रजी के पास न जाकर कान्हजी भट्ट (जहां श्री देवचन्द्रजी ने भागवत कथा श्रवण की थी) के पास जायें। दोनों भाइयों ने इस शर्त पर भट्टजी के पास

१—'श्री कृष्ण ने उन्हें दर्शन देकर उनके मूल रूप की पहिचान करा दी। तब वे अपने मूल रूप तथा परमधाम के सुखों का स्मरण कर, सांसारिक दुखों को भूलकर आनन्द मग्न हो गये। । आगे भी समस्त भूली आत्माओं को उनके मूल रूप की पहिचान करवा कर इस दुखमय संसार में ही सुखी बनाने वाले सम्प्रदाय को निजानन्द सम्प्रदाय के नाम से पुकारा जाने लगा।'—धर्माभिधान पृ०८ तथा कलस प्र० पृ० १

२—वर्तमान दीपक पृ० १२१ किरण ३८

३—देखिए इसी अध्याय में 'अलौकिक घटनाएं और जनश्रुति' शीर्षक

जाना स्वीकार किया कि आप हमारे साथ चलें। आपके समक्ष हम उनसे कुछ प्रश्न पूछेंगे, यदि वे हमारे प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर दे सके तो हम उन्हीं के यहां कथा श्रवण करेंगे, यदि वे उत्तर देने में असमर्थ रहे तो हमें गुरु देवचन्द्रजी के पास जाने की अनुमति देनी होगी। ऐसा ही किया गया। भट्टजी उत्तर देने में असमर्थ रहे और दोनों भाइयों को 'निजानन्दाचार्य' के पास जाने की अनुमति मिल गयी[१]।

वैवाहिक जीवन तथा संघर्ष

इन्हें संसार से विरक्त होते देखकर केशव ठाकुर ने इनका विवाह कुतिआणा ग्राम में प्रेमजी की पुत्री फूलबाई से कर दिया[२]। संयोग से उन्हें साध्वी पत्नी मिली थी, कभी भी वह प्राणनाथजी के धार्मिक मार्ग में बाधा बनकर उपस्थित नहीं हुई, वरन् उसने धर्म के लिए अपने प्राणों का भी उत्सर्ग कर दिया:—

श्री देवचन्द्रजी के धामगमन बाद वि० सं० १७१२ में उनके पुत्र बिहारीजी (धार्मिक) गद्दी पर बैठे। धाराभाई नामक एक शिष्य ने बिहारीजी से प्रार्थना की कि 'मैं बहुत दूर रहता हूं, इसलिए दिन में दो बार मन्दिर में उपस्थित हो सकना मुश्किल है। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं एक ही बार दर्शनार्थ आ जाया करूं।" इसे बिहारीजी ने अपना अपमान समझा और उसे 'साथ' (शिष्य मण्डल) से निकाल दिया। बिहारीजी के इस व्यवहार से दुखित होकर उसने अनशन कर दिया, पर बिहारीजी टस-से मस न हुए। जब वह मरणासन्न हो गया, तो फूलबाई को उस पर दया आई और उन्होंने उसे समझा-बुझा कर भोजन करा दिया। बिहारीजी को जब यह ज्ञात हुआ तो वे आग-बबूला हो गये और प्राणनाथजी से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि तुम्हें या तो पत्नी को त्यागना होगा या मुझे। धर्म और गृहस्था, दोनों में से जिसे चाहो अपनाओ, प्राणनाथजी को गृह-त्याग अभीष्ट हुआ। उस दिन के बाद वे कभी घर नहीं गये जब फूलबाई को पति की इस प्रतिज्ञा का ज्ञान हुआ तो उसने अन्न जल ग्रहण करना छोड़ दिया और परलोकगामिनी हुईं।

गृहस्थी से मुक्ति पा जाने पर प्राणनाथजी अपना अधिक समय 'धार्मिक कार्यों में व्यतीत करने लगे[३]। एक दिन उनके मनमें विचार आया कि गुरु के धामगमन के

---

२ वर्तमान दीपक पृ० १३९-४१ किरण १९ २—वही पृ० १६५

३-ज्यारे श्यामाजे त्याग्यु तन, त्यारे धनीए दृढ़ कीधूं मन। -वर्तमान दीपक पृ० १६३

उपरांत भोज नहीं दिया गया। अतः यह कार्य अवश्य ही करना चाहिए और इसके लिए उन्होंने सामग्री एकत्र करनी शुरू की। ईर्ष्यालु व्यक्तियों द्वारा झूठी शिकायत किये जाने पर 'जाम' ने छापा मार कर सारी सामग्री अपने अधिकार में कर ली और वास्तविकता जाने बिना इन्हें 'हब्सा' नामक स्थान में[1] नजरबन्द कर दिया। इसी समय जामनगर पर पड़ोस के राजाने चढ़ाई कर दी। 'जाम' युद्ध क्षेत्र में चला गया[2]। 'हब्सा' में प्राणनाथजी को 'बानी', 'नाजिल (अवतरित) हुई, और यहीं 'रास', 'प्रकाश' और 'षट्ऋतु' की रचना हुई[3]।

'हब्सा' (प्रबोधपुरी) के पास ही रनिवास था। दिव्य वाणी के अवतरित होते समय अत्यधिक प्रकाश होता था। जिसे रानियां अपने महल से देखती थीं। एक वर्ष बाद जब जाम वजीर युद्धभूमि से लौटा तो रानियों ने सारी घटना कह सुनाई और राजा से अनुरोध किया कि वे मिहिरराज ठाकुर को मुक्त करें। जाम ने मामले की जांच की, प्राणनाथजी को निरपराध पाया। पश्चाताप स्वरूप उसने प्राणनाथजी को जागीर दी, जहां उन्होंने मिहिरराज नामक गांव बसाया।

वि० सं० १७१६ में प्राणनाथजी मेहराज गांव की ओर जा रहे थे[4]। मार्ग में जब वे धोराजी नामक स्थान से गुजरे तो तेजबाई नाम की एक अविवाहित कन्या ने इन्हें देखकर पर्दा कर लिया, पिता द्वारा कारण पूछे जाने पर उसने बताया कि ये राहगीर जिनसे मैंने पर्दा किया है—जामनगर के दीवान मिहिरराज ठाकुर हैं। ये मेरे पूर्वजन्म में पति थे। उसने अपने पूर्वजन्म की समस्त घटना पिता को कह सुनाई। मालूम करने पर जब तेजबाई की सारी बातें ठीक निकलीं तो वीरजीभाणजी ने अपनी बेटी तेजबाई का विवाह प्राणनाथजी से कर दिए[5]। इन्हें पुनः माया में फंसते देखकर बिहारीजी प्रसन्न हुए, क्योंकि प्राणनाथजी अपने सरल स्वभाव और प्रतिभा के कारण शिष्यों में बिहारीजीसे अधिक प्रिय होते जा रहे थे। शिष्यों में बढ़ते हुए उनके प्रभाव को बिहारीजी रोकना चाहते थे। वे चाहते थे कि ये दुनियांदारी में फंस जायें और इन्हें शिष्यों से मिलने का अवकाश कम मिल सके। उन्होंने प्राणना-

---

१-प्रमोदपुरी आसन क्युं, जेने कुरान हबसा कहे छे। -वही पृ० १५८

२-सतर चौद गुजरात थी, आव्यो कुतुब कारन हुकम। जाम वजीर बन्ने गया, करवा तेनी कुमक। -वही पृ० १५८

३-वही पृ०१८५-८६, चौ० २१-२२

४-वर्तमान दीपक, पृ० १९१ चौ० ३४

५- वही. कि० ५८ पृ० १९२-९३

थजी को पुनः जामराजा का मन्त्री-पद संभालने की सलाह दी। प्राणनाथजी ने ऐसा ही किया।

वि० सं० १७१९ में कुतुबखान ने जाम राजा पर चढ़ाई की। जाम ने उसे सं० १७२० तक नौलाख कौड़ी (मुद्रा) देने का वचन देकर टाल दिया। उक्त समय पर मुद्रा प्राप्त न होने के कारण कुतुबखां क्रोधित हुआ। जाम प्राणनाथजी को साथ लेकर समझाने के लिए गया रुपयों की व्यवस्था न हो सकने के कारण जाम ने उससे एक माह की अवधि बढ़ा देने के लिए कहा। अन्त में यही निश्चय हुआ कि जाम अपने वजीर (प्राणनाथजी) को कुतुबखां के पास छोड़ दे। यदि वह अब की बार निश्चित अवधि में मुद्रा दे सकने में असमर्थ रहा तो कुतुबखां को वजीर के साथ मनमाना व्यवहार करने का अधिकार होगा[1]।

वायदे के अनुसार जब जाम निश्चित समय में धन न दे सका तो कुतुबखां ने वजीर को फांसी की सजा सुना दी। निश्चित अवधि में जब प्राणनाथजी घर नहीं लौटे तो तेजबाई ने काहनजी नामक प्राणनाथजी के शिष्य को वास्तविकता जानने के लिए भेजा[2]। अहमदपुर[3] पहुंचने पर काहनजी को ज्ञात हुआ कि 'श्रीजी' को फांसी दी जा रही है। उसने गुरु की प्राण-रक्षा के लिए एक चाल चली। वह साड़ी, आभूषण आदि पहनकर पालकी में बैठकर तेजबाई के रूप में प्राणनाथजी से बन्दीगृह में मिलने गया। वहां उसने ये वस्त्राभूषण प्राणनाथजी को पहिना दिये। प्राणनाथजी उसी पालकी में बैठकर तेजबाई के रूप में बाहर निकल आये[4]। इस घटना से प्राणनाथजी के दिल को बड़ी चोट लगी और उन्होंने सदा के लिए इस संसार से वैराग्य ले लिया।

उन्हें आजन्म माया से संघर्ष करना पड़ा, पर तीन घटनाएं उनके लिए अविस्मरणीय थीं जिसका संकेत उन्होंने 'रास ग्रन्थ' में किया है—

"मैं त्रण युद्ध कीधां फरी फरी, पछे गति मति मारी हरी"[5]

ये तीन घटनाएं हैं—

१. सं० १७०८ की घटना (जिसका आगे उल्लेख किया गया है),

---

१ वर्तमान दीपक पृ० २०३ २-वही, किरण ३०

३-अधिकांशतः लोगों का मत है कि अहमदपुर, अहमदाबाद से अभिन्न है।

४-वर्तमान दीपक किरण २० चौ० २०-२५ ५-रास प्रकरण १

२, सं० १७१२ में फूलबाई (धर्मपत्नी) के धामगमन की घटना;
३; सं० १७१५ में 'हब्सा' (प्रबोधपुरी) में नजरबन्द होना ।

इन तीनों घटनाओं के पीछे 'गति मति' हरनेवाली जो घटना घटी, वह थी सं० १७२० में अहमदपुर१ में नजरबन्द और फांसी की सजा होने की घटना।

सं० १७०८ की घटना इस प्रकार है—

वि० सं० १७०० में इनके बड़े भाई गोवर्धन ठाकुर की मृत्यु हो गयी। इस कारण ये बहुत ही उदास और दुखी रहने लगे। इनका ध्यान इस दुखद घटना से हटाने के लिए गुरु देवचन्द्रजी ने इन्हें अरब भेज दिया२।

अरब में 'गांगजी' का भाई खेता रहता था। देवचन्द्रजी ने उसे धर्मोपदेश देने और स्वदेश वापिस लौटा लाने के लिए प्राणनाथजी को भेजा। वहां प्राणनाथजी पांच वर्ष (सं० १७०३-८) तक रहे। इसी बीच खेताभाई की मृत्यु हो गयी। वह अपने पीछे अपार धनराशि छोड़ गया। उत्तराधिकारी के अभाव में हाकिम (शहर के प्रबन्धक) ने खेता की सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया३।

श्री प्राणनाथजी ने सारी घटना की सूचना पत्र द्वारा गुरु देवचन्द्रजी को दे दी। देवचन्द्रजी ने बिहारीजी तथा गांगजी के पुत्र श्यामजी और मानजी को प्राणनाथजी की सहायतार्थ अरब भेजा। इनके पहुंचने से पूर्व ही मिहिरराज खेताभाई की सारी सम्पत्ति राज्य से वापिस लेने में सफल हो चुके थे४। उन्होंने यह सम्पत्ति, जो लगभग तीन लाख थी५, गुरु-पुत्र बिहारीजी और श्यामजी को देकर जामनगर वापिस भेज दिया, और उनसे कहा कि खेताभाई ने जो धन लोगों को उधार दिया था, वह लेकर मैं भी आ जाऊंगा।

अपार धनराशि पाकर बिहारीजी तथा श्यामजी का ईमान डगमगा गया। इन्होंने

१-कुछ लोगों के मतानुसार यह घटना अहमदाबाद की है।

२-संवत सत्रह सौ तिलोतरे मिने, हुकम हुआ श्री राज।
गांगजी भाई के काम को, तुम जाओ श्री मेहराज ॥१॥ लाल० बी० प्र० १५

३-खेता त्याग तहां वपु कीन्हों, प्रभु सुप्रताप कछु नहीं चीन्हों
हतो सहर को हाकिम जेही, करी मुहर घर पै उन तेही॥ (वृ० मु० पृ० १६०)

४-वृत्तान्त मुक्तावली पृ० १६१-६२, ५-वर्तमान दीपक पृ० १६४ चौ० ८२

सारी सम्पत्ति आपस में बांट लेनी चाही। मानजी ने जो इनके साथ ही था, धमकी दी कि मैं सारी बात गुरुजी से कह दूंगा। इन दोनों ने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा और मौका पाकर उसे समुद्र में फेंक दिया१। जामनगर पहुंच कर देवचन्द्रजी से कह दिया कि अपार धनराशि देखकर मिहिरराज का ईमान डगमगा गया है, हमें कुछ भी नहीं दिया और इन्होंने मानजी की भी हत्या कर दी है। देवचन्द्रजी के लिए यह समचार बहुत दुखदायी हुआ। प्राणनाथजी की ईमानदारी और गुरु-भक्ति के कारण देवचन्द्रजी के हृदय में उनके प्रति जो सद्भावनाएं थीं, उन्हें गहरा आघात पहुँचा। श्री देवचन्द्रजी की शिष्या और गांगजी तथा खेताभाई की बहिन बालबाई२ ने गुरु से कहा, जब मिहिरराज अरब से आयें तो आप उनसे बोले नहीं। यदि आपने मेरी प्रार्थना पर ध्यान न दिया तो मैं आत्महत्या कर लूंगी। ऐसे व्यक्ति से बोलना तो क्या आपको मिलना भी न चाहिए३।

सं० १७०८ में प्राणनाथजी के आनेकी खबर पाकर बालबाई ने जामराजा से शिकायत की कि मेहराज ठाकुर ने खेता की सम्पत्ति पर अवैध रूप से अधिकार कर लिया है, उस सम्पत्ति की अधिकारिणी मैं हूँ, अथवा उत्तराधिकारी के निर्णय के अभाव में उस सम्पत्ति पर राज्यका अधिकार होना चाहिए। बालबाई की प्रार्थना पर जाम ने सारी सम्पत्ति कोष में ले ली और प्राणनाथजी को नजरबन्द कर लिया४। पांच वर्ष तक विदेश में अनेक कष्टों का सामना कर गुरुजी की आज्ञा का जो पालन किया था, उसके फलस्वरूप उनके साथ ऐसा असहनीय दुर्व्यवहार किया गया, इतना ही नहीं, जब वहां से मुक्त होकर गुरु से मिलने आये तो उन्होंने भी अपने प्रिय शिष्य को देखकर मुंह फेर लिया५। वहां से निराश होकर घर आ गये और

१-परयो जाई खजर जल माहिं, करते लेत गिरत भयो ताहिं। -बृ० मु० पृ० १६३

२-लल्लू भट्ट ने बालबाई को खेताभाई की पुत्रवधू और गांगजी की बहिन कहा है। गांगजी और खेताजी भाई थे (जिसे स्वयं बीतककार ने स्वीकार किया है), अतएव बालबाई को खेताभाई की पुत्रवधू मानना अनुचित है बालबाइ नाम की कोई दूसरी स्त्री ही होगी। -वर्तमान दीपक पृ० १११ चौ० ३०

३-आ समय जो एम ने, पीयु करशो प्रणाम।
मरूं पड़ी ने कूपमां, तो बालबाई मारूं नाम ॥१३॥ वही, कि० २३ पृ० १६६

४ वर्तमान दी० कि० २३ पृ०१६६ चौ० १८-१९, ५-वही, कि० २३ चौ० १४

प्रण किया कि जब तक गुरुजी स्वयं नहीं बुलायेंगे तब तक मैं उनके पास नहीं जाऊंगा[१]।

दो वर्ष (सं० १७०८-१०) तक घर पर ही रहे। एक दिन स्यामलिया ठाकुर की धर्मपत्नी ने कहा-"जिस गुरु के लिए भाई को तलवार के घाट उतारने लगे थे, उसके रूठ जाने पर दो वर्ष से उसी भाई के पास बैठते शर्म नहीं आती।" भाभी के इस दुर्व्यवहार के कारण प्राणनाथजी धरोल चले गये और वहां दीवान-पद का कार्य भार सम्भाल लिया[२]।

वि० सं० १७१२ में गुरु देवचन्द्रजी ने अपनी मृत्यु समीप जानकर मिहिरराज को बुलाने के लिये बिहारीजी को भेजा। बिहारीजी नहीं चाहते थे कि प्राणनाथजी व देवचन्द्रजी मिलें, चूंकि इससे उन्हें मानजी की हत्या और धन-गबन करने की पोल खुलने का डर था। अतएव उन्होंने प्राणनाथजी से कहा कि पिताजी की तबीयत कुछ खराब है और उन्होंने अम्बर कस्तूरी आदि दवाएं मंगाई हैं[३]। उन्होंने दुबारा बिहारीजी को भेजा, दूसरी बार भी वे दवाइयां वगैरह लेकर लौटे और पिताजी का सन्देश प्राणनाथजी को नहीं दिया[४]। तब उन्होंने बालबाई को भेजा। प्राणनाथजी सन्देश पाते ही सारा कार्य दूसरे आदमी को सौंपकर गुरु-चरणों में उपस्थित हो गये[५]। 'निजानन्द सम्प्रदाय' के प्रचार और प्रसार का कार्य मिहिरराज को सौंपकर गुरु-देवचन्द्रजी सं० १७१२ की भादो माह, चतुर्दशी. बुधवार को धामगामी हुए—

संवत सत्रह सौ बारोतरे, भादों मास उजाला पख
चतुर्दसी बुधबारी भई. सनन्ध सब बिहारीजी को कही
मध्य रात पछे कियो प्रयाण, तब बिहारीजी को सुध भई जान[६]

अहमदपुर की घटना ने उन्हें दुनियादारी से उदासीन बना दिया। उस समय १७१२ में कहे गये गुरुजी के वचन उन्हें याद आये कि तुम 'दुनियादारी' को छोड़कर निजानन्द सम्प्रदाय का प्रचार और प्रसार करना। इस लक्ष्य-पूर्ति के लिए वे धर्माभियान पर निकल पड़े।

१-वही, कि० २३ चौ० १७ २-वही, कि० २३ चौ० ४३
३-वही, कि० २३ चौ०५५ ४-वही, कि० २३ चौ० ६४
५-वर्तमान दीपक, कि० २३ पृ० १७२ ६-प्रकाश प्र० ३

धर्माभियान

दीपबन्दर आगमन और जैरामभाई को उपदेश

अहमदाबाद (अहमदपुर) से मुक्ति पाकर प्राणनाथजी सं० १७२२ में दीप-बन्दर आये। तेजबाईजी को भी जामनगर से बुलवा लिया। यहां गुरु-भाई जैराम कंसारा के यहां रहे। प्राणनाथजी ने जैराम से कहा, 'गुरुजी के धामगमन के बाद तुम कभी जामनगर नहीं आये। बिहारीजी को जब 'गादी' पर बैठाया गया, तुम तब भी नहीं आये। इस तरह धर्म से मुंह फेर लेना ठीक नहीं। इस भवसागर में अपार तृष्णा-जल है, इसकी थाह न पानेवाले अज्ञानी अपने प्राणों से हाथ धो बैठते हैं। सचेत हो जाओ, किनारा ढूंढ़ने का प्रयत्न करो पांच वर्ष के बालक को भी एक बार कुछ कहा जाये तो वह उसे आजीवन याद रखता है। हम तो बालक से भी बदतर हो गये। देवचन्द्रजी के उपदेशों को इतनी जल्दी भूल गये' (जैराम को दिया गया यह उपदेश 'रास' ग्रन्थ के प्रथम पांच प्रकरणों में संगृहीत है)। जैराम भाई इससे बहुत प्रभावित हुए[1]।

दीप-बन्दर में प्राणनाथजी दो वर्ष रहे[2]। शहर के विभिन्न भागों से लोग चर्चा (धर्मोपदेश) सुनने आते थे। लगभग ६० व्यक्तियों ने इनसे दीक्षा ली[3]। इनके बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर 'पण्डित' ईर्षा करने लगे। उन्होंने एक व्यक्ति को फिरंगी[4] के पास इस आशय से भेजा कि वह उससे कहे कि यह सन्त (प्राणनाथजी) समस्त धर्मों तथा देवी-देवताओं की निन्दा करता है। इस चुगलखोर को रास्ते में एक अजनबी मिला (कुछ लोगों के मतानुसार यह अजनबी 'दैविक शक्ति' थी) उसने चुगलखोर को समझाया-'तुम जानते हो' 'फिरंगी' बड़ा ज़ालिम है। वह महात्मा को बड़ा कष्ट देगा। क्या तुमने उसे देवी-देवताओं की निन्दा करते हुए स्वयं सुना है? यदि नहीं, तो यह बात असत्य भी हो सकती है, अतएव निरपराधी साधु को दण्ड दिलाने के कारण

---

१ वर्तमान दीपक कि० ३२ प० २१२-१५

२-वही, कि० ३२ चौ० २९ तथा धर्माभियान, पृ० ९१ ३-वही, कि० ३२ चौ० ४१

४-'दाउद' को माननेवाले ईसाइयों के लिए 'फिरंगी' शब्द का प्रयोग होता था। बीतक-साहित्य से ज्ञात होता है कि वह जनता पर बहुत ज़ुल्म करता था जिस से स्पष्ट होता है कि वह राजकीय कर्मचारी था।

तुम घोर पाप के भागी बनोगे। चुगलखोर को अजनबी की बात उचित जान पड़ी और उसने फिरंगी के पास जाने का ईरादा छोड़ दिया[1]।

श्री प्राणनाथजी के शिष्यों को जब ज्ञात हुआ कि चुगलखोर फिरंगी से चुगली करने गया है तो वे बहुत भयभीत हुए और चर्चा में आना बन्द कर दिया, पर जैरामभाई और उसका परिवार विचलित न हुआ[2]।

यहां दो वर्ष रहने के बाद प्राणनाथजी ठट्ठानगर जाने के लिए तैयार हुए। इसी बीच एक और घटना घटी—

वि० सं० १७२४ में अरबों ने दीपबन्दर में छापा मारा और बहुत-से लोगों को बन्दी कराकर ले गये। इसमें बाईजी (तेजबाई) भी थीं[3]। बन्दियों का पता लगाते हुए तथा धर्मोपदेश करते हुए प्राणनाथजी ठट्ठा जाते समय रास्ते में कई स्थानों पर रुके। दीप-बन्दर से नवीपुर बन्दर आये, वहां पर श्यामाजी (तेजबाई की उपाधि) की कोई खबर न मिली। नवीपुर से मांडवी (कच्छ) आये। वहां एक दिन रहे। वहां से कपई गये[4]।

कपई में प्राणनाथजी के भाई हरिवंश ठाकुर सपरिवार रहते थे। प्राणनाथजी ने भाई को गुरु-पुत्र बिहारीजी के दर्शन करने की सलाह दी। प्राणनाथजी का मत था कि गुरु का चरणोदक लेने से समस्त पाप कट जाते हैं। यहां दो दिन रहने के बाद[5] वे भोजनगर आये। भोजनगर में हरिदासजी (जिनसे श्री देवचन्द्रजीने दीक्षा ली थी) के पुत्र वृन्दावन रहते थे। प्राणनाथजी के भोजनगर पहुँचने पर वृन्दावनजी ने उनका हार्दिक स्वागत किया। यहां भी प्राणनाथजी दो दिन रहे[6]।

प्रथम बार ठट्ठा आगमन

भोजनगर से नलिया होते हुए प्राणनाथजी ठट्ठानगर आये। यहां बारह दिन रहे[7]। यहां से लाठी-बन्दर के लिए रवाना हो गये।[8]

१-वर्तमान दीपक कि० ३३ पृ० २१६.१७ २-वही पृ० २१७
३-वही, कि० ३३ चौ० २५-२६ ४-धर्माभियान पृ० ९.१ ५-वही, परिशिष्ट १
६-वर्तमान दीपक कि० ३३ चौ ४० ७-वही, पृ० २२०
८-वही, कि० ३४ चौ० ३

लाठी-बन्दर आगमन

लाठी-बन्दर में विश्वनाथ भट्ट नामक व्यक्ति मिला, जिसने इनका बहुत सत्कार किया। लाठी-बन्दर से मस्कत (अरब) जाने के लिए नावमें बैठे। समुद्र में तूफान आ जाने के कारण मस्कत न जा सके और पुनः सत्रह दिन तक नाव में रहने के बाद लाठी-बन्दर आ गये[१]। लाठी-बन्दर से ठट्टा चले आये[२]।

पुनः ठट्टा आगमन

जब प्राणनाथजी पुनः ठट्टा आये तो नाथा जोशी के यहां ठहरे। यहां नित्य चर्चा होती थी। अनेक लोग चर्चा सुनने आते थे। राम कबीर सम्प्रदाय में दीक्षित चिन्तामणि नामक महन्त ठट्टा में रहते थे[३]। इनको बहुत ख्याति थी। प्राणनाथजी इनके निवास-स्थान पर गये और उसके उपदेशों को सुना। उसने 'कबीर' को आधा भक्त और 'कमाल' को पूरा भक्त बताया। प्राणनाथजी इससे सहमत न हुए और वाद-विवाद होने लगा। महन्त चिन्तामणि शास्त्रार्थ में पराजित हुए। वे 'श्रीजी' की बातों से बहुत प्रभावित हुए और अपने शिष्यों की आंख बचा कर चर्चा सुनने भी जाने लगे। अन्त में 'निजानन्द सम्प्रदाय' में दीक्षित हो गये[४]।

ठट्टा में लक्ष्मण सेठ नामक एक धनवान व्यक्ति रहता था। चिन्तामणि द्वारा प्राणनाथजी का शिष्यत्व ग्रहण करने की बात सुनकर, लक्ष्मण सेठ बहुत प्रभावित हुआ। चतुरदास नामक अपने कर्मचारी से प्राणनाथजी की महिमा सुनकर लक्ष्मण ने प्राणनाथजी के दर्शनों की इच्छा व्यक्त की। प्राणनाथजी की अनुमति पाकर चतुरदास लक्ष्मण सेठ को प्राणनाथजी के पास ले गये[५]। लक्ष्मण ने प्राणनाथजी से 'त्रिविध लीला' सम्बन्धी प्रश्न पूछे। प्राणनाथजी ने वेदों तथा शास्त्रों के उदाहरण देकर भगवान श्री कृष्ण के रूप में अवतरित होने वाली तीन शक्तियों पर प्रकाश डाला[६]। (जिसका सविस्तार वर्णन 'दर्शन' अध्याय में किया गया है)।

यहां प्राणनाथजी दस माह रहे[७]। चिन्तामणि के बहुत से शिष्यों तथा अन्य

१-वही, कि० ३४ चौ० ५ २-वही, चौ० ८ ३-वही, कि० ३४
४-वर्तमान दीपक कि० ३६ चौ० ८
५-वर्तमान दीपक कि० ३७ चौ० १०-११ ६-वही, कि० ३७ पृ० २६९-७९
७-वही, कि० ३७ चौ० ९७

लोगों ने प्राणनाथजी का शिष्यत्व ग्रहण किया। मौसम अनुकूल जानकर उन्होंने अपने शिष्यों से मस्कत बन्दर जाने की इच्छा व्यक्त की। उनसे विदा होकर लाठी-बन्दर आये, यहां से मस्कत के लिए रवाना हुए[१]।

मस्कत आगमन

श्री प्राणनाथजी के मस्कत आगमन पर महावजी ने उनकी बहुत सेवा की। एक दिन चर्चा में उन्होंने मानव मन की दुर्बलताओं पर प्रकाश डालते हुए बताया कि लोभ, मोह, मत्सर, सम्मान की इच्छा आदि धर्म के मार्ग में बाधक हैं; मनुष्य को इससे दूर रहना चाहिए। महावजी ने समझा, प्राणनाथजी ने अप्रत्यक्ष रूप से मेरी 'खण्डनी' (आलोचना) की है। अतएव उसने 'चर्चा' में आना बन्द कर दिया। रात को जब वह दुकान पर सो रहा था तो किसी अज्ञान शक्ति ने उसे दण्डित किया। प्रातः ही उसने प्राणनाथजी से जाकर रात को हुई घटना बतायी और क्षमा याचना की[२]।

मस्कत में श्री प्राणनाथजी को ज्ञात हुआ कि बाईजी आबासी-बन्दर भैरव सेठ के घर में हैं[३] —

छापामारों ने बंदियों को मस्कत बन्दर में रखा था और उनके (बन्दियों के) रिश्तेदारों को इसकी सूचना दे दी थी। लोगों ने आरबों द्वारा मांगा गया धन देकर अपने-अपने परिवार के लोगों को मुक्त करवा लिया था। मुक्त होकर आनेवालों में आबासी बन्दर में रहने वाले लोहाणा जाति के भैरव सेठ के सम्बन्धी थे। उन्होंने सेठ को तेजबाई के बारे में बताया कि वे (बाईजी) भी लोहाणा जाति से सम्बन्धित हैं और साक्षात् अम्बिका का अवतार प्रतीत होती हैं। सेठ ने नेकनामी प्राप्त करने की इच्छा से बाईजी के बदले में मांगी गयी सत्तर हजार 'लारी' (चार आने के लगभग एक सिक्का), देकर उन्हें मुक्त करा लिया[४]। और प्राणनाथजी को इसकी सूचना दे दी।

आबासी आगमन

तेजबाई की सूचना पाकर सं० १७२८ में प्राणनाथजी मस्कत से आबासी पहुंचे।[५] भैरव सेठ ने इनका बहुत स्वागत किया। रात को देर तक चर्चा होती। भैरव बड़े

१-वही, कि० ३७ पृ० २८० २ वही. पृ० २८१-८३ ३-वही, कि० ३८ चौ० ५०
४-वर्तमान दीपक कि० ३८ चौ० ४५-४९ ५-वही. कि० ३८ चौ० ४२ ५१

ध्यान से सुनता। एक दिन एक नानक-पन्थी तथा योगारम्भ में विश्वास रखने वाले दो अन्य व्यक्ति भैरव के साथ चर्चा-स्थल (सभा मण्डप) में आये। वे अपने प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर पाकर बहुत प्रसन्न हुए और भैरव को भी प्राणनाथजी पर पहले से अधिक आस्था हो गयी[१]।

यहां (अरब में) मांसाहारी लोग अधिक थे[२]। भैरव सेठ भी मांसाहारी था। वह प्राणनाथजी के लिए अलग शाकाहारी भोजन बनवाता था। प्राणनाथजी ने ईश्वर प्राप्ति के लिए मांस, मदिरा, परदारा, परनिन्दा, चोरी, यहां तक कि हुक्का-पीना भी त्याज्य बताया। भैरव ने एक माह तक इन सब वस्तुओं से दूर रहने का व्रत लिया, और कहा यदि मुझे इस अवधि में ईश्वर-प्राप्ति न हुई तो मैं पुनः मांस, मदिरा का प्रयोग शुरू कर दूंगा। उसने प्राणनाथजी द्वारा बतायी गयी रीति से आराधना की। कहा जाता है कि उसे तीसरे दिन ही ईश्वर के दर्शन हो गये और उसने प्राणनाथजी से दीक्षा ले ली[३]।

आबासी बन्दर (अरब) में साधु-सन्तों का आगमन बहुत ही कम होता था[४]। प्राणनाथजी जैसे ख्याति प्राप्त सन्त के वहां पहुँचने पर अनेकों लोग उनके दर्शनों के लिए आते और चर्चा सुनते, जिनमें स्त्रियां अधिक थीं। पुरुष अपनी स्त्रियों को वहां जाने से रोकते तो वे उत्तर देती-'मन तो हमारा वहीं है जहां सदुपदेश होता है, शरीर को यदि तुम रोकना चाहते हो तो इसे हम सहर्ष त्याग सकती हैं। 'पुरुष उन्हें किसी भी तरह वहां जाने से न रोक सके।

श्री प्राणनाथजी यहां से बाईजीराज (तेजबाई को शिष्य इसी नाम से सम्बोधित करते थे) सहित नलिआ के लिए रवाना हुए। आबासी से नलिआ जाने के लिए लाठी बन्दर और ठट्ठानगर से होकर जाना पड़ता था। सर्वप्रथम वे कोक बन्दर से होते हुए लाठी बन्दर पहुँचे। यहां चार दिन रुके[५]। फिर ठट्ठा नगर आये।

१-वही, कि० ३९ चौ० २६-३२ २वही, कि० ३९ चौ० ६१

३-वही, कि० ३९ चौ० ५१-५२

४-वर्तमान दीपक, कि० ३९ चौ० ६१ ५-वही, कि० ४० चौ० १-२

तीसरी बार ठट्टा आगमान

वि० सं० १७२८ वैशाख शुक्ल, तेरस को प्राणनाथजी तीसरी बार ठट्टा पहुँचे[1]। यहां एक माह रहे। जेठ माह में इसी तिथिको नलिआ के लिए रवाना हुए 'ठट्टा से इन्होंने बिहारीजी को पत्र लिखा। इस पत्र में, अपने छः वर्ष के धर्माभियान (सं० १७२२-२८) के अनुभवों का उल्लेख किया और बिहारीजी को अनुरोध किया कि मैं जेठ में नलिआ (कच्छ) पहुंच रहा हूं, आप भी वहां आने का कष्ट करे[2]।

नलिआ आगमन

पत्र प्रेषित कर प्राणनाथजी नलिआ आ गये। बिहारीजी भी पत्र प्राप्त कर नलिआ पहुंच गये। विभिन्न स्थानों से प्राणनाथजी के साथ आने वाले शिष्यों ने इन्हें गुरु-भाई (प्राणनाथजी के गुरु का पुत्र) जानकर इनका बहुत सम्मान किया। इसी बीच एक ऐसी घटना हुई जिसके कारण बिहारीजी के लिए शिष्यों के दिल में पहले से श्रद्धा कम हो गयी। यह घटना इस प्रकार है-धाराभाई, जिसकी प्राण-रक्षा फूलबाई ने की थी, खम्भालिया में रहता था। यह चर्चा (धर्मोपदेश) करने में बड़ा माहिर (प्रवीण) था। कुछ लोगों ने इससे तारतम (दीक्षा) भी लिया। बिहारीजी को जब यह ज्ञात हुआ तो बहुत क्रोधित हुए और यह कहकर इसका साथ (प्रणामी समाज) से बहिष्कार कर दिया कि इसने मेरी अनुमति के बिना ही लोगों को तारतम मन्त्र दिया है। धारा ने बिहारीजी से अपनी इस भूल के लिए क्षमा-याचना की और तीन दिन तक अनशन भी किया। पर बिहारीजी टस-से मस न हुए। वह अन्त में निराश होकर नलिआ प्राणनाथजी की शरण में गया। मौका पाकर श्रीजी ने बिहारीजी से कहा कि वे धाराभाई पर कृपा करें और उसे साथ (प्रणामी समाज) में ले लें। बिहारीजी ने प्राणनाथजी की एक न सुनी और अपनी बात पर अड़े रहे। उनके इस जिद्दी स्वभाव ने उन्हें शिष्यों में अप्रिय बना दिया[3]। बिहारीजी ने प्राणनाथजी के बढ़ते हुए प्रभाव को समाप्त करने के लिए इन्हें धर्म-मार्ग छोड़कर 'हल्लार' में पुनः दीवान-पद पर कार्य करनेकी सलाह दी। प्राणनाथजी ने धर्म-मार्ग को श्रेष्ठ

१-संवत सत्तर अठावीशे, शुद वैशाख तिथि तेर।
प्राणनाथ परदेश थी, पधारया ठट्टा शहेर ॥ १४ ॥ — वही, कि० ४०

२ माटे जरूर पधारशो, नलिआ बन्दर मांहि।
बीत रवि वद जेठमां, अमे आवीशु त्यांय ॥ ३४ ॥ — वही, कि० ४०

३-वर्तमान दीपक, कि० ४१

बताते हुए बिहारीजी को भी धर्माभियान में साथ चलने को कहा[१]। बिहारीजी इसके लिए तैयार न हुए और जामनगर वापिस जाने की तैयारी करने लगे। धर्माभियान में शिष्यों द्वारा जो भी धन-धान्य प्राणनाथजी को मिला था, वह बिहारीजी को दे दिया और स्वयं ने सूरत जाने की योजना बनायी। नलिआ में प्राणनाथजी और बिहारीजी दो मास रहे[२]।

खम्भालिया की घटना

श्री प्राणनाथजी जब जाम के दीवान थे तो खम्भालिया के शासक को, कर न देने के कारण, इन्होंने जामराजा की आज्ञा से बन्दी बनाया था, इसलिए वह इनसे शत्रुता रखता था[३]। बिहारीजी जामनगर जाते समय रास्ते में खम्भालिया रुके। प्राणनाथजी के शिष्यों द्वारा दिखायी गयी उदासीनता का बदला लेने के लिए खम्भालिया के राजा को सूचित कर दिया कि मिहिरराज अमुक समय खम्भालिया से गुजरेंगे। बादशाह ने उन्हें बन्दी बनाने के लिए आदमियों को तैनात कर दिया। प्राणनाथजी जब खम्भालिया के लिए रवाना होने लगे तो उन्हें छींक आ गई। उन्होंने सुन्दरसाथ (शिष्यों) तथा बाईजी को नाव से खम्भालिया के लिए रवाना कर दिया और स्वयं थल-मार्ग से धोराजी गांव चले गये। सुन्दरसाथ खम्भालिया पहुंचा तो राजा द्वारा तैनात आदमियों ने उनको बन्दी बना लिया। गुप्तचरों ने राजा को बताया कि आगन्तुकों में मिहिरराज ठाकुर तो नहीं है, उनका परिवार (बाइजी) हैं। राजा ने सुन्दरसाथ से प्राणनाथजी और बाईजी के लिए पूछताछ की तो उन्होंने उत्तर दिया, "उन्हें हम नहीं जानते, हम तो भाटेला ब्राह्मण हैं और ये हमारी बहिन है[४]। भाटेला (अनावीळ ब्राह्मण) क्षत्री द्वारा पकाया गया भोजन नहीं करते, ऐसा विचार कर, राजा ने उनसे कहा यदि यह तुम्हारी बहिन है तो वह भोजन बनाये और आप लोग खायें। शिष्यों ने वैसा ही किया। राजा को विश्वास हो गया कि ये (बाईजी) क्षत्री नहीं, भाटेला ब्राह्मण है। बिहारीजी और गुप्तचरों ने मुझे प्राणनाथजी और उनके परिवार के आगमान की गलत सूचना दी है। राजा ने क्षमा-याचना करते हुए उन सबको मुक्त कर दिया[५]।

१-वही, कि० ४२ चौ० १-१० २-वही, कि० ४२ चौ० २६

३-अे आगल हता दीवान, दण्ड मुज ने बहु देता।
राजवेराने काज, केद करीं 'कोरी' लेता ॥ ४९ ॥ — वही, कि० ४२

४-वर्तमान दीपक, कि० ४२ चौ० ७१ ५-वही, कि० ४२

धोराजी आगमन

यहां प्राणनाथजी दस दिन रहे। इनके धोराजी पहुँचने के सात दिन बाद बाईजी तथा सुन्दरसाथ खम्भालिया से यहां पहुंचे और उन्होंने खम्भालिया की घटना प्राणनाथजी को कह सुनाई। यहां से सुन्दरसाथ सहित प्राणनाथजी 'घोघा' बन्दर आये और वहां तीन दिन रहे। घोघा से सोहाली होते हुए अपने गन्तव्य स्थान सूरत पहुंचे[1]।

सूरत आगमन

लगभग सं० १७२९ में प्राणनाथजी सूरत पहुंचे। सूरत में सत्रह माह रहे। वे सैयदपुरा में भगवान भाई के घर रहे[2]। बाद में मोहनदास और शिवजी की प्रार्थना पर उनके घर पधारे।

सूरत में वल्लभ पन्थियों में मतभेद चल रहा था। जिसमें से प्रत्येक दूसरे की निन्दा करते थे[3]। प्राणनाथजी ने दोनों मतों का खण्डन कर, वास्तविकता का उन्हें ज्ञान कराया और उनके आपसी मतभेदों को समाप्त किया।

सूरत उस समय विद्वान पण्डितों का केंद्र था। उन्होंने प्राणनाथजी को शास्त्रार्थ के लिए आमंत्रित किया जिसका सविस्तार उल्लेख इसी अध्याय के अन्तर्गत 'पण्डितों से शास्त्रार्थ' शीर्षक के अन्तर्गत किया जायेगा।

बिहारीजी तथा प्राणनाथजी में मतभेद

सूरत में शिवजी व रामजी नामक दो भाइयों ने प्राणनाथजी से दीक्षा ली। प्राणमाथनी ने दोनों को बिहारीजी के दर्शनार्थ जामनगर भेजा। जामनगर पहुंच कर शिवजी ने बिहारीजी को पांच मोहर भेंट की; बिहारीजी ने उनका बहुत सत्कार किया। रामजी निर्धन था, वह प्राणनाथजी का पत्र लेकर बिहारीजी के पास पहुंचा। बिहारीजी ने उसे पत्र सहित वापिस कर दिया। बिहारीजी का यह व्यवहार प्राण-नाथजी को बहुत बुरा लगा। उन्होंने रामजी को सान्त्वना देकर अपने यहां शरण दी[4]।

१-वही, कि० ४३ चौ० १-१० २-वही, कि० ४३ चौ० १३

३-वर्तमान दीपक, कि० ४३ चौ० १६ १७

४-लूलो पांगलो साथ, पण इन्द्रावती न मूके हाथ। -वही, कि० ४६ चौ० १८

बिहारीजी को जब ज्ञान हुआ कि रामजी को मिहिरराज ने शरण दी है तो उन्होंने प्राणनाथजी को पत्र लिखा कि जिसका मैं 'साथ' से बहिष्कार करता हूं, उसे तुम शरण देते हो। धाराजी और रामजी का मैंने बहिष्कार किया, उन दोनों को तुमने शरण दी। इतना ही नहीं, मैंने तुमसे कहा था कि विधवा औरत, और नीच जाति को तारतम नहीं सुनाना (निजानन्द सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं करना)-तुमने इसकी भी अवहेलना की; इसलिए तुम्हारा भी सुन्दरसाथ (शिष्य मण्डली) से बहिष्कार किया जाता है[1]।

श्री प्राणनाथजी की धर्म-गुरु के रूप में मान्यता

बिहारीजी के उपरोक्त निर्णय का समाचार पा, प्राणनाथजी बहुत दुखित हुए। उनके (श्रीजी के) शिष्यों ने कहा, "इसमें दुखी होने की कोई बात नहीं, बिहारीजी का स्वभाव ही ऐसा था कि एक दिन आपको उनसे अलग होना ही पड़ता"[2]।
अभी तक निजानन्द सम्प्रदाय को एक ही गादी थी, जिस पर बिहारीजीधर्म -गुरु के रूप में बैठे थे और प्राणनाथजी केवल प्रचारक थे। बिहारीजी तथा प्राणनाथजी में मत-वैभिन्य हो जाने के कारण शिष्यों ने इन्हें (श्रीजी) धर्म-गुरु की मान्यता देकर सूरत में निजानन्द सम्प्रदाय की एक और गादी स्थापित कर दी[3]।

लक्ष्मण सेठ का सूरत आगमन

ठट्ठा के विख्यात सेठ लक्ष्मण के पास निन्यानवे जलपोत थे। विदेश में भी इनका व्यापार होता था। सं० १७२८ में एकाएक इनके समस्त व्यापारी जहाज पानी में डूब गये। इनकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी। इससे इन्हें बहुत नि-राशा हुई और इन्होंने संसार से वैराग्य ले लिया। ये सं० १७२९ में प्राणनाथजी के पास सूरत आये। यहीं पर इन्हें लालदास नाम दिया गया[4]। ये घर से प्रण लेकर चले थे कि जब तक गुरु-गादी (जामनगर) के दर्शन नहीं करूंगा, तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगा। प्राणनाथजी जानते थे यदि ये इस दीन-हीन अवस्था में जामनगर

१-वही, कि० ४६ चौ० ७१-७५
२-वर्तमान दीपक. कि० ४६ चौ० ७७ ७८ ३-वही, कि० ४६ चौ० ८४
४-"सत्तरे ओगण तीसमां, शेठे तज्यूं घर गाम।
सूरत स्वामी ने मल्या, त्यां लाल धराव्या नाम॥४१॥" -वही, कि० ४७

जायेंगे तो बिहारीजी इन्हें मन्दिर में नहीं आने देंगे, जिससे शिष्यों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। अतएव प्राणनाथजी ने लालदासजी को यह कहकर भोजन करा दिया कि यहां भी गुरु-गादी स्थापित हो चुकी है, इस लिए तुम्हें अब जामनगर जाने की आवश्यकता नहीं।

सूरत में प्राणनाथजी जहां ठहरे थे. वहां 'मोटा मन्दिर' नामक एक मन्दिर की स्थापना की गयी[1]। इस मन्दिर में प्राणनाथजी की 'वाणी' को पधराया गया और गोवर्धन भट्ट को उस मन्दिर का कार्यभार सौंप कर[2] प्राणनाथजी 'सिद्धपुर के लिए रवाना हुए।

सूरत से 'श्रीजी' प्रेमपुर आये। वहां चार दिन प्रेमजी के घर रहे। प्रेमपुर से सिद्धपुर आये।

सिद्धपुर आगमन

सिद्धपुर में प्राणनाथजी भगवान उपाध्याय गोर (पुरोहित) नामक व्यक्ति के घर रहे[3]। यहां भगवानदास नामक एक भिक्षुक भिक्षा प्राप्ति के लिए 'श्रीजी' के पास आया। श्रीजी ने उसे एक अशर्फी दी[4]। एक और अशर्फी प्राप्त करने की आशा से पुनः प्राणनाथजी के पास आया। गोवर्धन ने उसे समझाया, 'इनसे अखण्ड धन (मोक्ष) लो, 'मुरदार' (नाशवान धन) ले कर क्या करोगे?' उसे गोवर्धन भाई की बात जंची। वह चर्चा सुनने लगा।

भगवानदास की भेंट एक दिन केशवदास नामक कबीर-पंथी से हुई। उसने (केशव) बताया कि कबीर ही एकमात्र ऐसे सन्त हुए हैं जिनकी पहुंच अक्षर तक थी। भगवानदास ने कहा, "कुछ दिन पूर्व यहां एक क्षत्री आये थे, जिन्होंने 'अक्षर' और अक्षर के आगे 'अक्षरातीतधाम' का भी वर्णन किया था[5]।' उनका कहना था कि 'अक्षरधाम' के परे परमधाम है जहां 'हौजकौसर' (तालाब) है, जवेरों (जवाहिरातों) की नहरें हैं, मानिक पहाड़ है, कुंज वन है, जमुनाजी भी हैं[6]। इनने उस दिन गोष्ठी में जाकर जो ज्ञान प्राप्त किया था, केशव को सारा कह सुनाया। सब

१-वही, कि० ५० चौ० ६ २-वही, चौ० १३

३-वर्तमान दीपक, कि० ५० चौ० ४२-४४ ४-वही, चौ० ४९

५-वही, चौ० ६४ ६-वही, कि० ५० चौ० ६५-६६

सुनने और समझने के बाद केशव इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि 'अक्षरातीत' की बात करनेवाला व्यक्ति अक्षरातीत ब्रह्म का अवतार होगा१ । वे उसी क्षण उनकी खोज में निकल पड़े । उनकी प्राणनाथजी से भेंट दिल्ली में रामचन्द्र पंसारी के घर हुई२ । इसी केशवदास ने प्राणनाथजी की रचनाओं के बाब (अध्याय) बांधे थे ।

पालनपुर आगमन

सिद्धपुर से प्राणनाथजी पालनपुर पहुँचे । यहां भगवानदास भिखारी के पुत्र रेवादास ने इनसे दीक्षा ली,३ और आजीवन इनके साथ रहा । पालनपुर से प्राणनाथजी मेड़ना पहुँचे४ ।

श्री प्राणनाथजी का मेड़ता (राजस्थान) आगमन

वि० सं० १७३१ में प्राणनाथजी, मोरा की जन्मभूमि, विट्ठल के यात्रा-स्थल तथा आध्यात्मिक और धार्मिक लोगों के स्थान मेड़ता, ५०० शिष्यों सहित पहुँचे५ और यहां चार माह रहे । यहां दो सौ लोगों ने प्राणनाथजी से दीक्षा ली जिसमें राजाराम और झांझन भाई का नाम उल्लेखनीय है । इन्होंने सपरिवार दीक्षा ली थी और दस वर्ष तक महाप्रभु (प्राणनाथजी) और सुन्दरसाथ की अन्न-वस्त्र की सेवा की थी६ । इनके परिवार में कुरूप और कुबड़ी ललीता नामक कन्या थी उसने भी सद्गुरुजी से दीक्षा ली और अन्त तक उनकी शिष्य-मण्डली में रही । इसका एक पद 'कीर्तन' ग्रन्थ में संगृहीत है—

'कोटि बेर ललीता कुर्बानी, मेरे धनीजी परम सुखकारी'

कहते हैं प्राणनाथजी ने पानी के छींटे से इसकी कुबड़ता और कुरूपता को समाप्त कर दिया था ।

मेड़ता की दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना 'कुरान' और 'पुराण' का समन्वय है७ । एक दिन प्राणनाथजी मस्जिद के पास से गुजरे । वहां मुल्ला नमाज के निमित्त बांग दे रहा

१-'ऐ अक्षरातीत आपे' -वही, चौ० ६८ २-वही, चौ० ६९-७०
३-वर्तमान दीपक, चौ० ४८ ४-वही, चौ० ७८
५-धर्माभियान, परिशिष्ट १ ६-लालदास-कृत बीतक, प्र० ३३ चौ० ५२,६०,६१
७ वही, पृ० ३३

था। उन्होंने मौलवी द्वारा उच्चारित कलमा (कलिमए शरीफ) के शब्दों को ध्यान-पूर्वक सुना तथा उसके अर्थ पर चिन्तन करने लगे और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि 'ला इलाह इल्लल्लाहु' का अर्थ वही है जो 'क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटऽस्थोक्षर उच्यते उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः' का है, चूंकि 'ला तो नाहीं को कह्या, इलाह तो है हक, ये अक्षर अक्षरातीत की, बात बड़ी बुजरक'[१]। अतएव कुरान और पुराण में उल्लेखनीय अन्तर नहीं है—'जो कछु' कह्या कतेब ने, सोई कह्या वेद'[२]। यदि कोई अन्तर है तो सिर्फ भाषा का ही है। यह तथ्य उन्होंने धर्म के नाम से हिन्दुओं पर अत्याचार करने वाले औरङ्गजेब को समझाना चाहा इसी उद्देश्य से गोकुल, मथुरा, आगरा होते हुए दिल्ली पहुंचे।

श्री प्राणनाथजी का दिल्ली तथा हरिद्वार आगमन

दिल्ली में प्राणनाथजी १६ माह रहे। इसी बीच (सं० १७३५) कुंभ का मेला हुआ। आप मेले में शामिल होने के लिए हरिद्वार पहुचे। वहां विभिन्न धर्मावलम्बियों से शास्त्रार्थ हुआ। वहां महाप्रभु चार माह रहने के बाद दिल्ली लौट आये। उन्होंने इस्लाम धर्म के मूल तथ्यों द्वारा औरङ्गजेब की हिंसात्मक गतिविधियों को रोकना चाहा। अपना यह सन्देश सर्वप्रथम उन्होंने बादशाह के निकटतम और प्रमुख पांच आदमियों - काजी शेख इस्लाम, प्रधान न्यायधीश रिजवी खान, अमीर अकिलखान शेख निजाम तथा नगर कोतवाल सद्दी फौलाद्-के पास भेजा[३]। इन पांच 'रूक्को' (दिव्य सन्देश-पत्र) में उन्होंने कुरआन शरीफ के गूढ़ अर्थों को उधृत किया। कयामत के निशानों की सविस्तार व्याख्या की, जो इस प्रकार है—

"राहदीन के चलने वाले आलिम ! हकीकत कलाम अल्लाह तआला की बुजुर्ग है, जुबान कुरआन शरीफ बीच इस भांति फरमाया है-शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारफत चारों मरातिबे पुराणों में कर्म, उपासना, ज्ञान और विज्ञान काण्ड के रूप में जाहिर सुभानहु तआला के बर हक है[४]। शरीयत के मतलब वजूद, नासूत मृत्युलोक से है और तरीकत का दिल से, मलकूत बैकुण्ठ से है जो ला मकान हिजाब

१-वही, प्र० ३३ चौ० ७१

२ 'खुलासा' ग्रन्थ, प्र० १२ चौ० ४२

३ लालदास-कृत बीतक, प्र० ४०

४ धर्माभियान, ० ५८

ज़ुल्मत क्षर पुरुष अन्तर्गत है। इसके आगे हकीकत और मारफत-ज्ञान विज्ञान मरातिबे का फेल जबरूत और लाहूत धाम परमधाम से जाहिर है। इसी भांति वेद और पुराणों में साफ बयान है कि कलियुग में निष्कलंक बुद्धजी जाहिर होंगे और सैतान दज्जाल को मिटाकर सब खलक को एक दीन करेंगे, इसी प्रकार ज़ुबान कुरान बीच फरमाया है कि आखिर जमाने के हजरत ईसा रूह अल्लाह और इमाम मेंहदी साहब क्यामत के वक्त इलम-लैदुन्नी ब्रह्मज्ञान की नूर रोशनी से शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारफत के सभी गुप्त भेदों को जाहिर कर अल्लाह तआला की गुमरांह भूली भटकी खलक को खबरदार करेंगे। – – – वे (मुसलमान) हिन्दू मन्दिरों को लूटने में, जुल्म सितम और कत्ल करने में सवाब मानते हैं। मन्दिर मस्जिद तो खुदा के यादगार हैं – अये अमीरो हजूर सल्लल्लाहू- अलैहि वसल्लम ने हदीसों में मुस्लिम और गैरमुस्लिम में भेद-भाव नहीं रखा। – अब हजरत मुहम्मद के नाम से सोचो कि उनके पाक पैगाम से उनके बन्दे कितने दूर हो गये हैं। – एक हदीस में हजूर ने बुत परस्ती के खिलाफ इरशाद फरमाया है; सो दरअसल बुत तो इन्सान का यह जिस्म है। जिस्म की झूठी ख्वाहिशों को पूरी करना सही मायने में बुतपरस्ती है – नफ्स (इन्द्रियों) के ताबे में न रहकर इस बुत परस्ती के खिलाफ दिल की पूरी लगन से कोशिश करना ही 'जिहाद' है। 'क्यामत' के सम्बन्धित मसौदे में लिखा था[१] —

'सूरए 'अबस' में फरमाया है कि जब कियामत आयेगी कानों के परदे फाड़ने वाला कयामत का नरसिंघा-सूर असराफील से फूंका जायेगा – और कब्र (आलमे बर्ज़ख से मुर्दे जिन्दा दोबारा होंगे। इसके सही मायने हैं कि (१)कियामत के वक्त असराफील फरिश्ता ज़ाहिर होकर ऐसा सूर (बिगुल) फूंकेगा कि उसकी बुलन्द आवाज से गड़े हुए कब्रों से मुर्दे भी उठकर दौड़ेंगे। (२) मगरिब (पश्चिम) से बिना रोशनी का आफताब (सूर्य) निकलेगा। (३) १०० गज का याजूज और १ गज का माजूज अष्टधात की दीवार को चाट-चाटकर खा लेंगे। (४) एक ऐसा बड़ा भारी दज्जाल जानवर जाहिर होगा जिसके कान हाथी के, छाती शेर की, सींग पहाड़ी बैल के, आंख सूअर और पीठ गीदड़ की होगी, तथा (५) ईसा अलैहुस्सलाम, (६) मुहम्मद मेहदी अलैहि वसल्लम और (७) असराफील। सो बीच कलाम अल्लाह तआला ने फरमाया है कि

---

१ वही, पृ० ६०

जब ये सात निशान चश्मदीद हों, तभी तहकीक कियामत का कायम होना समझना चाहिए। सो अब सातों निशानों के मगज मायने इस तरह जाहिर हैं[1] —

इन्सान का यह जिस्म-बजूद (स्थूल शरीर) तो असली कब्र है। रूह तो इस बजूद के अन्दर आत्मा है दुनिया के झूठे नाचीज काम धन्धों में बेहोस होकर मुर्दा के मानिन्द बजूद की कब्र में पड़ी है। उसे दीन इस्लाम की सही राह पर चलने की कोई खबर नहीं है। इस मानन्द मुर्दा रूह को असराफील अलैहि वमल्लम (बुद्धनिष्कलंक) नूर जलाल (परमधाम) से उतर कर इल्म इलाही (तारतम के ज्ञान) का नरसिंघा बजाकर अल्लाह तआला की ओर खबरदार करेगा। इस तरह अल्लाह को भूले हुए बन्दो को अल्लाह से मिलाने की और दीन इस्लाम के सच्चे राह पर चलाने की कामयावी का नरसिंघा (सूर) फूंकेगा। यही बजूद रूपी कब्र से मानन्द मुर्दा रूह का इल्म इलाही के सूर की पुकार से जिन्दा होना-होश में आना है। याजूज माजूज तो दरअसल में दिन और रात है। असली अष्ट धात की दीवाल यह इन्सान का जिस्म बजूद है। यह इन्सान का बजूद (शरीर) आठ प्रकार की धातुओं से बना हुआ है-मज्जा, अस्थि, मेदा, मांस, रक्त, त्वचा, शुक्र और ओज। याजूज १०० गज का लम्बा है चूंकि दिन के वक्त इन्सान का मन १०० प्रकार की ख्वाहिशों की तरफ गरक रहता है। दिन में इन्सान बजूद की बेहिसाव झूठी ख्वाहिशों के ताबे रहता है। इस तरह दिन-रात मानिन्द याजूज-माजूज अष्टधातु की दीवाल रूपी बजूद को हमेशा चाट-चाटकर मौत की तरफ दिनों-दिन ले जाते हैं। ऐसे वक्त में दज्जाल के पैदा होने की मुराद कलयुग के असर से इन्सान के दिमाग में शैतानी पैदा होने से है। चूंकि इस सख्त जमाने में इन्सान ने मुकदमे की हकीकत, इन्साफ और ईमानदारी को जानबूझकर भुला दिया है। इसलिए उसके कान सिर्फ देखने के लिए हाथी के मानिन्द बड़े-बड़े हैं लेकिन हकीकत को वे सुन नहीं सकते। ऐसे कलियुगी इन्सान की बेरहम छाती इस वक्त इतनी कठोर और पत्थर के मानिन्द कड़ी है कि उसे शेर की छाती कहा गया है। इस तरह के इन्सान में सदा आपस में बिना वजह लड़ने-झगड़ने की ख्वाहिश रहती है। इसी सवव से उसे जङ्गली पहाड़ी बैल के सींग के मानिन्द जाहिर किया गया है। ऐसे दज्जाल रूपी इन्सान की आंखें हर वक्त बुरी चीजों को देखने में लगी रहती हैं। इस कारण उसकी आंख सूअर की आंख की तरह बतलाई गई है। गीदड़ के मानिन्द पीठ का मतलब है सदा वदी

१—वही पृ० ६१

करने के लिए तैयार रहना। इस तरह जो कियामत के वक्त के सात निशान मुकर्रर हैं, इनकी इसारते रमुजें आखरी जमाने के इमाम मेंहदी अलैहि वसल्लम अरस अजीम से आकर जाहिर खोलेंगे सो वह वक्त कियामत का अब आ पहुँचा है। इसलिए अये इसलीमी अमीरो, कियामत के मुकदमे के मगज मायनों की फिकर करो और मरातिब कियामत के वक्त की खबर अपने बादशाह को भी कर दो। कुर्आने शरीफ में जो यह भी फरमाया है कि फर्दा रोज (कल के दिन) कियामत के वक्त दूसरे जामा में आखरी मुहम्मद इमाम मेंहदी साहब ग्यारहवीं सदी में आवेंगे और काजी होकर इन्साफ करेंगे। सो अब वह वक्त आ पहुँचा है[1]। अल्लाह तआला के कलाम पर ईमाम लाओ नहीं तो आंख, कान तथा दिल पर लानत की मुहर लगेगी[2]।

इन रूक्कों का किसी ने उत्तर न दिया। बारह मोमिन (शिष्य) लालदास (पोरबन्दर) भीमभाई, नागजो (सूरत), सोमजी (खम्भात), खिमाई भाई (बुन्देलखण्ड), चिन्तामणि भाई (ठट्ठानगर), शेखबदल, मुल्लाकाइम, चंचलभाई, गंगाराम, बनारसीदास तथा दयाराम (दिल्ली),[3] दो माह तक उनके द्वार पर भटके। तब इन बारह 'साथीयों' ने दूसरा रास्ता अपनाया। ये जुम्मा मस्जिद में जाकर जोर-जोर से 'सनन्ध' गाने लगे ताकि उन्हें पकड़कर कोई बादशाह तक पहुँचा दे। जब इसमें भी असफल रहे तो नन्दलाल घड़ियालची नामक एक व्यक्ति ने बादशाह के गुसलखाने के द्वार पर रुक्का की एक प्रति 'चस्पा' (चिपका) कर दी[4] और तब

'सोर भयो दरबार में और खबर भई सुलतान'

और बादशाह ने ढिंढोरा पिटवाया कि प्रार्थी जुम्मे के दिन उपस्थित हों। फिर भी बादशाह के अब्दुल्ला नामक सहायक की बदनियत के कारण वे बादशाह से न मिल सके। परन्तु ये शिष्य हिम्मत नहीं हारे। भेष बदलकर मस्जिद में सनन्ध के प्रकरण पढ़ने लगे[5] (कुछ लोगों का मत है कि उन्होंने वहां 'सनन्ध पढ़ी)। मस्जिद का इमाम

१–प्राणनाथजी के संरक्षण में निर्मित पन्ना के गुम्मद मन्दिर पर लिखा है–"दरगाह मुकद्दस इमाम मेंहदी आखिरूल"–इन दोनों उल्लेखों से स्पष्ट है कि प्राणनाथजी ने इमामत का दावा किया था।

२–धर्माभियान, पृ० ५८–६२

३–लालदास–कृत बीतक, प्र० ४३ चौ० ५–१५ ४–वही, प्र० ४२ चौ० १४

५–वही, प्र० ४३, चौ० २०

सबको बादशाह के पास ले आया। 'फेर इसारत करी सुल्तान ने, क्या मतलब है तुम'[1] 'तो शिष्यों ने कहा, 'हम तुमसे एकान्त में रूबरू बातें करना चाहते हैं, इसमें हमारी खुद की कोई गरज नहीं अर्थात् हम अपने लिए कुछ नहीं चाहते। सिर्फ इतना ही चाहते हैं-

"गहो सनातन धर्म तुम, इहिकाज सुहाये ॥४८॥
पशु हिंसा सब छाड़िके, गोबध नहीं कीजे।
असुर दण्ड प्रचण्ड जे, शिक्षा तिन दीजे ॥४९॥
अपनो ग्रन्थ कुरान जो, ताको लखि लीजे।
जग जाहिर करि इस्क को, रस हिलिमिलि पीजै ॥५०॥'[2]

किन्तु ईर्ष्यालु अमीर नहीं चाहते थे कि 'साथियों' का माहात्म्य औरङ्गजेब के सामने बढ़े: उन्हें डर था कि हमने अब तक इनके साथ जो दुर्व्यवहार किया है, इनकी जो उपेक्षा की है, इन्हें बादशाह से न मिलने देने के लिए जो चालें चली हैं, वह सब बादशाह से कह न दें, इसलिए उन्होंने बादशाह को यह कहा कि—

ऐसी तुम्हीं न चाहिए, ढिग हिन्दू बुलाये ॥५७॥
बातैं उनकी रूबरू, तुम सब सुन लीनी।
शत्रु मित्र देख्यो नहीं, यह लीन न कीनी ॥५८॥[3]

अपने भाइयों के खून से हाथ रंगनेवाला बादशाह अमीरों की ऐसी बातों से सशंकित हो उठा और उसने इन सत्याग्रहियों से कहा कि पहले तुम काजी को अपना ज्ञान समझाओ। बादशाह की आज्ञा पाकर काजी इन्हें साथ ले गया और कोतवाल के साथ मिलकर इन्हें तरह-तरह से कष्ट देने लगा। तब प्राणनाथजी ने अपने उन शिष्यों को सान्त्वना देने के लिए पत्र लिखे। इनमें दो पत्र महत्वपूर्ण हैं जिन्हें बीतककार ने 'बड़ी पत्री' और 'छोटी पत्री' की संज्ञा दी है। तब प्राणनाथजी ने विचार किया कि यह शासकीय कर्मचारी तथा बादशाह क्रूर कार्य तथा पाप करते-करते इतने निर्लज्ज हो चुके हैं कि इन्हें अल्लाह का वास्तव में डर नहीं है। अतएव जन-शक्ति के प्रयोग बिना, सिर्फ धर्म के

१-वही, प्र० ४३ चौ० २९
२-वृत्तान्त मुक्तावली, पृ० ३०६ प्र० ५९
३-वृत्तान्त मुक्तावली, पृ० ३०७, प्र० ५९

सहारे ये सन्मार्ग पर नहीं आयेंगे। हिन्दू राजाओं को इस धर्म-युद्ध में संमिलित करने के लिए प्राणनाथजी दिल्ली से चल पड़े और आमेर तथा सांगानेर होते हुए उदयपुर पहुँचे। वहां पर इन सत्याग्रहियों को भी वापिस बुला लिया, जिन्हें बादशाह ने बिना किसी बाधा के चार माह बाद मुक्त कर दिया।

अनूपशहर आगमन --

सं० १७३६ में प्राणनाथजी अनूपशहर[१] में कामा पहाड़ी पर रहे। यहीं पर 'मनन्ध' नामक ग्रन्थ की रचना हुई[२]। यहां से सांगानेर और आमेर होते हुए उदयपुर पहुँचे। आमेर में दो दिन रहे[३]।

उदयपुर आगमन --

श्री मुरलीदास[४] आदि कुछ लोगों के अनुसार प्राणनाथजी उदयपुर सं० १७३७ में पहुँचे और वहां दस दिन रहे; जबकि श्री माताबदल आदि के अनुसार प्राणनाथजी का उदयपुर आगमन सं० १७३६ में हुआ। लालदासजी ने भी प्राणनाथजी का उदयपुर आगमन सं० १७३६ में माना है। उनके अनुसार सं० १७३७ में प्राणनाथजी मन्दसौर में थे[५]। प्राणनाथजी का उदयपुर आगमन सं० १७३६ के अन्त में मानना युक्ति संगत है। चूंकि १७३५ में वे हरिद्वार गये। वहां चार माह रहे और ८ माह दिल्ली रहे। दिल्ली से 'श्रीजी' अनूपशहर आये। इस प्रकार प्राणनाथजी का अनूपशहर आगमन सं० १७३६ में ठहरता है। लालदास के अनुसार, १७३७ के आरंभ में 'महाप्रभु' मन्दसौर पहुँचे। मन्दसौर से पूर्व वे उदयपुर आये थे। उनका उदयपुर आगमन सं० १७३७ से पूर्व अर्थात् वि० सं० १७३६ में ही ठहरता है। दिल्ली से मुक्त होनेवाले बारह शिष्य यहीं गुरु (प्राणनाथजी) से मिले। इसी समय औरंगजेब ने उदयपुर पर चढ़ाई की[६]।

१-अनूपशहर स्वामी आव्या, कामा पहाडी पासे रह्या।　　—वर्तमान दीपक, कि० ६५

२-धर्माभियान, परिशिष्ट २

३-पोते पधार्या आमेर भणी, बे दिवस त्या सेवा बनी।　　—वर्तमान दीपक, कि० ६५

४-धर्माभियान के लेखक

५-संवत सत्रह मै छतीसा, लगा मैं तीसा जब।
मन्दशोर के बीच मे, आए पहुँचे तब ॥ २ ॥　　—लालदास-कृत बीतक, पृ० २६५ प्र० ५१

६-जब औरंग चढा राने पर, हुआ मुलक चल विचल ॥१॥　　वही, पृ० २६५ प्र० ५१

प्राणनाथजी ने यहां के शासक, राजसिंह[1] को औरङ्गजेब से युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित किया परन्तु असफल रहे। उसने मुगल सेना से भयभीत होकर प्राणनाथजी को उदयपुर छोड़ देने के लिये कहा[2]।

यहीं पर प्राणनाथजी तथा उनके शिष्यों ने 'निर्गुण भेष' धारण किया[3]। उदयपुर में निम्न लोग इस सम्प्रदाय में दीक्षित हुए--

लाधु सतानी, अमराजी, देवजी, हरसुन्दर, मंगलजी भाई, गिरधर, केशवदास, बेनीदास, शोभा, भीम, भोगी वीरजी, प्रेमदास, जगन्नाथ, लक्ष्मीदास, मोती नारायण, वासुदेवभाई और उनकी मां सहुद्रा, मोटी बाई, कुंजा बाई, कमलाबाई, खुशाली बाई, लालबाई, नागर, भूरो, भूत, केसर, भानाबाई, गंगाबाई लाड़बाई, कृष्णावती, बालबाई, सोना, फूला, जीवी, देवबाई, सहु और गङ्गाबाई, जगूबाई, बछूबाई, फूलबाई, भोगन, मथुरी, आईगौरी, मनू, अमेरनी, दानी, खेती, मनी, वेरामी, नानीबाई, गोमाबाई, बीरबाई, नाथीबाई, भागबाई, ताराबाई, मनीबाई, पूरबाई, गंगबाई, माना, अमृत, करमा, चीमा, महोदरी, कानबाई, चीमाबाई, सजनी और दीपाबाई[4]।

तब उदयपुर से रामपुरा आये। वहां पूरनदास के यहां दूधलाईपुरा में रहे[5]। वहां से मन्दसौर आये।

१–सो ले गया, 'राजसिंह' पे, कहीं कानो लाग कान ॥३॥ –वही, पृ० २६१, प्र० ५०

२–राणा ने समझा कि गौ, ब्राह्मण के विरोधी औरंगजेब के उदयपुर पर चढ़ाई करने का कारण यहां सन्तों का आगमन है, इसीलिए उसने प्राणनाथजी से उदयपुर से अन्यत्र जाने के लिए कहा।

३–भेष बदल सबन के, श्रवणों पहनाई कानन
और साज सब फकीरी, सो दिया हाथ मोमिन ॥५५॥ –लालदास बीतक, पृ० २५८, प्र० ४९

× × × × ×

बासन बरतन सर्गुन, बख्श दिया सबन
तूंबा, कूबडी गोदड़ी, ए भेष पहिना मोमिन ॥२९॥ –वही, पृ० २६३ प्र० ५०

४–इससे स्पष्ट है कि प्राणनाथजी की शिष्य मण्डली में पुरुषों के साथ–साथ स्त्रियों की संख्या भी विशाल थी। — वही, पृ० २६३–६५, जामनगर प्रकाशन

५–वहां सेती चल के, आए रामपुरा के गाम।
पासे पुरा दुधलाई, पूरनदास के ठाम ॥४२॥ वही, पृ० २६५ प्र० ५०

मन्दसौर आगमन--

सं- १७३७ में प्राणनाथजी मन्दसौर आये । यहां पूरनमल चारन के गांव में मोमिनों ने हवेली बनाई और वहीं रहे । यहां की निम्न घटनाएं उल्लेखनीय हैं-

(१) लालदास ने इब्राहीम की सहायता से कुरान उतारा[१] ।

(२) श्री प्राणनाथजी ने कृष्णदास नाम से बूंदी-नरेश भाऊसिंह के पास मुकुन्ददास द्वारा पत्र भिजवाया[२] ।

(३) दौलतखान नामक पाठन ने प्राणनाथजी से 'तारतम मन्त्र' लिया[३] ।

मन्दसौर से प्राणनाथजी सीतामऊ होते हुए नौलाई पहुँचे । वहां एक दिन रहकर तुनेरे आये । यहां भी एक दिन रहे । सं०१७३७, भादो सुदी छठ को उज्जैन आये । यहां तेईस दिन तक अपने विभिन्न शिष्यों के यहां रहे । लालदासजी के अनुसार यह (उज्जैन) प्राणनाथजी की अट्ठाइसवीं मंजिल थी[४] । उज्जैन से नौलाई और नौलाइसे बुरहानपुर होते हुए औरंगाबाद में भावसिंह के पास पहुँचे[५] ।

औरङ्गाबाद की बीतक--

औरङ्गाबाद के नरेश भावसिंह को प्राणनाथजी ने औरंगजेब के विरूद्ध लड़ाई

१-इन समय इब्राहीम करने आया दीदार ॥३१॥
× × ×
तब उसने उतराइया, सूरत एक कुरान ॥३३॥
× × ×
यों करते उतरे, सिपारे जो चार
सोलह सत्रह अठारहे उन्नीस, ताको करने लगे विचार ॥४८॥
फेर सिपारा तीसमा, जाकी छतीससी सूरत
सो लिया उतार के, फेर लगे अल्फलाम मीमसे इन ॥४९॥
फेर दूसरो तीसरो, लगे चौथो उतारन
पाचमा शुरू हुआ, उतार चले मोमिन ॥५०॥ -वही, पृ० २७० प्र० ५१

२-मुकुन्ददास को इत थे, भेजे भावसिंह के पास ॥८२॥ -वही, पृ० २७३ प्र० ५१

३-इन सुनने को आवत पठान दौलतखान ॥२४॥ -वही, पृ० २६७ प्र० ५१

४-लालदास-कृत बीतक, पृ० २७४ प्र० ५२ चौ० १

५-वही, पृ० २७५, प्र० ५२ चौ० १५-१७

करने को प्रोत्साहित किया और उसे बताया कि हिन्दू और इस्लाम धर्म के मूलभूत सिद्धान्त एक ही हैं। भावसिंह ने प्राणनाथजी से कहा कि मेरे दरबारियों में जो मुसलमान हैं, आप उन्हें यह समझाइए। उनसे लालदास का वाद-विवाद हुआ। जहान मुहम्मद तथा अन्य मुसलमानों ने प्राणनाथजी का शिष्यत्व ग्रहण किया। पर फतह मुहम्मद खान नामक दरबारी ने दुराग्रह के कारण बात न मानी। इसी समय भावसिंह की मृत्यु हो गयी। फतह मुहम्मद ने अत्याचार करना शुरू किया, प्राणनाथजी को औरंगाबाद छोड़ना पड़ा। यहां प्राणनाथजी चार माह रहे। यहां से बुरहानपुर[1] और बुरहानपुर से आकोट[2] आये।

आकोट का वृत्तान्त

यहां से हिन्दू-इस्लाम एकता में बाधा उपस्थित करने वालों (फतह मुहम्मद आदि) को प्राणनाथजी ने ऐसा दुराग्रहपूर्ण मार्ग छोड़ देने के लिए पत्र लिखे। आकोट के चौधरी ने भी श्रद्धापूर्वक प्राणनाथजी की सेवा की। दो-चार बार उन्हें घर पर भी निमंत्रित किया[3] आकोट से कापस्तानी आये। यहां पांच-दस दिन रहकर एलिचपुर आये[4] यहां तीन-चार दिन रहे। यहां से देवगढ़ आये। देवगढ़ में चार दिन रहे। वहां से रामनगर आये।

रामनगर की बीतक

वि० सं० १७३८ में प्राणनाथजी रामनगर आये[5]। यहां लगभग सौ व्यक्तियों ने इनसे दीक्षा ली, जिसमें रंचोबाई बढ़ई, पूरन नाऊ और गिरधर दर्जी भी सम्मिलित थे। पन्ना महाराज छत्रसाल बुन्देला के भतीजे दीवान देवकरण तथा हरिसिंह और सूरतसिंह भी जाग्रत [दीक्षित] हुए। औरंगजेब द्वारा भेजे गये शेखखिद्र खां ने भी प्राणनाथजी का

१–लालदास–कृत बीतक, पृ०२९८ प्र० ५५ चौ० १

२–वही, पृ० ३०३ प्र० ५७ चौ० १

३–वही, पृ० ३०६ प्र० ५७ चौ० २६–२७

४–फेर वहा से चले, आए जी कापस्तानी ॥४३॥

× × ×

फेर दिन दस पांच रहके, आए एलचपुर पहुँचे ॥४६॥ –वही, पृ० ३०७ प्र० ५७

५–प्रथम प्रणाम, पृ० १७

शिष्यत्व ग्रहण किया[१]। यहां लगभग बीस सुन्दरसाथ (शिष्य) धाम चले[२]। रामनगर के राजा के विरोध करने पर प्राणनाथजी सं० १७३९ में, अगहन मास सुदी दस को रामनगर से गढ़े आ गये[३]।

गढ़े की बीतक

गढ़ा रामनगर राज्य का ही एक गांव था। प्राणनाथजी को पूस सुदी पांच को बीरजू नामक व्यक्ति ने खबर दी थी कि आपके आने के बाद रामनगर के राजाने 'अस्तल' अथवा स्थल (जहां प्राणनाथजी रहते थे) खुदवाया है[४]। इधर गढ़े में भी हाकिम, भगवन्तराय के बेटे ने वैरागियों को लूटने का प्रयास किया[५] तो प्राणनाथजी ने अभिशाप दिया कि गढ़ा गरक हो जायेगा[६]। गढ़े से 'श्रीजी' अगरिया आये। यहां से लालदासजी व उत्तमदासजी को छत्रसालजी के पास भेजा[७]। अगरिया से बिलहरी आये। यहां ग्यारह दिन रहे[८]। फिर पन्ना आये।

पन्ना का वृत्तान्त

छत्रसालजी ने देवकरण को लालदासजी के साथ 'श्रीजी' को पन्ना ले आने के लिए भेजा[९]। 'श्रीजी' पन्ना में सं० १७४० में अमराई घाट पर पहुँचे[१०]। वहां से कुछ

१—लालदास—बीतक, प्र० ५८—५९

२—इन भाति दज्जाल ने, साथी लिया छिनाये।
एकको मजल पहुंचावहीं, तोलो दूजा रहने न पाये ॥४६॥ —वही, प्र० ५८

३—सवत सत्रहसै उनतालीं से, मास अगहन सुदी दसमें
चले रामनगर से, फेर आए चौदश गढ़े में ॥१३२॥ —वही, प्र० ५८

४—पूस सुदी पाच को, वीरजी दई खबर
रामनगर राजा ने अस्तर खोदयो भली तर — वही, पृ० ३२८

५—वही, प्र० ५८

६—लागी लानत 'गढ़े' को उस दिन से हुआ 'खुवार' — वही, प्र० ५८

७—फेर अगरिये से भेजे, लाल उत्तम जीवन — लालदास बीतक, पृ० ३२९

८—अग्यारह दिन बिलहरी रहे, सब चले होय जमा। — वही, पृ० ३३७

९—'श्रीजी' साहिबजी को बुलावने, जाओ देवजी तुम
'लाल' 'उत्तम को ले जाओ, सामे आए बुलावन हम —वही, पृ० ३३१

१०—संवत सत्रह सौ चालीसा, पधारे पन्ना मे। —वही, पृ० ३३४

दूर पर अपने 'दीन (धर्म सम्प्रदाय) का झंडा' लगाया[1] (यह झंडा आज भी वहां है)। इसी समय अफगान खां ने छत्रसालजी पर चढ़ाई की[2], इसीलिए वे पन्ना न आ सके और प्राणनाथजी को अपनी राजधानी मऊ में ही बुलवा लिया जहां निंदुनी दरवाजे पर उनकी भेंट हुई। वहां उन्होंने 'श्रीजी' का शिष्यत्व ग्रहण किया।

छत्रसाल ने प्राणनाथजी की प्रेरणा से बुन्देलखण्ड के विभिन्न राजाओं से युद्ध कर तथा उन्हें परास्त कर विस्तृत राज्य स्थापित किया जिनमें जलालपुर, ओरछा आदि का नाम उल्लेखनीय है[3]। सं० १७४४ में प्राणनाथजी चित्रकूट चले गये[4]। यहां एक वर्ष रहे[5]। (यहीं पर 'क्यामतनामा' की रचना हुई)। वहां से प्राणनाथजी पन्ना लौट आये जहां सं० १७५१ में वे परमधाम सिधारे।

सम्मान और विरोध

(१) दीपबन्दर की घटना--प्राणनाथजी वि० सं० १७२२ में धर्माभियान पर निकले तो सर्वप्रथम दीपबन्दर गये। अनेक लोग इनका उपदेश सुनने आते। चारों ओर इनकी चर्चा होने लगी। अन्य पण्डित इनसे ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने एक व्यक्ति को फिरंगी (शासकीय कर्मचारी) के पास चुगली करने के लिए भेजा कि मिहिरराज नामक सन्त समस्त धर्मों तथा देवी-देवताओं की निन्दा करते हैं। चुगलखोर फिरंगी के यहां जा रहा था तो रास्ते में उसे एक अजनबी मिला[6]। उसने चुगलखोर से पूछा, 'कहां जा रहे हो?' उसने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। अजनबी ने कहा कि क्या तुमने उसे निंदा करते अपने कानों से सुना है? चुगलखोर से नकारात्मक उत्तर पाकर अजनबी

१-डेरा किया अमराई मे ठौर झंडे की चिन त्याय ॥११॥ —वही, पृ० ३३१

२-वह वखत महाराज को थी मुहिम अफगन ॥३६॥ —वही, पृ० ३३२

३-संवत सत्रह से तैंतालीस, असवारी करी जब
हस्ती पर चढाये के, आगे सेना चलाई तब ॥४५॥ —वही, पृ० ३४३-४५

४-प्रथम प्रणाम पृ० १७

५-श्री राज चले चित्रकूट को महाराजे लिया दिल मे॥१५९॥

× × ×

एक बरस तहां रहे, इत खोले अल्ला कुलाम ॥१६१॥ —लालदास-बीतक पृ० ३४५

६-लोगों की धारणा है कि यह अजनबी हुकुम का स्वरूप (दैविक शक्ति) था।

ने उसे समझाया, 'तुम जानते हो फिरंगी बड़ा जालिम है; वह महात्मा को बड़ा कष्ट देगा। यदि निन्दा करने की बात असत्य सिद्ध हुई तो तुम निरपराध साधु को दण्ड दिलाने के कारण घोर पाप के भागी बनोगे। उसने अजनबी की बात मान ली।

श्री प्राणनाथजी के शिष्यों को जब ज्ञात हुआ कि चुगलखोर फिरंगी से चुगली करने गया है तो वह उसके अत्याचारों की कल्पना से ही इतने भयभीत हुए कि उनकी प्राणनाथजी के पास जाने की हिम्मत न हुई। पर जैरामभाई और उसका परिवार विचलित न हुआ। जब शिष्यों को ज्ञात हुआ कि फिरंगी से चुगली नहीं की गयी तो पुनः चर्चा सुनने आने लगे और प्राणनाथजी से क्षमा-याचना की[1]।

(२) अब्बासी बन्दर की घटनाएं

वि० सं० १७२८ में प्राणनाथजी अब्बासी बन्दर (अरब) पहुँचे। अब्बासी बन्दर में साधु-सन्तों का आगमन बहुत ही कम होता था। शहर के कोने-कोने से स्त्रियां भी चर्चा (धर्मोपदेश) सुनने के लिए आतीं। अपने आदमियों के रोकने पर यही उत्तर देती, 'मन तो हमारा वहीं है जहां सदुपदेश होता है; शरीर को यदि तुम रोकना चाहते हो तो इसे हम प्रसन्नता से त्याग सकती हैं। शरीर को रोक कर तुम हमारी आत्मा को नहीं रोक सकते।' तब सब लोग भैरव के पास प्रार्थना करने गये। उसने उत्तर दिया 'यहां कोई बुरा काम तो होता नहीं जो तुम स्त्रियों को रोकते हो। तुम्हारे रोकने पर यदि वे नहीं रूकीं, तो मैं इसमें कुछ नहीं कर सकता।'

भैरव ने भी जब उनकी एक न सुनी तो स्त्रियों की मुखिया तेजबाई के पास गये। उससे कहा कि तुम्हारा अनुकरण कर औरतें चर्चा सुनने जाती हैं। तुम न जाओगी तो अन्य स्त्रियां भी जाना बन्द कर देंगी। तेजबाई ने उत्तर दिया कि मैं तो जाऊंगी। वृद्धावस्था में मेरा, धर्म की शरण लेना उचित ही है। तुम जानो, तुम्हारा काम। तुम्हारी स्त्रियों को वहां आत्मलाभ न होता तो वे स्वयं ही न जातीं। यहां भी उनका वश न चला।

इसीबीच अब्बासी बन्दर का हाकिम बदल गया। नया हाकिम हिन्दू-साधु सन्तों पर तरह-तरह के अत्याचार करता था। जब उसे ज्ञात हुआ कि भैरव के यहां साधु का धर्मोपदेश होता है तो वह भैरव पर अत्याचार करने लगा। अतएव प्राणनाथजी

१-वर्तमान दीपक पृ० १८७-८८

को अरब छोड़ना पड़ा। वे वहां से ठट्टा आ गये[१]।

(३) नलिया और खम्भालिया की घटना

श्री प्राणनाथजी के अनुरोध पर विहारीजी नलिया आये। उन्होंने देखा सुन्दरसाथ में प्राणनाथजी का सम्मान मुझसे भी अधिक है। उन्हें डाह हुई। वे प्राणनाथजी के बढ़ते हुए सम्मान को रोकना चाहते थे। उन्होंने 'श्रीजी' से कहा, तुम धर्म का काम छोड़कर हल्लार में पुनः दीवानपद संभालो। 'प्राणनाथजी इसके लिए तैयार न हुए तो उन्होंने खम्भालिया के राजा को प्राणनाथजी के खंभालिया आनेकी सूचना दी। खंभालिया का राजा प्राणनाथजी से शत्रुता रखता था। उसने प्राणनाथजी को बन्दी बनाने के लिए अपने आदमियों को तैनात कर दिया। नलिआ से प्राणनाथजी जब नाव में बैठने लगे तो उन्हें छींक आ गई और वे खम्भालिया न जाकर थल मार्ग से होकर धोराजी चले गये[२]। पर बाईजी राज और प्राणनाथजी के शिष्य जब खम्भालिया पहुँचे तो उन्हें दरबार में ले जाया गया, जहां उन्होंने स्वयं को भाटेला ब्राह्मण कह कर मुक्ति पायी[३]।

(४) मन्दसौर की घटनाएं

पूरनमल चारन (जिसके गांव में प्राणनाथजी रहे) की मां प्राणनाथजी और मोमिनों का सम्मान करती थी, परन्तु पूरनमल के भाई का विचार था कि वैरागी वेषधारियों के पास बहुत धन होता है। अतएव उसने इन साधुओं को लूटना चाहा। मोमिनों ने जाकर 'चारन' से फरियाद की। उसकी मां ने पुत्र से कहा, 'यदि तुमने यह निन्दनीय कार्य किया तो मैं आत्म-हत्या करूंगी'[४]।

(अ) इब्राहिम, जिसकी सहायता से लालदासजी ने कुरान के कुछ सिपारे लिखे थे, सजातीय लोगों के कहने से अपने वचन से मुकर गया और आगे मदद करने की बजाय उसने लालदास के द्वारा लिखित तफसीर भी छीन लेनी चाही[५]। तब पठान

१—वही, कि० ३९

२—वर्तमान दीपक, कि० ४२

३—सविस्तार वर्णन पहले किया जा चुका है।

४—लालदास—कृत बीतक, पृ० २६७

५—तब इब्राहीम के दिल मे, आया बैठा दज्जाल
लेऊं तफसीर छीन के, तो मन कौ करो खुशहाल ॥५१॥ —वही, पृ० २७० प्र० ५१

मुहब्बत खान, जिसका पठानों में सर्वाधिक दबदबा था, ने इब्राहीम को जान से मार डालने की धमकी दी[1] जिससे इब्राहीम अत्यधिक भयभीत हुआ और अपनी गलती के लिए प्राणनाथजी से क्षमायाचना की[2] ।

(५) औरंगाबाद की घटनाएं

(अ) मुकुन्ददास प्राणनाथजी का पत्र लेकर औरंगाबाद पहुँचे तो राज्य दरबार के पण्डितों और पुरोहितों ने, जिनमें रामदास का नाम उल्लेखनीय है, उनका विरोध किया और राजा से नहीं मिलने दिया । मुकुन्ददास देवी के मन्दिर में, जहां राजा नित्य-प्रति दर्शन के लिए आता था, छिपकर बैठ गये और भावसिंह के वहां आगमन पर उन्हें प्राणनाथजी का सन्देश दिया । रामदास ने राजा के समक्ष मुकुन्ददास की सेवा करने की इच्छा व्यक्त की । मुकुन्ददास ने भावसिंह को अपनी पीठ दिखाई जिसपर रामदास द्वार मारी गयी लाठियों और कोड़ों के निशान थे । राजाने रामदास पण्डित को बहुत फटकारा और मुकुन्ददासजी का अत्यधिक सम्मान किया । दरबार के पण्डितों और मुकुन्ददास में शास्त्रार्थ हुआ, पण्डित पराजित हुए । भावसिंह बहुत प्रभावित हुआ और मुकुन्ददास के साथ शासकीय कर्मचारियों को भेजा और उन्हें प्राणनाथजी को राजकीय साज-सम्मान के साथ औरंगाबाद ले आने का आदेश दिया और बूंदी में बाई-जीराज और अन्य लोगों के ठहरने की व्यवस्था कर दी[3] ।

(आ) औरंगाबाद में मुसलमानों तथा पठानों से भी प्राणनाथजी का वाद-विवाद हुआ । जहान महम्मद, अब्बलखान, गाजीखान आदि ने प्राणनाथजी का सम्मान किया और शिष्यत्व ग्रहण किया । फतह मुहम्मद भी प्राणनाथजी के धर्मोपदेशों से प्रभावित हुआ, पर यह सोचकर कि हमारे पूर्वजों ने कभी हिन्दुओं का शिष्यत्व ग्रहण नहीं किया, वह प्राणनाथजी का विरोध करने लगा । भावसिंह की मृत्युपरान्त वह मोमिनों को कष्ट देने लगा और प्राणनाथजी औरंगाबाद से चले गए[4] ।

१—सुन शुकन मुहब्बत खान, बहुत हुआ गुस्से
सिर भानों इब्राहीम का, मन्दशोर के बीच में ॥५९॥ वही, पृ० २७०

२—कह्या मैं तुम्हारा गुलाम, मुझसे भई भूल
अब तुम माफ करो, मैं तुमसे किया न सूल ॥७०॥ —वही, पृ० २७० प्र० ५१

३—लालदास-कृत बीतक, प्र०५३ पृ० २७४–८०

४—इन समय भावसिंह को, बाका (मृत्यु) हुआ जब ॥१२८॥ —वही, प्र० ५३

(६) रामनगर की घटनाएं

मन्दिरों और साधुओं के विरोधी औरंगजेब को जब ज्ञात हुआ कि रामनगर में एक प्रसिद्ध वैरागी है तो उसने पुरदलखान को इनकी टोह लेने को भेजा[1]। पुरदलखान ने वहां तालुकेदार शेख खिदरखां को यह कार्य सौंपा।उसने रामनगर के राजा को वैरागी को पकड़वा मंगाने का आदेश दिया। राजा ने कोतवाल द्वारा प्राणनाथजी के पास संदेश भेजा कि आप कुछ दिनों के लिए रामनगर से चले जायें। मेरे होते हुए यदि आपको शाही सेना ले जाये तो यह मेरे लिए अपमान की बात होगी, लोग कहेंगे कि मैं हिन्दू राजा होकर साधु की रक्षा न कर सका। शाही लश्कर के जाने के बाद मैं आपको पुनः बुलवा लूंगा।' प्राणनाथजी ने उत्तर दिया ' राजा को डरने की जरूरत नहीं, मैं तो चाहता हूं कि किसी भी तरह औरंगजेब मुझे बुलाये। मुझे पकड़ने वाली शाही सेना को आने दो, तुम मेरी तरफदारी मत करना। राजा ने ऐसा ही शेखखिदर से कहा। शेखखिदर का दीवान गरीबदास शाही-परवाना लेकर प्राणनाथजी के पास पहुँचा। वह 'श्रीजी' के धर्मोपदेश से बहुत प्रभावित हुआ और खिदर को कहा कि ये तो इमाम मेंहदी हैं। खिदर भी प्राणनाथजी का धर्मोपदेश सुनने गया। कुरान-पुरान का एक साथ पाठ होते देखकर तथा उनकी शिष्य मण्डली में हिन्दू-मुस्लिम शिष्यों में एक जैसा आहार-व्यवहार देखकर बहुत प्रभावित हुआ। कुछेक प्रश्नोत्तरों के बाद उसने प्राणनाथजी का शिष्यत्व ग्रहण किया और राजा के समक्ष प्राणनाथजी की बड़ी तारीफ की। राजा ने श्रीजी को निमन्त्रण दिया। इर्ष्यालु लोगों ने राजा को यह कहकर श्रीजी के पास जाने से रोक दिया कि इनके पास 'भुरकी' (जादू) है जो इनके समीप जाता है, उसपर डाल देते हैं जिससे शत्रु भी उनका विरोध नहीं कर पाते। राजा उनके कहने में आकर दूर से ही प्राणनाथजी के दर्शन कर लौट गया।

जब पुरदल खान को यह सब ज्ञात हुआ तो उसने धामौनी के अहदीगुलाम मुहम्मद को भेजा। शाही दबदबा देखकर राजा ने यह सोचा कि इनके कारण कहीं मुझे भी बादशाह की कोप दृष्टि का शिकार न बनना पड़े। अतएव उसने प्राणनाथजी को रामनगर छोड़ देने के लिए बाध्य किया।

(७) पन्ना की घटनाएं

वि० सं० १७४० में प्राणनाथजी और छत्रसालजी की भेंट मऊ में 'तिंदुनी'

१–लालदास–कृत बीतक, प्र० ५८

दरवाजे पर हुई । छत्रसाल ने पहले तो उनका शिष्यत्व ग्रहण करने में असमर्थता व्यक्त की । जब श्रीजी ने छत्रसाल को बारह वर्ष पूर्व मिलने वाली मुहर जैसी अनेकों मुहरें दिखाई तो छत्रसालजी ने सपरिवार उनसे दीक्षा ली ।

इसी समय अफगानखां ने बुन्देलखण्ड पर चढ़ाई की; जनता और फौज के लोग कहने लगे कि यदि इस युद्ध में हमें विजय मिली तो हम आपको अवतारी पुरुष मानेंगे[1] । इस युद्ध में छत्रसालजी की विजय हुई । अनेकों तरह के विरोध होने पर भी छत्रसालजी को प्राणनाथजी पर अपूर्व श्रद्धा रही ।

जब छत्रसालजी और इनके चाचा बलदीवान को ज्ञात हुआ कि ये कुरान और पुराण दोनों पढ़ते हैं तो चाचा का ईमान डगमगा गया और उन्होंने पण्डितों और मुल्लाओं से प्राणनाथजी का शास्त्रार्थ करवाना चाहा[2] । मुल्ला तथा पण्डित शास्त्रार्थ में पराजित हुए । प्रणनाथजी के समन्वयवादी दृष्टिकोण को परख लेने पर उनकी 'श्रीजी' पर अपूर्व श्रद्धा हुई और उन्होंने सुन्दरसाथ सहित गुरु की धन-धान्य से सेवा की[3] ।

पण्डितों से शास्त्रार्थ

(१) काह्नजी भट्ट से शास्त्रार्थ

काह्नजी भट्ट जामनगर के विख्यात पण्डित थे । इन्हें भागवत का अच्छा ज्ञान था । श्री देवचन्द्रजी ने भी चौदह वर्ष तक इनसे भागवत सुनी थी । पिता के कहने पर प्रणनाथजी और उनके भाई गोवर्धन ठाकुर 'श्यामजी' के मन्दिर में कथा सुनने गये और भट्टजी से पूछा-लोक कितने हैं ?' भट्टजी ने उत्तर दिया-'चौदह लोक, सात पाताल और सात लोक हैं,

प्राणनाजी-'तत्व कितने हैं ?

भट्टजी-'तत्व पांच हैं।'

१-इन समय लोग लसकर के कहे, जो हम ए पावे फते
तो एही हसारा हक है, लोग मांगे ए माजजे ॥२८॥

२-कही ए जो बात कुरान की, तुमसो छिपाई लो आज
सो ए अब कहत हैं, इनमें बात अपनी है सब ।

३-तने मन धन से, सब किया निछावर
हाथ जोड ठाडे भये, सिफत भई सब ऊपर ॥७१॥

प्राणनाथजी—'गुण कितने हैं ?'

भट्टजी-'गुण तीन हैं रज गुण, तम गुण, सत्व गुण ।'

प्राणनाथजी-'प्रलय कितने हैं ?'

भट्टजी-'प्रलय चार हैं नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्रलय और महा प्रलय। चौथी प्रलय-महाप्रलय-में इन समस्त वस्तुओं-चौदह लोक, पांच तत्व और तीन गुण का नाश हो जाता है ।'

प्राणनाथजी-'परमात्मा का रूप क्या है, वह कहां रहते हैं ?'

भट्टजी-'क्षीर सागर के मध्य में स्फटिक भूमि है । इस भूमि पर एक वृक्ष है । परमात्मा वहां 'अंगुष्ठ समान' (अंगूठे के बराबर का आकार धारण कर) होकर उस वृक्ष पर निवास करते हैं और वह अनश्वर है ।'

प्राणनाथजी-'आप कहते हैं कि चौदह से पन्द्रहवां लोक नहीं । अतएव मानना पड़ेगा कि क्षीर-सागर भी चौदह-लोक में ही है । आपके अनुसार चौथा प्रलय महाप्रलय में चौदह-लोकों का नाश हो जाता है, तब वह अनश्वर परमात्मा कहां रहता है?'

भट्टजी 'श्रीजी' के इस प्रश्न को सुनकर अवाक् रह गये और उत्तर दिया कि इस प्रश्न का मैं क्या, ब्रह्मा भी उत्तर नहीं दे सकता[1] । प्राणनाथजी ने कहा,' ब्रह्माजी की बात तो दूर रही, आपसे ही भागवत की कथा श्रवण करने वाले देवचन्द्रजी इसका उत्तर दे सकते हैं ।'

[२] हरजी व्यास से शास्त्रार्थ

जाम-राजाने प्राणनाथजी को जो जागीर दी थी, वह जूनागढ़ के पास थी । वहां आते-जाते हुए प्राणनाथजी रास्ते में जूनागढ़ रूकते और धर्मोपदेश करते । कानजी नामक व्यक्ति भी चर्चा सुनने आता था । यह हरजी व्यास, जोकि भागवत के प्रकाण्ड पण्डित थे, के घर काम करता था । एका एक हरजी व्यास बीमार हो गये । उसका अंतिम समय निकट जानकर के लोग दान करवाने लगे तो उसने कहा-'दान तो स्वर्ग-लोक प्राप्ति का साधन है, मैं इस इण्ड (स्वर्ग लोक) का जीव नहीं हूं फिर मुझसे दान क्यों करवाया जा रहा है ?' उसने आगे कहा 'मैं यह दाझ (इच्छा) लेकर मर रहा हूं कि शास्त्रार्थ में मुझसे टक्कर लेने वाला कोई नहीं मिला अर्थात् मेरे तर्कों को किसी ने

१-वर्तमाव दीपक, कि० १९

नहीं काटा, जिसे मैंने 'हां' कहा, उसे किसी ने 'न' नहीं कहा'[१]।

कानजी ने उसकी बात सुनी तो सोचने लगा यदि यह स्वस्थ हो जाये तो इसका प्राणनाथजी से शास्त्रार्थ करवा कर इसकी यह दाझ मिटा दूंगा। धीरे-धीरे हरजी व्यास स्वस्थ होने लगा। कानजी ने उसकी बहुत सेवा की। व्यास कानजी की सेवा से बहुत खुश हुआ और कानजी को मुह-मांगा इनाम देना चाहा तो उसने कहा, 'मैं यही इनाम मांगता हूं कि आप एक सन्त से शास्त्रार्थ करें।' हरजी व्यास ने प्रसन्न होकर कहा-'शाबाश कानजी, एक को तुमने सेवा की और दूसरा 'गुण चर्चा आदरी,' बुलाओ वह साधु कहां है।' कानजी ने प्राणनाथजी से, जो उन दिनों जूनागढ़ ही में थे, सारी बात कही और दूसरे दिन वह उनके साथ व्यासजी के घर आया। वह भागवत की कथा करता और प्राणनाथजी सुनते। इसी तरह एक माह व्यतीत हो गया। चर्चा करते हुए जब उसने नारायण-भूमि और हीरे के मन्दिर का वर्णन किया तो प्राणनाथजी ने पूछा-'हीरे का मन्दिर कहां है ?' व्यासजी ने उत्तर दिया-'अक्षर भूमि में है और इस मन्दिर का विस्तार चौरासी लाख योजन है।' पुनः प्राणनाथजी ने प्रश्न किया, 'यह अक्षरधाम (अक्षर भूमि) कहां है ? चौदह लोक के अन्दर है या बाहर ?' व्यासजी ने कहा-'इस अक्षर-भूमि को नारायण-भूमि भी कहते हैं। यहां (इस भूमि पर) आदिनारायण रहते हैं। शास्त्रों के अनुसार यह आदिनारायण क्षीर-समुद्र में जो श्वेत द्वीप है, उस द्वीप में रहते हैं। जिससे स्पष्ट है कि अक्षर-भूमि इसी श्वेत द्वीप में है।' तब 'श्रीजी' ने कहा-'श्वेत द्वीप चौदह लोक में है या नहीं ? तुम्हारे मतानुसार श्वेत द्वीप क्षीर-सागर में है। क्षीर-सागर इस लोक में ही है। शास्त्रों के अनुसार यह लोक तो प्रलय में नाश हो जायेगा, तब क्षीर-सागर कहां रहेगा और 'अक्षर' (नाश न होने वाली) भूमि कहां जायेगी ?' तब व्यासजी ने कहा-'मूर्ख आचार्यों ने ही जब इसका खुलासा शास्त्रों में नहीं किया तो मैं आपके प्रश्न का क्या उत्तर दूं ? मैं तो वही बता सकता हूं-जो शास्त्रों में लिखा है।' व्यासजी द्वारा इस तरह कटु उत्तर दिये जाने पर प्राणनाथजी को बहुत गुस्सा आया। इसी बीच कानजी ने प्राणनाथजी से कहा, 'आप

१-वे बातोनी मुजने दाझ, नव मल्यो कोई कहना काज
जेह वात नी 'हा' मैं कीधी, तेनो कोई ए न नव दीधी
जेने कीध् मैं अटकाव, तेनो कोई ए बताव्यो न भाव
जे जो बात हूं कहेतो गयो, तेमा काई विरोध नथया — वर्तमान दीपक, कि० २८, चौ० ६९

इससे अक्षरातीत की बात पूछिए।' 'श्रीजी' ने कानजी को जोश में धक्का देते हुए कहा, 'यह तो क्षर में ही थक गया है, 'अक्षर' से संबन्धित प्रश्नों तक का उत्तर नहीं दे सकता। ऐसे आदमी से 'अक्षरातीत' (अक्षर से परे) की क्या बात करें।

श्री प्राणनाथजी से क्षर, अक्षर और अक्षरातीत की बातें सुनकर वह समझ गया कि ये साधारण सन्त नहीं, वेद-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित हैं। उसने नम्रता से प्राणनाथजी से कहा-'यह माया गूलर (उबरा) का वृक्ष है जिसमें अनेक ब्रह्माण्ड-रूपी गूलर लगे हुए हैं। एक गूलर में अनेक जीव हैं। प्रत्यक जीव अपने को सर्वस्व समझ बैठता है। वह नहीं जानता कि इस वृक्ष पर और भी कितने गूलर फल हैं। इस वृक्ष के अलावा और भी गूलर के वृक्ष इस संसार में हैं। यही स्थिति मेरी है (अर्थात् मैं अपने आपको वेद-शास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित समझता था। आज मुझे ज्ञात हुआ कि मुझसे भी अच्छे ब्रह्म-ज्ञानी इस भूमि पर हैं)।' प्राणनाथजी ने कहा-'मैं तुम्हारा अभिमान तोड़ने ही आया था, तुमने मृत्यु-शैया पर पड़े हुए कहा था, 'आज तक मैंने जिसे 'हां' कहा, उसे किसी ने 'न' नहीं कहा। आज मैंने तुम्हारी वह दाझ मिटा दी है[1]। हरजी व्यासजी से यह शास्त्रार्थ वि० सं० १७१८ में हुआ था।

(३) चिन्तामणि से शास्त्रार्थ

ठट्ठा में राम-कबीर सम्प्रदाय में दीक्षित चिन्तामणि भाई नामक विद्वान् रहता था। इसे अष्ठसिद्धि और नव-निधि प्राप्त थी जिससे वह अपने सम्प्रदाय वालों में बहुत सम्मानित था। एक दिन प्राणनाथजी चिन्तामणि से मिलने गये। उसने प्राणनाथजी से पूछा कि आप कथा सुनना चाहते हैं या सुनना। प्राणनाथजी ने उत्तर दिया, 'मैं आपके धर्म की कथा सुनना चाहता हूं।' राम कबीर सम्प्रदाय में दीक्षित होने के कारण उसने सर्वप्रथम राम-कबीर सम्प्रदाय की उत्पति पर प्रकाश डालते हुए निम्नलिखित पद पढ़ा—

राम तो स्वामी चार छे, घट घट बोले एक
एक डोले दशरथ गृहे, एक कर्ता सकल विवेक
एक न्यारा सर्व थी, ते चौथा राम लेवाये
जोता रूप जड़े नहीं, ए निराकार कहेवाये

१-वर्तमान दीपक, कि० २८

श्री प्राणनाथजी ने बताया कि चारों में से किसी भी 'राम' को परमात्मा नहीं माना जा सकता। परमात्मा वही है जो जन्म-मरण में न आये। इसलिए-'घट-घट डोलने' वाले को कबीर ने स्वयं यह कह कर परमात्मा मानने से इन्कार किया है कि—

पिंड में होता तो मरता न सोई
ब्रह्मांड में होता तो देखता सब कोई

अतः— पिंड ब्रह्मांड दोऊ से न्यारा
कबीर कहे सो सांई हमारा

दूसरे 'राम' दशरथ-पुत्र हैं। परमात्मा वही है जो अखण्ड हो, पूर्ण हो। परन्तु हनुमान ने 'हनुमत उपनिषद्' में रामचन्द्रजी को अर्ध मात्रा माना है[1]।

अक्षर से मूल प्रकृति उत्पन्न हुई। ऐसा पुराण संहिता के चौबीसवें अध्याय में कहा है। मूल प्रकृति की पांच मात्राएं हुई। इससे ओंकार (ॐ) की उत्पत्ति हुई। 'ॐ से नारायण-त्रिगुण, दानव, देव आदि पैदा हुए[2]। इसी ॐ की अर्धमात्रा' से रामचन्द्रजी हुए अर्थात् रामचन्द्र (दशरथ-पुत्र) प्रकृति से पैदा हुए हैं। परन्तु चौथी प्रलय में प्रकृति का नाश कहा गया है[3]। अतः जन्म-मरण में आने वाले 'राम' को भी सिद्धांततः परमात्मा नहीं कहा जा सकता। तीसरे राम सकल पसाराधीश पसारा (संसार) अर्थात् नारायण हैं। कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के हृदय में मोहमयी सुमंगला शक्ति उत्पन्न हुई और उससे मोहमयी समुद्र में शयन करने वाले ये नारायण उत्पन्न हुए[4]। चौथी प्रलय

१—उक्तं च हनुमदुपनिषदि—

सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः।
श्रुतं दृष्टं मया सर्वपूर्वजाना चिरान्मुने ॥४३॥
अकाराक्षर संभूत सौमित्रिर्विश्वभावन·
उकाराक्षर सम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः ॥४४॥
प्रज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षर सम्भवः।
अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रह ॥४५॥

२—वर्तमान दीपक, कि० ३४, चौ० ४२

३—पुरुष प्रकृति न रहे पिण्ड ब्रह्माण्ड सब लय हो जायें।

४—कूटस्थस्य हृदाकाशात्प्रादुर्भूता सुमंगला। निद्रामुत्पादयामास महामोहमयी दृढाम् ॥४९॥

में अक्षर को छोड़कर अन्य सभी शक्तियां लय हो जाती हैं। अतएव ये तीसरे, सकल-पसाराधीश राम भी नश्वर हुए, इसलिए ये भी परमात्मा नहीं हो सकते।

चौथा राम तुमने निराकार अर्थात् सूक्ष्म माना है। (शुकदेवजी ने भी श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के दशवें अध्याय में नारायण के दो रूपों का वर्णन किया है)। प्रथम स्थूल रूप, जिससे पृथ्वी आदि आठ आवरण हुए और दूसरा सूक्ष्म (निराकार) जो वाणी तथा मन (बुद्धि या कल्पना) से परे है[1]। अतएव ये निराकार अथवा सूक्ष्म राम भी नारायण ही हैं, इसलिए इन्हें भी 'क्षर' होने के कारण परमात्मा नहीं माना जा सकता।

इस प्रकार ये चारों राम जन्म-मरण में आने वाले हैं, अतएव ये 'अनश्वर' परमात्मा नहीं हो सकते। अब बताओ परमात्मा कौन है, उसका स्थान दृढ़ करो। तब चिन्तामणि ने उत्तर दिया, 'ये शब्द (साखो) कबीर के हैं, कबीर के समान कोई महात्मा नहीं हुए, जो उनकी बातों को गलत सिद्ध कर सके। अतएव आपका कथन सप्रमाण होते हुए भी अमान्य है, क्योंकि हम तो कबीर से श्रेष्ठ सन्त की ही बातों पर ध्यान दे सकते

तस्मिन्विमोहजलधावशेत पुरुषो महान्।
तस्मादेव समुत्तस्थौ भत्वा नारायण· स्वयम ॥५०॥
पंचावयवसयुक्तस्स एव प्रणवाभिधः।
पंचावयव सस्थानो ब्रह्माद्याः पंचदेवता· ॥५१॥
भूत देवेन्द्रियैश्चैव सर्वतत्त्वैश्च संयुतः।
मोहावच्छिन्नचिद्रूप· शब्दब्रह्मात्मना स्थित· ॥५२॥
नारायणादि जीवान्त सृष्टिर्मोहावधौ स्थिता।
तत्परं त्वक्षर ब्रह्माक्षरातीतं तु तत्परम ॥५३॥ –पुराण संहिता, शिव-व्यास सम्वाद, अध्याय २४

१–एतढभगवतो रूपं स्थूलं ते व्याहृत मया।
मह्यादिभिश्चावरणैरष्टाभिर्बहिरावृत्तम ॥५८॥
अत परं सूक्ष्मतरं निर्विशेषं निरजनम।
अनादिमध्यनिधनं नित्यंवाङ्मनस परम ॥५९॥
अमूनी भगवद्रूपे मया ते ह्यनुवर्णिते।
उभेऽपि न गृहणन्तिमायासृष्टे विपश्चित ॥६०॥ –वर्तमान दीपक, कि० ३४

हैं और कबीर से श्रेष्ठ सन्त अभी तक कोई हुआ नहीं। तब प्राणनाथजी ने कबीर का एक पद पढ़ा—

पहाड़ फोड़ के गंगा निकसी, चहुं दिश फैला पानी
ये पानी दोऊ पर्वत ढांपे, दरिया लहर समानी
उड़ मक्खी तरूवर पर बैठी, बोलत अमृत वाणी
वे मक्खी को मक्खा नाहीं, बिनु पानी गर्भानी
गरभत ही गुण तीनों जाये, वो तो पुरुष अकेला
कहे 'कबीर' एही पदको बूझे, सो सतगुरु हम चेला

और चिन्तामणी से कहा कि इसकी व्याख्या करो। उसने उत्तर दिया, 'हम तो कबीर की शिष्य-परम्परा में हैं, गुरु नहीं, जो इस पद की व्याख्या कर सकें। एक मैं ही क्या, कोई भी कबीर-पन्थी इसकी व्याख्या नहीं कर सकता क्योंकि कबीर ने स्वयं कहा है कि (मुझसे) श्रेष्ठ सन्त (गुरु) ही इसकी व्याख्या कर सकेगा। तब प्राणनाथजी ने इसका अर्थ इस प्रकार किया '(अनादि पुरुष से उत्पन्न) सबलिक[1]रूपी पहाड़ से मोह-माया रूपी मूर्ति (गंगा) प्रगट हुई। इस मोह रूपी जलाशय ने सत्य और चेतन इन दो पर्वतों को ढंक लिया।

माया-रूपी मक्खी असत्य जड़-रूप वृक्ष ऊपर बैठी हुई काम, क्रोध, लोभ, मोहादि अमृत [प्रिय लगनेवाली] मयी वाणी बोल रही है। इस माया का पति नहीं है। बिना पति के ही इसने गर्भ धारण किया है[2] जिससे [नारायण की नींद से] त्रिगुण-ब्रह्म, विष्णु, शिव पैदा हुए। परन्तु मूल पुरुष अकेला है। उसके साथ माया नहीं है। कबीर कहते हैं जो इनके कर्ता सबलिक ब्रह्म अनादि पुरुष को जाने, वह सतगुरु है।'

इस प्रकार कुछ देर तक शास्त्रार्थ करने के बाद चिन्तामणि प्राणनाथजी के मत से सहमत हो गये। अपने शिष्यों सहित प्राणनाथजी से दीक्षा ली[3]।

---

१ ए ठौर माया ब्रह्म सबलिक, त्रैगुण की परातम। [कीरन्तन]

२-मात पिता बिनु जन्मी, आपे बांध्यो पिण्ड पुरुष अंग छूओ नहीं, जायो सब ब्रह्मांड

३-वर्तमान दीपक, कि० ३४

(४) प्राणनाथ-कल्लू मिश्र सम्वाद

ठट्टा नगर में प्राणनाथजी जब दूसरी बार आये तो कल्लू मिश्र नामक विद्वान् भी चर्चा सुनने आया। उसने प्राणनाथजी से निम्न प्रश्न पूछे—

१. परब्रह्म का स्थान कहां है ?

२. पुराणों में लिखा है कि यह चौदह लोक वैराट पुरुष के शरीर है। जिसके शरीर में चौदह लोक हैं, उस विराट पुरुष का निर्माता कौन है ?

३. जल, स्थल, नभ, वायु, अनल, कारण, सूक्ष्म, स्थूल, और सृष्टि-महद, मानसी और मैथुनी किस प्रकार बने ?

४. यह संसार किस आधार पर टिका है ? इसे [संसार] मिथ्या क्यों कहा जाता है ?

इन सबका उत्तर प्राणनाथजी ने इस प्रकार दिया है—

मार्कण्डेय पुराण में 'विश्व-उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है और व्यासजी ने इस 'संसार' को अक्षर का कारण-रूप माना है—

निः प्रवेशे निरालोके सर्वतः तमसावृते
बृहदण्डमभूदेक-मक्षरं कारणं परम्

अथ श्रुतिः—एकोऽहं बहुस्यामिति । शिवात्मनः प्रकृतिः ।
प्रकृतेर्महत्तत्त्वम् । महत्तत्वादहंकारः । अहंकारात्पंचतन्मात्राः ।
तन्मात्रात् आकाशः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः ।
अग्नित आपः । अद्भ्यः पृथ्वी । पृथ्व्या अन्नम् । अन्नाद्वीर्यम् ।
वीर्यात्प्रजाः । इति श्रुतेः ॥[१]

इस प्रकार अक्षर के मन के विलास [क्रीड़ा] के निमित यह संसार बना। उसके मन ने महाविष्णु का रूप धारण किया। महाविष्णु के मन से त्रिदेवा हुए, त्रिदेवा से यह संसार बना।

इत अक्षर को विलस्यो मन, पांच तत्व चौदह भवन
तामें महाविष्णु मन, मन थे त्रैगुण ताथे थिर चर सब उत्पन्न

१—वर्तमान दीपक, कि० ३९

त्रिदेवा-विष्णु, शिव और ब्रह्मा-महद् सृष्टि है। ब्रह्मा के पुत्र नारद, सनत कुमार आदि मानसी सृष्टि है और सांसारिक जीव मैथुनी सृष्टि है। इस विराट पुरुष, जिसके शरीर में चौदह लोक हैं, को ऊपर से महाविष्णु ने सहारा दिया है और नीचे से इसे सहारा देने के लिए उसने नारायण का रूप धारण किया। इन्हीं दोनों सहारों पर यह ब्रह्मांड टिका है।

(५) सूरत के पण्डितों से शास्त्रार्थ

मोहनलाल धर्म-धुरंधर तथा सूरत का प्रतिष्ठित व सम्पन्न व्यक्ति था। उसकी हवेली में शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ[1]। निश्चित समय पर प्राणनाथजी अपने कुछ शिष्यों सहित तथा अन्य विद्वान् निश्चित स्थान पर पहुँचे।

'श्रीजी' के पहुँचते ही एक संन्यासी ने उन्हें पाखण्डी कहकर सम्बोधित किया। 'साथी' (प्राणनाथजी के सेवक) इस शब्द को सुनते ही उत्तेजित हो गये। प्राणनाथजी ने उन्हें शांत करते हुए कहा, 'सदाचार, ज्ञान, वैराग्य-भक्ति, ये सब 'पाखण्ड' (इस खण्ड-विश्व-के पार) में रहते हैं। जो वस्तु इन खण्डों के परे रहती है, वह पार-खण्ड अर्थात् 'पा-खण्ड' हुई। जो वस्तु इस (खण्डित) विश्व में प्राप्त हो सके, वह खण्ड कहलायेगी, 'पा-खण्ड' (अलौकिक) नहीं, असत्य, जड़, अज्ञान ये सब वस्तुएं खण्ड कहलायेंगी और अनजाने में इनके शिकार होनेवाले खण्डी [अर्थात् माया के जीव] हुए। जिसे ये संन्यासी सहर्ष स्वीकार कर रहे हैं[2]। संन्यासी प्राणनाथजी के शान्त स्वभाव तथा तात्कालिक सूझ-बूझ युक्त उत्तर को सुनकर दंग रह गया। इसके बाद उसे कुछ भी कहने की हिम्मत न हुई। रामजी भट्ट[3] उद्धव, केशव, श्याम, गोविंद, भीम, मुकुन्द[4], गोवर्धन, 'शुकजी' आदि वेद, उपनिषदों के धुरन्धर, श्रुति, स्मृति सहित उपस्थित हुए[5]। शास्त्रार्थ का मुख्य विषय कृष्ण की 'त्रिविध लीला' थी।

पण्डितों ने प्राणनाथजी से प्रश्न किया कि आपके मतानुसार रास-क्रीड़ा तक

१—वही, कि० ४३

२—वर्तमान दिपक, पृ० ३१५

३—ब्राह्मण कल्पलता, पृ० ८

४—वही, पृ० १२

५—वर्तमान दीपक, पृ० २७३, चौ० ४३

कृष्ण पूर्णब्रह्म का अवतार रहा, कंस का वध करनेवाला कृष्ण गोलोक का था और जरासंध से युद्ध करनेवाला कृष्ण विष्णु का अवतार था, ऐसा कैसे संभव है ? प्राणनाथजी ने कहा, 'यदि कृष्ण में आदि से अन्त तक एक ही शक्ति थी तो गोकुल और मथुरा में विशेष अन्तर नहीं था, कृष्ण व गोपियां जितनी बार चाहतीं, मिल सकते थे, पर ऐसा न होने का क्या कारण था।

दूसरा, जब कृष्ण ने छः महीने की 'रास की रात' को रास-लीला की, तो गोपियों के आने के साथ ही व्रज का लय हो गया था। वेदों, शास्त्रों में रास का भी पतन (अकाल प्रलय) कहा है। अतः प्रातःकाल [छः महीने पश्चात्) अपने-अपने घरों से उठनेवाले कृष्ण व गोपियां कौन-सा स्वरूप थीं ?

पैदा होनेवाला कृष्ण चार भुजा युक्त था। परन्तु बाद में यही कृष्ण दो भुजा वाला हो गया। लगभग बारह वर्ष की अवस्था तक द्विभुज वाला रहा। इसके बाद जरासंध ने जब मथुरा को घेरा तो यह कृष्ण पुनः चार भुजाओं वाला हो गया। तब से अन्त तक चार भुजाओं वाला रहा। इससे स्पष्ट है कि रासलीला करने वाला कृष्ण कंस का वध करनेवाला कृष्ण और जरासंध से युद्ध करनेवाले कृष्ण के रूप में विभिन्न शक्तियां कार्य करती रहीं, जिसका विवरण इस प्रकार है-'कृष्ण के तीन रूप हैं। विभिन्न समय पर उनमें तीन शक्तियां अवतरित हुई। ग्यारह वर्ष और बावन दिन की उम्र तक भगवान कृष्ण में पूर्णब्रह्म परमात्मा की शक्ति थी। 'रास' खेलने तक यह शक्ति रही। अक्रूर के साथ मथुरा जाने वाले और कंस का बध करने वाले कृष्ण 'गोलोक' के कृष्ण के अवतार थे और जरासंध के साथ युद्ध करनेवाले कृष्ण विष्णु भगवान के अवतार थे। अर्थात् कृष्ण में अक्षरातीत ब्रह्मका, गोलोक के कृष्ण का और विष्णु का विभिन्न समय में अवतीर्ण हुआ।' तब वैष्णव गोपीदास नामक चौबे ने प्राणनाथजी से इसका प्रमाण मांगा। प्राणनाथजी ने कहा कि पुराण, संहिता, वेदशास्त्र आदि में उल्लेख मिलता है—

उक्तं च ब्रह्मवैवर्ते कृष्णजन्मखण्डे।

तेजोमण्डलरूपे च कोटिसूर्यसमप्रभम्
योगिभिर्वाञ्छितध्यानं योगैः सिद्धगणैः सुरैः
चिदादित्यं किशोराङ्गं परे धाम्नि विराजितम्

स्वरूपं सच्चिदानन्दं निर्विकारं सनातनम्
तस्यानन्दाचिन्त्यशक्तया त्विपावेशांशतः कलात्
अवतारा भवन्त्येते रूपनामान्यनेकशः

अर्थात्, जिसका योगी और सिद्ध लोग ध्यान धरते हैं, वह कोटि सूर्य के समान कांतिवाला, चिदादित्य-स्वरूप, किशोर अंगवाला, परमधाम निवासी, सनातन, निर्विकार और सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण परमात्मा है।

उनकी चिदानन्द शक्ति के आवेश, अंश और कला के अनेकों अवतार होते हैं?

उक्तं च माहेश्वरतन्त्रे

ज्योतिरावेशश्चांशांशैः कलाभिश्च पृथक्क्रमात्
अवतारा भवन्त्येते चतुर्विंशति संख्यकाः
श्वेतवाराहकल्पेषु मनौ वैवस्वतेऽन्तरे
अष्टाविंशतिमे प्राप्ते द्वापरान्ते कलौ युगे
एकत्रापि च ते सर्वे कृष्णरूपे समागताः
तेन पूर्णावतारोऽसौ प्रवदन्ति मनीषिणः
क्षराक्षराक्षरातीताः पुरुषाश्शक्तिभिःसह
कार्यकारण हेत्वर्थे भवेयुर्व्रजमण्डले

अर्थात्, माहेश्वर तन्त्र में कहा गया है कि ज्योति, आवेश, कला, अंश, और अंशांश इन पाच भेदों से चौबीस अवतार होते हैं। परन्तु श्वेत बाराह कल्प वैवस्वत मन्वन्तर में अठाइसवीं चौकड़ी में द्वापर युग के अन्त में, उपरोक्त बताये गये पांचों भेद एक कृष्ण अवतीर्ण होंगे। उस (कृष्ण) को बुद्धिमान् पुरुष पूर्ण अवतार कहते हैं—

गोकुले मथुरायां च द्वारावत्यामनुक्रमात्
लीलां त्वेवाकरोत्कृष्णः पृथक् तासां स्वभावभिः
सख्यस्ताः षट् प्रकाराश्च तासां भेदंब्रवीम्यहम्
ब्रह्मप्रियाश्च श्रुतयो गोलोकस्य च गोपिकाः
ऋषिपत्न्यो देवकन्या राजकन्या विवाहिताः

सख्योऽमूः षड्विधा ज्ञेयास्ताभीरेमे पृथक् पृथक्

— उक्तं च व्याससंहितायाम —

भूर्लोके भारते खण्डे स्वामिनी स्वसखीवृता

वृन्दावने व्रजभुवि मोहावेशेन संगता

अर्थात्, क्षर, अक्षर और अक्षरातीत पुरुष 'कार्य कारण' हेतु व्रज में शक्तियों सहित उत्पन्न हुए।

श्रीकृष्ण ने गोकुल, मथुरा और द्वारवती में शक्तियों से स्वभावानुसार पृथक् पृथक् क्रम से लीला की।

ये सखियां छः प्रकार की थीं। इनका भेद इस प्रकार है. बारह हजार ब्रह्म प्रियाएं, चौबीस हजार श्रुतिरूपा कुमारिका, साढ़े तीन करोड़ गोलोक की ग्वालिने, चौदह हजार ऋषि-पत्नियां, तैतीस करोड देव-कन्याएं सोलह हजार एक सौ आठ राज-कन्याएं, जिनका विवाह 'माधव' से हुआ, थीं।

व्यास संहिता में कहा गया है कि भूलोक के भरतखण्ड में, वृन्दावन और व्रज में मोह आवेश से व्याप्त होकर सखियों सहित श्री स्वामिनीजी के साथ पूर्णब्रह्म का तेज अवतरित हुआ।

गोपिकारूपमात्मानं पश्यन्त्यो व्रजमास्थिताः

अनुभूय गमिष्यन्ति विप्रलम्भदलं तु ताः

विप्रलम्भविहारार्थं प्रियामनुगतः प्रभुः

व्रजमाव्रज्य स्वांशेनाऽक्षर बुद्धयाऽऽविशद्धरौः

परमधाम की गोपियों की आत्माएं व्रज रास की लीलाओं का अनुभव प्राप्त कर पुनः 'विप्रलम्भ दल' (मूलधाम) में जायेंगी।

विप्रलंभ विहार में उनके साथ आनेवाले पूर्णब्रह्म परमात्मा ने अपने अंश (आवेश) द्वारा व्रज में पधार कर अक्षर-ब्रह्म की आत्मा के साथ श्रीकृष्ण की आत्मा में प्रवेश किया।

वृन्दावनाश्रया लीला साऽक्षरात्परतः परा

गुह्याद्गुह्यतरा गम्या नित्याक्षरहृदिस्थिता
यद्ब्रह्मपरमैश्वर्यं नित्यवृन्दावनाश्रयम्
तदेव गोकुले प्रोक्तं बाल्यकैशोरभेदवत्
वैकुण्ठवैभवं यच्च मथुरा द्वारिकाश्रितम्
मध्ये वृन्दा–मधुवनं यच्च मध्यालयाश्रयम्
श्रुतिभिः संस्तुतौ रामे तुष्टः कामवरं ददौ
वृन्दावनं मधुवनं तयोरभ्यन्तरे विभुः
ताभिः सप्तदिनं रेमे वियुज्य मथुरां गतः
चतुर्भिर्दिवसैरीशः कंसादीननयत्परम्

(नित्य वृन्दावन में होनेवाली लीला अक्षर से परे पूर्णब्रह्म अखण्डानन्द स्वरूप की है, जो गुह्य से भी गुह्य,अगम्य और अक्षर-ब्रह्म के हृदय में अखण्ड हुई है ।

ब्रह्म का परमऐश्वर्य नित्य वृन्दावन में स्थित है, पर बाल्य और किशोर लीला में भेद मानने के कारण इसे ऐश्वर्य का स्थान भी कहा गया है ।

वैकुण्ठ के ऐश्वर्य का आश्रय करने वाली लीला द्वारिका-मथुरा की है और वृन्दावन तथा मथुरा के बीच में होनेवाली लीला मध्य स्थानवर्ती गोलोकी स्वरूप की है ।

केवल धाम के योगमाया मण्डल में होनेवाली रास के अव्याकृत में पड़नेवाले प्रतिबिम्ब को देखकर श्रुति द्वारा की गयी स्तुति से प्रसन्न होकर कृष्ण ने उनकी इच्छा पूर्ति (उनके साथ रास–मण्डल में रास करने की इच्छा) के लिए वृन्दावन और मथुरा के बीचमें, श्रुतिरूपा गोपियों के साथ सात दिन तक 'रमण' (रास) किया और उसके बाद उनसे जुदा होकर मथुरा गये और चार दिन को लीला में कंसादि का वध किया

तत आदाय तद्धाम गूढं गोपिहृदि स्थितः ।
तद्विनाक्षिप्तचित्ताश्च तत्पदं श्रुतयो ययुः ॥
ततो मधुपुरी मध्ये भुवो भारजिहीर्षया ।
यदुश्चक्रावृतो विष्णुरुवास कतिचित्समाः ॥
ततस्तु द्वारिकां यातस्ततो वैकुंठमाश्रितः ।

एवं गुह्यतरः प्रोक्तः कृष्णलीलारसस्त्रिधा ॥

आनन्दरूपा याः सख्यो व्रजे वृन्दावने स्थिताः ।

कलौ प्रादुर्भविष्यन्ति पुनर्यास्यन्ति तत्पदम्

चिदावेशवती बुद्धिरक्षरस्य महात्मनः ।

प्रबोधाय प्रियाणां च कृष्णस्य परमात्मनः

अर्थात् उसके बाद उस तेज स्वरूप ने उन 'गूढ़ गोपियों' (श्रुतिरूप) को हृदय में रखा और ये श्रुतिरूपा गोपियां अक्षरधाम गयीं ।

उसके बाद शंख चक्रादि धारण करने वाले विष्णु-स्वरूप श्रीकृष्ण ने पृथ्वी का भार हरण करने के लिए मथुरा में कुछ दिन व्यतीत किये ।

उसके बाद द्वारिका गये । वहां लीला करने के बाद विष्णु के तेज-स्वरूप कृष्ण वैकुण्ठ में पधारे । यही गूढ़-से-गूढ़ कृष्ण की त्रिविध-लीला है ।

आनन्द रूप जो सखियां व्रज और बृन्दावन में थीं, वे सब कलियुग में अवतरित होकर व जाग्रत होकर पुनः परमधाम जायेंगी ।

इन परमात्म प्रिया सखियों को जाग्रत भी पूर्णब्रह्म के चित् आवेश-युक्त अक्षर ब्रह्म की बुद्धि (श्री देवचन्द्र निजानन्द स्वरूप) ही करेगी ।

श्री प्राणनाथजी ने कहा, 'हे बन्धु ! इस तरह वेद-शास्त्र में भी कृष्ण के तीन स्वरूपों का वर्णन मिलता है । व्रज वाले कृष्ण अक्षरातीत थे, उसके बाद गोलोकवासी और तृतीय कृष्ण विष्णुमय थे ।

सैव कृष्णो द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः ।

चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् ॥

गोपीदास आदि वैष्णवों ने कहा, जो आप कहते हैं, वह सर्वथा नवीन है । आज तक आचार्यों ने इसका वर्णन नहीं किया । न ही इस त्रिविध-लीला भेद को संसार में कोई जनता है । अतः इसे हम कैसे स्वीकार कर सकते हैं । श्रीजी ने कहा, मैंने, जो कुछ भी कहा, वह शास्त्र-सम्मत है । उपरोक्त संहिताओं के अलावा भागवत-पुराण नारद पंचरात्र में भी कृष्ण के रूप में विभिन्न तीन शक्तियों के अवतरित होने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है । यदि तुम हठवश उसे अस्वीकार करते हो तो इसका कोई

उपाय नहीं। मैं तुम्हें ऐसे और भी कितने श्लोक बता सकता हूँ जिस में त्रिविध-लीला का उल्लेख मिलता है। यथा—

– उक्तं च वाराह संहितायाम् –

पूर्णब्रह्मसुखैश्वर्यं नित्यमानन्दमव्ययम्
बैकुण्ठादि तदंशांशं स्वयं वृन्दावने भुवि ॥

(नित्य अव्यय और आनन्द-स्वरूपी परमात्म-सुख के ऐश्वर्य के अंश का अंश बैकुण्ठ आदि में है और वृन्दावन की भूमि में साक्षात् ऐश्वर्य है।)

– तथा च सनत्कुमार संहितायाम् –

तस्यांशो मथुरायां च वासुदेवो जगद्गुरुः ।
द्वारिकायां तदंशोस्ति विष्णुवीर्यसमुद्भवः ॥

(वृन्दावन के स्वरूप का अंश मथुरा में है और मथुरा के स्वरूप का अंश द्वारिका का स्वरूप है और यह विष्णु के अंश से उत्पन्न हुआ है।)

— तथा श्रीमद्भागवते —

अहो भाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्म सनातनम् ॥

(अहो ! बृजवासियो तथा नन्दादि गोपका अहोभाग्य है कि परमानन्द स्वरूप सनातन पूर्णब्रह्म जिसका मित्र है।)

— उक्तं च नारद पंचरात्रे —

कृष्णोऽन्य इह सम्भूतो यस्तु गोपेन्द्रनन्दनः ।
बृन्दावनं परित्यज्य स क्वचिन्नैव गच्छति ॥

(व्रज में उत्पन्न होनेवाले नन्द नन्दन दूसरे हैं। कारण कि वह बृन्दावन छोड़कर दूसरा जगह नहीं जाते थे।)

इससे स्पष्ट है कि नन्द-पुत्र और मथुरा में जाकर कंस का वध करनेवाले कृष्ण भिन्न हैं। जय-विजय को शाप से मुक्त करने के लिए शिशुपाल दन्तवक्र का वध करनेवाले कृष्ण द्वारिकावासी हैं।

गोदीदास ने कहा कि जो कुछ भी आपने कहा, वह शास्त्र-सम्मत होने के कारण युक्तियुक्त है। पर अब भी एक शंका है। आपके अनुसार रास करनेवाले कृष्ण अक्षरातीत का आवेश थे। इस कृष्ण ने वृन्दावन में रास-लीला की। यह वृन्दावन इसी लोक में है, अतः प्रलय में नाश हो जायेगा। यदि रासलीला करनेवाले कृष्ण अक्षर (अनश्वर) और अक्षरातीत थे तो उन्होंने इस नश्वर भूमि में रासलीला कैसे की ? प्राणनाथजीने उत्तर दिया, 'वह वृन्दावन, जहां रासलीला हुई थी, मृत्युलोक का वृन्दावन नहीं था[1]

— उक्तं च वाराह संहितायाम् —

सात्वतस्थानमूर्धन्यं विष्णोरेकान्तवल्लभम् ।
नित्यं वृन्दावनं नाम ब्रह्मांडोपरि संस्थितम् ॥
श्रीमद्वृन्दावनं रम्यं पूर्णानन्दरसः स्वयम् ।
भूमिश्चिन्तामणिस्तत्र ह्यमृतं परिपूरितम् ॥
वृक्षाः सुरद्रुमा यत्र सुरभीवृन्द सेविताः ।
अशोकं दुःखविच्छेदं जरामरणवर्जितम् ॥

(वैकुण्ठ से ऊंचा, विष्णु से परे और ब्रह्मांड के ऊपरी भाग में नित्य वृन्दावन है।)

— तथा च सनत्कुमार संहितायाम् —

वृन्दावनं महापुण्यं सर्व पावनपावनम् ।
सर्वलोकवहिर्भूतं निराधारं परिस्फुरत् ॥
तत्रस्थ युगलं ध्यात्वा पूनरागमनं नहि ।
वैकुण्ठाद्यास्तु ये लोकाः पुनरावृत्ति तत्पराः ॥

(यह वृन्दावन महापावन, सर्व पवित्र वस्तुओं से भी पवित्र, सर्वलोकों से बाहर निराधार (स्वयं आधारभूत) और शोभायमान है।)

—तथा च श्रीमद्वामन पुराणे—

आनन्दमात्रमिति यद्वदन्तीह पुराविदः ।

1-वर्तमान दीपक, कि० ४३

तद्रुपं दर्शयास्माकं यदि देयो वरो हि नः ॥
श्रुत्वैतद्दर्शयामास स्वं लोकं प्रकृतेः परम् ।
केवलानुभवानन्द–मात्रमक्षरमध्यगम् ॥
यत्र वृन्दावनं नाम वनं काम दुघर्द्रुमैः ।
मनोरमनिकुञ्जाढ्यं सर्वर्तुसुखसंयुतम ॥

अर्थात् (वामन पुराण में–श्रुतियों ने कहा–हे परमात्मन् ? यदि आपको देना हीहै तो हम यह वरदान मांगती हैं), हमें अपना वह स्वरूप दिखाइए जिसे ऋषि–मुनि आनन्द-मात्र कहते हैं । श्रुतियों के इस वाक्य को सुनकर केवल अनुभवानन्द स्वरूप ने अक्षर ब्रह्म के अन्दर रहनेवाला तथा प्रकृति से परे अपने उस लोक का इन्हें दर्शन कराया जिसमें कामधेनु गाय के समान इच्छित फल देनेवाले वृक्षों (कल्पतरु) के कारण रमणीय लगने वाले, कुंज–निकुंज से सुशोभित सर्व ऋतुओं में सुखयुक्त वृन्दावन नामका वन है ।

शरद् ऋतु की पूर्णिमा की रात्रि को श्रीकृष्णजी के 'बेणु–नाद' को सुनकर आने-वाली गोपियों ने पञ्चभौतिक शरीर का त्यागकर के योगमाया का देह धारण किया था। इसका उल्लेख श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध के अट्ठाइसवें अध्याय में मिलता है।

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥

इन उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि रास रात्रि में 'प्रकृत प्रलय' हो गयी थी और 'योगमाया' का दूसरा ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ था ।

इस (लौकिक) वृन्दावन में रास करनेवाली वेद ऋचाएं और 'गोलोकवासी' कृष्ण थे । पूर्णब्रह्म नहीं, जिसका उल्लेख 'बृहद्वामन पुराण' में मिलता है—

प्राकृते प्रलये प्राप्ते व्यक्तेऽव्यक्तं गते पुरा ।
शिष्टे ब्रह्मणि चिन्मात्रे कालमायाऽतिगोचरे ॥
अक्षरं ब्रह्मपरमं वेदानां स्थानमुत्तमम् ।
गोलोकवासी तत्रस्थैः स्तुतो वेदैः परात्परः ॥

(अखंड रासलीला के समय प्राकृत प्रलय हो जाने के कारण सब कुछ अव्यक्त (अव्याकृत) में

लीन हो गया। काल-माया के लुप्त (तिरोहित) हो जाने पर चिन्मात्र, प्रकाश-स्वरूप परमात्मा अक्षर-ब्रह्म शेष रह गया था।)

उस समय वेदों का उत्तम स्थान-स्वरूप जो परम अक्षर-ब्रह्म है, उसके हृदय में स्थित 'परात्पर' गोलोकवासनी 'वेद ऋचाओं' ने स्तुति की।

चिरं स्तुत्या ततस्तुष्टः परोक्षं प्राह तान् गिरा ।
तुष्टोऽस्मि ब्रूत भो प्राज्ञा ? वरं यन्मनसेप्सितम् ॥

(वेदों की इस स्तुति से प्रसन्न होकर अक्षर ने कहा, 'वरदान मांगों'।) तब उन्होंने वरदान मांगा—

यथा त्वल्लोकवासिन्यः कामं तत्त्वेन गोपिकाः
भजन्ति रमणं मत्वा चिकीर्षाऽजनि नस्तथा

श्री भगवानुवाच (तब भगवान ने कहा)—

दुर्लभो दुर्घटश्चैव युष्माकं सुमनोरथः
मयानुमोदितः सम्यक् सत्यो भवितुमर्हति
आगामिनि विरञ्चौ तु जाते सृष्टयर्थमुद्यते ।
कल्पं सारस्वतं प्राप्य व्रजे गोप्यो भविष्यथ ॥
पृथिव्यां भारते क्षेत्रे माथुरे व्रजमण्डले ।
वृन्दावने भविष्यामि प्रेयान्वो रासमण्डले ॥

श्री प्राणनाथजी के मत से गोपिदास सहमत हो गया। गोपिदास के सहमत हो जाने पर 'उद्धव पण्डित' ने प्रश्न किया-"आपको सब लोग (शिष्य लोग) 'प्राणनाथ प्रभु' क्यों कहते हैं[1] ? प्राणनाथजी ने उत्तर दिया आनन्द-रूपी ब्रह्म प्रियाएं इस संसार में खेल देखने के लिए आयीं, उन्हें प्रबुद्ध करने के लिए पूर्णब्रह्म परमात्मा इस विश्व में अवतीर्ण हुए, जिसका उल्लेख हरिवंश पुराण, भविष्योत्तर पुराण, लिंग पुराण आदि में मिलता है। ब्रह्म प्रियाओं ने प्रियपूर्ण-ब्रह्म परमात्मा द्वारा आत्मोद्धार होते देख उन्हें प्राणनाथ प्रभु नाम दिया।

१-वर्तमान दीपक, कि० ४३ चौ० ११९

—उक्तं च व्यास संहितायाम्—

आनन्दरूपा याः सख्यो, व्रजे वृन्दावने भुवि ।
कलौ प्रादुर्भविष्यन्ति, पुनर्यास्यन्ति तत्पदम् ॥
चिदावेशवती बुद्धि-रक्षरस्य महात्मनः ।
प्रबोधाय प्रियाणां च कृष्णस्य परमात्मनः ॥
मुक्तिदा सर्वलोकानां भविता भारताजिरे ।
प्रसरिष्यति हृद्देशे स्वामिन्याः प्रभुप्रेरिता ॥
बोधयिष्यति ताः सर्वा वासनाः कृष्णयोषिताम् ।
कथयिष्यन्ति लोकास्तं चैतन्यमुनिरित्यसौ ॥
एवं सम्प्राप्तविज्ञानं बिनिद्रा ब्रह्मणः प्रियाः ।
प्राप्स्यन्ति परमानन्दं परिपूर्ण मनोरथाः[१] ॥

(आनन्द-रूपी ब्रह्म प्रियाएं कलियुग में व्रज और वृन्दावन में अवतरित होंगी और पुनः ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर परम पद प्राप्त करेंगी । चिद् ब्रह्मकी अमृतस्वरूपा ब्रह्म-विद्या रूपी बुद्धि अक्षर के हृदय में प्रवेश करके ब्रह्म प्रियाओं को प्रबुद्ध करने के लिए प्रकट होगी)।

यह चिद्ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि, भरतखण्ड में सब लोगों को मुक्ति देगी और प्रभु प्रेरणा से श्यामाजी के हृदय में प्रकट होगी ।

यह श्यामाजी स्वरूप सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी बारह हजार ब्रह्म प्रियाओं को जाग्रत करेंगे और लोग उन्हें चैतन्य-बुद्धि (अथवा बुद्धजी का अवतार) की संज्ञा देंगे ।

इस तरह उत्तम ज्ञान प्राप्त करके, मनोरथ पूर्ण होने पर जाग्रत होकर सब ब्रह्म प्रियाए परम आनन्द स्थान (मूलधाम) प्राप्त करेंगी।

— उक्तं च श्रीमद्भागवते —

कृतादिषु प्रजा राजन् ! कलाविच्छन्ति सम्भवम्
कलौ सर्वे भविष्यन्ति नारायण परायणाः ॥

१-वर्तमान दीपक, पृ० ३३३

— उक्तं च गरुड़पुराणे —

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृत्सु च
भावे ही विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम्

— तथा चोक्तं माहेश्वरतन्त्रे —

यावदीश्वरभावः स्यात् पाषाणप्रतिमादिषु
जलादौ तीर्थभावः स्यात् तावदज्ञान सम्भवः

— उक्तं च श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे —

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम ईज्यधीः
यत्तीर्थबुद्धिः सलिलेन कर्हिचिज्जनेभिष्वज्ञेषु स एव गोखरः[१]

'मानसी पूजा' सर्वोत्तम पूजा है—

— तथा च सिद्धांतसारे —

उत्तमा मानसी पूजा मूर्तिपूजा च मध्यमा
अधमा कल्पिता पूजा बाह्यकी त्वधमाधमा

— तच्च पुराण संहितायाम् —

मामानन्दं परित्यज्य पाषाणं पूजयिष्यथ
लीलाक्रीड़ारसानन्दानुभावं परिहास्यथ

(पुराण संहिता में श्रीकृष्ण ने अपनी सखियों से कहा-'मेरा आनन्द स्वरूप छोड़कर (मृत्यु लोक में) जाती हो, परन्तु वहां जाकर मुझे भूलकर मिट्टी, पत्थर पूजोगे और हमारे आनन्द का अनुभव करनेवालों का तुम मजाक करोगी)।

अर्थात् मूर्ति-पूजा से अधिक महत्वशालिनी मानसी-पूजा है, इसी तरह एकादशी के व्रत से अधिक महिमा हरिप्रसाद की है-

हरिभुक्त प्रसादान्नं यद्दिने नोपभुज्यते ।
तद्दिनं निष्फलं पुंसां ब्राह्मणानां विशेषतः ॥

१-वर्तमान दीपक, कि ४४

प्रत्यहं हरिदासान्' ये भुजन्ति नरोत्तमाः ।
तानालोक्य पवित्राहं स्यामेकादश्यपि द्विजाः[1] ॥

व्रतादि तो स्वर्ग के साधन हैं, मोक्ष के नहीं, पूर्णब्रह्म परमात्मा को पाने की इच्छा रखनेवाले व्यक्तियों के लिए इनका कोई महत्व नहीं[2] ।

हरिद्वार में विभिन्न सम्प्रदायवालों से शास्त्रार्थ –

वि० सं० १७३५ में दिल्ली से श्रीजी कुम्भ के मेले के अवसर पर हरिद्वार पहुँचे। यहां चार माह रहे । एक दिन विभिन्न सम्प्रदायवालों ने मिलकर विचार किया कि निजानन्द सम्प्रदाय के अनुयायियों की राह नयी है, ऐसी साधना आज तक देखी-सुनी नहीं गयी । अतः चलो, इनसे पूछताछ की जाये[3] । वे श्रीजी के पास आये और बोले—

कह्या तुम्हारी राह तो नई है, हम सुनी न देखी काहिं
आगे दीजे आपनो, तुम हम मारग में नाहिं ॥ ३४ ॥

तब श्रीजी ने उत्तर दिया –"तुम्हारे संप्रदाय प्राचीन पुरातन हैं, अतएव सर्वप्रथम तुम्हीं अपने इष्ट और धाम बताओ ।"

तब कहे श्रीराजने, तुम प्राचीन पुरातन
सो कहो हमें समझाये के, अपनो इष्ट जो धरम[4] ॥ ३५ ॥

१–वही, कि० ४४ पृ०३४६

२–तथा चोक्तं पद्मपुराणे :

सेवाव्रती भवेद्यस्तु कुर्यादन्य व्रतं यदि
सेवाभंङ्गमवाप्नोति नापि व्रतफलं लभेत् — वही, कि० ४४ पृ० ३४७

३– शाका सालिवाहन का सोलह सै पूरन
बैठा शाका विजयाभिनन्द का, तब फिराये फिरके नैयन ॥ ३० ॥
विक्रमादित्य के राज से, बरस सत्रह सै पैंतीस
तब जिद्द हुई फिरकनसों, बुद्ध ईश्वरों के ईश ॥ ३१ ॥
हरिद्वार के मेला में चार सम्प्रदाय ताहिं
षट् दर्शन भी तहां मिले, दसनाम संन्यासी जाहि — लालदास–वीतक, प्र० ३५

४–वही, प्र० ३५

सर्वप्रथम रामानुज सम्प्रदाय के मुख्य अनुयायियों ने अपनी साधना-पद्धति की व्याख्या की१। प्राणनाथजी ने कहा, 'तुम्हारी पद्धति से स्पष्ट है कि तुम्हारा आराध्य निराकार है। निराकार की आराधना कैसे की जा सकती है, वह मोक्ष कैसे दे सकता है, इतना ही नहीं, 'निराकार की सीमा 'हद्‌भूमि-ब्रह्मांड है, पिंड और ब्रह्मांड दोनों प्रयल में लय हो जाते हैं२। जिसे प्रलय प्रभावित कर सके, वह ईश्वर कैसा और उसकी आराधना कैसी ?'

नीमानुजवालों की पद्धति३ सुनकर प्राणनाथजी ने कहा, 'तुम्हारा मत वेदसम्मत नहीं, क्योंकि तुम्हारी साधना में संसार और पार का अद्‌भूत विश्रण है अर्थात् तुमने

१-हमारे गुरु धर्म मे, कही नाम माला उरमांहि
अच्युत गोत्र, अति शुचि परम, प्रभु अनन्त साखा जो आंहि ॥ ३९ ॥
शुक्ल हमारो वरण है, सब वर्णो ते बाहिर
शामवेद द्वार श्रवण, मुक्ति सामीप्य जाहिर ॥ ४० ॥
मठ बैकुण्ठ है हमारो, सुमेरु प्रदिक्षणा जान
वीज मन्त्र निराकार है, नभ-सम ब्रह्म मान ॥ ४१ ॥
पद्मनाभि जो क्षेत्र है, मेलकोटा मुख बिलास
लक्ष्मी ईष्ट अति गोप है, उज्वल अति प्रकाश ॥ ४२ ॥
यह पद्धति लक्ष्मी ते चली, ये पद्धति बिन भ्रम आय
चौदह भवन पर बैकुण्ठ है, सोई अखाडा सुहाय ॥ ४३ ॥
रंगनाथ हम धाम है, नदी कावेरी तीरथ
देवी है कमला सही, सारे सबे अरथ ॥ ४४ ॥
श्री नारायण है देवता, विष्णु आचारज होय
गायत्री है अलख निरजन, कही पद्धति रामानुज सोय ॥ ४५ ॥ — लालदास-वीतक, प्र० ३५

२-जग माहे की तुम कही, कहे वेद जगत को नास
पिंड ब्रह्माड दोउ प्रलय में, तब कहां जीव को वास ॥ ४७ ॥ — वही, पृ० १६०

३-नीमानुज सम्प्रदाय की पद्धति
मथुरा है शाला सही, धर्म क्षेत्र गोकुल पुर्नात
मुख विलाश वृन्दावन में, धाम द्वारिका नित ॥ ४९ ॥
नदी गोमती तीरथ, ईष्ट रुक्मणी होय
यजुर्वेद हरिनाम की माला, टारे छल सब सोय ॥ ५० ॥

अपनी पद्धति में कुछ संसार की वस्तुओं को महत्व दिया है और कुछ संसार के परे की। सार-असार की मिश्रित साधना वेद-विरोध है[1]। 'तब 'श्रीजी' ने विष्णु श्याम सम्प्रदाय वालों से उनकी पद्धति पूछी। उन्होंने अपनी पद्धति इस प्रकार बतायी—

विष्णु कांची है धर्मशाला, श्वेत गंगा चक्र तीर्थ सोय
सुख विलास इन्द्र दमन मध, जहां निर्मल सब होय ॥ ५६ ॥
मार्कण्डेय है तीरथ, पुरुषोत्तम पुर धाम
ईष्ट लक्ष्मी है सही, जगन्नाथ सेवन उपासना नाम ॥ ५८ ॥
अथर्ववेद हमारो सही, माला नाम की सार
अच्युत है गोत्र पुनि, त्रिपुरारी साखा धार ॥ ५९ ॥
सुक्ल वर्ण तुम जानियो, तुलसी मन्त्र है जाप
जलबिंब ऋषि हैं वरुण देवता, वामदेव आचारज थाप ॥ ६० ॥
ब्रह्म गायत्री जानियो, महादेव से सम्पदाय आय
साजुज मुक्ति हमने ग्रही, ए विष्णु श्याम सम्पदाय सुहाय ॥ ६१ ॥

'श्रीजी' ने कहा, 'तुम्हारो साधना के समस्त साधन नश्वर हैं, अतः इनसे मोक्ष की अपेक्षा कैसे की जा सकती है[2]।'

वृन्दा देवी मुक्ति सरूपी, प्रणव मन्त्र ओंकार
चली सम्प्रदाय सनकादिक से, प्राचीन मत ए सार ॥ ५१ ॥
गोपाल वंश है गायत्री, गोपाल मन्त्र है जान
नारद हैं आचारज, ऋषि दुर्वाशा मान ॥ ५२ ॥
विष्णु को वाहन सही, गरुड देवता सोय
रक्षा करे सदा सन्त की, ए पद्धति नीमानुज होय ॥ ५३ ॥ —वही, पृ० १६१, प्र० ३५

१—तब किये प्रश्न श्रीराजजी, तुम में नहीं विचार
कछु कहो जगत के परे की, कछु जगत मंझार ॥५४॥
सार असार को एक किये, मिले नहीं मत वेद
तुम बिन सतगुरु कहा करो, छुटे नहीं भव खेद ॥५५॥ — वही, पृ० ३५

२—वही, प्र० ३५

पूछने पर माध्वाचार्यवालों ने अपनी पद्धति[1] बतायी तो श्रीजी ने उनसे भी यही कहा, 'तुम्हारी शाला-अवन्तिका और धाम-बद्रीनाथ, आदि नश्वर संसार में होने के कारण नश्वर हैं, अतः प्रलय के समय यह तुम्हारी अमर-आत्मा को शरण कैसे दे सकेंगे।'

दशनाम संन्यासियों ने अपना मत और मन्त्र बताते हुए कहा कि हमारे चार मठ हैं। हमारे आचार्य हैं ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वशिष्ठ, शक्ति, पाराशर, व्यास, शुकदेव, गौड़, गोविंद और शंकराचार्य। शंकराचार्य के ब्रह्माचार्य, पद्माचारज, तोटक-चार्य और श्रृंगी ऋषि नाम के चार शिष्य हुए। इन चारों के दस शिष्य हुए जिससे 'दशनाम संन्यास' मार्ग चला[2]।

षट्‌दर्शनियों ने अपने मत की व्याख्या की। प्राणनाथजी ने उनसे कहा कि मैं ब्रह्म का स्थान और रूप जानना चाहता हूँ। षट्‌दर्शनियों ने उत्तर दिया कि ब्रह्म तो सर्वत्र है, तब प्राणनाथजी ने कहा—

जो तुम सर्वत्र ब्रह्म कह्या, तब तो अज्ञान कछुए नाहिं
तो षट्‌शास्त्र भए काहे को, मोहे ऐसी आवत मन माहिं

समस्त मत-मतान्तरों के आचार्यों ने कहा, ये हम सबके धर्मों का खण्डन करते हैं। हमारे मत तो इतने प्राचीन हैं कि उनमें क्यों, क्या आदि प्रश्नों के लिए स्थान नहीं। इनका स्थान तो नवस्थापित सम्प्रदाय में होता है। इनका सम्प्रदाय नया है, आज

१—मध्वाचार्य सम्प्रदाय की पद्धति
पुरी अवन्तिका शाला सही, नीमखार क्षेत्र होय
सुख विलास है अंग पात मध, बद्रीनाथ धाम है सोय
अलखा नदी तीरथ हमारो, विधि उपासना जान
सावित्री तो ईष्ट है, आदि वेद ऋग मान (जारी)
हरिनाम की माला है उर में, विष्णु गायत्री गान
विष्णु हंस रूप मन्त्र है, ब्रह्मा आचार्या प्रमाण
हंस ऋषि पुन देवता, ब्रह्माते सम्प्रदाय आय
सालोक है मुक्ति हमारी, ए पद्धति माधवा सुहाय॥६७॥ —लालदास-कृत बीतक, पृ० १६२, प्र० ३५

२—वहीं, प्र० ३६

तक देखा-सुना नहीं गया, अतः इनकी पद्धति सप्रमाण पूछी जाये।

सबने मिलकर प्राणनाथजी से कहा, आप हम सबके मतों का खण्डन करते हैं। इससे स्पष्ट है कि आपका मत इन सबसे भिन्न है। हमारे मत और सम्प्रदाय तो प्राचीन हैं, आपने जो नवीन मत चलाया है, उसका उल्लेख किस शास्त्र में और कहां मिलता है?

श्री प्राणनाथजी ने अपनी साधना पद्धति इस प्रकार बतायी-'हमारे सद्गुरु ब्रह्मानन्द हैं। पूर्णब्रह्म परमात्मा का आनन्द अङ्ग श्यामाजी, श्री देवचन्द्रजी के रूप में अवतरीत हुई। यही आनन्दावतार (आनन्द अङ्ग श्यामाजी के अवतार) देवचन्द्रजी हमारे सद्गुरु हैं।

साक्षी —उक्तं च स्कन्द पुराणे गुरुगीता—

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यं।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वदा साक्षिरूपं,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्नमामि[१] ॥

सूत्र (उपवीत) अक्षर-रूप है—

साक्षी यदक्षरं परं ब्रह्म तत्सूत्रमिति धारयेत्।
सूचनात्सूत्रमित्याहुः सूत्रं नाम परं पदम् ॥
तत्सूत्रं विदितं येन स विप्रो वेदपारगः[२]।

शिखा सदा तिनसे (अक्षर से) परे, चैतन्य चिद् अनूप

साक्षी शिखा ज्ञानमयी यस्य उपवीतं च तन्मयम्।
ब्राह्मण्यं सकलं तस्य इति ब्रह्मविदो विदुः ॥
चिदेव पञ्चभूतानि चिदेव भुवनत्रयम्[३]।

तथा- आनन्दविज्ञानघन एवास्मि, तदेव मम परमं धाम,

१-लालदास-कृत बीतक, पृ० १७७ प्र० ३७

२-वही पृ० १७८

३-वही, पृ० १७७

तदेव शिखा, तदेवोपवीतञ्च[१] । — परमहंसोपनिषद्

'सेवन' है पुरुषोत्तम (उत्तम पुरुष ही हमारा आराध्य है) ।

साक्षी द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः[२] । — गीता

'गोत्र' चिदानन्द जानो—

साक्षी अनादिमादिचिद्रूप चिदानन्दं परं विभुम् ।
बृन्दावनेश्वरं ध्याये त्रिगुणस्यैककारणम्[३] ॥ वाराह संहिता

परम किशोर ईष्ट है—

साक्षी सिद्धरूपाऽसि चाराध्या राधिका जीवनं मम ।
यः स्मृत्वा भावयन्ति त्वां तैरहं भावितः सदा ॥
तत्र मे वास्तवं रूपं यत्र यत्र भवादृशी ।
ममेष्टं च ममात्मा त्वं राधैव राध्यते मया[४] ॥ -पुराण संहिता

पतिव्रता प्रेम लक्षणा भक्ति 'साधन' मान (प्रतिव्रता-सखी भाव-से हम आराधना करते हैं) —

साक्षी नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन[५] ॥ —गीता

युगल किशोर को 'जाप' है—

साक्षी राधया सह श्रीकृष्णं युगलं सिंहासने स्थितम् ।

१—वही, पृ० १७८

२—लालदास—कृत बीतक, पृ० १७८

३—वही प्र० ३७

४—वही, पृ० १७९

५—वही, प्र० ३७

पूर्वोक्तं रूपलावण्यं दिव्यभूषा स्रगम्बरम्[1] ॥

'मन्त्र' तारतम सोए—

साक्षी स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया तरतमतश्चकास्स्यनलवत्
स्वकृतानुकृतिः ।
अथवितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं विरजधियोऽन्वयन्त्यभि-
विपण्यव एकरसम्[2] ॥ – भागवत १०–८७–१९

ब्रह्मविद्या देवी सही, पुरी नौतन मम जोए-

साक्षी ब्रह्मविद्यां प्रवक्ष्यामि सर्वज्ञानमनुत्तमम् ।
यत्रोत्पत्तिलयं चैव ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ॥

तब पण्डितों ने शास्त्र और क्षेत्र आदि के बारे में पूछा, तो प्राणनाथजी ने उत्तर दिया-

अठोत्तर सौ पख शाखा सही, शाला है गोलोक ।
सद्गुरु चरण को क्षेत्र है, जहां जाए सब शोक ॥
सुख विलास माहिं नित्य वृन्दावन, ऋषि महाविष्णु है सोए ।
वेद हमारो स्वसम है, तीरथ जमुना जोए ॥
शास्त्र श्रवण श्री भागवत, बुद्धि जाग्रत को ज्ञान ।
कुल मूल हमारो आनन्द है, फल नित्य विहार प्रमान ॥
दिव्य ब्रह्मपुर धाम है, घर अक्षरातीत निवास ।
निजानन्द है सम्प्रदाय, उत्तर प्रश्न प्रकाश ॥
श्री देवचन्द्रजी निजानन्द हैं, तिन प्रकट करी सम्प्रदाय येह ।
तिन थे हमने यह लखी, द्वार पावें अब तेह[3] ॥

इस तरह शास्त्रार्थ करते हुए प्राणनाथजी ने उन्हें बताया कि शास्त्रों में लिखा है कि

१–वही, प्र० ३७

२–लालदास–कृत बीतक, पृ० १७८

३-वही, पृ० १८०–८१

वि० सं० १७३५ तथा शाके सालवाहन १६०० में, जब ग्यारह माह का साल होगा, तब बुद्धनिष्कलंकावतार होंगे और 'विजयाभिनन्द' का शाखा चलायेंगे। यह ठीक वही समय है[1]। अत एव यह शास्त्र सम्मत शाका इस कुम्भ के मेले पर चालू हो गया है।

अन्तिम निवास-स्थान

गुजरात, कच्छ, राजस्थान, अरब, मध्यभारत आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए वि० सं० १७४० में प्राणनाथजी पन्ना पहुँचे। यहाँ ग्यारह वर्ष रहे। यहां से प्राणनाथजी सं० १७४४ में चित्रकूट गये। वहां लग-भग दो वर्ष रहने के बाद फिर पन्ना आ गये। छत्रसालजी ने प्राणनाथजी के निर्देश पर गुम्मट और बंगला मन्दिर बनवाया। बङ्गला में प्राणनाथजी चर्चा (धर्मोपदेश) करते थे। छत्रसाल से उन्होंने कहा था, मेरे 'धामगमन' के बाद मुझे गुम्मटजी में ही समाधि दी जाये। वि० सं० १७५१ में वे यहीं (पन्ना में) धाम चले। उनकी इच्छानुसार उन्हें गुम्मटजी मन्दिर में ही समाधि दी गयी।

शाका और धामगमन

जब शक् संवत् १६०० और विक्रमी संवत् १७३५ था, तब प्राणनाथजी ने 'विजयाभिनन्दन' नाम से अपना शाका चलाया था। जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी रचना 'कीरन्तन ग्रन्थ' में इस प्रकार किया है—

> सोलह सौ लगा रे शाका सालवाहन का, संवत सत्रह सौ पैंतीस
> बैठा रे शाका विजयाभिनन्द का, युं कहे शास्त्र और ज्योतिष[2]

'विजयाभिनन्दन' शाका सोलह में, प्राणनाथजी धाम चले (कुछ लोगों का मत है कि

१—तो या भात चरचा बहुत मेला में भई जान
साक्षी दई सब शास्त्र की, ववगति गति जो प्रमाण
तहा पैंतीसा के बरस मे, भए निशान धूम्रकेत
क्षय भई एक मास की, इन समय जगत भयो अचेत
शाके विजयाभिनन्द के, पुकारत सब कलाम
ताको सबै पढ़त हैं, पर भूली खलक तमाम — वही, प्र० ३७

२—कीरन्तन, प्रकरण— ५७
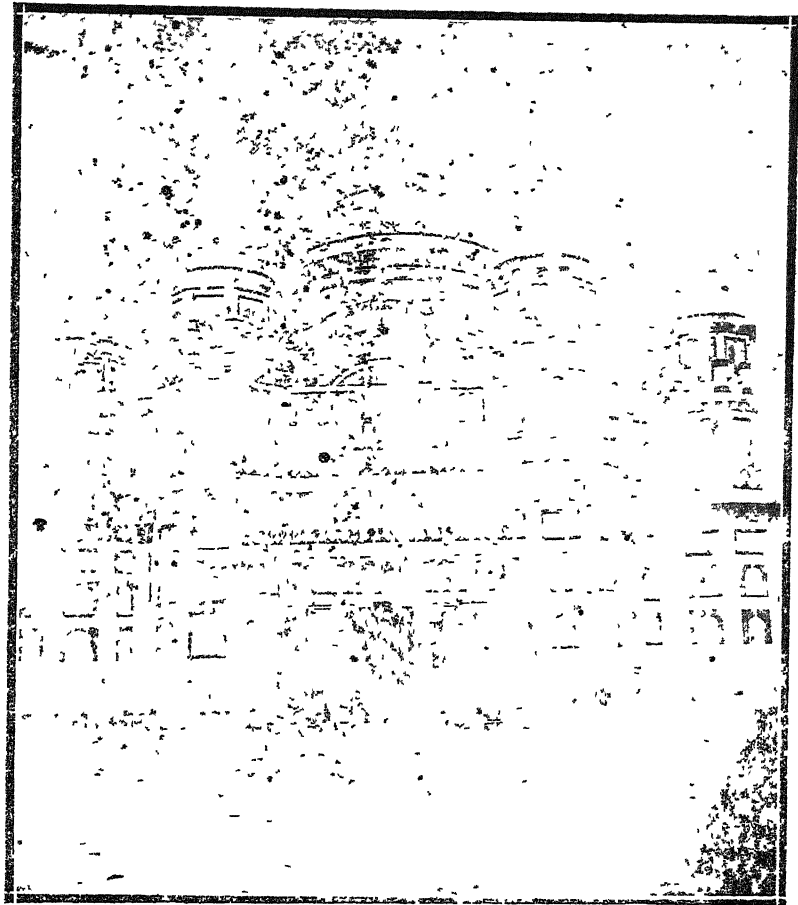
गुम्मट बंगला मन्दिर (पन्ना)
श्रीप्राणनाथजी के संरक्षण में निर्मित
जहाँ 'तारतम सागर' की मूल प्रति उपलब्ध है.

इन्होंने जीवित समाधी ली) प्राणनाथजी ने धामगमन का समय समीप जानकर शिष्य गरीबदास को छत्रसालजी को बुला लाने के लिए भेजा। छत्रसाल उस समय मऊ में थे। उनके आने से कुछ समय पूर्व प्राणनाथजी धाम चल गये। गुरु के साथ बारह शिष्यों ने भी प्राण त्याग दिये। छत्रसाल ने भी जब अपना प्राणान्त करने के लिए तलवार निकाली तो प्राणनाथजी ने आखें खोलीं और छत्रसालजी का हाथ पकड़ लिया[१]। उनसे (छत्रसालजी) कहा, 'तुम इतने निराश क्यों होते हो, तुम जब भी चाहो मुझे मिल सकते हो।' कहते हैं समाधिस्थ होने के दो साल बाद तक प्राणनाथजी छत्रसालजी से मिलते रहे और एक गरीब औरत को, लड़की की शादी के लिए अपनी अंगूठी भी दी थी। (जिसका सविस्तार उल्लेख 'अलौकिक घटनए'' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है)।

अलौकिक घटनाएं

शूद्र वर्ग पर हो रहे ब्राह्मणों के अत्याचार और मुगलों (औरंगजेब) द्वारा हिन्दुओं और हिन्दू-धर्म पर ढहाये गये जुल्मों से प्राणनाथजी की आत्म कांप उठी और उन्होंने दीवान-पद के सुख-वैभव को त्यागकर स्थान-स्थान पर जाकर लोगों को इन अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने को प्रोत्साहित किया। इसी लिए राजाओं से लेकर शूद्र वर्ग तक के हृदय में उनके प्रति आदर और श्रद्धा थी। इस श्रद्धा ने उनके व्यक्तित्व को अनेक अलौकिक कथाओं का केन्द्र बना दिया। यद्यपि इन कथाओं से प्राणनाथजीके व्यक्तित्व और कृतित्व अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त नहीं होती, फिर भी लोक हृदय पर पड़े प्राणनाथजी के व्यक्तित्व के प्रभाव की व्यंजना होती है। कालान्तर में इन कथाओं ने प्रकाशित तथा परवर्ती हस्तलिखित प्रणामी-साहित्य में भी स्थान पा लिया। इनमें से कुछ अलौकिक घटनाएं निम्न हैं—

(१) श्री प्राणनाथजी के जन्म के समय सूर्य ने इनकी माताजी धनबाई के मुंह में प्रवेश किया था, इसलिए इनकी कीर्ति सूर्य की तरह प्रकाशमान हुई और उनका नाम मिहिरराज हुआ।

(२) श्रीदेवचन्द्रजी की इच्छा थी कि निजानन्द धर्म-प्रचार का कार्य मेरे द्वारा हो और इस आशय के उन्होंने पत्र भी लिखे थे। प्राणनाथजी जब सर्वप्रथम गुरु की शरण में गये तो गुरु को दण्डवत् प्रणाम करते समय ये विभिन्न पत्र इनकी जेब से गिरे

१-मुक्तिपीठ पृ २१-२८

जिससे देवचन्द्रजी ने अनुमान लगा लिया था कि यह कार्य मिहिरराज द्वारा होगा। इस घटना का उल्लेख प्राणनाथजी की रचना 'सनन्ध' ग्रन्थ' में भी मिलता है।

(३) श्री प्राणनाथजी सं- १७०३-८ तक अरब में खेताभाई के पास रहे। खेताभाई की मृत्युपरान्त हाकिमों ने उनकी अपार धनराशि को अपने अधिकार में कर लिया, जबकि उसके हकदार प्राणनाथजी थे। इन्होंने बादशाह तक अपनी फरियाद पहुँचाने का बार-बार प्रयत्न किया परन्तु असफल रहे। एक दिन मार्ग में 'दिव्य पुरुष' ने उन्हें दर्शन दिया और कहा कि तुम बादशाह का, उस समय दामन झटक कर अपनी फरियाद सुनाना जब वह नमाज के निमित्त मस्जिद जा रहा हो और उससे कहना यदि तुमने मेरी फरियाद पर ध्यान नहीं दिया तो क्यामत के दिन मैं तुम्हारा हिसाब लूंगा। इस घटना का उल्लेख बीतक साहित्य में भी मिलता है। इस जनश्रुति के आधार पर लोगों का मत है कि प्राणनाथजी क्यामत के समय आने वाले मुहम्मद और 'हक' (परमात्मा) का अवतार थे।

(४) श्री प्राणनाथजी सं० १७१५-१६ तक 'हब्सा' में नजरबन्द रहे। इसी समय रास, प्रकाश, षट्ऋतु की रचना हुई। इन ग्रन्थों की रचनाओं के समय 'हब्सा' में चकाचौंध पैदा करने वाला 'प्रकाश' होता था जिसे जाम-वजीर की रानियों ने स्वयं देखा था जिससे उन्हें विश्वास हो गया था कि मिहिरराज ठाकुर असाधारण पुरुष हैं। इसका उल्लेख भी बीतक-साहित्य में मिलता है। इन के मतावलम्बियों की धारणा है कि वाणी 'नाजिल' (उतरना या लिखना) होने के समय दिव्य प्रकाश का होना इस बात का प्रमाण है कि यह वाणी हदीस-वाणी (बुद्धि द्वारा, सोच कर लिखी गयी) नहीं, आवेश वाणी (दैविक शक्ति द्वारा किसी दिव्य शक्ति पर नाजिल होने वाली दिव्य-वाणी) है।

(५) छत्रसालजी जब पैदा हुए तो उनके हाथ में एक मोहर थी। प्राणनाथजी को छत्रसाल ने कहा कि मैं उसी का शिष्यत्व ग्रहण करूंगा जिसके पास इस मोहर जैसीही मुहर हो, और प्राणनाथजी ने उन्हें वैसी अनगिनत मोहरें दिखा दी थीं।

(६) श्री प्राणनाथजी पन्ना स्थित खीजड़ा मन्दिर में बारह शिष्यों के साथ, जिनमें छत्रसाल भी थे, बैठे हुए थे। शत्रु-दल ने अचानक इन्हें घेर लिया। तब प्राणनाथजी ने इन्हें तलवार देते हुए कहा कि मेरे इन शिष्यों को साथ लेकर शत्रु-दल पर टूट पड़ो। आगे बढ़ो पीछे मुड़कर मत देखना। छत्रसालजी गुरु की आज्ञा के अनुसार बिना पीछे देखे जंगल में आगे बढ़ने लगे तो अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित असंख्य योद्धा भी पेड़ों के

नीचे से निकलकर उनके पीछे चलने लगे। कुछ लोगों की तो यह भी धारणा है कि ये योद्धा तैंतीस करोड़ देवता थे जिन्हें प्राणनाथजी ने छत्रसाल की सहायतार्थ भेजा था। प्राणनाथजी द्वारा दी गयी वह तलवार भी आग उगलने वाली थी। उससे निकलने वाली चिन्गारियां बीस गज तक शत्रुओं का नाश करती हुई लुप्त हो जाती थीं। खिजड़ा मन्दिर के आसपास जंगल में मृत लोगों की कब्रे बनाई गई जो आज भी हैं।

(७) पन्ना में बहने वाली किलकिला नदी का जल विषमयी था। प्राणनाथजी ने अपने चरण के अंगूठे को उसमें धोकर उसे विषहीन बना दिया१। उसी जल से दातून किया। वहां पर एक पेड़ है जिसके बारे में प्रसिद्ध है कि प्राणनाथजी ने दातून का जो शेष हिस्सा फेंका था, उसी से वह उगा है। यह स्थान अमराई घाट पर है।

(८) छत्रसालजी ने जब गुरु से धनाभाव का जिक्र किया तो प्राणनाथजी ने उन्हें वरदान दिया कि आज चौबीस घंटे में तुम्हारा घोड़ा जितनी भूमि पर दौड़ सकेगा उतनी भूमि तब तक हीरा उगलती रहेगी जब तक तुम्हारे वंशज प्रणामी-धर्म में निष्ठा रखेंगे। आज भी भादो तीज को घोड़े दौड़ाने की परम्परा का निर्वाह किया जाता है।

(९) श्री प्राणनाथजी के लच्छीदास नामक एक शिष्य के पास पारसमणि थी जिससे गुम्मट मन्दिर को स्वर्णमयी बनाना चाहता था। उस मणि को प्राणनाथजी ने उससे लेकर कुण्ड (जलाशय) में फेंक दिया। लच्छीदास को बहुत बुरा लगा। एक दिन प्राणनाथजी लच्छीदास को साथ लेकर घूमने गये। कुण्ड के समीप पहुँच कर उससे कहा, यदि तुम्हें मणि खो जाने का अत्यधिक दुख है तो तुम अपनी पारसमणि पहिचान कर ले लो। उनका इतना कहना था कि कुण्ड जल के स्थान पर मणियों से भर गया। यह देखते ही लच्छीदास बड़ा लज्जित हुआ और विनम्रता से बोला, 'नहीं मुझे मणि नहीं चाहिए। आप इतना ही बता दीजिए कि आपने अकारण उसे जल में क्यों फेंक दिया था?' प्राणनाथजी ने भविष्य वाणी की कि एक समय ऐसा होगा जब लोगों की धर्म में आस्था नहीं रहेगी। पैसा ही उनका धर्म और कर्म होगा। वे स्वर्ण-मन्दिर की ईंट-ईंट उखाड़कर ले जायेंगे और मन्दिर का नामोनिशान भी न रहेगा। इससे स्पष्ट है कि प्राणनाथजी त्रिकाल-द्रष्टा थे। उन्होंने आज से तीन सौ वर्ष पूर्व जो भविष्यवाणी की थी, वह आज सत्य निकली है।

१–'विष की नदिया अमृत कीन्हीं सुख सबन पहुँचाये' (सेवा पूजा का गोटा, गौरी)
चरणका अंगूठा छुआ कर जलपान करने को कहा (भजन–लोकगीत)

(१०) लच्छीदास ने जब पारसमणि का प्रयोग अपने लिए न करके उसे गुरु को सौंप दिया तो प्राणनाथजी उसके त्याग और निःस्वार्थ भाव को देखकर बहुत प्रभावित हुए और उसे वरदान दिया कि तुम्हारा नाम चिरकाल तक स्मरण किया जावेगा। गुम्मट मन्दिर के पीछे के बड़े दरवाजे पर लच्छी से उसके हाथ का कड़ा लेकर लगा दिया और कहा कि रोगी व्यक्ति, चाहे वे कितने भी असाध्य रोग से पीड़ित क्यों न हो, यदि वे श्रद्धा पूर्वक इस कड़े को धोकर जल ग्रहण करेंगे तो रोग-मुक्त हो जायेंगे और इसी के माध्यम से तुम्हारा नाम भी अमर रहेगा। यह कड़ा आज भी यथा स्थान लगा हुआ है और कई लोग इससे लाभ उठाते हैं।

(११) श्री प्राणनाथजी के धामगमन के समय छत्रसालजी मऊ में थे। इसकी सूचना पाकर छत्रसालजी पन्ना शीघ्रातिशीघ्र पहुँचने को व्याकुल हो उठे। रास्ते में केन नदी पड़ती थी। इस पर कोई पुल भी न था। नदी में बाढ़ आइ हुई थी। इसकी परवाह किये बगैर ही छत्रसालजी घोड़े सहित उसे पार करने का प्रयत्न करने लगे। जब घोड़ा डूबने-उतराने लगा तो प्राणानाजी ने उसे पार किया।

(१२) जब छत्रसाल पन्ना पहुँचे तो प्राणनाथजो धाम चल चुके थे। छत्रसालजी ने व्याकुल होकर तलवार निकाली और यह कहकर कि 'गुरु' के बिना मैं बेसहारा होकर जीवित नहीं रह सकता अपनी जीवन-लीला समाप्त करने लगे तो प्राणनाथजी ने मृत्यु शैया से उठकर हंसते हुए उनका हाथ पकड़ लिया[1]। छत्रसाल को अपना कंधा दिखाया जिसपर घोड़े के निशान थे और कहा, उस नदी से मैंने ही तो तुम्हें पार किया है। यद्यपि दृश्य-जगत् से मैं अदृश्य हो गया हूँ, फिर भी मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ। कहते हैं, इसके बाद लगभग दो वर्ष तक श्री प्राणनाथजी छत्रसालजी से मिलते रहे। उनके समाधि-स्थान गुम्मटजी के अन्तगृह[2] से ऊपर आने के लिए सीढ़ियों से प्राणनाथजी ऊपर आते थे। एक दिन एक दीन-हीन विधवा प्राणनाथजी के पास पहुँची और अपनी बेटी के विवाह के लिए उनसे आर्थिक सहायता की मांग की। प्राणनाथजीने अपनी अंगूठी, जोकि छत्रसालजी ने उन्हें पहनाई थी, उस विधवा को दे दी और छत्रसालजी को आदेश दिया कि यह मार्ग (सीढ़ियां) बन्द करवा दो, क्योंकि इस तरह लोगों के आने से मेरी समाधि भंग होती है। वह गुमटी आज भी है जिससे नीचे सीढ़ियां जाती हैं, पर वह रास्ता बन्द कर दिया गया है।

१-मुक्तिपीठ, पृ० २५
२-वहीं, पृ० २९

(१३) श्री प्राणनाथजी ने शास्त्रार्थ का कार्य अपने शिष्यों मुख्यतः मुकुंन्ददास और लालदास को सौंपा हुआ था। पण्डितों से मुकुन्ददासजी शास्त्रार्थ करते थे और मुल्लाओं से लालदासजी।

एक दिन इलाहाबाद से भट्टाचार्य नामक वेदों के प्रकांड पण्डित शास्त्रार्थ के लिए आये। उसके आने की सूचना पाकर मुकुन्ददासजी स्नान करने का बहाना करके चले गये। काफी समय बीत जाने पर भी जब मुकुन्ददासजी नहीं लौटे, तो प्राणनाथजी ने समझ लिया कि इन्हें गर्व हो गया है। उन्होंने वहां खेलती हुई पांच वर्ष की पांच बालिकाओं को बुलाया। उनके सिरपर हाथ रखकर कहा, 'तुम भट्टाचार्य के प्रश्नों का उत्तर दो।' कहते हैं, उन पांच बच्चियों ने विभिन्न पांच वेदों-ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और स्वसंवेद से अपने उत्तर की पुष्टि की और प्राणनाथजी को बुद्धनिष्कलंकावतार सिद्ध किया।

श्री प्राणनाथजी का व्यक्तित्व

श्री प्राणनाथजी का व्यक्तित्व बहुत प्रखर था। वे निर्भय तो इस सीमा तक थे कि अपने युग के सबसे नृशंस सम्राट (औरंगजेब) का विरोध करने में भी नहीं चूके। इस निर्भयता के पीछे आस्था का बल और दर्शन का दिशा-बोध था। उनमें गजब का आत्म-विश्वास था। उन्होंने सिर्फ इमामत का ही दावा नहीं किया, वरन् अपने को बुद्धनिष्कलंकावतार भी सिद्ध किया। वे मानते थे कि उनका जीवन एक मिशन है, युग धारा को मोड़ने का, समस्त मानवता को नयी दृष्टि देनेका मिशन। इस आस्था और आत्म विश्वास ने उन्हें कभी खिन्न, निराश या पलायनशील नहीं होने दिया।

श्री प्राणनाथजी के व्यक्तित्व की एक बड़ी विशेषता थी-सामंजस्य। वे अलौकिक की साधना को जीवन के लौकिक यथार्थ से जोड़कर चले थे। वैष्णव, सन्त, सूफी-सभी साधनाओं की धाराएं उनमें एकत्र हो गयी थीं और अन्तःसाधना को बाह्य कर्मठता के साथ उन्होंने मिला दिया था। धर्म को राजनीति का क्षेत्र और राजनीति को धर्म की प्रेरणा से सम्बन्ध करने का कार्य भी उनकी इसी सामंजस्यप्रिय वृत्ति का परिणाम था। इसी सामंजस्य वृत्ति के कारण ही उन्होंने वर्ण-व्यवस्था और जाति-वाद का विरोध किया था और समस्त मानव जाति को सब से सुगम हिन्दी भाषा को अपनाकर नाम रूप के भेद-भाव को मिटाने की सलाह दी थी।

श्री प्राणनाथजी की रचनाएं

श्री प्राणनाथजी की रचनाओं का संकलन 'तारतम सागर' कहलाता है। उसे 'कुल्जुमे शरीफ,' 'श्रीमुख वाणी,' 'दिव्य वाणी' आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है। ये नाम साभिप्राय हैं। इनके नामकरण के कारण इस प्रकार हैं—

तारतम वाणी अथवा तारतम सागर

अज्ञान-रूपी अन्धकार को मिटाकर सत्य-ब्रह्म, का मार्ग प्रशस्त करने और इस मोह सागर से मानव का उद्धार करने वाली वाणी को 'तारमत वाणी' नाम दिया गया है-

तारतम रस वाणी कर, पिलाइए जाको
जहर चढ़या होए जिमीका, सुख हो ताको[१]

तारतम अक्षरातीत परमात्मा के चित्त की बातों का नाम है। ये बातें प्राणनाथजी प्यारे के पास जोश आवेश में चौपाईयों के रूप में उतरी, अतः इन चौपाइयों का नाम 'तारतम वाणी' है। इस वाणी की बातें जिस किसी के चित्त में चढ़े, उसने ही तारतम लिया समझिए, बाकी कोई कितना भी ज्ञानी अनुयायी हो, उसे बिना धन का धनवान समझिए......तारतम केवल कोई एक, दो या छः विशेष चौपाइयों का ही नाम नहीं है, बल्कि महामति प्राणनाथ की सम्पूर्ण वाणी में व्याप्त बातों का नाम है और बातों में से प्रत्येक बात तारतम का अंग है[२]—

तारतम को बल कोई न जाने, एक जाने मूल स्वरूप
मूल स्वरूप के चित्त की बातें, तारतम में कई रूप
ए बल देखो इन कुन्जीय का, बातें छिपी हक दिल की
सो सब समझी जात हैं, है अरस की गुझ जेती
इन विध हुआ है अव्वल, दै रुह साहिदी तहकीक
जो कही बानी जोश में, सो साहेब दई तौफीक

१—तारतम की पुकार, पृ० ३८

२—वही, पृ० ३७

ए इलम लिए ऐसा होत है, रूह अपनी साहिदी देत।
बैठ बीच ब्रह्मांड में, अरस बका में लेत ॥

कुल्जुम शरीफ

हजरत मूसा पैगम्बर ने अपनी कौम (समाज) को परमात्मा की सच्ची राह पर चलने के लिए जो उपदेश दिये थे, उसके खिलाफ में उन दिनों के मिश्र के बादशाह फिरौन ने कड़ी कार्यवाही की थी। बादशाह फिरौन शैतान का साक्षात् रूप था और वह स्वयं की मूर्ति जगह-जगह रखवा कर प्रजा को उसकी पूजा करने को बाध्य करता था। हजरत मूसा अपने समाज का उससे पीछा छुड़ाने के लिए परमात्मा की आज्ञा से अपने समाज सहित एक रात को शहर से बाहर निकल पड़े। सुबह होते-होते जब वे एक दरिया [नदी], जिसका नाम कुल्जुम था, पार करने वाले थे, उस वक्त फिरौन की सेना [यानी शैतान का लश्कर] उनके पीछे आ गया। परमात्मा की ऐसी कृपा हुई की उस कुल्जुम नदी ने मूसा और उसके समाज को नदी के पार जाने के लिए रास्ता बना दिया और वे पार हो गये। फिर जैसे ही शैतान का लश्कर उसमें से गुजरा कि वे सब उस नदी में गर्क हो गये। महामति प्राणनाथजी ने बताया कि कुरान शरीफ की कहानियों को सिर्फ गुजरी हुई बातें न समझो, वरन् दुनिया के आखिरी जमाने में आने वाले परमात्मा की गवाही के लिए लिखी हैं। उन्होंने बताया कि हर इन्सान के साथ शैतान का लश्कर होता है जो उसे दिखाई नहीं देता, किन्तु वह लश्कर उसे परमात्मा की ओर जाने से रोकता है, बहकाता है, परन्तु वह उसे समझ नहीं पाता। महामति प्राणनाथजी के मुख से निकला परमात्मा का ज्ञान मनुष्य को ऐसे ही शैतान के लश्कर से छुड़ाकर भवसागर से पार लगाता है, इसलिए उनके ज्ञान की वाणी का नाम कुल्जुम शरीफ है[1]।

कुछ लोगों के मतानुसार यह शब्द कुल्जुमा स्वरूप है-श्रीजी में पाँच शक्तियों का समावेश माना जाता है[2], उनके मुख से नाजिल होने के कारण इसे कुल्जुमा स्वरूप

१-महामति संकल्प, पृ० १२

२-श्री धनी का जोश आत्म दुल्हन,
नूर, हुकम, बुद्धि मूल वतन।
ए पाँचो मिल भई श्री महामत,
वेद कतेवो पहुंची सरत ॥

कहते हैं अर्थात् यह ऐसे स्वरूप की वाणी है जिसमें कुल पाँच शक्तियाँ जमा थीं।

दिव्य वाणी

इस वाणी को अक्षरातीत परमात्मा के घर-दिव्य ब्रह्मपुर धाम-से आया हुआ ज्ञान मानने के कारण 'दिव्य वाणी' भी कहते हैं।

श्री मुखवाणी

श्री प्राणनाथजी के अनेक उपाधि-नामों में 'श्रीजी' भी एक उपाधि-नाम है। उनके मुख से 'नाजिल' (प्रकट) होने के कारण इस वाणी का नाम 'श्री मुखवाणी पड़ा।

'तारतम वाणी' में निम्न चौदह रचनाएं संगृहीत हैं-रास, प्रकाश, षट् ऋतु, कलस, सनन्ध, कीरन्तन, खुलासा, खिलवत, परिक्रमा, सागर, सिंनगार, सिन्धी, मारफत और क्यामतनामा। 'प्रणामी साहित्य' में इन चौदह ग्रन्थों को कहीं-कहीं विभिन्न रचनाएं न मानकर तारतम-सागर के चौदह अनुच्छेद माना गया है१।

और इनमें 'सिन्धी' की गणना नहीं की गयी 'क्यामतनामा' की दो खण्डों में अलग-अलग गणना करके चौदह अनुच्छेदों की गणना पूरी की गयी है। चतुर्वेदीजी के अनुसार 'कुल्जमे शरीफ' में सोलह किताबें हैं। चौदह ग्रन्थों का नामोल्लेख उन्होंने ग्राउज की ही तरह किया है-(१) रास ग्रन्थ, (२) प्रकाश ग्रन्थ, (३) षट्ऋतु, (४) कलस, (५) सबंध, (६) कीरन्तन, [७] खुलासा, [८] खेलवात, [९] प्रकरण (परिक्रमा)-इलाही दुल्हन [जिसमें चर्च अर्थात् परमेश्वर की दुल्हन को पवित्र नगर के रूप में प्रदर्शित किया गया है], [१०] सागर सिंगार, [११] बड़ा सिंगार, [१२] सिंधी भाषा, [१३] मारफत सागर, [१४] क्यामतनामा। शेष जो रचनाओं का नामोल्लेख इन्होंने नहीं किया। इन्होंने इन रचनाओं के संग्रह का नाम 'इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया' के आधार पर 'महातरियाल, माना है जो 'कलजमे शरिफ' से अभिन्न है२।

'खोज रिपोर्टों' में प्राणनाथजी की निम्न रचनाओं का उल्लेख मिलता है-प्रगट वाणी, ब्रह्म वाणी, बीस गिरोह का बाब, बीस गिरोह की हकीकत, कीर्तन, प्रेम पहेली, तारतम्य, राज-विनोद आदि। इनमें से कुछ तो उपरोक्त चौदह रचनाओं प्रकाश, कलस, परिक्रमा आदि-के ही प्रकरण [पद] हैं और कुछ 'दास वाणी'३ के प्रकरण हैं।

१-स्वामी श्री १०८ प्राणनाथजी का पुण्य मन्दिर, पृ० ७-८

२-उत्तरी भारत की सन्त परम्परा-'धामी सम्प्रदाय'

३-प्राणनाथजी के शिष्यों की रचनाएं

इन खोज-रिपोर्टों के आधार पर प्राणनाथजी के नाम से प्राप्त पदों को तीन भागों में रखा जा सकता है-

(क) प्राणनाथजी द्वारा रचित पद

(ख) उनके शिष्यों के पद (दासवाणी)

(ग) संयुक्त पद

मूल सामग्री की प्राप्ति न होने के कारण उन पदों का रचयिता भी प्राणनाथजी को ही मान लिया गया है जो उनके शिष्यों द्वारा रचे गये हैं।

श्री प्राणनाथजी की कृतियों के नाम और चौपाई-संख्या

(१) रास-रचना-काल वि० सं० १७१५, स्थान प्रबोधपुरी (जामनगर), प्रकरण व चौपाई संख्या ४७,९१३; भाषा गुजराती; लिपि हिन्दी।

इस ग्रन्थ में मुख्य रूप से श्रीकृष्ण की रासलीलाओं का वर्णन है, जबकि प्रथम पांच प्रकरणों में ईश्वर से मनुष्य को दूर रखने वाली माया और उसके अस्त्रों (शक्ति) छल, बल, कुटिलतादि का विवरण मिलता है। प्राणनाथजीका माया (संसार) से संघर्ष और उससे बचने के उपायों का वर्णन है (जिसका उल्लेख 'जीवनी' अध्याय में किया जा चुका है)। 'रास' के प्रथम पांच प्रकरण दीपबन्दर सं० १७२२ में नाजिल हुए।

(२) (क) प्रकाश गुजराती-रचना-काल वि० सं० १७१५ स्थान प्रबोधपुरी (जामनगर) प्रकरण व चौपाई ३७,१०६४; लिपि व भाषा हिन्दी, गुजराती।

इस ग्रन्थ में मुख्यतः मोह रूपी अन्धकार में भटकती हुई आत्मा को सन्मार्ग पर लाने और इस मोह अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने के उपायों पर प्रकाश डाला गया है।

(ख) प्रकाश हिन्दुस्तानी-रचना-काल वि० सं० १७४६ [1] स्थान पन्ना[2] प्रकरण व चौपाई ३७, ११८५, भाषा हिन्दुस्तानी।

हिन्दी-भाषी लोगों को समझाने के लिए प्रकाश गुजराती में व्यक्त विचारों को इस ग्रन्थ में हिन्दी भाषा में समझाया गया है। इस (सं० १७५८ के) 'कलजम शरिफ' में

१-मिश्रीलालजी शास्त्री ने इसका रचना-काल वि० सं० १७३५ माना है (कुल्जम स्वरूप निर्देशिका, पृ० ११) पर उपरोक्त पुष्पिका के अनुसार इसका रचना-काल सं० १७४६ ही ठहरता है।

२-अधिकाश लोगों के मतानुसार इसका रचना स्थान अनूपशहर है और रचनाकाल सं० १७३६ है। देखिए-धर्माभियान परिशिष्ट

संगृहीत प्रकाश हिन्दुस्तानी की पुष्पिका इस प्रकार है-

"॥श्री प्रकाश संपूर्ण॥ किताब जंबूर॥सं० १७ से ४६ असाड़ सुदी १२॥ वृहस्पति॥ श्री परना में किताब लिखी॥ चरनरज नन्दराम द्वारा लिखीत॥ सुभमस्तु॥ श्री राज॥ परकाश संपूरण॥"१

(३) षट्ऋतु-रचनाकाल वि० सं० १७१५ स्थान प्रबोधपुरी [जामनगर], प्रकरण व चौपाई १५, २३० लिपी व भाषा हिन्दी, गुजराती।

[क] गुरु देवचन्द्रजी के 'धामगमन' पर प्राणनाथजी ने साहित्यिक परम्परा [षट्ऋतु तथा बारहमासी] का निर्वाह करते हुए अपने विरह की और आत्मा की तड़प व दुःख की अभिव्यक्ति षट्ऋतु द्वारा की है।

[ख] कृष्ण के वियोग दुःख में जलती हुई सखियों द्वारा योग का ज्ञान सिखाने वाले ऊद्धव को भी खरी-खोटी सुनाई गयी है।

[४] (क) कलस गुजराती-रचनाकाल वि० सं० १७२९ स्थान मंगलपुरी (सूरत) प्रकरण व चौपाई १२ ५०६, भाषा व लिपी गुजराती, हिन्दी।

'कलस गुजराती' का बीजारोपण प्रबोधपुरी में हुआ। यहां पर दो चौपाई ही लिखी गयी थीं, और पूर्ण (समाप्ति-अन्तिम प्रकरण) सूरत में हुई। इसमें विभिन्न मत-मतान्तरों पर प्रकाश डालते हुए विभिन्न मतावलम्बियों द्वारा पाखण्डपूर्ण मार्ग का खण्डन करते हुए ईश्वर तथा मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग दर्शाया गया है।

[ख] कलस हिन्दुस्तानी-इस कुलजम में संगृहीत कलस हिन्दुस्तानी के अन्त में निम्न पुष्पिका दी है—

"सं० १७३३ ना भादरवा सुद १ में सेहेरे अनुपम में लिख्या छे
श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री सम्पूर्ण कलस हिन्दुस्तनी२"

इसके अनुसार कलस हिन्दुस्तानी का रचनाकाल-वि० सं० १७३३ ३ स्थान-अनूप [अनूपम] शहर, प्रकरण व चौपाई संख्या-२५, ७६९, भाषा-हिन्दुस्तानी ठहरती है। इसमें 'कलस गुजराती' में दिये गये उपदेशों की 'हिन्दी भाषा' में पुनरावृत्ति मात्र है।

१-देखिए, 'लालदास-कृत बीतक' की भूमिका (इलाहाबाद प्रकाशन)

२-लालदास-कृत बीतक (प्रकाशक, मिड्वा प्रेस, इलाहाबाद), भूमिका, पृ० २९

३-कुछ लोगों के मतानुसार कलस हिन्दी का रचना स्थान पन्ना है और रचना काल वि० सं० १७४४ माना है

उल्लेखनीय है कि बीतककारों के अनुसार प्राणनाथजी का अनूपशहर में आगमन वि० सं० १७३६ में हुआ। अतएव रचना-स्थान अनूपशहर मानने पर इसका रचना-काल सं० १७३६ ठहरता है। परवर्ती लेखकों ने भी इसका रचनाकाल सं० १७३६ ही माना है और स्थान अनूपशहर१।

(५) सनन्ध-स्थान अनूपशहर, रचना-काल वि० सं० १७३६, प्रकरण व चौपाई संख्या ४२, १६९१ भाषा हिन्दुस्तानी तथा अरबी।

मेड़ता में इसका बीजारोपण [आरम्भ] हुआ था। मेड़ता में प्राणनाथजी जिस हवेली में रुके थे, वह मस्जिद के समीप थी। यहां मुल्ला द्वारा दी गयी बांग स्पष्ट सुनायी देती थी। अब तक प्राणनाथजी के अध्ययन, मनन तथा प्रवचन [उपदेश] का आधार पुराण थे। परन्तु इस बांग से प्रेरणा पाकर उन्होंने कुरान को भी अध्ययन का आधार बनाया। कलस का आधार पुराण [हिन्दू धर्म] और सनन्ध का आधार कुरान [मुस्लिम धर्म] है। इतना ही नहीं, सनन्ध में दोनों [कुरान-पुरण] का समन्वय करते हुए स्पष्ट किया गया है कि दोनों के मूलभूत सिद्धांत एक ही हैं२। यदि कोई अन्तर है तो वह है भाषा का —

"बोली जुदी सबन की और सब का जुदा चलन"

× × × ×

'ताथे हुई बड़ी उरझन, सो सुरझाऊँ दोय'

'नाम निशान जाहेर करूं, ज्यों समझे सब कोय'

कुरान और पुराण में प्रयुक्त कुछ विशिष्ट शब्दों की समानता का उल्लेख कर इस उलझन को मिटाने का भी प्रयास किया है। क्योंकि उनका उद्देश्य था-

करना सारा एक रस, हिन्दू मुसलमान

धोखा सबका भान के, कहना सबका ज्ञान

इस बाह्य [भाषा के] अन्तर को लेकर हिन्दू और मुसलमान दोनों ने अपनी राह अलग-

---

१—'धर्माभियान' परिशिष्ट

२—सनन्ध किताब कुरान की वाणीश्रुति साख पुराए।
शास्त्र पुराण कीरन्तन वाणी वेद के साख दिखाए॥ (दासवाणी प्रभाती)

अलग बना ली है। वास्तविकता को जाने बिना, झगड़ा करनेवाले हिन्दू-मुसलमान दोनों को कबीर को तरह खरी-खोटी सुनाई है-

जो कुछ कहा कतेब ने, सोई कहा वेद
दोऊ बन्दे एक साहिब के, पर लड़त बिना पाये भेद

\+ + +

हिन्दु कहें हम उत्तम, मुसलमान कहें हम पाक
दोनों मुट्ठी एक ठौर की, एक राख दूजी खाक ॥

इतना ही नहीं, 'बुद्धावतार' और 'महम्मद' मलकी-सूरत को एक ही रूप मानकर उसे 'वेद-कतेब' की सहायता से प्रमाणित करके इस रचना [सनन्ध अथवा सनद] के नाम को सार्थक बनाया है (चूंकि 'सनन्ध' 'सनद' का ही विकृत रूप है)। 'सनद' अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'प्रमाण' (इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग आज भी प्रचुर मात्रा में मिलता है)। सनन्ध में प्राणनाथजी ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि इमाममेंहदी के रूप में अवतरित होनेवाले महम्मद और बुद्धनिष्कलंकावतार दो विभिन्न अवतार न होकर एक ही हैं। इनमें यदि कोई अन्तर है, तो वह है भाषा का।

(६) कीरन्तन-स्थान दीप [ड्यू] अरब, सूरत, मेड़ता, पन्ना आदि, रचना-काल वि० सं० १७०३-४८, प्रकरण व चौपाई १३३, २१०२, लिपी व भाषा हिन्दी, (भाषा) गुजराती, सिन्धी, हिन्दुस्तानी।

'कीर्तन' अथवा 'कीरन्तन' में गेय पद ही अधिक हैं। इसमें 'बुद्धनिष्कलंका-वतार' के अवतरित होने की तिथियों तथा प्रमाणों का उल्लेख हुआ है। सं० १७३५ में इस अवतार के अवतरित होने और विजयाभिनन्द-बुद्धनिष्कलंकावतार का शाका [संवत्] चलने का वर्णन भी मिलता है—

सोलह सौ लगा रे शाका सालवाहन का
संवत सत्रह सौ पैंतीस
बैठा रे शाका विजयाभिनन्द का
यूं कहे शास्त्र और ज्योतिष[1]

१-प्राणनाथजीने वि० स० १७३५ में अपना 'शाका' चलाया जिससे परोक्ष रूप से प्राणनाथजी के ही निष्कलंकावतार होनेका प्रमाण मिलता है।

[७] खुलासा-स्थान पद्मावतीपुरी [पन्ना], रचनाकाल वि० सं० १७४०-४७, प्रकरण व चौपाई १५, १०२० भाषा हिन्दी-अरबी मिश्रित हिन्दुस्तानी।

"अब कहूँ खुलासा फुरमान का" कहकर स्वयं प्राणनाथजी ने स्पष्ट कर दिया है कि 'खुलासा' में फुरमान (कुरान) के कुछ अध्यायों (पारों) पर प्रकाश डाला है और लाहूत, जबरूत, नूरजलाल, नूरजमाल आदि का स्पष्टीकरण किया है तथा कुरान एवं पुराण का शब्दभेद मिटाकर दोनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया है[1]।

[८] खिलवत-स्थान पन्ना, रचनाकाल सं० १७४०-४७ प्रकरण व चौपाई १६, १०७४ भाषा हिन्दुस्तानी।

इसमें 'खेल' (संसार की उत्पत्ति, विस्तार आदि) के कारणों पर प्रकाश डाला गया है। अक्षर ब्रह्म जो सच्चिदानन्द (परमात्मा) का सत् अंग तथा बाल-स्वरूप है, इस विश्व के प्राणियों रूपी खिलौनों को बनाता है। सच्चिदानन्द (सत्+चिद्+आनन्द) की आनन्द अंग-सखियां इस खेल को देखने की इच्छा व्यक्त करती हैं। जिस तरह परमात्मा ने इनकी इस इच्छा की पूर्ति की. उसका सविस्तार वर्णन इस रचना में मिलता है।

(९) परिक्रमा-स्थान पन्ना रचनाकाल सं० १७४०-४७ प्रकरण व चौपाई ४३, २४८१।

विस्तार की दृष्टि से यह एक वृहद् रचना है। अन्य रचनाओं से इसकी चौपाई-संख्या सर्वाधिक है।

इसमें परमात्मा के स्थान-परमधाम का सविस्तार वर्णन है।

इस रचना का सम्बन्ध उन तीस हजार शब्दों से बताया जाता है जिनका उल्लेख 'कुरान' में नहीं मिलता[2]। और जिसका संकेत 'खुलासा' ग्रन्थ में हुआ है—

कहे सुभाने मुझको, हरफ नब्बे हजार,
तीस तुम जाहिर कीजियो तीस तुम पर अख्त्यार
बाकी जो तीस रहे, सो राखियो तुम छिपाए,
बका दरवाजा खोलसी आखर को हम आए[3]।

१—विस्तार के लिये देखिए 'दर्शन साधना' अध्याय

२—जो हरफ जुबां चढे नही, सो क्यों चढे कुरान (सनन्ध)

३—जनश्रुति (मुस्लिम-धर्म) के अनुसार महम्मद को हकने नब्बे हजार हर्फ सुनाये थे। जिसमें से तीस हजार शब्द 'शरीयत' (कर्मकाड) के थे, तीस 'हकीकत' के और तीस हजार 'मारफत' (गुह्य, छिपे)

(१०) सागर-स्थान पन्ना, समय सं० १७४४-४५१ भाषा हिन्दी, प्रकरण व चौपाई १५, ११२८।

सागर शीर्षक के अन्तर्गत परमधाम के आठ सागर (समुद्रों) का सविस्तार वर्णन है जिसका उल्लेख 'दर्शन अध्याय' में किया गया है।

(११) सिंगार-स्थान पन्ना रचनाकाल सं० १७४०-४७ प्रकरण, चौपाई २९, २२०९ भाषा हिन्दुस्तानी।

इसमें परमात्मा और उनके आनन्द अंग श्यामाजी तथा सखियों के शृंगार का वर्णन है [यह सिर्फ उस समय के शृंगार का वर्णन है जो उन्होंने 'अक्षर का खेल' देखने के लिए जाने के समय किया था]। परिक्रमा तथा सिंगार के पढ़ने से प्राणनाथजी के 'शुद्ध साकारवादी' होने की पुष्टि होती है।

[१२] सिन्धी-स्थान पन्ना रचनाकाल सं० १७४०-४७, प्रकरण व चौपाई १६,-६००, लिपी, भाषा देवनागरी, सिन्धी[२]।

अक्षर का खेल देखने के लिए आई हुई सखियों को अपने प्रियतम की याद बहुत सताती है और वे परमात्मा [प्रियतम] को उपालम्भ देती हैं कि उन्होंने हमें क्यों भुला दिया है।

यह ग्रन्थ सिन्धी भाषा में है, संभवतः इसीलिए इसका नाम सिन्धी ग्रन्थ पड़ा है[३]।

[१३] मारफत सागर-रचनाकाल वि० सं० १७४८ स्थान पन्ना भाषा उर्दू मिश्रित हिन्दी प्रकरण चौपाई १७, १०३४

मारफत सागर में प्राणनाथजी ने बताया है कि आयतों हदिसों आदि के जाहिर मायने (शब्दार्थ) लेने से काम नहीं चल सकता[४] इससे गुमराह होने अर्थात् अर्थका अनर्थ

के थे। तीस हजार 'शरीयत' के और कुछ 'हकीकत' के हरफ (जिसे मुक्तैया हरफ कहा जाता है, जिनका खुलासा स्वयं महम्मद ने आकर करना है) कुरान में चढ़े (लिखे) हैं। शेष 'मारफत' के तीस हजार शब्दों का खुलासा स्वयं हक ने करने के लिए कहा था, परिक्रमा खिलवत और सागर का सम्बन्ध इन्हीं 'मारफत हर्फों' मे है। इससे प्राणनाथजी का हक (मरमात्मा) होने का भी सकेत मिलता है।

१-लैंड प्राणनाथ 'अपेन्डिक्स'

२- मुरलीदासजी ने इसकी भाषा उर्दू मिश्रित हिन्दी मानी है।

३-श्री प्राणनाथजी वचनामृत का संक्षिप्त परिचय, पृ० १३५

४-जो देखे जेर जबर सोहकीकत पावे क्यों कर

होने की सम्भावना है। बातुनी अर्थ [भावार्थ] के द्वारा ही वास्तविकता को जाना जा सकता है[1] उदाहरण के लिए इस्लामिक साहित्य में यह बयान मिलता है कि जर और मोती के सत्तर साल वाले दो पर्दे पार करने पर ही आखीर में महमद को हक का दीदार [म्याराज] हो सका[2]।

इसमें कयामत के उन सात निशानों पर भी प्रकाश डाला गया है जिन के लिए मुसलमानों का मत है कि यह कार्य केवल आखरी महमद अथवा हक (परमात्मा) द्वारा ही सम्भव है[3]। जो कयामत के समय अवतरित्त होंगे[4]। साथ ही यह भी बताया गया है कि कयामत के सात निशानों का अर्थ बातुनी मायनों द्वारा ही पाया जा सकता है। जाहिरी मायने लेने से 'गुमराही' और 'कुफर' फैलने का डर है। प्राणनाथजी ने मारफत सागर में कयामत आदि के निशानों का बातुनी अर्थ बताकर लोगों को गुमराह होने से बचाने का प्रयत्न किया है[5]।

इस रचना के आरम्भ तथा अन्त में पुष्पिका दी है जो निम्न प्रकार है।

आदि की पुष्पिका-

"हक हादी के हुकम से ए किताब मारफत सागर हक ताला के हुकम से पैदा हुई हादी के दिल पर आप बैठ बिगर हिजाब बारीक बातें॥ चौपाइयां मुंह से कहवाई॥ सो कलाम ज्यों आवते गये॥ त्यों यारों ने लिखे॥ और हादी फिर प्यांर सों सुनते गये। सो सुन सुन के हुक्मे हाल अपने पर लेते गये। अरस बका लाहूती का लेते गये॥ और जामा नाजुक होता गया॥ सो यहां ताईं कि आखिर आलिम नासूती सेती कूच करके अपने रूहानी आलम बका वतन हमेशगी असल

१- इत जाहिरी मायनों का नहीं काम, एतो सुनियो दिल के कान
तथा—जाहिरी मायने लिए अंधेर, ताको लानत लिखी बेर बेर

२-मारफत सागर प्र० १

३-इससे अप्रत्यक्ष रूपसे प्राणनाथजी के 'हक' तथा महम्मद होने (के दावे) का संकेत मिलता है।

४-इसके अनुसार कयामत लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व हो चुकी है जिसका इन्तजार मुसलमान अब तक कर रहे हैं

५-नूर सागर सूर मारफत, सब दिलो करसी दिन
रात गुमराही कुफर मेट के, करे चौदह तबक रोशन (मार० प्र० ४)
तथा—हकीकत कुरान की, सो पहुंची ठौर नर
आगे हक के दिल की, सो मारफत में मजकूर (छोटा कयामत प्र० २)

मिलाप के आराम पकड़ा। और ए चौपाइयां ज्यों ज्यों नाजिल होती गयीं थीं सो मसौदे त्यों के त्यों ही रहे ॥ सो अब हक हादी के हुकम से ॥ मोमिनों ने इसके बाब बांधे हैं ॥ माफिक अपनो अकल के ॥ ए पर जो चौपाई हादी ने फुर-माई थी तिन में एक हरफ कम ज्यादा नहीं किये ॥ अब मोमिन इन चौपाइयों के हर्फ हर्फ के माइने मगज जाहिर के और बातुन के लेके हक के हुकम से हादी के कदमों कदम धरेंगे ॥ किस वास्ते कि मोमिन हादी के अंग नूर हैं ॥ और नूर बुलंद से उतरे हैं ॥ तो चढ़ना इनको जरूर है ॥ और अरस बका के पट हादी ने लदुन्नी से खोल दिये हैं ॥ आप हक ने नाजी फिरके को ॥ हिदायत करके निसबत मो-मिन असलू तन जो बीच अरस के हक हादी के कदम तले बैठे हैं सो दिखाये दई है ॥ रूह की नजर से ॥ जिन सो हक ताला ने बका खिलवत बीच कोल अलस्त रब कुंम, का कहा ॥ तब कालू बलां रूह मोमिनों ने कहा है ॥ और कलाम अल्ला और हदीसों और कई किताबों के बातुनी मगज माइने ॥ हादी ने वारिस मोमिनों को ॥ रूह की नजर खोल के ॥ आगे से केतिक यारो को लेके पधारे हैं ॥ तब मोमिनों को जरूर कदम पर कदम धरना है ॥ हुकम हक हादी के सेती मङ्गला-चरण समाप्त ॥

उपरोक्त पुष्पिका से स्पष्ट है कि प्राणनाथजी की रचनाओं का संकलन उनके 'धामगमन' के बाद हुआ। यह कार्य उनके शिष्यों (मोमिनों) द्वारा सम्पन्न किया गया बाब (अध्याय) बांधते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया कि प्राणनाथजी द्वारा फुरमाई गई चौपाईयां ज्यों-की त्यों रहें एक हर्फ कभी कम ज्यादा न हो।

अन्त की पुष्पिका-

श्री किताब मारफत सागर की तमाम हुई ॥ जो हक हादी ने जुबां मुबारक सेती फुरमाई थी ॥ चौ० १०३४ ॥ सो यार मोमिनों ने इसके बाब माफिक अकल अपनी के गम दिल से बांध के किताब तमाम करी —— और आज हमारे हादी को बीच पर्दे के हुए दो महीना और दस रोज हुए सो आज हमारे मेहबूब की साल-गिरोह का दिन याने जन्म उच्छव छिहेत्तरमा तमाम हुआ ॥ पछतर बरस और नौ महीना और बीस रोज इस फानी बीच हम गिरो रवानी के वास्ते कई कसाले सहे और गुजरान किया और कई न्यामतें बका की हम रूहों के वास्ते जाहिर करीं ॥ सो कहां लो लिखूं—— सदी महम्मद सल्लिल। अलेह वसलिम की अग्यार सौ छ (११०६) महीना मु-हरम

तारीख सताइसमी पहर दिन चढ़ते और हिन्दवी तारीख १७५१ कुवार वदी चौदस को वार गुरु पहर दिन चढ़ते किताब मारफत सागर की तमाम हुई ॥ हुकम हक हादी के से ॥ चौ० १०३४ ॥ मुकाम परना लिखंत ॥ गिरों रबानी के पाओं की खाक हमेशा चाहत केशोदास के प्रणाम ॥

इससे निम्न तथ्य प्रकाश में आते हैं-

१. इस रचना के बाब बांधने का कार्य, प्रतिलिपिकार केशोदास नामक प्राणनाथजी के शिष्य ने गमदिल से (उनके धामगमन के बाद) किया ।

२. श्री प्राणनाथजी की आयु पचहत्तर वर्ष नौ महीना और बीस दिन की थी अर्थात् प्राणनाथजी का जन्म सं० १६७५ में हुआ ।

३. श्री प्राणनाथजी का धामगमन सं० १७५१ सावन बदी चौथ को हुआ चूंकि वि० सं० १७५१, कुआंर बदी चौदस को हादी [प्राणनाथजी] को पर्दे के बीच हुए (धामगमन हुए) दो माह और दस रोज हो चुके थे । यह प्राणनाथजी की अन्तिम रचना थी ।

(१४) क्यामतनामा-स्थान चित्रकूट, रचना-काल वि० सं० १७४१-४८ भाषा उर्दू मिश्रित हिन्दी ।

क्यामतनामा तीन हैं- छोटा क्यामतनामा, बड़ा क्यामतनामा और तीसरा क्यामतनामा । प्रथम दो क्यामतनामा का रचना-काल तथा रचना-स्थान एक ही है और तीसरे क्यामतनामा का रचना-स्थान पन्ना माना जाता है । तीसरे क्यामतनामा के रचना-काल के बारे में धर्माधिकारियों में मतभेद हैं । कुछ विद्वान् इसे छत्रसालजी की रचना मानते हैं और रचना-काल सं० १७५१-५८ अर्थात् प्राणनाथजी के धामगमन के बाद मानते हैं (जिसका सविस्तार उल्लेख इसी अध्याय में आगे किया जायेगा) ।

इन समस्त ग्रन्थों के संग्रह तारतम सागर में लगभग अट्ठारह हजार चौपाइयां और पांच सौ इकतीस प्रकरण हैं । तीसरा क्यामतनामा की चौपाई-संख्या की गणना भी इसी में करने पर 'तारतम सागर' की चौपाई-संख्या बीस हजार के करीब ठहरती है ।

प्रामाणिकता की समस्या

श्री प्राणनाथजी की अधिकांश रचनाएं 'इन्द्रावती' अथवा 'महामति' छाप से मिलती हैं । प्रारंभिक रचनाएं-रास प्रकाश और षट्ऋतु-इन्द्रावती नाम से की गयी हैं

और परवर्ती रचनाएं महामति नाम से। मूलनाम (मिहिरराज) से इनकी रचनाएं नहीं के बराबर हुई हैं। पांच सौ प्रकरणों में से पांच-दस प्रकरणों की रचना ही मेहराज नाम से हुई है। इसलिए रचयिता की समस्या उलझन में डाल सकती है। इतना ही नहीं, विहंगम दृष्टि डालने पर इन रचनाओं के प्रतिपाद्य विषय में भी एकरूपता नहीं मिलती। 'रास' ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय व्रज-रास-लीला का वर्णन है तो 'प्रकाश' में आत्मा को प्रबुद्ध करने के 'आत्म सारथी' वचन हैं। 'षट्ऋतु' में विरह-वर्णन है तो 'कलस' ग्रन्थ में विभिन्न धर्मों का खण्डन-मण्डन। 'सनन्ध', 'मारफत', 'क्यामतनामा' ग्रन्थों का प्रतिपाद्य 'कुरान' है तो 'किरन्तन' में विभिन्न विषयों तथा परिस्थितियों की झलक। 'खुलासा' प्राणनाथजी के समन्वयवादी दृष्टिकोण की देन है तो 'खिलवत' में संसार की उत्पत्ति के कारणों पर प्रकाश डाला गया है। 'परिक्रमा' और 'सागर' में परमधाम का वर्णन है। 'सिंगार' में युगल-स्वरूप परमात्मा और उनकी आनन्द अंग बारह हजार सखियों के शृंगार का वर्णन है। भाषा की दृष्टि से भी इन रचनाओं में एकरूपता नहीं है। 'सिन्धो' ग्रन्थ की भाषा सिन्धी है तो 'सनन्ध' में सिन्धी भाषा के साथ-साथ अरबी का भी प्रयोग मिलता है। 'रास', 'प्रकाश' गुजराती, 'षट्ऋतु' और 'कलस' गुजराती की भाषा गुजराती है। 'खुलासा' ग्रन्थ में उर्दू शब्दों का बाहुल्य है और शेष रचनाओं की भाषा ऊर्दू मिश्रित हिन्दी है जिसे 'श्रीजी' ने हिन्दुस्तानी भाषा कहा है।

इन विभिन्नताओं के कारण इन रचनाओं को एक ही व्यक्तिकी रचना मानने में सन्देह हो सकता है, पर इन विभिन्नताओं के होते हुए भी निम्नलिखित कारणों से ये रचनाएं प्राणनाथजी की ठहरती हैं—

(१) 'बीतक साहित्य' के अनुसार इन चौदह ग्रन्थों के रचयिता प्राणनाथजी ही हैं। उनकी रचनाओं में जो महामति, इन्द्रावती आदि की 'छाप' मिलती है, ये प्राणनाथजी के ही उपाधि-नाम हैं[1]। उन्होंने मूल नाम से रचनाएं न करके इसी उपाधि नाम से रचनाएं की हैं।

(२) प्रतिपाद्य विषय में भले ही भिन्नता हो, पर उनकी आत्मा एक ही है- प्राणनाथजी का मुख्य उद्देश्य अपनी वाणी द्वारा भूली-भटकी आत्माओं तक 'ब्रह्म' का सन्देश पहुँचाना और उन्हें इस निःसार संसार से विमुख कर ईश्वर की ओर उन्मुख करना है। उदाहरण के लिए उन्होंने रास में कहा है कि माया में लीन होकर ब्रह्मात्मा

१-विस्तार के लिए देखिए, 'जीवनी' अध्याय

ओं, तुमने, कृष्ण के रूप में अवतरित होकर 'व्रज' और 'रास' लीला करनेवाले अपने अंशी, पूर्णब्रह्म (परमात्मा) को भुला दिया है। परमात्म को आत्मा से दूर करनेवाली मोह-माया का शमन करके ही परमात्मा को पाया जा सकता है (प्रकाश), नहीं तो आजीवन वियोगाग्नि में जलते रहना होगा (षट्ऋतु)। परमात्मा की प्राप्ति के लिए तुम्हें बाह्याडम्बरों को त्यागना होगा [कलस], ब्राह्मण-शुद्र और हिन्दू-मुस्लिम का भेद-भाव त्याग कर प्रत्येक धार्मिक ग्रन्थ को श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखना होगा (सनन्ध) कुरान भी तुम्हारे लिए उतना ही पूजनीय है जितना पुराण। दोनों का सम-न्वित रूप से अध्ययन करने पर ही वास्तविकता और 'सत्य' ब्रह्म-को प्राप्ति हो सकती है। कुरान और पुराण एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं [खुलासा]। 'नाम-रूप' के इस भेदभाव से ऊपर उठकर ही [मारफत सागर], परमधाम (पच्चीस पक्षों] और पर-मात्मा के स्वरूप का चिन्तन करके [परिक्रमा, सागर, सिंगार] ही परम्पद [मोक्ष] प्राप्त कर सकते हो [क्यामतनामा]। - इससे स्पष्ट है कि उपरोक्त विभिन्नताएं होने पर भी विभिन्न ग्रन्थों [रचनाओं] की 'आत्मा' एक ही है।

कुछ लोगों के मतानुसार ये चौदह रचनाएं विभिन्न ग्रन्थ न होकर तारतम सागर के ही चौदह अनुच्छेद हैं और इस तारतम-सागर के रचयिता प्राणनाथजी हैं।

कृतियों का रचना-काल और रचना-क्रम

इन रचनाओं का रचना-काल वि० सं० १७१५-४८ है।

(क) प्रारंभिक रचनाएं

इनकी प्रारम्भिक रचनाएं रास, प्रकाश और षट्ऋतु हैं। इन तीनों ग्रन्थों का रचना-काल वि० सं० १७१५ है और भाषा गुजराती है।

(ख) मध्यकालीन रचनाएं

कलस हिन्दुस्तानी, सनन्ध, खुलासा, खिलवत, परिक्रमा, को मध्यकालीन रचनाएं कहा जा सकता है। इनका रचना-काल लगभग वि० सं० १७३३-४३ है। इनके अधि-कांश पदों की भाषा हिन्दुस्तानी है, कुछेक पद अरबी और सिन्धी भाषा के भी हैं।

(ग) उत्तरकालीन रचनाएं

इन रचनाओं में सागर, शृंगार, सिन्धी, मारफत और क्यामतनामा की गणना की जा सकती

है। इन ग्रन्थों की रचना प्राणनाथजी के धामगमन से तीन से पांच वर्ष पूर्व हुई। रचना क्रम तथा काल-क्रम के अनुसार क्यामतनामा, मारफत-सागर के पूर्व की रचना है। 'मारफत सागर' की रचना वि० सं० १७४८ में प्राणनाथजी के धामगमन के तीन वर्ष पूर्व हुई और क्यामतनामा का रचना-काल वि० सं० १७४४-४६ है। विषय-क्रम के अनुसार 'क्यामतनामा' को उनकी अन्तिम रचना माना गया है और इन रचनाओं के संग्रह 'तारतम सागर' में इसका क्रम मारफत-सागर के बाद रखा गया है।

(घ) अन्तिम और अपूर्ण रचना ?

'तारतम सागर' की उपलब्ध प्राचीनतम प्रतिमें तीन 'क्यामतनामा' संग्रहीत हैं-छोटा क्यामतनामा, बड़ा क्यामतनामा और तीसरा क्यामतनामा। यह तीसरा क्यामत-नामा अपूर्ण है और यही उनकी अन्तिम रचना है।

'प्रणामियों' का मत है कि तीसरा क्यामतनामा प्राणनाथजी की रचना नहीं है। इसके रचयिता छत्रसाल हैं। उन्होंने अपने मत की पुष्टि में निम्न तर्क दिये हैं—

१. 'तीसरे क्यामतनामा' में प्राणनाथजी की अन्य रचनाओं की तरह 'प्रकरणान्त' में 'महामति' अथवा 'इन्द्रावती' की छाप न होकर 'छत्रसाल' की छाप मिलती है।
२. श्री प्राणनाथजी की मृत्यु सं० १७५१ में हुई और 'तीसरे क्यामतनामा' की रचना वि० सं० १७५८ में हुई जैसा कि इसके अन्त में दी गयी पुष्पिका से स्पष्ट है।

यह पुष्पिका इस प्रकार है-'सम्वत १७५८ चेत सुदी ११ पतवार ॥ मुकाम परना किताब कुलजम फेर कै जिलद बनवाई ॥ श्री राजजी ने हुकम साहेब के से सुधारो ॥ बन्दा खाकी ब्रह्म सिष्ट हक हादी रूहों की पाऊं खाक निसबतो ॥ किताब सुधार तलवीरजी ॥'

यहां यह स्मरणीय है कि यह पुष्पिका 'तीसरे क्यामतनामा' के अन्त में न होकर इन समस्त रचनाओं के संग्रह-तारतम सागर के अन्त में है। रचना-क्रम के अनुसार यह तीसरा क्यामतनामा तारतम सागर के अन्त में संग्रहीत है और इसके नीचे ही यह पुष्पिका दी हुई है। इसलिए लोगों ने इस पुष्पिका का सम्बन्ध केवल तीसरे क्या-मतनामा से मान लिया है। परन्तु इस पुष्पिका से स्पष्ट है कि इसका सम्बन्ध केवल तीसरे क्यामतनामा से ही नहीं है, वरन् 'कुलजमस्वरूप' से है जिसमें तृतीय क्यामत-नामा भी संग्रहीत है और जिसकी सं० १७५८ में फिर से जिल्द बनवाई गई है।

इस पुष्पिका से 'तीसरे क्यामतनामा' के सं० १७५८ की रचना होने का कोई संकेत नहीं मिलता। अतएव लोगोंकी यह मान्यता निराधार है कि 'तीसरा क्यामतनामा' प्राणनाथजी की मृत्यु के बाद की रचना है।

निम्न कारणों से यह प्राणनाथजी की ही रचना ठहरती है, छत्रसालजी की नहीं-

(१) इसे आदि से अन्त तक पढ़ने पर ज्ञात होता है कि रचयिता इस रचना में कुरान के विभिन्न सिपारों की क्रम से व्याख्या करके वेद शास्त्र और पुराण संहिताओं से उसका तुलनात्मक अध्ययन करना चाहता था। ऐसा समन्वयवादी दृष्टिकोण तो प्राणनाथजी का ही था, अतएव विषय की दृष्टि से यह रचना प्राणनाथजी-कृत ही ठहरती है।

(२) दो सिपारों के बाद ही इसकी समाप्ति से भी यही संकेत मिलता है कि यह छत्रसालजी की रचना नहीं है। यदि यह उन्हींकी रचना होती तो वे इसे अपने जीवन-काल में अवश्य ही पूरा कर लेते। इसकी रचना सं० १७५८ से पूर्व हुई थी (यह रचना सं० १७५८ के कुलजम में संग्रहीत है, अतएव इसका इससे पूर्व की रचना होना स्वतः सिद्ध है) और छत्रसालजी लगभग सं० १७८८ तक उपस्थित थे। इन तीस वर्षों में वे कुरान के समस्त सिपारों की व्याख्या कर सकते थे। दो सिपारों तक ही इस कार्य के सीमित रह जाने से तो यही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह प्राणनाथजी की रचना है, जिसका प्रारम्भ उन्होंने अपने जीवन-काल के अन्तिम दिनों में किया और उसे पूर्ण करने के पूर्व ही धामगामी हुए। इसीलिए यह रचना अपूर्ण रह गयी।

अब प्रश्न उठता है कि यदि यह छत्रसालजी की रचना नहीं, तो प्रकरणान्त में छत्रसाल का नामोल्लेख क्यों हुआ है ? प्राणनाथजी की अन्य रचनाओं की तरह यहां भी 'महामति' या इन्द्रावती' की छाप क्यों नहीं मिलती ?

(३) 'बड़ा क्यामतनामा' के प्रकरणों के अन्त में भी छत्रसाल का नामोल्लेख हुआ है और इसे प्राणनाथजी की ही कृति माना गया है। तब तीसरे 'क्यामतनामा' में छत्रसाल का नामोल्लेख होने से इसे प्राणनाथजी की रचना क्यों नहीं माना जा सकता !

इन उपरोक्त तर्कों के आधार पर यद्यपि यह रचना श्री प्राणनाथजी की ही ठहरती है परन्तु निम्न कारण से इसे उनकी रचना मानने में सन्देह होता है—

'यदि यह प्राणनाथजी की ही रचना है तो तारतम सागर की प्रति लिपियों

तैयार करते समय लिपिकों ने छोटे और बड़े क्यामतनामा के साथ इसकी भी प्रतिलिपि क्यों नहीं की ?

अतएव कहा जा सकता है कि जब तक इस प्रश्न का कोई ठोस उत्तर नहीं मिलता तथा इससे सम्बन्धित कोई और तथ्य प्रकाश में नहीं आते तब तक इसे प्रश्न वाचक चिह्न के साथ ही स्वीकार किया जाये ।

कुलजम की हस्तलिखित प्राचीनतम प्रति और उसकी अनुलिपियां

यह प्राचीनतम प्रति 'गुम्मट मन्दिर' (पन्ना, मध्य प्रदेश) में उपलब्ध है । इस प्रति का आकार १५'×१२' है । लिखने में काली स्याही का प्रयोग किया गया है । अक्षर काफी प्राचीन हैं । अक्षर कहीं बड़े और कहीं छोटे हैं । कागज मोटा है । कोई-कोई पृष्ठ मैले हैं जिससे कागजों के रंग में कुछ अन्तर लक्षित होता है । इस संग्रह में चौदह ग्रन्थ संग्रहीत हैं । क्यामतनामा के तीन भाग हैं, जबकि परवर्ती अनुलिपियों में अधिकांश में दो ही भाग मिलते हैं । इस प्राचीनतम प्रति की दूसरी विशेषता यह है कि प्रकाश तथा कलस ग्रन्थ के अन्त में 'पुष्पिका' दी गयी है, जिससे लेखक तथा लिपिकाल का भी पता लगाया जा सकता है । बहुत-सी प्रतिलिपियों में मारफत-सागर के अन्त में तो पुष्पिका का उल्लेख मिलता है, 'प्रकाश' और 'कलस' ग्रन्थ के अन्त में दी हुई पुष्पिकाओं का उल्लेख परवर्ती प्रतिलिपियों में नहीं मिलता । ये पुष्पिकाएं हैं-

'प्रकाश हिन्दुस्तानी' के अन्त में दी गयी पुष्पिका-

"श्री प्रकाश संपूर्ण ॥ किताब जंबूर ॥ संवत १७ से ४६ असाढ़ सुदी १३ ॥
ब्रहस्पति ॥ श्री परना में किताब लिखी ॥ चरनरजनन्दराम द्वारा लेखित ॥
सुभमस्तु ॥ श्री राज ॥ प्रकाम संपूरण ॥"

'कलस हिन्दुस्तानी' की पुष्पिका-

"संवत १७३३ ना भादरवा सुद १ में सेहेर अनुपम में लिख्या छे ॥
श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री सम्पूर्ण कलस हिन्दुस्तानी[1] ॥"

इन्हीं उपरोक्त दोनों पुष्पिकाओं (विशेषकर 'प्रकाश हिन्दुस्तानी' के अन्त में दी गयी पुष्पिका) तथा तारतम-सागर के अन्त में दी गयी पुष्पिका के आधार पर जायसवालजी ने नन्दराम तथा बीरजो को इस सम्पूर्ण प्रति का लेखक माना है[2] ।

१-देखिए, लालदास-कृत बीतक की भूमिका (इलाहाबाद प्रकाशन)

२-'कलस हिन्दुस्तानी' के प्रतिलिपिकार नन्दराम हैं, इसका उल्लेख इस पुष्पिका में नहीं मिलता । जायसवालजी ने किस आधार पर इसका लेखक नन्दराम को माना है, कहा नहीं जा सकता ।

नन्दराम को सिर्फ 'प्रकाश ग्रन्थ' का ही लेखक मानना युक्ति-संगत है सम्पूर्ण प्रति का नहीं। यदि इन्हें सम्पूर्ण प्रति का लेखक मान लें तो 'मारफत सागर' के लेखक भी नन्दराम ठहरते हैं (क्योंकि सम्पूर्ण प्रति में मारफत-सागर भी संग्रहीत है)। मारफत-सागर के लेखक केशवदास हैं, नन्दराम नहीं जैसा कि 'मारफत सागर' के अन्त में दी गयी पुष्पिका से स्पष्ट है-

> "हिन्दवी तारीख १७५१ कुवार वदी चौदस को गुरुवार को पहर दिन चढ़ते॥ किताब मारफत सागर की तमाम हुई। हुकम हक हादी के से॥ चौ० १०३४॥ मुकाम परना लिखतं॥ गिरो रबानी के पाओ की खाक हमेशा चाहत॥ केशोदास के प्रणाम॥"

जायसवालजी ने कुलजुम-स्वरूप के अन्त में दी गयी निम्न पुष्पिका के आधार पर बीर-जी को इसका लेखक (लिपिक) माना है[1] -

> "संवत् १७५८ चेत सुदी ११, पतवार॥ मुकाम परना॥ किताब कुलजम फेरकै जिलद बनवाई॥ श्री राजजी ने हुकम साहेब के से सुधारी॥ बन्दा खाकी ब्रह्म सिष्ट हक हादी रूहों की पाऊं खाक निसवती॥ किताब सुधार तलबीरजी॥"

जायसवालजी का यह निष्कर्ष सही नहीं है क्योंकि इस पुष्पिका से स्पष्ट है कि तलबीरजी (अथवा बीरजी)[2] इस प्रति के सुधारक (अथवा संकलनकर्ता) है, लिपिकार नहीं।

अब प्रश्न उठता है कि इस प्रति का लिपिकार कौन है?

यदि पुष्पिका के आधार पर 'प्रकाश' तथा 'कलस का लिपिक नन्दराम को और 'मारफत सागर' का लिपिक केशवदास को मान लें तो प्रश्न उठता है कि (इन तीन रचनाओं के अलावा) शेष ग्रन्थों का लिपिक कौन है? यदि (मारफत को छोड़कर) समस्त ग्रन्थों के प्रतिलिपिकार नन्दराम ही हैं तो उन्होंने 'प्रकाश' और 'कलस' की तरह अन्य कृतियों के अन्त में भी 'पुष्पिका लेखन' की परम्परा का निर्वाह क्यों नहीं किया?

१-लालदास-कृत बीतक की भूमिका, प्रकाशक मिड्ढा प्रेस, इलाहाबाद।

२-'सुधारतलबीरजी' का विच्छेद जायसवालजी ने 'सुधारत' + ल + बीरजी किया है (परन्तु 'ल' निरर्थक है और उसका यहां कुछ उपयोग नहीं)। इसे 'सुधार' तलबीरजी' पढना अधिक युक्तिसंगत है जिससे सुधारक का नाम तलबीरजी होगा, बीरजी नहीं।

नन्दराम के अतिरिक्त शेष कृतियों का लिपिक कौन हो सकता है ? संभवतः इन दोनों (नन्दराम व केशवदास) के अलावा सम्पूर्ण प्रति का प्रतिलिपिकार कोई अन्य व्यक्ति हो, जिसने चौपाइयों के साथ ही उपरोक्त पुष्पिकाएं भी ज्यों-की-त्यों लिख ली हों। पर कागज तथा अक्षरों की बनावट में अन्तर है जिससे सम्पूर्ण प्रतिका लिपिकार एक ही व्यक्ति नहीं, एक से अधिक व्यक्ति ज्ञात होते हैं। मारफत-सागर के आरम्भ में दी गयी पुष्पिका से भी इसके विभिन्न लेखक होने की पुष्टि होती है—

"हक हादी के हुकम से ए किताब मारफत सागर ॥ हक ताला के हुकम से पैदा हुई ॥ हादी के दिल पर आप बैठ के ॥ बिगर हिजाब बारीक बातें ॥ चौपाइयां मुंह से कहवाईं ॥ सो कलाम ज्यों आवते गये ॥ त्यों यारों ने लिखे ॥ और हादी फिर प्यार से सुनते गये ——॥ और ए चौपाइयां ज्यों नाजिल होती गईं थीं ॥ सो मसौदे त्यों ही रहे ॥ सो अब हक हादी के हुकम से मोमिनों ने इसके बाब बांधे हैं ॥ माफिक अपनो अकल के ॥ ए पर जो चौपाई हादी ने फुरमाई थी ॥ तिनमें एक हरफ कम ज्यादा नहीं किये ॥—— "

अर्थात्, ज्यों-ज्यों चौपाइयां नाजिल होती गयीं, उन्हें उनके यारों (दोस्तों-मोमिनों या शिष्यों) ने लिखा जिसमें नन्दराम, केशवदास आदि भी होंगे जिन्होंने रचना के अन्त में अपना नाम भी दिया।

अन्य व्यक्तियों द्वारा लिपिबद्ध होने पर भी इसमें हेरफेर की संभावना नहीं है, क्योंकि 'हादी' इसे लिखे जाने के बाद सुनते थे।

इस पुष्पिका से यह भी स्पष्ट होता है कि लेखन-कार्य स्वयं प्राणनाथजी ने नहीं किया। उन्हें ज्यों-ज्यों चौपाइयां नाजिल होती थीं, उसे उनके समीप उपस्थित 'यार' लिपिबद्ध कर लेते थे और इन रचनाओं के 'बाब' (आध्याय) बांधने का काम भी उनके शिष्यों द्वारा किया गया।

मूल प्रति और इसका रचना-काल

श्री प्राणनाथजी की अन्तिम रचना 'मारफत सागर' थी जो संवत् १७४८ में 'नाजिल' हुई, अर्थात् समस्त रचनाओं का संग्रह १७४८ के बाद ही किया गया होगा।

'मारफत सागर' की पुष्पिका

"सो यार मोमिनों ने इसके बाब ॥ माफिक अकल अपनो के ॥ गम दिल से बांध

के ॥ किताब तमाम करी — — और आज हमारे हादी को बीच पर्दे के हुअे दो माह और दस रोज हुअे — — — ”

के अनुसार प्राणनाथजी के धामगमन पर दो माह और दस दिन के समय में ही, अर्थात् सं० १७५१, में 'संकलन कार्य' किया गया१ ।

यदि 'गुम्मटजी' मन्दिर में प्राप्त प्रति को ही मूल प्रति मानते हैं तो इस प्रति के अन्त में दी गयी पुष्पिका में सं० १७५८ का उल्लेख न होकर सं० १७५१ का उल्लेख होना चाहिए था । परन्तु इस पुष्पिका से स्पष्ट है कि सं० १७५८ में इस (मूल) प्रति का सुधार कार्य किया गया है अर्थात् जिन पृष्ठों के किनारे फट गये थे, उनके चारों ओर कागज लगाकर फिर से जिल्द बांधने का काम सं० १७५८ में किया गया है । निम्न तथ्यों के आधार पर यह सं० १७५१ की प्रति ही ठहरती है-

(क) "फेर के जिल्द बांधने', और 'सुधार' करने की आवश्यकता इस प्रति के जीर्ण हो जाने पर ही हुई होगी । कोई भी प्रति जिसका प्रयोग पठन-पाठन में अत्यधिक हो, एक दशाब्दि या इससे भी कम समय में जीर्ण हो सकती है । इसके मूल तथा एक ही प्रति होने के कारण पठन-पाठन के साथ-ही-साथ अन्य प्रतियां तैयार करने में भी इसी प्रति का प्रयोग किया गया होगा जिससे यह शीघ्र ही जीर्ण हो गयी और इसका सुधार-कार्य (फटे किनारों को जोड़ना) और पुनः जिल्द बांधने का कार्य सात वर्षों के बाद ही करना पड़ा ।

(ख) मारफत सागर की उपरोक्त भूमिका के अनुरूप ही (सो कलाम ज्यों ज्यों आवते गये त्यों त्यों यारों ने लिखे) इस संग्रह की विभिन्न कृतियों के लेखक विभिन्न व्यक्ति हैं जिनका नामोल्लेख इन कृतियों के अन्त में मिलता है (जैसा कि प्रकाश, कलस, मारफत सागर की पुष्पिकाओं में ऊपर उल्लेख किया जा चुका है) ।

(ग) इन पुष्पिकाओं में इन चौपाइयों (कृतियों) के नाजिल होने की तिथि तथा स्थान भी बीतक साहित्य-सम्मत है । यदि यह प्रति मूल प्रति न होकर, मूल प्रति अथवा प्रतिलिपियों की प्रतिलिपि मात्र ही होती तो इसके लिखने का स्थान और काल

१-पुष्पिका पढ़ने पर लगता है केवल 'मारफतसागर' के लिखने तथा बाव बांधने का कार्य केशवदास ने किया है । परन्तु जनश्रुति के अनुसार समस्त रचनाओं को संग्रहीत करने और बाव बांधने का कार्य केशवदास ने किया ।

—मुक्तिपीठ, पृ० ३३

बीतक-साहित्य के अनुरूप न होकर भिन्न होता (चूंकि बीतक में उल्लिखित तिथियों का सम्बन्ध मूल प्रति से है)।

अर्थात् इन उपरोक्त कारणों से यह प्राप्य प्राचीनतम प्रति ही, मूल प्रति ठहरती है।

यदि इसे मूल प्रति मानते हैं तो प्रश्न उठता है कि यह प्राणनाथजी के हस्तलेख में न होकर उनके शिष्यों के द्वारा क्यों लिखी गयी? संभवतः इसका कारण यही है कि प्राणनाथजी ने स्वयं लेखन-कार्य नहीं किया। वे जो भी उपदेश देते थे, उनके शिष्य लिपिबद्ध कर लेते थे। 'चरचनी' (प्राणनाथजी के दार्शनिक विचारों से सम्बन्धित रचना) तथा 'बैराट पट' उनके शिष्यों द्वारा ही लिपिबद्ध की गयी कृतियां हैं। उनकी प्रारंभिक रचनाएं-रास, प्रकाश, षट्ऋतु-भी उनके भाई उद्धव ठाकुर द्वारा लिपिबद्ध की गयी थीं[1]।

अब प्रश्न उठता है, यदि यह शिष्यों द्वारा लिपिबद्ध की गयी मूल प्रति ही है तो इसपर प्राणनाथजी के हस्ताक्षर होने चाहिए थे। इस प्रति पर उनके हस्ताक्षर क्यों नहीं हैं?

हस्ताक्षर न होने के निम्न कारण हो सकते हैं—

१. श्रीजी ने इसकी आवश्यकता ही न समझी हो।
२. उनकी कृतियों के 'बाब' बांधने का कार्य उनके 'धामगमन' के बाद हुआ (जैसा कि मारफत-सागर की पुष्पिका से स्पष्ट है), इसलिए उसपर उनके हस्ताक्षर न हो सके।
३. उनकी अन्तिम कृति-'तृतीय क्यामतनामा' (यदि इसे प्राणनाथजी की ही कृति मानते हैं तो)-अधूरी है और अधूरे कार्य पर हस्ताक्षर का प्रश्न ही नहीं उठता।

जब तक इस प्रति के पूर्व की कोई प्रति प्रकाश में नहीं आती (जिसकी संभावना बहुत ही कम है) तब तक इसे ही मूल प्रति मानना उचित है।

मूल प्रति की परवर्ती अनुलिपियां

सम्पूर्ण भारत में लगभग पांच सौ प्रणामी (प्राणनाथ)-मन्दिर हैं। प्रत्येक मन्दिर में तारतमवाणी की एक अथवा एक से अधिक प्रतियां प्राप्य हैं। धर्मशील सद्गृहस्थों के घरों में भी (चौदह रचनाओं के) सम्पूर्ण संग्रह अथवा कोई एक कृति हस्तलिखित रूप में मिलती है। इससे ज्ञात होता है कि 'श्री मुखवाणी' की असंख्य प्रतियां तैयार की गयीं। इन 'असंख्य प्रतियों में मूल प्रति की प्रतिलिपियां, अथवा मूल प्रति से मिला

१-वृत्तान्त मुक्तावली, पृ० १८१ प्र० ४२ चौ० ३०

(इ) प्रतिलिपिकारों का अल्प शिक्षित होना

सौ-दो सौ वर्ष पूर्व शिक्षा का उतना प्रचार नहीं था जितना आज है । अतएव इन अल्प शिक्षित हिन्दी-भाषी [धार्मिक लोगों अथवा प्रतिलिपिकारों द्वारा फारसी का ज्ञान न होने तथा प्राचीन लिपि में होने के कारण] हिन्दी के उन शब्दों ने, जो उच्चारण की दृष्टि से फारसी शब्दों से साम्य रखते हैं, उर्दू के शब्दों का स्थान ले लिया।

दो विभिन्न प्रतिलिपियों में संग्रहीत ग्रन्थों की चौपाई संख्या और प्रकरण संख्या में भी कुछ अन्तर मिलता है । इसका कारण यह है कि 'प्रणामी समाज' में प्राप्य तारतम-सागर की अधिकांश प्रतियां प्रतिलिपियों की प्रतिलिपियां मात्र हैं । न तो ये मूल प्रति से ही तैयार की गयी हैं और न उससे मिलाकर इन्हें संशोधित ही किया गया है । कुछ अन्तर इस प्रकार हैं-

१- कुछेक प्रतियों में 'कलस' ग्रन्थ की चौपाई संख्या ६६९ है और कुछेक में ६७० ।

२- कहीं 'कीरन्तन' ग्रन्थ में चौपाई संख्या २१०२ और कुछेक प्रतियों में २१०३ ।

३- 'परिक्रमा' ग्रन्थ में कहीं २४८१ चौपाई हैं, तो कहीं २४८४ ।

४- कुछ प्रतियों में 'शृंगार' ग्रन्थ की चौपाई संख्या २२०९ हैं, तो कुछ प्रतियों में २२११ ।

५- किसी प्रति में मारफत-सागर की प्रकरण-संख्या १४ है, तो कहीं १७ ? पर चौपाई-संख्या १०३४ ही है ।

६- किन्हीं प्रतियों में 'प्रकाश गुजराती' और 'कलस गुजराती' ग्रन्थ संग्रहीत ही नहीं हैं, केवल प्रकाश-हिन्दुस्तानी और कलस-हिन्दुस्तानी ही हैं । अतएव ऐसी प्रतियों में १६०० चौपाई कम हैं ।

७- किन्हीं प्रतियों में कुल प्रकरण-संख्या ५२४ है तो किन्हीं में यह संख्या ५२७ है ।

प्रकाशित संस्करण

कुलजम-वाणी का ईसवी सन् १९६६ में प्रथम बार प्रकाशन हुआ । इसके पूर्व लगभग पौने तीन सौ वर्ष तक यह कृति हस्तलिखित रूप में ही रही । आज भी प्रकाशित प्रतियों से हस्तलिखित प्रतियां अधिक मिलती हैं । इससे पूर्व खण्डित प्रति ही प्रकाशित हुई थी, जिसमें केवल सात ग्रन्थ हैं । चौदह ग्रन्थों का एक साथ प्रकाशन पहली बार हुआ है । इस प्रकाशित संस्करण का आधार प्रतिलिपियों की प्रतिलिपि है, मूल प्रति अथवा मूल प्रतिलिपि की प्रतिलिपि नहीं।

इसका आधार प्रतिलिपियों की प्रतिलिपि होने पर भी इसका मूल प्रति से अधिक वैषम्य नहीं है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि प्रतिलिपियां करने में बड़ी सावधानी से काम लिया गया है, इसलिए मूल प्रति और इन प्रतिलिपियों में थोड़ा-बहुत ही अन्तर है, जो इस प्रकार है—

१- प्रकाशित प्रति में तीसरा क्यामतनामा नहीं है।

२- सम्पूर्ण चौपाई-संख्या में अन्तर है। प्राचीन प्रति में (तीसरे क्यामतनाम को छोड़ कर) १८, ७५२ चौपाई हैं और प्रकाशित प्रति में १८, ७५१ चौपाई हैं।

३- 'सिन्धी ग्रन्थ में १३ प्रकरण और ५२४ चौपाई हैं। प्रकाशित रचना में सिन्धी के तीन प्रकरणों का हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है दो प्रकरणों का अनुवाद सिन्धी ग्रन्थ में ही मिलता है और एक प्रकरण (नंबर १३) का अनुवाद किरन्तन में १०९ वें पृष्ठ पर मिलता है। अनुवादित प्रकरणों की गणना करने पर इसको प्रकरण संख्या १६ और चौपाई-संख्या ६०० होती है।

४- मूल प्रति में प्रकाश हिन्दुस्तानी तथा कलस-हिन्दुस्तानी के अन्त में पुष्पिकाएं दी गयी हैं, पर प्रकाशित प्रति में इसका अभाव है।

५- बड़ा क्यामतनामाकी निम्न चौपाई में भी अन्तर है-

'याके इक्कीस लाख सात हजार 'साल दिन'
आदम पीछे मंजिल इन
ए रसूल आए की मंजिल
तुम गिनती कर देखो दिल'

प्रकाशित प्रति में यह चौपाई इस प्रकार है—

याके इक्कीस लाख सात हजार 'दिन'
आदम पोछे मंजिल इन

६- मूल प्रति में कहीं-कहीं 'सनन्ध' ग्रन्थ के लिए 'सनद' शब्द का भी प्रयोग मिलता है, पर प्रकाशित प्रति में सर्वत्र 'सनन्ध' शब्द का ही उल्लेख हुआ है।

७- प्रकाशित प्रति में इन चौदह ग्रन्थों को पूर्णब्रह्म परमात्मा के चौदह अंग माना गया है और सम्बन्धित अंग का उल्लेख उस ग्रन्थ के साथ हुआ है, जो इस प्रकार है-

रास–चरण, प्रकाश– पिण्डुरिया
षट्ऋतु–घुटन, कलस–जांघ
सनन्ध–कमर, किरन्तन–कर (हाथ)
खुलासा–उदर, खिलवत–नाभि
परिक्रमा–हृदय, सागर–कण्ठ
श्रृंगार–मुख, सिन्धी–नासिका
मारफत–श्रवण, क्यामतनामा–नयन

८– भाषा में भी अन्तर है। प्राचीन अपभ्रंश शब्दों के स्थान पर आधुनिक प्रचलित शब्दों का प्रयोग हुआ है।

अन्य भक्त–कवियों के पद, जो प्राणनाथजी के नाम से प्रचलित हैं

'खोज रिपोर्टों', 'सेवा–पूजा का गोटा', 'निजानन्द पद्धति' तथा 'किरन्तन' ग्रन्थ में कुछ ऐसे पद भी मिलते हैं जो प्राणनाथजी के नाम से प्रचलित हैं, पर विवेचन करने पर वे प्राणनाथजी के पद नहीं ठहरते।

(क) 'खोज रिपोर्टों' के निम्न पदों का रचयिता प्राणनाथजी को माना गया है। खोज रिपोर्ट (१९२६–२८)–

"श्री धनीजी के चले की चौपाई"

आदि
अब सुनो तुम मोमिनो, देखो अपने कदम
साथ चला जिन भांतसो, देयो नसीयत आतम ॥१॥
कूच किया बाईजीने, आगे जी साहिब
नीति चली सब साथ में, सब धन धन कहें अब ॥२॥
संवत सत्रे पच्चाम में, वैसाख सुदी अष्टमी
बार बुध पोहोर दिन चढ़ते, ठौर अपने जायें जमी ॥३॥
संवत सत्रह एक्यावन, असाढ़ के महीने
दिन चौथ पिछली रातको, धनी पहुँचे धाम अपने ॥४॥

बार सुकर जुम्मे का, पिछली रात घड़ी दोय
पहुँचे अरस अजीम को, दारुल बका कहा सोय ॥५॥

अन्त संवत सत्रे बरस एकावन, कुवार बदी चतुर्दसी के दिन
परनाम कर सब साथ को, पहुँचे हक मोमिन
मैं कहूं नाम इनके, जिनहें सुनते होइए पाक
उड़ाया वजूद अपना, ये हक कदमों खाक ॥१९॥
वल्लभदास एक इनमें, दूजा केशव दास
तीसरा था मथुरा, ए तीनों मोमिन खास ॥२०॥
और था जो साहिमन, पंच मान सिंधदास
संतदास जो इन संग, ए इन्हों खासल खास ॥२१॥
रामकुअर के सब संग, परमादी इनके संग
हमीरा स्त्री इनकी, थे धाम धनी के अंग ॥२२॥
पूरवाइ और परगो, और केसरबाई नाम
कासी चला तीसरे दिन, चला पीछे अस उड़न ठाम ॥२३॥
मेहमतकहे ए मोमिनो, धरो कदम पर कदम
तुम आए धाम में, अब सौंपो अपनी आतम ॥२४॥ सम्पूर्ण ॥

विषयः— श्री देवचन्द्रजी के अर्श अजीम पहुँचने का इतिहास ।

यह पद प्राणनाथजी की जीवनी से संबन्धित है। इसमें 'बाईजी राज' और प्राणनाथजी के धामगमन की तिथि के उल्लेख के साथ, उनके साथ प्राण-त्याग करने वाले शिष्यों का भी नामोल्लेख हुआ है। खोजकर्ता ने इस प्रकरण का सम्बन्ध प्राणनाथजी के गुरु श्री देवचन्द्रजी के 'अर्श अजीम पहुंचने' (धामगमन) के इतिहास से माना है। इसका सम्बन्ध देवचन्द्रजी के धामगमन से न होकर प्राणनाथजी के धामगमन से है क्योंकि सं० १७५१ में प्राणनाथजी का धामगमन हुआ। देवचन्द्रजी का धामगमन सं० १७१२ में हुआ था[1]। प्राणनाथजी के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालने वाली रचना 'बीतक साहित्य

[1]—देखिए, 'जीवन वृत्त' अध्याय

है, अतएव इस प्रकरण का सम्बन्ध बीतक-साहित्य से है। अन्त में 'महामति' को छाप होने के कारण संभवतः इसे प्राणनाथजी की रचना मान लिया गया हो। पर यह पद लालदास-कृत बीतक का है। लालदास ने 'महामति' शब्द का प्रयोग प्रकरणांत में किया है[1]। और यह प्रकरण लालदास बीतक में मिलता है[2]। इसका अन्तिम भाग इस बीतक के अनुरूप नहीं, आदि-भाग की पहली, चौथी और पांचवीं चौपाई इस बीतक में भी मिलती है। इस अन्तर का कारण यही है कि इस बीतक की प्राप्य प्रतियां, प्रतिलिपियों की प्रति-लिपियां मात्र हैं। इसलिए दो विभिन्न प्रतियों में अन्तर हो जाना स्वाभाविक है।

लीला नौतन पुरी

आदि (आदि का भाग लुप्त है)

साथ तत्व सम्बन्धी सार, लीला नौतनपुरी विस्तार ॥१॥
लीला व्रज जीवन की जेती, हुई नौतनपुरी में नेती ॥२॥
लीला रास केरी सुखकारी, नौतनपुरी भई ते सारी ॥३॥
लीला मूल सरूप की जेही, नौतनपुरी भई जो तेही ॥४॥
पंच सरूप प्रकट परकासी, लीला नौतनपुरी विलासी ॥५॥
लीला बाल अखण्ड किसोर, हुई नौतनपुरी में जोर ॥६॥
व्रज जीवन नटवर नाथ, विलसे नौतनपुरी नो साथ ॥७॥
दूध दधी माखन कोउ मांग, कहां लो लई आवे साक्षात ॥८॥
महि मंठि अनेक विरोले, घम घम महासूर बोले ॥९॥
घरे ऊपर चढ़ते लोक जो पेखे, सब्द सुने पर दृष्ट न देखे ॥१०॥

अन्त— अंग देख जो अंगी उल्सै, ऐसे भोगे भोगता विलसे ॥९३॥
तब मूल सम्बन्ध पहिचाने, अंगे प्रेम सेवाए तब माने ॥९४॥
बिना समंध भाव ए नहीं, जीवे क्यों सेवा उपजे काहीं ॥९५॥
ए तत्व समंधी ए दर सें, जीव कोउ विधि ताहीं परसे ॥९६॥

१—देखिए, 'अध्ययन की आधारभूत सामग्री, अध्याय

२—लालदास-कृत बीतक (प्रकाशक निजानन्द प्रिंटिंग प्रेस, जामनगर), अध्याय ८, पृ० ३६

ए पक्ष परसतोम जीतें, धनी देवचंद्रजी नी रीतें ॥९७॥
ए कही धनी की मैं कही, ब्रह्म सृष्टि लसे ए सही ॥९८॥
श्री 'सुन्दर' 'इन्द्रावती' संगे, नित नवले रंग 'नवरंगे' ॥९९॥

इस प्रकरण के अन्त में 'इन्द्रावती' का नामोल्लेख होने से संभवतः इसे प्राणनाथजी की रचना मान लिया गया है। यह मुकुन्ददास की रचना है जिन्होंने श्रद्धावश गुरु देवचन्द्रजी (सुन्दरबाई) और प्राणनाथजी (इन्द्रवती) का नामोल्लेख भी अपने नाम के साथ किया है। यह प्रकरण 'परमहंस श्री नवरंगजी-कृत बीतक' में भी संग्रहीत है[1]।

विराट चरितामृत (खोज रिपोर्ट सन् १९३८-४०)

'विराट चरितामृत' नामक पद के रचयिता भी प्राणनाथजी को माना गया है, पर इसके प्रारम्भ में 'श्री गणेशाय नमः' लिखा है, अतएव यह प्राणनाथजी की रचना नहीं कही जा सकती। उनकी किसी भी रचना में ये शब्द (श्री गणेशाय नमः) नहीं मिलते और नहीं उनके शिष्यों ने इन शब्दों का प्रयोग किया है। 'परमात्माने नमः' का प्रयोग ही कुछ शिष्यों ने किया है। यह रचना बाद में प्राणामी-धर्म में दीक्षित किसी व्यक्ति की हो सकती है। यह पद इस प्रकार है—

आदि ॥श्री गणेशाय नमः॥

एक समय कैलास में, बैठे थे हरनाथ
पारबती को संग लिए, होत परम्परगात ॥१॥
महादेव तब ध्यान करि, देख्यो रूप अखण्ड
उमा निरखि तब यूं कह्यो, किमि देख्यो गगन अखण्ड ॥२॥

॥ महा० उ० ॥

सुनो शिवा मन लाइके, बुद्धि युक्त अनुराग
हानि लाभ जीवन मरन, और लखो वैराग ॥३॥
गुप्त ध्यान प्रगट किया, गगन भूमि के मांझ
दिवस मध्य तब लगि लखै, जब लग होई न सांझ ॥४॥

1—परमहंस श्री नवरंग-कृत बीतक, पृ० २०—२४

सविता माहिं पैठ करि, छाया गल अवरेष
निमषन लागे एक टक, फिरि ऊंचे दृग देख ॥५॥
नख सिख मूरत आपनी. प्रगट देखि लै मित्र
स्वेत वर्ण अति ऊजरो दीर्घ पुरुष पवित्र ॥६॥

अन्त विराट सरूप जो गहे, सुगम रच्यो सुनिमित्त
आध घरी लो दृष्टि में. दृढ़ करि राखि सो चित्त ॥५५॥
विराट चरितामृत कह्यो, सिव पुरान अनुसार
प्राणनाथ भाखा करि, छत्रसाल नृप द्वार ॥५६॥
दियौ पंथ प्रनाम करि, परमधाम दरसाई
प्रगट खानि हीरानि की. नृप कौं दई बताई ॥५७॥
द्वादस क्रोसी गिरद में. परनापुर उर आनि
जित खोदे तितही कढ़े. विदित ब्रृज की खानि ॥५८॥

इति श्री सिव पुराने सिव गौरी सम्वादे व्योम खण्डे विराट चरितामृत समाप्त ॥

तीनों सरूपों की बीतक (त्रयोदश त्रैवार्षिक विवरण, १९२६-२८)

आदि निजनाम श्री जी साहेबजी, अनादि अछरातीत
सो तो अब जाहेर भये, सब विध वतन सहित
तीनो सरूपों की बीतक लिख्यते सो सुरू भई॥
भविष्य पुराण में, राजा कहे जुग चार
वचन हैं जो व्यास के, ताको करो विचार ॥१॥
सत्रह राजा सतयुग में, एक कह्यो राजा क्रत
तिन आपनी भुगति, तापर भयो क्रत दित ॥२॥
ता ऊपर अन्त भयो, फेर मुचकुन्दमा होय
ता ऊपर भैरवानन्द, राजा कह्यो सोय ॥३॥
ता उपर आदि भयो, फेर हरना कुश कह्यो नाम

ता ऊपर ताके ठौर, प्रह्लाद भयो इस ठाम ॥४॥
ता ऊपर वलि लोचन, तापर वलि भुगत
इन्हों अपनी भुगती, लोचन बलि इत ॥५॥
ता ऊपर बानासुर, तापर कपिलाक्ष नाम
कपिल भद्र तापर भयो, जरासरी इस ठाम ॥६॥
तापर धूम ऋषि कह्यो, ए सत्रह सतयुग के
अब कहो त्रेता के, उनतीस नाम भये ॥७॥
प्रथम तो ब्रह्मा भयो, तापर मारीच नाम
तापर कश्यप भयो, फेर सूरज इस ठाम ॥८॥
तापर तब छत्र भयो, तापर अक्षयभा नाम
ता ऊपर अरण्य भा, विश्वामित्र इस ठाम ॥९॥
फेर महामंत्र भयो, तापर भयो चिमन
ता ऊपर राजा भयो, नाम भद्र उद्वन ॥१०॥

अन्त

मिहीं बस्तर पहननके, प्रेमदास ए ल्यावे
आखर को इनसे, नन्दराम पासे जावें ॥२१॥
आई फेर बल्लभ पास, यापे सब सेवा को बोझ
बहुत मेहनत इन करी, सब सेवा की खोज ॥२२॥
मावजी भाई इन समय, आए पोरबन्दर से
सेवा अनार राखवे की, और पत्री लिखने की सेवा में ॥२३॥
आसबाई इन समय, लागत है चरन
श्री राज हेत कर बुलावत, प्रसन्न होय के मन ॥२४॥
श्री महामति कहे सैयन को, ए सेवा के कहे साथ
यहां तेही खड़े रहे, जाके धनीये पकड़े हाथ ॥२५॥

यह प्राणनाथजी की रचना नहीं, वरन् लालदास-कृत बीतक है। इसका आदि और अन्त लालदास-कृत बीतक के अनुरूप है। इसके अन्त में प्रतिलिपिकार 'स्याम शेष' ने स्वयं स्वीकार किया है कि यह लालदास-कृत बीतक है-

"श्री तीनों सरूपों की बीतक ॥ संपूरन समाप्ति ॥ साके श्री विजयाभिनन्दजी के वरष ॥ ११४ ॥ मुकाम आगरे बीतक तमाम भई ॥ असाढवदी ॥ २ ॥ वार वेरसपत

संवत ॥१८५२॥ श्री श्री लालदासजू ॥ तिनके चरनरज आई स्याम शेष लिखित ॥
श्री श्री स्वामी रूहों की चरनरज हमेसा चाहत"[1] ॥

'तारतम्य' (१९२६-२८ तथा १९२९-३१), 'वेदांत के प्रश्न' (१९२९-३१) गद्यात्मक रचनाएं हैं। 'वेदांत के प्रश्न' 'कीर्तन' ग्रन्थ के पुराने कीर्तन नामक प्रकरण की व्याख्या है। 'तारतम्य' (१९२९-३१) में रास ग्रन्थ की व्याख्या है, यह कार्य उनके परवर्ती शिष्यों का है। स्वयं प्राणनाथजी का नहीं। क्योंकि उन्होंने कोई व्याख्यात्मक ग्रन्थ लिखा हो, इसका उल्लेख बीतक-साहित्य अथवा प्रणामी-साहित्य में नहीं मिलता (यदि यह उनकी रचना होती तो उनको अन्य रचनाओं के उल्लेख के साथ इसका भी उल्लेख हुआ होता)।

(ख) 'किरन्तन' में संग्रहीत निम्न पद प्राणनाथजी की रचना नहीं है[2]। यह 'ललिता' का पद है। यह 'मेड़ता की रहने वाली कुरूप लड़की थी। जब प्राणनाथजी मेड़ता पहुँचे तो इसने भी अपने कुटुम्बीजनों के साथ प्राणनाथजी से दीक्षा ली और अन्त तक प्राणनाथजी के साथ रही[3]। प्राणनाथजी ने पानी का छींटा देकर इसके कूबड़ और कुरूपता को समाप्त कर दिया था जिसका उल्लेख इस पद में मिलता है-

वारी मेरे प्यारे मैं तुम पर वारी
टूक टूक कर डारूं मैं या तन, ऊपर कुंज बिहारी
सुन्दर सरूप श्री श्याम शामाजीको, फेर फेर जाऊं बलिहारी
दोऊ सरूपों दया करी, मुझ पर दया तुम्हारी
इन जहर जिमी से कोई न निकस्या, अमल चढ्यो अतिभारी
मुझ देखत सैयल मेरी, कई जीत के बाजी हारी
काली कूब कुमति चले ऐसी, कठिन कठोर हूं नारी
आत्म मेरी निर्मल करके, सहजे पार उतारी
सुन्दर सरूप सुगम अति उत्तम, मुझ पर कृपा तुम्हारी
कोटि बेर 'ललित' कुर्बानो, मेरे धनीजी कायम सुखकारी

१-त्रयोदश त्रैवार्षिक विवरण, सं० १९२६-२८

२-देखिए, 'जीवन वृत्त' अध्याय

३-प्राय लोगों का मत है कि यह पद तो श्री प्राणनाथजी का है। ललिता छाप का प्रयोग भी उसी तरह हुआ है जिस तरह क्सामतनामा के प्रकरणांत में छत्रसाल का।

१ 'सेवा-पूजा का गोटा' (प्रकाशन प्राणनाथ प्रेस, जामनगर) में कुछ ऐसे पद भी मिलते हैं जिनके अन्त में महामति की छाप तथा शैली कीरंतन में संग्रहीत पदों से मिलती है, जिसके आधार पर इसे प्राणनाथजी की ही रचना कहा जा सकता है-

"कंचन थाल चहुं मुख दिवला दीपक जोत प्रकाश ।
करत आरती श्री जियावररानी उमंग अंग उलास ।
जुगल सरूप सुन्दर सुखदाई श्याम धाम धनी सोहे ।
मंगल रसिक बदन की शोभा निरखत मन मोहे ।
सखियां निरत करे और गावें उमंग अंग अपार ।
ताल, मृदंग, झांझ, जन्त्र बाजे, सखियां बोलत जय जयकार ।
बधावे मुक्ताफल सखियां श्री जियावर श्याम सुहाग ।
तन मन जोव निछावर कीन्हीं श्री 'महामति' चरणो लाग ॥"

यदि यह पद प्राणनाथजी द्वारा ही रचित है तो इन गेय-पदों का संग्रह 'किरन्तन' (कीर्तन) ग्रन्थ में क्यों नहीं किया गया (क्योंकि किरन्तन ग्रन्थ मुख्यतः गेय-पदों का ही संग्रह है)।

इस 'गोटा' (गुटका) में कुछ ऐसे पद भी संग्रहीत हैं जो कीरंतन और अन्य रचनाओं में संग्रहीत हैं। उदाहरण के लिए, निम्न पद 'गोटा' और 'कीरंतन दोनों में मिलता है फिर उपरोक्त पद, जिसमें महामति की छाप है, किरन्तन अथवा अन्य ग्रन्थों में संग्रहीत क्यों नहीं है।

भई नई रे नवों खण्डों आरती, विजयाभिनन्दन की आरती
× × ×
सेना सहित आये त्रिपुरार, ब्रह्माजी पढ़त मुख वेद चार
विष्णुजी बाणी बोलत जय जयकार, भई नई —
आये धर्मराय, और इन्द्र, बरुण, नारद-मुनि गन्धर्व चौदे भवन
सुर असुरों सबों लई शरण, भई नई —
आये सनकादिक चारों थंभ, लिये खडे संग विष्णु ब्रह्मांड
जो ब्रह्म अनुभवी हुए अखण्ड, भई नई —
भिन हद कर दई नवधा भक्ति, जुदी कर गाई पार प्रेम-जुगत,

यूं आये शुक-व्यासजी बड़ी मत, भई नई —
आये नव नाथ चौरासी सिद्ध, बरस्या नूर सकळ या विध
इत आये बुद्धजी ऐसी कीध, भई नई —
आये गच्छ चौरासी जो अरहन्ति, दत्तजी दसनामी जो महन्ती
आये करम उपासनी वेदांती, भई नई —
आये चारों सम्प्रदाय के साधु जन, चार आश्रम और चार वरन
आये चारों खूंटो से गावते गुण, भई नई —
आये षट् दर्शन, षट्शास्त्र भेदी, बहत्तर फिरके आये अथर्बन वेदी
आये सकल कैदी और बेकैदी, भई नई —
बुद्धजी की ज्योतें कियो प्रकाश, त्रिलोकी को तिमिर कियो नाश
लीला खेले अखण्ड जागनी रास विलास, भई नई —
पियाजी हुकमे गावें 'महामति", उड़ायो असत्य थाप्यो सत्य
सब पर कलस हुआ आखत, भई नई रे नवों खण्डों आरती

इसे प्राणनाथजी का पद न मानने पर प्रश्न उठता है कि यह किसकी रचना है ? पदांत में महामति का उल्लेख क्यों हुआ ? इसका उत्तर धर्माधिकारी इस तरह देते हैं-

'महामति' नाम से रचनाएं लालदास ने भी की हैं। 'लालदास-कृत बीतक' में बहुत से ऐसे प्रकरण हैं (विशेषकर जहाँ लालदास अन्य पुरुष के रूप में उपस्थित हुए हैं) जिनमें 'महामति' की छाप मिलती है[1]। अतएव ये पद भी (जिनके अन्त में 'महामति' नाम मिलता है) लालदासजी के ही हैं।

(२) श्री प्राणनाथजी के नाम से कुछ ऐसे पद भी प्रचलित हैं जिनमें 'महामति' अथवा 'इन्द्रावती' (क्योंकि प्राणनाथजी ने इन्हीं दोनों नामों से रचना की है) की छाप नहीं है जिससे इन्हें प्राणनाथजी की ही रचना मानने में सन्देह होता है (चूंकि अभी तक उनकी जितनी भी रचनाएं प्रकाश में आई हैं, उनमें इन दोनों नामों में से एक का प्रयोग अवश्य ही हुआ है। यद्यपि ऐसे पद इनेगिने ही हैं-

---

१-विस्तार के लिए देखिए, 'अध्ययन के आधार' शीर्षक के अन्तर्गत 'लालदास-कृत बीतक'

सत्गुरु ब्रह्मानन्द है, सूत्र है अक्षर रूप
शिखा सदा तिन से परे, चेतन चिद् अनूप
× × ×
दिव्य ब्रह्म पुर धाम है, घर अक्षरातीत निवास
निजानन्द है सम्प्रदाय, उत्तर प्रश्न प्रकाश
श्री देवचन्द्रजी निजानन्द हैं, जिन प्रगट करी सम्प्रदाय एह
तिन थे हम ए लखी, द्वार पावे अब तेह[१]

यह 'निजानन्द सम्प्रदाय पद्धति' का पद है। हरिद्वार में विद्वानों से शास्त्रार्थ करते हुए विद्वानों द्वारा प्राणनाथजी से उनकी पद्धति-सम्बन्धी प्रश्न पूछने पर उसके उत्तर में उन्होंने उपरोक्त पद कहा था[२]। प्राणनाथजी ने शास्त्रार्थ में वेद सम्मत उत्तर दिया था जो संस्कृत में था, हिन्दी में नहीं। यह उसी का अनुवाद है, परन्तु अनुवादकर्ता कौन है ? इसका संकेत इसमें नहीं मिलता। यह ठीक है कि प्राणनाथजी ने स्वयं अनुवाद कार्य भी किया है। प्रकाश और कलस-हिन्दुस्तानी और गुजराती इसका प्रमाण है[३]। परंतु अनुवाद में उनकी छाप मिलती है जिसका यहां अभाव है।

(३) कुछ ऐसे पद भी प्राप्य हैं जिसमें 'इन्द्रावती', 'महामति' दोनों नामों का उल्लेख है-

पियाजी तुम हो तैसी कीजियो, मैं अरज करूं मेरे पीऊ जी
हम जैसी तुम जिन करो. मेरा तड़प तड़प जाये जीव जी
-- -- --
कण्ठ मिलाईये कण्ठ सों, पिया किजे हास-विलास
वारने जाये 'इन्द्रावती, पिया राखो चरणों के पास
तुम दुल्हा मैं दुल्हिन पिया और न जानूं बात
ईश्क सो सेवा करूं. पिया सब अंगो साक्षात

१-विस्तार के लिए देखिए, लालदास-कृत बीतक, प्र० ३५-३७

२-वही (हरिद्वार की बीतक)

३-इसी अध्याय का 'कृतियों का पाठ'

सदा सुख दाता धाम धनी, मैं क्या कहूं, किन सो बात
'महामति' जुगल किशोर पर, वारी अंगना बलि बलि जात[1]

यह एक ऐसा पद है जिसमें प्राणनाथजी के दोनों उपाधि-नामों 'महामति और 'इन्द्रावती' का एक साथ प्रयोग हुआ है।

यदि यह प्राणनाथजी की ही रचना है, तो इसका संकलन उपरोक्त 'रचना संग्रह' में क्यों नहीं हुआ ?

इन उपरोक्त कारणों से इसे प्राणनाथजी की रचना मानने में सन्देह होता है। इसे प्राणनाथजी की रचना न मानने पर प्रश्न उठता है 'महामति', 'इन्द्रावती' छाप-वाली रचना किसकी हो सकती है ?

'महामति' नाम से लालदास ने भी रचनाएं की हैं, अतएव यह लालदास की रचना हो सकती है जिसमें उन्होंने अन्य शिष्यों की तरह श्रद्धावश गुरुका नामोल्लेख (इन्द्रावती'-प्राणनाथजी का उपाधि-नाम) भी कर दिया हो। क्योंकि प्राणनाथजी के शिष्यों में प्रकरणांत में अपने नाम के साथ इन्द्रावती तथा सुन्दरबाई (निजानन्द सम्प्रदाय के आदि-आचार्य तथा प्राणनाथजी के गुरु श्री देवचन्द्रजी का उपाधि-नाम) का नामोल्लेख करने की परम्परा-सी दिखायी देती है, यथा—

'श्री 'सुन्दर' श्री 'इन्द्रावती' जीवन प्रेम सखी बलि बलि चरन की'

तथा ए कही धनी की मैं कही, ब्रह्म सृष्टि लखो ए सही
श्री 'सुन्दर' 'इन्द्रावती' संगे, नित नवल रंग 'नवरंग की[2]।

यहां 'प्रेम सखी' तथा 'नवरंग' ने अपने नाम के साथ श्री सुन्दर (बाई) और श्री इन्द्रावती का भी नामोल्लेख किया है।

अन्य फुटकर रचनाएं

इन चौदह रचनाओं के संग्रह 'तारतम्य सागर' के अलावा शेखजी व मीरजी का किस्सा, चरचनो, वैराट पट आदि भी प्राणनाथजी की रचनाएं हैं। इनका अलग-

---

१–'सेवा पूजा गोटा', 'छोटी अर्जी'

२–इसका सविस्तार उल्लेख इसी शीर्षक में 'खोज रिपोर्ट' के अन्तर्गत किया जा चुका है।

अलग विवरण इस प्रकार है—

(क) शेखजी व मीरजी का किस्सा

इसकी एक ही प्रति उपलब्ध है। इसे प्राणनाथजी की कृति माना जाता है परन्तु इस प्राप्य प्रति में लेखक का नामोल्लेख कहीं नहीं मिलता। यह प्रश्नोत्तर शैली में लिखी गयी है।

शैली की भिन्नता के कारण इसे प्राणनाथजी की कृति मानने में संदेह है (क्योंकि उनकी अन्य रचनाओं में इस शैली (प्रश्नोत्तर) के दर्शन नहीं होते) और न ही प्राणनाथजी की अन्य रचनाओं की तरह इसके अन्त में 'महामति' अथवा " इन्द्रावती " नामकी छाप मिलती है।

जहाँ तक शैली का प्रश्न है, इस शैली का प्रयोग उनके शिष्यों द्वारा हुआ है जिनमें मुकुन्ददास का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने 'गुरु-शिष्य-संवाद' नामक कृति में प्रश्नोत्तर शैली को ही अपनाया है। प्रश्नकर्ता स्वयं मुकुन्ददास (नवरंग स्वामी) हैं और उत्तर देनेवाले प्राणनाथजी। शैली के आधार पर इसके रचनाकार भी उनके शिष्य ही ठहरते हैं। शैली के अतिरिक्त दोनों रचनाओं-गुरु-शिष्य-संवाद और शेखजी-मीरजी किस्सा, में विषय की एकरूपता (दोनों दर्शन पक्ष प्रधान है) इसे मुकुन्ददास की रचना मानने को बाध्य करती है। परन्तु दूसरी ओर पण्डितों का मत है कि प्रश्नकर्ता मीरजी लालदास हैं और उत्तरकर्ता शेखजी प्राणनाथजी हैं। इस मान्यता के आधार पर स्वयं प्रश्नकर्ता (मुकुन्ददास) की तरह लालदास ही इस कृति के रचनाकार हो सकते हैं, जो उचित भी है, क्योंकि इस कृति को यदि मुकुन्ददास की कृति माना जाये तो एक ही विषय पर एक ही समय में एक ही लेखक द्वारा दो विभिन्न रचनाएं असंभव व अनुचित हैं।

कुछ विद्वान् इसे प्राणनाथजी की ही कृति मानते हैं। जहां तक शैली की भिन्नता का प्रश्न है, इसके लिए उनका मत है कि 'तारतम वाणी' तो भक्ति प्रेरित आवेशपूर्ण क्षणों की प्रयासहीन वाणी है और 'शेखजी-मीरजी का किस्सा' की रचना सप्रयास हुई है जिसके कारण दोनों रचनाओं में अन्तर होना स्वाभाविक है।

इसे श्री प्राणनाथजी की ही रचना मानना अधिक युक्ति-संगत है। इसी अध्याय के अन्तर्गत पहले देखा जा चुका है कि प्राणनाथजी ने स्वयं लेखन-कार्य बहुत कम किया है। उन्हें ज्यों-ज्यों बानी 'नाजिल' होती' उसे उनके समीप उपस्थित लोग लिपिबद्ध कर लेते थे। यही बात उनकी इस रचना पर भी लागू होती है अर्थात्

प्राणनाथजी के दार्शनिक विचारों को उनके शिष्यों ने लिपिबद्ध किया है

(ख) वैराट–चरचनी

श्री प्राणनाथजी ने पाताल से लेकर हद भूमि–निराकार बेहद भूमि, अखण्ड भूमि व परमधाम तक का जो चित्र शिष्यों के सम्मुख खींचा, उसका संग्रह श्री सृष्टि विज्ञान वर्णन, पातालसे परमधाम, मोक्ष–प्राप्ति मार्ग, वैराट निरुपण, श्री परम्पद मार्ग दर्श, छोटी वृत्त, बड़ी वृत्त और श्री जुगलदासजी प्रणीत वृत्ति आदि में मिलता है। इन रचनाओं में वैराट (चौदह लोकों)[1] तथा परमधाम की चर्चा होने के कारण इसे 'वैराट चरचनी' भी कहा गया है जिसका उल्लेख 'दर्शन' अध्याय में किया गया। है

(ग) इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी संग्रह हैं जिनमें प्राणनाथजी की विभिन्न रचनाओं के एक या एक से अधिक प्रकरण संग्रहीत हैं। ये रचनाएं हैं–बेहद वाणी, प्रगटवाणी मुक्ति-मार्ग, तौस सम्बन्ध आदि। प्रथम दो पुस्तकों में क्रमशः प्रकाशके दो प्रकरण 'बेहद वाणी' और प्रगटवाणी संग्रहीत हैं। मुक्ति–मार्ग में कीरंतन का प्रकरण जिसे 'हुक्के का प्रकरण' कहा जाता है, अनुवाद सहित संग्रहीत है। विज्ञान सरोवर' में भी 'प्रकाश' ग्रन्थ का एक प्रकरण (प्रकटवाणी) संग्रहीत है। 'तीस सम्बन्ध' में खुलासा, प्रकाश, किरन्तन, कलस, सनन्ध, परिक्रमा, सागर, सिन्गार आदि विभिन्न ग्रन्थों के तीस प्रकरणों के कुछ अंश संग्रहीत हैं।

इसके अतिरिक्त और हस्तलिखित रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं। कुछ प्रणामियों का मत है कि कुछ वर्ष पूर्व तक प्राणनाथजी तथा उनके शिष्यों की पर्याप्त हस्तलिखित पत्र तथा फुटकर रचनाएं उपलब्ध थीं, पर उनमें दीमक लग गया था जिससे उन्हें कुण्ड (जलाशय) में प्रवाहित कर दिया गया है।

卐　卐
★
卐　卐

1–कहा जाता है कि चौदह लोक वैराट पुरुष के शरीर में स्थित है।
देखिए, इस शोध–प्रबन्ध का 'दर्शन' खण्ड

श्री प्राणनाथजी और उनका साहित्य

खण्ड-द्वितीय

द्वितीय खण्डका वर्ण्य-विषय

१. चिन्तनः
   - अखण्ड भूमि
   - बेहद भूमि
   - हद भूमि
   - मृत्यु लोक

२. साधना

३. भावानुभूति और अभिव्यक्ति

अध्याय १ चिन्तन

श्री प्राणनाथजी के मतानुसार सत्, चित् और आनन्द का पूर्ण पुंजीभूत रूप (सच्चिदानन्द ब्रह्म) ही एक मात्र अनादि अनन्त और मूल सत्य हैं। इस सच्चिदानन्द ब्रह्म के सदंश से अक्षर (नूर जलाल) का तथा आनन्द अंश से श्यामाजी सखियों और पचास करोड़ योजन भूमि का निर्माण हुआ। इसी भूमि को अखण्ड भूमि कहा गया है[1] क्योंकि यहां की प्रत्येक वस्तु अखण्ड है। यही पूर्णब्रह्म परमात्मा की लीला की मूल भूमि है। वाह्य दृष्टि से देखने से यहां पांच तत्व (विभाग) हैं-अक्षरातीत, श्यामाजी, सखियां, अक्षर तथा अखण्ड भूमि। अक्षरधाम (नूर मकान) व परमधाम ये पांचों अभिन्न तथा अखण्ड हैं और पूर्णब्रह्म के ही रूप और अंश हैं और उसी के सत् और आनन्द अंश से निर्मित हैं[2]।

अखण्ड भूमि में दो धाम (निवास-स्थान) हैं। एक पूर्णब्रह्म परमात्मा का, जिसे रंग-महल कहते हैं और दूसरा अक्षर-ब्रह्म का, जिसे अक्षरधाम कहते हैं।

पूर्णब्रह्म का सदंश, अक्षर-ब्रह्म के अन्तःकरण के चार स्तर (परत) हैं मन, चित् बुद्धि और अहंकार। उस अक्षर का मन सत्स्वरूप है, जिससे (सत्स्वरूप अव्यक्त से) क्रमशः अव्याकृत, सबल (सबलिक) और केवल-ब्रह्म का निर्माण हुआ। अव्याकृत से प्रणव ब्रह्म की उत्पत्ति हुई। इसके दो रूप हैं ज्ञानमय और अज्ञानमय, जिन्हें क्रमशः पराशक्ति और अपराशक्ति कहा जाता है।

सत्स्वरूप से प्रणव तक के विस्तार को बेहद भूमि कहते हैं। बेहद भूमि में भी पांच तत्व (विभाग) हैं, जिसका वर्णन बेहद-भूमि के अन्तर्गत किय गया है। प्राणनाथजी के अनुसार प्रणव ब्रह्म (पूर्णब्रह्म-अक्षरब्रह्म-सत्स्वरूप-अव्याकृत ब्रह्म-प्रणव ब्रह्म) से वहाविष्णु, महाविष्णु से नारायण, नारायण से त्रिदेवा और त्रिदेवा से संसारोत्पत्ति हुई। महाविष्णु (जिसे महानारायण भी कहते हैं), नारायण, संसार आदि महाशून्य के अन्तर्गत हैं, इसे हदभूमि कहा जाता है।

श्री प्राणनाथजी ने ब्रह्म जीव जगत् मुक्ति साधना आदि क्रम से अपने दर्शन का

१–'आये आनन्द अखण्डघर को, धनी श्री अक्षरातीत भर्तार'

– रास ग्रन्थ, प्रथम प्रकरण

२–उपले मायने तीन लिए चौथा नूर मकान।
ए बातें हैं मारफत की, सब मिल एक सुभान ॥

प्रतिपादन नहीं किया। उन्होंने सारी अलौकिक सत्ता और उसके प्रसार को तीन भूमियों के अन्तर्गत रखा है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, इनमें से उच्चतम भूमि है अखण्ड-भूमि, उसके पश्चात् बेहद-भूमि का स्थान है और सबसे नीचे हद-भूमि आती है। इन भूमियों के संघटक तत्व निम्नांकित हैं —

अखण्ड भूमि

१—परमधाम
२—अक्षरधाम

बेहद भूमि

१—सत्स्वरूप
२—केवल ब्रह्म
३—सबलिक ब्रह्म
४—अव्याकृत ब्रह्म
५—प्रणव ब्रह्म

हद भूमि

१—महाविष्णु
२—नारायण
३—त्रिदेवा
४—चौदह लोक

अखंड भूमि

अखण्ड भूमि के अधिपति सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं जिनके आनन्द अंग के विश्लेषण से यह भूमि बनी है। इस 'सच्चिदानन्द ब्रह्म' को 'पूर्णब्रह्म' भी कहा गया है क्योंकि ये सत् चित् (चैतन्य) और आनन्द का 'पूर्ण' विकसित रूप है। सत् (अस्तित्व), चैतन्य और आनन्द तत्व प्रत्येक जीव में हैं, पर जीव में वे आंशिक रूप हैं, पूर्ण रूप में नहीं। अक्षर (सच्चिदानन्द ब्रह्म के सत् अंश) में भी सत् चिद् और आनन्द हैं, पर पूर्ण रूप में नहीं हैं। इसलिए 'अक्षर' को ब्रह्म, कहा जाता है पूर्णब्रह्म नहीं[1]।

'पूर्णब्रह्म' 'ब्रह्म' (अर्थात् 'अक्षर') से परे या अतीत है, इसलिए इसे अक्षरातीत भी कहा गया है[2]। गीता में इसी को उत्तम-पुरुष कहा है[3]।

परमात्मा आनन्द स्वरूप हैं, पर अकेले में आनन्द की कल्पना नहीं की जा सकती। आनन्द के लिए ही पूर्णब्रह्म के आनन्द अंश से श्यामाजी और सखिया हुई। वैसे तो पूर्णब्रह्म अद्वैत हैं, पर लीला के समय उन्होंने द्वैत रूप धारण किया। इसलिए उन्हें 'स्वलीला' कहा गया है[4]।

'लीला' साकार रूप में ही की जा सकती है, निराकार रूप में नहीं। इसलिए इन्होंने ब्रह्म को 'शुद्ध साकार स्वरूप' माना है। यह परमात्मा किशोर और दिव्य स्वरूप है[5]। प्राणनाथजी ने पूर्णब्रह्म को 'श्रीराज' कहा है[6]।

१–'पूरणब्रह्म ब्रह्म से न्यारे, आनन्द अखण्ड अपार'
—'सेवा–पूजा' का गुटका, शीर्षक परणब्रह्म

२–हद पार बेहद, बेहद पार अक्षर
अक्षर पार वतन, जागिए इन घर —प्रकाश ग्रन्थ, बेहद वाणी'

३–द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च
क्षर. सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते
उत्तमः पुरुषस्त्वन्य· परमात्मेत्युदाहृत· — अध्याय १५' श्लोक १६

४–सृष्टि विज्ञान वर्णन पृ० ९४

५–'ब्रह्म सच्चिदानन्द धर्म विचीक्षण शुद्धसाकार नित्य विग्रही,
दिव्य किशोर स्वरूप अनन्त शक्ति एव अनन्त शक्तिमान।'
'बंगलाजी मन्दिर', पन्ना की दीवार पर उधृत

६–राज विद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥ — गीता अध्याय ९ श्लको २

श्यामाजी तथा सखियां

श्रीराजजी (पूर्णब्रह्म) का आनन्द अंश श्यामाजी हैं। श्यामाजी का आनन्द अंश बारह हजार सखियां हैं जिन्हें प्राणनाथजी ने ब्रह्म-सृष्टि, ब्रह्म-मुनि' मोमिन आदि नामों से अभिहित किया है। इन सखियों ने अपनी सुख-सुविधा के लिए अपने आनन्द अंग से 'खूब खुशालियों' अर्थात् सेविकाओं का निर्माण किया। खूब खुशालियों ने अपने फुरसद के समय को आनन्द लीला में व्यतीत करने के लिए अपने आनन्द अंश के विश्लेषण से पशु-पक्षियों का निर्माण किया और इन पशु-पक्षियों ने अपने रहने और क्रीड़ा के लिए अपने 'आनन्द' से वन-पर्वत आदि का निर्माण किया।

इस प्रकार परमधाम आनन्दमय लीलाधाम है। श्रीराजजो, श्यामाजी तथा सखियां अपनी सुख-सुविधा और आनन्द उपभोग के लिए जहां जिस वस्तु की इच्छा करती हैं, वह वस्तु इच्छा के साथ ही उपस्थित हो जती है। इन वस्तुओं को निर्मित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती और न ही इन वस्तुओं का नाश होता है[1]। परमधाम की प्रत्येक वस्तु कोमल, सुन्दर, प्रकाशयुक्त. चैतन्य, सुगन्धयुक्त और विषाद मुक्त है।

परमधाम

पचास कोटि योजन[1]. अखण्ड भूमि के मध्य में रंगमहल है। रंगमहल के पूर्व की ओर ढाई करोड़ योजन भूमि में जमुनाजी, जमुनाजी के दोनों ओर सात-सात घाट तथा अक्षरधाम, कुंज-निकुंज, जवेरों की नहेरें बन आदि हैं।

रंगमहल के पश्चिम की ओर की अढाई करोड़ योजन भूमि में फूल-बाग, नूर बाग, अन्न वन, दूब दुलिचा, पश्चिम को चौगान और जवेरों (मणि-माणिक्य आदि की नहरें बन आदि हैं।

उत्तर की ओर अढाई करोड़ योजन में बड़ा वन, मधुवन, महावन, पुखराज और पुखराजजी के उत्तर को ओर घाटी तथा जवेरों की नहेरें वन आदि हैं।

१–बाल न गिरे पशुअन का, न पंक्षी का पर
नया न पुराना कबहूं, दिन दिन खूब तर — खुलासा ग्रन्थ, प्र० ५, चौ० ४७

२–बेशुमार ल्याऊं शुमार में
वास्ते लावने रुहो दिल (परिक्रमा)

दक्षिण की ओर अढ़ाई करोड़ भूमि में बट पीपल की चौकी, कुंज-निकुंजवन, हौज कौसर (तालाब), पुनः कुंज निकुंज चौबीस हाँस की मोहलात और जवेरों की नहरें और माणिक अथवा मणिक (लाल) पहाड़ हैं। रंगमहल के चारों ओर अढ़ाई करोड़ योजन भूमि को घेर कर जवेरों (जवाहिरातों) की नहरें (नदियां) मानिक पहाड़ वन आदि हैं। इन जवाहिरातों की नहरों मानिक पहाड़ वन के चारों ओर एक करोड़ योजन भूमि में वन की नहरें हैं। वन की नहरों को घेर कर नौ करोड़ योजन भूमि में रांग (दुर्ग) है और इसको घेरकर साढ़े बारह करोड़ योजन भूमि में बड़ी रांग है। इस बड़ी रांग में आठ सागर और आठ जमी हैं।

इन विभिन्न भागों का वर्णन प्राणनाथजी ने पच्चीस पक्षों (विभाग) में किया गे पच्चीस पक्ष (पक्ष] हैं[१]-

धाम, तालाब, कुंजवन, जवाहिरातों की नहरें, माणिक पहाड़, पश्चिम की चौगान, बड़ा वन, पुखराज, जमुनाजी, आठ सागर और आठ जमी।

इन पच्चीस पक्षों का साधना में विशेष महत्व है। इसलिए सम्प्रदाय-ग्रन्थों (परिक्रमाग्रन्थ, सागर ग्रन्थ, वैराट, बरचनी आदि) में इनका विशेष विस्तार मिलता है। यहां संक्षेप में उनका परिचय कराना अप्रासंगिक नहीं होगा।

१. रंग-महल

अखण्ड भूमि के मध्य में रंगमहल है। इसका दरवाजा पूर्वाभिमुख है। रंगमहल के आगे चांदनी-चौक (प्रांगण) है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई बराबर है। यह एक सौ छ-यासठ मन्दिर चौड़ा[२] और एक सौ छयासठ मन्दिर लम्बा है। चांदनी चौक में दाहिनी (उत्तर) तरफ लाल वृक्ष है और बाईं (दक्षिण) तरफ हरा वृक्ष है।

रंगमहल में दस भूमियां)मन्जिल) हैं-

"मूल मन्दिर मेतत्तद्‌भूतं सुरसुन्दरी ?

१-धाम तालाब कुंजबन सोहे, नहरें मानिक बन की जोए
पश्चिम चौगान बड़ो बन कहिए, पुखराज जमुनाजी लहिए
आठ सागर आठ जमी के, पच्चीस पख धामधनी के — दासबाणी

२-सौ हाथ (लगभग पचास गज) का एक 'मन्दिर' माना है।

नव भूम्यात्मकं यत्तु दशमी चित्रशालिका ॥
मूल भूमिस्तु प्रथमा द्वितीया मतिविभ्रमा ।
तृतीया भोगरूपा च नृत्यभूमिश्चतुर्थिका ॥
पञ्चमी शयनाख्या च षष्ठी वैमानिकीति च ।
सप्तमी ह्यष्टमी चोभे दोलाभूमि निरुपिते ॥
नवमी दूरलक्षा च दशमी चन्द्रभूमिका ।
इत्येता दश चाख्याताः भूमयो निजवेश्मनः२ ॥ –उपनिषद्

प्रथम भूमि

रंगमहल का दरवाजा जमीन से एक भूमि (मंजिल) ऊंचा है । इस दरवाजे तक पहुँचने के लिए सौ सीढ़ियां हैं और बीस चांदे३ । दरवाजे के दोनों ओर दो चबूतरे हैं। दोनों चबूतरों के संधि-स्थल में दो मन्दिर का लम्बा-चौड़ा और दोनों चबूतरों से एक सीढ़ी नीचा चौक है।

रंगमहल के दरवाजे में सिंदुरिया रंग की चौखट है और दर्पण रंग का किवाड़। दरवाजे के चारों तरफ हरित रंग का किनारा है और दरवाजे के बीच रत्न-मणियों की नक्काशी (कटाव) तथा कई सुन्दर-सुन्दर पत्र फूल बेलियां देदीप्यमान हैं ।

दरवाजे से अन्दर प्रवेश करने पर अट्ठाइस थम्भ का चौक और थम्भों की दो हारे फिरती [गोल] दिखाई देती हैं । इन थम्भों की दीवारों के आगे छः हजार मन्दिर की एक हार है । इन मन्दिरों के आगे पुनः छः छः हजार थम्भों की दो हारें [पंक्ति] हैं । फिर एक मन्दिर की हार और इसके बाद पुनः दो थम्भों की हारे हैं । इन समस्त मन्दिरों और थम्भों की हारों में एक-एक मन्दिर की दूरी है। इन 'थम्भों' पर तीस हजार मेहराब हैं । यह थम्भ और मेहराब ऊपर की नौ भूमियों तक इसी तरह है । दरवाजे के सामने और प्रथम थम्भ तथा मन्दिरों के दो हारों के बाद आनेवाले थम्भों [चौरस हवेलियों से पहले] के बीच 'अट्ठाइस थम्भों का चौक' है । यह चौक झलझलाकार [प्रकाशमय] है । इस चौक में अट्ठाइस थम्भ हैं–दस थम्भ दरवाजे की तरफ, दस पश्चिम की तरफ [रसोई की ओर], चार उत्तर की ओर, और चार थम्भ दक्षिण की

२–लालदास-कृत छोटी वृत्त, पृ० २

३–अस्सी सीढ़िया और बीस चांदे (बड़ी सीढ़ी) मिलकर कुल सौ सीढ़िया हैं ।

ओर हैं । इसके आगे चार 'हारें' चौरस हवेलियों की हैं । प्रत्येक हार में दो सौ इकतीस हवेलियां हैं । चार हार को एक 'फिरावा' कहते हैं । इस तरह एक फिरावे में नौ सौ चौबीस [२३१×४] चौरस हवेलियां हुई । प्रत्येक हार के बीच में दो-दो थम्भों की हारे हैं । एक-एक हवेली में अठासी-अठासी मन्दिर हैं ।

रसोई मन्दिर

इन चौरस हवेलियों के प्रथम फिरावे की प्रथम हार की प्रथम हवेली [दरवाजा के सामने] ईशान कोण का दूसरा मन्दिर रसोई-मन्दिर है । इसे 'स्याम मन्दिर' भी कहते हैं । इसके आगे सीढ़ियां हैं । सीढ़ियों के साथ जो [तीसरा] मन्दिर है, इसे 'श्वेत मन्दिर' कहते हैं[1] । इन हवेलियों के दो मन्दिरों के बीच दस भूमियों तक जाने के लिए सीढ़ियां हैं ।

इन चौरस हवेलियों के चार फिरावे हैं जिनका क्रम इस प्रकार है- चौरस हवेलियों के फिरावे के बाद गोल हवेलियों का फिरावा है । इसके आगे पुनः एक फिरावा चौरस हवेलियों का है और उसके आगे पुनः गोल हवेलियों का एक फिरावा है । इस तरह कुल आठ फिरावे हुए, चार चौरस हवेलियों के हैं और चार फिरावे गोल हवेलियों के हैं । कुल ७३९२ हवेलियां हैं जिनमें ३६९६ चौरस हवेली हैं और ३६९६ गोल हवेली । प्रथम प्रत्येक गोल हवेली में चौसठ २ तथा चौरस हवेली में अट्ठासी अट्ठासी मन्दिर हैं अर्थात् इनमें कुल मन्दिरों की संख्या ४०२८६४ है ।

इसके आगे एक फिराव (नौवां फिरावा) (चार हार-९२४) 'पंच मोहोल'[2] का है । इन 'पंचमोहोल' की प्रत्येक हार में पूर्ववत् दो-दो थम्भों की हारे हैं । इन पंचमोहोल के आगे एक मन्दिर-भर चौड़ी जगह परिक्रमा के लिए खाली है । इसके आगे चारों दिशाओं में मन्दिर-मन्दिर-भर चौड़ाई के चार रास्ते हैं जो बीच की भूमि को चार भागों में विभाजित करते हैं । इन चार भागों में चार बगीचे हैं । इनमें फुव्वारे, बैठने की जगह और फुलबारियां हैं । इनके आगे पुनः मन्दिर-भर चौड़ी परिक्रमा है । इस परिक्रमा के आगे नौ चौक हैं । मध्यवाला चौक इस रंगमहल तथा अखण्ड भूमि का

१-'श्याम सेत के बीच मैं सुन्दर सीढिया शोभित, बहुत साथ इन आए के चढ उतर करत' (चरचनी)

१-'पंच मोहोल, में पांच मन्दिर एक साथ बने हैं । चार मोहोल चारो ओर हैं और एक मोहोल उनके बीच में है । इन पाचों महलों को 'पंच मोहल' कहा गया है ।

केंद्र-बिन्दु है। परमधाम की पचास करोड़ योजन भूमि का केन्द्र बिन्दु भी यही है। इन नौ चौकों के बीच में भी एक-एक मन्दिर की जगह है। प्रत्येक चौक में बारह हजार मन्दिर और लगभग तेरह हजार एक सौ छिहत्तर थम्भ हैं।

मूल मिलावा

चौरस हवेलियों के प्रथम फिरावे के बाद गोल हवेली की प्रथम हार में दरवाजे के सामने मूल मिलावा है। इसमें साठ मन्दिर हैं और चार दरवाजे (एक-एक मन्दिर के बराबर) चारों दिशाओं में हैं। इसके आगे चौंसठ थम्भों की दो हारें [पंक्तियां] हैं जिसमें एक हार चबूतरे के नीचे और दूसरी चबूतरे के किनार पर है। यह चबूतरा कमर-भर ऊंचा है। तीन-तीन सीढ़ियां चारों तरफ हैं। किनारे पर (थम्भों के बीच) कठेड़ा प्रकाशमान है। चबूतरे के चौंसठ थम्भों का विवरण इस प्रकार है -

पूर्व दरवाजे पर दो थम्भ 'पाच' [हरे रंग] के हैं। इनके आसपास दो थम्भ नीलवी (आसमानी) के हैं। पश्चिम दरवाजे पर दो थंभ नीलवी के हैं, आसपास दो थंभ 'पाच' के शोभित हैं। दक्षिण के दरवाजे पर दो थंभ माणिक (लाल) के हैं। आसपास में दो थंभ पुखराज (पीत) के शोभित हैं। उत्तर के दरवाजे पर दो थम्भ पुखराज के हैं, जिनके आसपास दो थंभ माणिक के हैं। चारों खांचों में बारह-बारह थंभ हीरा, लसनिया, गोमादिक, मोती, पन्ना, परवाल, हेम, चांदी, नूर, कंचन पिरोजा [फिरोजी रंग] और कपूर रंग के हैं। ये अड़तालीस थंभ चारों खांचों [चारों दिशाओं की गोलाई को खांच कहा गया है] और सोलह थम्भ चारों दरवाजों पर हैं। चबूतरा पर पशमी गिलम बिछी है। बैठने से पसम हाथ-भर दब जाती है और उठने से उठ जाती है। लाल पसम के पन्द्रह पन्द्रह तकिये कठेड़े के स्थान पर रखे हैं। ऊपर मोतियों की झालर से युक्त अति मनोरम नूर का चंदवा है। चंदवा के मध्य में भांति-भांति की चित्रकला चित्रित है। सामने कंचन रंग का सिंहासन है जिसके छः पाये और छः डांडे हैं जोकि जवाहिरातों से जड़ित हैं और इनमें से प्रत्येक में दस-दस रंग झलकते हैं। दोऊ स्वरूपों [श्री राज और श्री ठकुरानी जी] के ऊपर दो छत्रियां हैं। लाल मानिक के दो फूल हैं। इन फूलों की पंखुरियां नोल की बनी हुई हैं और ये कमल जैसी दिखाई देती हैं। छत्री के चारों ओर जवेरों की झालर है। इन दोनों छत्रियों तथा सिंहासन के छः डण्डों में प्रत्येक पर हेम (सोना) का एक-एक कलश है। पिछले तीन डण्डों के बीच दो तकिये हैं, 'उतरती कांगरी' [झालर], पशमी बिछौना, एक गादी, दो

चाकले, पांच तकिये हैं[1]। श्रीराज और श्री ठकुरानीजी दो चाकले पर विराजमान हैं। श्री ठकुरानीजी सिंदुरिये रंग की साड़ी, श्याम रंग जड़ाव की कंचुकी, नीली लाही की चरनियां (पेटीकोट) पहिने हुए हैं। श्री राजजी सिंदुरिये रंग का 'चीरा' [पगड़ी], आ-समानी रंग जड़ाव की पिछौरी, नीला न पीला, बीच के रंग का पट्का, केसरिया रंग जड़ाव की इजार और सफेद रंग जड़ाव का जामा पहिने हुए हैं।

'मूल मिलावा' और श्रीराज श्यामाजी के शृंगार का वर्णन इतनी बारीकी से करने का विशेष कारण है—

जब सखियों ने अक्षर का खेल [संसार] देखने की इच्छा की तो श्रीराजजी ने मूल-मिलावा में बैठकर उन्हें खेल दिखाया। उस समय श्रीराज श्यामाजी ने जो शृंगार किया हुआ था तथा मूल-मिलावे में जो वस्तुएं थीं, उन सब की स्मृति प्राणनाथजी ब्रह्म-सृष्टि को दिलाते हैं और उन्हें [ब्रह्म-सृष्टि को] अपना ध्यान वहीं केंद्रित करने[2] और क्षर की उपासना छोड़कर अपने अंशी रामश्यामाजी की आराधना करने की सलाह देते हैं[3]।

दूसरी भूमि

दूसरी भूमि में 'भुलवनी के मन्दिर' हैं। इनकी संख्या लगभग बारह हजार है। ये मन्दिर शीशे के बने हुए हैं जिससे प्रतिबिम्ब और वास्तविक वस्तु को पहिचानने में प्रायः भूल हो जाती है, इसलिए इन्हें 'भुलवनी के मन्दिर कहते हैं। ये रंगमहल के उत्तर में हैं और भुलवनी मन्दिर की तरफ ही लाल चबूतरा है।

'भुलवनी मन्दिर' के पास ही उत्तर दिशा की ओर नहाने के लिए 'खड़ोकली'

१—सागर ग्रन्थ, 'मूलमिलावा' प्रकरण

२—श्री महामति कहे मोमिनो, करूं मूल स्वरूप बर्णन,
मेहेर करी माशूक ने, लीजो रूह के अन्तस्करण। — वही, मूल मिलावा

६—इन विध साथ जी जागिए, बताए देऊं औसर
श्याम श्यामाजी साथ जी, जित बैठे चौक वतन
याद करो सोई सायत, जो हांसी का मांगया खेल
सो खेल खुशाली लेके, उठ कीजिए केल
सुरता एक ही राखिए, 'मूल मिलावे माहिं
श्याम श्यामजी साथ जी, तले भूमि बैठे जाहिं ॥ — सागर ग्रन्थ, मूल मिलावा

[गुसलखाना] है।

शेष रचना प्रथम भूमि जैसी ही है।

तीसरी भूमि

तीसरी भूमि में बड़े दरवाजे पर चार मन्दिर की पड़साल [छज्जा] और चबूतरा है बाहर की ओर दो मन्दिर की पड़साल है और अन्दर की ओर पड़साल के आगे दो मन्दिर का चबूतरा है। प्रातःकाल उठकर श्रीराजजी इस पड़साल पर आते हैं। यहां चांदनी चौक में खड़े हुए पशु-पक्षियों को मुजरा [दर्शन] देते हैं[१]।

तीसरी भूमि में युगलस्वरूप तीन प्रहर (सुबह छः बजे से शाम के तीन बजे तक) रहते हैं। दोपहर का भोजन यहीं करते हैं। और पौढते [शयन] भी यहीं हैं।

शेष रचना प्रथम भूमि जैसी ही है

चौथी भूमि

चौथी भूमि में चौरस हवेली के प्रथम फिरावे को जो चौथी हार है, उसकी पहली हवेली में रात्रि को एक प्रहर तक नृत्य होता है। यह नृत्य सिर्फ कृष्ण-पक्ष में ही होता है। शुक्ल पक्ष की रात्रि को दो प्रहर श्रीराज, श्यामाजी तथा सखियों सहित परमधाम के विभिन्न भागों में घूमने जाते हैं[२] जबकि कृष्ण पक्ष में एक प्रहर नृत्य देखते हैं और एक प्रहर परमधाम के विभिन्न भागों में व्यतीत करते हैं। वे कृष्ण पक्ष तथा शुक्ल पक्ष को जिन-जिन भागों में जाते हैं, उसका उल्लेख आगे किया गया है।

कृष्ण पक्ष में एक प्रहर बाहर [वन आदि में] घूमने के बाद, शृंगारादि करके 'श्यामसेत' मन्दिर में (जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है) भोजन करते हैं। भो-जन करके इस चौथी भूमि में नृत्य देखने के लिए आते हैं[३]।

इन पन्द्रह दिनों में विभिन्न सखियां नृत्य करती हैं[४] -

१-पशु पक्षी को मुजरा लेवें, सुख नजरों सबों को देवे — परिक्रमा' प्र० ३

२-पन्द्रह दिन खेले बनः पन्द्रह दिन सुख भवन

३-अब कहूं रे भवन को सुख, जो श्री धनीजी कह्यो आप मुख
बन से आए सिंगार कर, सन्ध्या तले की भोम मन्दिर
आरोग चढ़ें भोम चौथी, खेले नवरंग बाई की जुत्थी

४-सैयां नृत्य करें और गावें पासे सखिया स्वर पुरावे
कर भूषण बाजे चरण, तारी पटताल पडे सब धरण (परिक्रमा ग्रन्थ,)

१ को श्री नवरंग बाई
२ को श्री वेन बाई
३ को श्री सेन बाई
४ को श्री मोर बाई
५ को श्री ठेल बाई
६ को श्री एहेल बाई
७ को श्री केल बाई
८ को श्री विलास बाई
९ को श्री झरमर बाई और मेन बाई
१० को श्री भंवर बाई और मेन बाई
११ को श्री तान बाई
१२ को श्री सरूप बाई
१३ को श्री सनमुख बाई
१४ को श्री सनकूल बाई और
अमावस्या को श्री सुतेज बाई[१]

पांव ऐसी कला कोई साधे, सब में एक घुंघरी बाजे
जब दोय रे दो बुलाये, तब तैसा ही पांव चलावे
तीन कहे तो बाजे तीन, चार बाजे कला सब लीन
जो बुलावे झांझरी एक, जानो याही में खेल विशेष
जिनको बुलावत जैसे, सो तो बोलत भूषण तैसे
जो बुलावे सर्वो अंग, तो भूषण बोले सब संग
जब जुदी जुदी स्वर बुलावे, छबि जुदी सबों की सुहावे
× × ×
भूषण करे जुदे जुदे गान, मुख बाजे करत एक तान
क्यों कर कहूं ए नृत्य, सोइ जानें जो हृदय धारत ॥ – परिक्रमा ग्रन्थ

१–लालदास–कृत छोटी वृत्त पृ० २४

पांचवीं भूमि

इस भूमि के मध्य में 'परवाली [लाल] रंग मन्दिर' है। प्रथम भूमि में जो नौ चौक हैं, उनके मध्य में जो चौक है, उसी स्थान में यह मन्दिर बना है। यहां पर बारह हजार मन्दिर हैं। इसमें जुगलस्वरूप तथा बारह हजार सखियां रात को तीन प्रहर शयन करते हैं[1]।

शेष भागों की बनावट प्रथम भूमि जैसी ही है।

छठी भूमि

इस भूमि की बनावट प्रथम भूमि जैसी ही है। इस भूमि में अट्ठाइस थम्भ के चौक में एक तखतरवां (श्रीराज के बैठने की चौकी) तथा छः हजार सुखपाल (पालकी) रखे हैं। बारह हजार सखियों सहित श्री राज श्यामाजी कभी इस तखतरवां पर बैठकर और कभी सुखपालों में बैठकर शाम को परमधाम के विभिन्न भागों में घूमने के लिए जाते हैं। तखत-रवां (चलनेवाला तखत) पर बारह हजार सखियां एक साथ बैठ सकती हैं जबकि सुखपाल में दो-दो सखियां ही बैठ सकती हैं[2]।

सातवीं भूमि

इस भूमि में दो मन्दिरों की हार में पड़ने वाले थंभों की हारों में, आमने-सामने हिंडोले हैं। हिंडोलों की संख्या बारह हजार है। इसमें झूलते समय आमने-सामने

१–'पौढ़े पिया मध परवाली रंग' – दासवाणी

२–'श्रीराज श्रीठकुरानीजी तीसरी भोम के पौढ़े से उठे
पहर दिन पिछला बाकी रहयो
आपन सब सखियां आए आए के जुगल सरूप के चरन लागी
छठी भोम के सुन्दर नूर के सुखपाल
तरह जिनकी तखतरवां की
इच्छा सरूपी मन बेगी। सुन्दर नूर के सुखपाल तीसरी भोम के झरोखे आए मुकाबिल भए। एक सुखपाल में श्री जुगल सरूपजी बिराजमान भए। एक-एक सुखपाल में दो-दो सखियां, जोड़े जोड़े अन्तरिक्षे, इच्छा चारी मनबेगी नूर के सुन्दर सुखपाल श्री अक्षरातीत की असमान में सवारी छाए रही।" – दासवाणी

के हिंडोलों में 'ताली' (टकराना अथवा मिलना) पड़ती है। शेष भूमि की रचना प्रथम भूमि की तरह है।

आठवीं भूमि

इस भूमि में उपरोक्त थंभों में ही चारों तरफ आमने-सामने और बीचमें हिंडोले हैं। यहां हिंडोलों की संख्या अट्ठारह हजार है। इनमें झूलते समय चार हिंडोलों की ताली पड़ती है जबकि हिंडोले तीन-तीन हैं। शेष रचना प्रथम भूमि जैसी है।

नौवीं भूमि

इसकी रचना भी प्रथम भूमि जैसी ही है। इसमें मन्दिरों की प्रथम हार की जगह में छज्जे (झरोखे) हैं, उनमें सिंहासन और कुरसियां रखी हैं[1]। जुगलदासजी-कृत 'बड़ी वृत्त' के अनुसार ये कुरसियां इतनी बड़ी हैं कि एक-एक कुरसी पर दो-दो सौ -सखियां बैठ सकती हैं[2]। इस भूमि को दूर लक्ष्या भी कहते हैं।

दसवीं भूमि

यहां दो सौ एक 'हांस' की चांदनी [छत] है। चांदनी पर चार चहबचे हैं यहां सिंहासन और कुरसियां रखी हैं[3], चारों ओर विभिन्न रंगों की ध्वजाएं फहरा रही हैं। चांदनी के मध्य में चबूतरा और नौ फिरावे के स्थान पर फुलवारी है। पूनम की रात को दो प्रहर तक सखियां यहां बैठती हैं और परमधाम के विभिन्न भागों के दृश्यों तथा प्राकृतिक सौंदर्य का 'आनन्द-भोग' करती हैं।

(२) तालब-हौज कौसर[4]

यह तालाब रंगमहल के दक्षिण में साढ़े चार लाख कोस की दूरी पर है। यह तालाब गोल है। इसमें जमुना नदी का पानी गिरता है। 'हौज कौसर' के मध्य में टापू

१-लालदास-कृत 'बड़ी वृत्त' – हस्तलिखित प्रति 'पाठशाला' (पन्ना) मे प्राप्त प्रति।

२-हस्तलिखित प्रति-यह भी 'पाठशाला' (पन्ना) में प्राप्य है।

३-वैराट पट दर्शन, पृ० १२०। आधारभूमिका चैव भ्रमि नृत्यमयी तथा। मुक्ति भूमिस्तु शयनी शिविका हिन्दोलिका तथा ॥ अष्टशल्या सिंहासना दशमी चित्रशालिका ॥ कक्षोच्छायो महांस्तत्र चतुष्कं चापि दृश्यते ॥" –पुराण संहिता

४-परिक्रमा, प्र० ७

है, यह भी गोल है। जिसमें तीन भूमि और चौथी चांदनी है। इस द्वीप तक जाने के लिए इस तालाब के किनारे पर जलपोत [अग्नि पोत] हैं। कभी-कभी सखियां इच्छानुसार तैरकर भी द्वीप तक पहुँचती हैं, इसलिए उन्हें (सखियों को) 'हौज कौसर' की मछली' कहा जाता है। सुदी चौदस को युगलस्वरूप तथा सखियां इस द्वीप की चांदनी (छत) पर आकर बैठते हैं।

हौज कौसर के पूर्व की ओर सोलह देहुरी का घाट है। इस घाट में पच्चीस थंभ हैं। इन पच्चीस थंभों के नीचे चौतीस थंभ हैं और चौंतीस के नीचे चौबीस थंभ हैं। चौंवालीस और चौंतीस थंभ जल के अन्दर हैं तथा ऊपर बनने वाले पच्चीस थंभ जल के ऊपर हैं और इनकी पांच-पांच थंभों की पांच पंक्तियां हैं। इन पच्चीस थंभों पर सोलह देहुरी बनी हैं। इन थंभों के चार 'घड़नाले' (मेहराब) बनते हैं जिनसे जमुनाजी का पानी इस तालाब में गिरता है।

हौज-कौसर के दक्षिण में तेरह देहुरी का बना हुआ घाट है। यहां किनारे पर तेरह थम्भ हैं-चार थम्भ (इस दिशा के) चारों कोनों में दो-दो थम्भ चार दिशाओं में और एक थम्भ इनके मध्य में है। प्रत्येक थम्भ पर एक-एक देहुरी है।

हौज-कौसर के पश्चिम में 'झुंड का घाट' है[1]। रंगमहल के उत्तर की तरफ बड़ोवन है[2]। ताड़-वन के समाप्ति स्थान से पांच पेड़ बडो वन के निकले हैं। इन पांच वृक्षों की चार पंक्तियां हैं-दो पंक्तियां जमुनाजी के दोनों ओर (परमधाम तथा अक्षरधाम की तरफ) की पाल (मुहाना) पर है जो जमुनाजी के साथ ही हौज कौसर तक पहुँचती है। एक पंक्ति पश्चिम से-दूब दुलीचा-से होती हुई 'हौज-कौसर' तक पहुँचती है। चौथी पंक्ति अक्षरधाम की तरफ से होती हुई उस तालाब तक पहुँचती है। इन पांच पेड़ों की पंक्तियां जिस स्थान अथवा घाट से निकलती हैं, उसी रंग (तरह) की हो जाती हैं। इस झुंड के घाट में इन समस्त पंक्तियों के वृक्ष आकर मिलते हैं सिर्फ यहीं से हौज कौसर (के जल) में उतरने के लिए रास्ता है।

हौज कौसर की उत्तर दिशा में नौ देहुरी का घाट है[3]। चार कोनों तथा चार दिशाओं में एक-एक थम्भ है और एक थम्भ इनके मध्य में है। इस तरह यहां नौ थंभ

१-परिक्रमा, प्रकरण ७

२-पाठशाला (पन्ना) में सुरक्षित हस्तलिखितप्रति लालदास कृत बड़ी वृत्त

३-लालदास कृत छोटी वृत्त, पृ० ४८

हुए। इन नौ थम्भों पर नौ देहुरियां हैं।

ये चारों दिशाओं के चार घाट, चार मन्दिर-भर स्थान में हैं[1]। इन चारों घाटों के बीच में हौज कौसर को घेर कर (प्रत्येक घाट के बीच में) पन्द्रह-पन्द्रह मन्दिर हैं, अतएव चारों में साठ मन्दिर हुए।

(३) कुंज वन

कुंज वन[2] रंगमहल के दक्षिण की तरफ है। दक्षिण दिशा में रंगमहल की दीवार के साथ बट-पीपल की चौकी है[3]। इस चौकी (चौक) में क्रम से एक बट (बरगद) का और एक पीपल का वृक्ष है। इस तरह के पन्द्रह वृक्ष एक पंक्ति में हैं और ऐसी पांच पंक्तियां हैं। अर्थात् इस चौकी में बट और पीपल के कुल मिलाकर पचहत्तर वृक्ष हैं।

इस बट-पीपल की चौकी की सीमा के साथ ही कुंजवन की सीमा शुरू होती है। पश्चिम की ओर इसकी सीमा पश्चिम की चौगान तक, दक्षिण की ओर जवेरों की नहरों तक और पूर्व में अक्षरधाम तक है।

इस वन में दो तरह के कुंज हैं-गोल और चौखूंट। गोल को निकुंज कहते हैं और चौखूंट को कुंज कहते हैं। इसलिए इस वन को कुंज-निकुंज भी कहा गया है। इसके बीच फव्वारे हैं और टहलने के लिए रास्ते हैं तथा बैठने के लिए भी स्थान हैं।

(४) जवेरों की नहरें[4]

यहां जवेरों (जवाहिरातों) के महल हैं। इन महलों की नौ हार (पंक्ति) हैं। प्रथम हार चार मंजिले महलों की हैं। द्वितीय हार में आठ मंजिलें महल हैं। तृतीय हार में सोलह मंजिले हैं। चौथी हार बत्तीस मंजिलों की है। पांचवीं हार चौंसठ मंजिलों की है। छठी हार पुनः बत्तीस मंजिलों की सातवीं हार सोलह मंजिलों की, आठवीं आठ की और नौवां चार मंजिले के महलों की हैं। यह परमधाम में चारों ओर गोलाई में हैं। अक्षरधाम भी इसके अन्तर्गत आता है। इस स्थान में बहने वाली नहरों को

१–'मन्दिर' का प्रयोग पैमाने के रूप में किया गया है। एक मन्दिर सौ हाथ (५० गज) का माना गया है। –चरचनी, पाठशाला में प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थ

२–लालदास–कृत छोटी वृत्त पृ० ४२

३–लालदास–कृत बड़ी वृत्त (पन्ना में सुरक्षित हस्तलिखित प्रति)

४–लालदास–कृत छोटी वृत्त, पृ० ५६

'जवेरों की नहरें' कहा जाता है।

(५) मानिक पहाड़[१]

जवेरों की नहरों को घेर कर आने वाली भूमि में बत्तीस खांचे हैं। अट्ठाइस खांचों में छः-छः हजार भूमि ऊंचे वृक्ष हैं। चारों खांच (भाग) में मानिक पहाड़ बारह हजार भूमि ऊंचा है। इसे घेर कर बारह हजार तालाब और बारह हजार बगीचे बने हुए हैं तालाबों के चारों तरफ मोहल हैं। जिनकी ऊंचाई क्रम से एक-एक भूमि कम होती जाती है और अन्तिम अर्थात् बाहरी मानिक-मोहोल एक भूमि के हैं, इन मोहलों में कई हिंडोले लगे हैं। (यहां एक भूमि चार सौ कोस की मानी गयी है)[२]।

"गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तो अरण्य' ते पृथिवीस्यो नमस्तु"

[अथर्व० का १२, अनु० १, सू० १, मन्त्र ११]

अर्थात्, श्री परमधाम के वन-बगीचे गिरी पर्वत पृथ्वी आदि को वेद नमस्कार (प्रणाम) करते हैं[३]। यह पर्वत रंग मोहोल की दक्षिण दिशा में है।

(६) पश्चिम की चौगान[४]

पश्चिम की चौगान रंग-मोहोल के पश्चिम दिशा में, साढ़े चार लाख कोस की दूरी पर है।

रंग मोहोल की पश्चिम दिशा की दीवार के साथ फूल-बाग और नीचे नूर बाग हैं[५]। इनमें फूलों के बाग-बगीचे हैं। यहां फुव्वारे और बैठने की जगह हैं। इसके आगे अन्न-वन है। यहां पर अनन्त अन्नों के क्षेत्र सुशोभित हैं-'अन्न ब्रह्म' [सामवेदीय छां-दोग्य श्रुति], अर्थात् परमधाम में जो अन्न क्षेत्र हैं, वे सब ब्रह्म का ही स्वरूप अन्न के रूप में परिणत हैं। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि जिस प्रकार अन्न वन ब्रह्म का ही रूप है, उसी प्रकार उस धाम के समस्त पदार्थ ब्रह्म-स्वरूप ही है। "ममत्वस्वरूपमेव

१-परिक्रमा ग्रन्थ, प्रकरण २२

२-ललदास-कृत छोटी वृत्त (प्रकाशित), पृ० ५९

३-वही, पृ० ५९

४-वही, प्र० ६९

५-वही, पृ० ७०

सर्वं मद्व्यतिरिक्तमणुमात्रं न विद्यते" (त्रिपाद वि० उपनिषद्)[1] । यहां अनेक जाति के मेवे लगे हैं[2] और नहरों चेहबचों , और फुब्वारों की अकथ्य शोभा है । यह वन रंग महल से डेढ़ लाख कोस के अन्तर पर है ।

अम्न वन से डेढ़ लाख कोस आगे अर्थात् रंगमहल से तीन लाख कोस के अन्तर पर 'दूब दुलीचा'[3] है । यहां पर अनेक रंगों की दूबों के अनेक चौक हैं और ऐसा प्रतीत होता है जैसे इन चौकों में कई रंगों से रंगे गलीचे बिछे हैं । संभवतः इसीलिए इसे दूब दुलीचा कहा गया है । इन चौकों में नहरें, चहबच्चे और फव्वारे छूटते हैं । चेहबच्चों के ऊपर देहुरियां हैं जिनपर गुमट हैं । इन गुमटों (गुम्बदों) पर स्वर्ण-कलश हैं जिन पर ध्वजाएं फहराती हैं । इसकी लम्बाई व चौड़ाई डेढ़ लाख कोस है ।

दूब-दुलीचा के आगे पश्चिम की चौगान है । इस चौगान में वन-वृक्ष आदि कुछ भी नहीं है । यहां पर हीरा की कनी के सदृश बालू के हजारों चौक हैं । यह चौगान उत्तर से दक्षिण की ओर नौ लाख कोस लम्बी और पूर्व से पश्चिम की तरफ साढ़े चार लाख कोस चौड़ी है । श्रीराज श्री ठकुरानीजी (श्यामाजी का उपाधि-नाम) और समस्त सुन्दरसाथ यहाँ पशु एवं जानवरों पर सवारी करके दौड़ा करते हैं ।

इसका वर्णन लालदास-कृत छोटी वृत्त में इस प्रकार मिलता है —

"पूर्व से पश्चिम की ओर गमन करते हुए ये दोनों-पूर्णब्रह्म और शक्ति समूह श्री श्यामाजी-खेलते हुए दो बालकों के समान अलौकिक बुद्धि से समुद्र तक पहुँचते हैं । उन दोनों में एक समस्त ब्रह्मांडों को जनता है और दूसरे को अभिरमणीय खेल देखने के मनोरथ खींच कर ले जाते हैं[4] ।

इन पंक्तियों में पश्चिम की चौगान तरफ के दौड़ने का तथा उससे उत्पन्न होनेवाले खेल देखने के महाकारण का संक्षिप्त वर्णन है (जिसका उल्लेख आगे किया गया है) ।

१-लालदास-कृत छोटी वृत्त (प्रकाशित), पृ० ७१

२-मेवे चाहिये सो लीजिए फल फूल मूल पात ।तित रह्या तैसा ही बनाया ए वका बागों की बात (खुलासा प्र०५)

३-लालदास-कृत छोटो वृत्त (प्रकाशित), पृ० ७०

४-पूर्वापरं चरतोमाययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परियातोऽर्णवम्

विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति ॥' -अथर्व०१३।२।११

-वही, पृ० ६९ [प्रकाशित]

(७) बड़ा वन[१]

रंगमहल के साथ उत्तर दिशा में 'लाल चबूतरा' है। कृष्ण-पक्ष की छट्ठी को युगलस्वरूप तथा सखियां एक प्रहर (तीन से छः बजे तक) इस चबूतरे पर रहते हैं। इसके साथ ही बड़ा वन, मधुवन और महावन है। इन तीनों वनों (जंगलों) के वृक्ष एक-दूसरे से अधिक ऊंचे हैं। यहां पशु-पक्षियों के रहने की जगह हैं। पशुओं के लिए सोलह हजार अखाड़े हैं। लाल-चबूतरा पर बैठकर सखियों सहित श्रीराजश्यामाजी पशु-पक्षियों द्वारा की गयी क्रीड़ाओं को देखते हैं। इन वनों के आगे पुखराज पहाड़ है।

(८) पुखराज पर्वत[२]

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से पुखराज पर्वत के विभिन्न भाग किये गये हैं-

[क] पुखराज की तरहटी

तरहटी को घेरकर हजार-हजार बगीचों की बावन हारे हैं जिनमें चहबच्चे, बगीचे आदि हैं। तरहटी में खजाने का ताल अर्थात् पानी का भंडार है। इस ताल पर पांच 'पेड़' (वृक्षों की तरह बने हुए थंभ) हैं। चार वृक्ष चार तरफ और एक मध्य में है। यह मध्यका 'पेड़' पानी से भरा है और आठ लाख कोस ऊंचा है। खजाने के तालाब से चार दिशाओं के लिए चार नहरें निकली हैं।

[ख] हजार कोस का गोल चबूतरा[३]

पुखराज पर्वत के चारों ओर हजार हास की दीवाल है और तरहटी में बावन हजार थंभ इसके चारों ओर हैं। इनके ऊपर यह गोल चबूतरा है। इस चबूतरे के चारों ओर कठेड़ा है और चारों दिशाओं में सीढ़ियां हैं। चबूतरे के किनार से परिक्रमा की जगह छोड़कर, तरहटी से आये हुए पांचों पेड़ यहां से प्रगट हुए, पांच भोम तक सीधे चले गये हैं और छठी भोम से इन पांचों पेड़ों के छज्जे पृथक्-पृथक् बढ़ चले हैं।

[ग] पुखराज की 'चांदनी'[४]

यह चांदनी [छत) पुखराज पर्वत के चार लाख कोस पर है। नीचे के गोल

१-वही, पृ० ७१
२-लालदास-कृत छोटी वृत्त, पृ० ७२
३-वही, पृ० ७४-७९
४-वही, पृ० ८०-८३

चबूतरे के बराबर चांदनी के ऊपर हवेलियां महल बगीचे हैं, किनार पर घेरकर छज्जा है। उस छज्जे के किनार पर फिरता कठेड़ा है। आगे ढालदार छज्जा है।

[घ] आकाशी महल[१]

नीचे गोल चबूतरा के मध्य-भाग में चौरस चबूतरा है जिसके ऊपर पांच पेड़ प्रगट हुए हैं। उसी के सिर पर पुखराज की चांदनी से कमर भर ऊंचा चबूतरा है। उस चबूतरे के किनार से परिक्रमा की जगह छोड़कर आकाशी महल के तेरह-तेरह हवेलियों की तेरह पंक्ति हैं। उन सब हवेलियों की संख्या कुल एक सौ उनहत्तर है। इस आकाशी महल की एक हजार भूम हैं।

[ङ] आकाशी की चांदनी[२]

चांदनी पर नहरें, चेहबच्चे और फुव्वारे छूटते हैं तथा बाग-बगीचे हैं। यह जल इन बगीचों में परिभ्रमण करता है। यह वही जल है जो तरहटी के जल-भंडार से पांचवें पेड़ में होकर ऊपर आया है। इस चांदनी पर जो चबूतरा है, उस चबूतरे के चार कोने में जल प्रवाह के जालीदार मार्ग हैं। इन मार्गों से जल प्रगट होता है जिससे यहां के बगीचे सिंचित होते हैं।

चांदनी के बीच में कमर-भर का ऊंचा चबूतरा है। उस चबूतरे पर सिंहासन और कुर्सियां हैं जिनपर श्रीराज श्री ठकुरानीजी तथा समस्त सुन्दरसाथजी बैठते हैं। यहां पर युगल-स्वरूप तथा सखियां कभी झुलपालों पर चढ़कर आती हैं।

आकाशी से प्रवाहित होकर जल प्रत्येक भूम में होते हुए नीचे उतरता है, सम्पूर्ण हवेलियों की प्रदक्षिणा करते हुए पुखराज की चांदनी में पहुँचता है और वहां बगीचों में चारों तरफ घूमकर हजार हांस की मोहलातों में पहुँचता है। वहां से पश्चिम, उत्तर की दोनों घाटियों में फिरकर पुखराज के धूर्व के दरवाजे की देहलान में प्रवेश करता है।

[च] पश्चिम-उत्तर की घाटी[३]

इन घाटियों (सीढ़ियों) का छः लाख कोस का चढ़ाव है। यहां कई महल

१-लालदास-कृत छोटी वृत्त, पृ० ८५-८७

२-वही, पृ० ८८-८९

३-वही, पृ० ९०

बगीचे, नहरें, चेहबचे और फुव्वारे छूटते हैं तथा कई हिंडोले लगे हैं।

[छ] बंगलों का चबूतरा[1]

पुखराज का चबूतरा और बंगलों का चबूतरा दोनों बरा-बर हैं। यहां बंगलों का चबूतरा भूमि-भर ऊंचा है। पुखराज के गोल चबूतरे पर एक चौरस (चौखूंट) चबूतरा है। उसी माफक बंगलों का चबूतरा पर चौरस चबूतरे हैं। उन चबूतरों पर बंगले हैं, संभवतः इसीलिए इसे बंगलों का चबूतरा कहा जाता हो। बंगलों के चबू-तरों पर अनेक चबूतरे और चेहबचे आदि हैं। इनको घेरकर एक हार फीलपायों [हाथी-पैर जैसे स्तम्भ] की है। इन चांदनी के ऊपर पुखराजजी ताल हैं।

[ज] पुखराजजी ताल[2]

यह तालाब पुखराज पर्वत के पूर्व दिशा में है। इसकी गहराई चार लाख कोस है अर्थात् पुखराज की चांदनी से बीस भोम नीचे तक है और घेराव चार लाख कोस का है। इसके चारों ओर महलाते हैं। इस तालाब से चार घड़नालों में होकर जलका बड़ा पूर (वेग) आता है और सोलह चादरों [चौड़ी धाराओं] द्वारा चार सौ अस्सी भोम ऊपर से नीचे अधबीच के कुण्ड में गिरता है और कर्णप्रिय गर्जना होती है।

[झ] अधबीच का कुण्ड[3]

कुण्ड के नीचे से चार हार फीलपायों की फिरी हैं। फीलपायों की कई हारें बीच में आई हैं। उन सब फीलपायों पर मेहराब हैं। कई महल, सीढ़ियां और नेहरें, चहबचे, फव्वारे बगीचे, चौक-चबूतरे और हिंडोले हैं। कुण्ड को घेरकर चारों तरफ चबूतरा है। किनारे पर फिरता कठेड़ा है। यह कुण्ड दो लाख कोस ऊंचा है जिसकी ऊपरा ऊपर पांच सौ भोमे पड़ी हैं और लम्बा-चौड़ा पुखराजजी-ताल के तीसरे हिस्से में है।

[ञ] टपो चबूतरा[4]

इस चबूतरे में तलहटी में महोलायतें, वन, बगीचे, नहरें, चहबचे तथा फुव्वारे हैं। यह अधबीच का कुण्ड के तीसरे हीस्से में है।

१-लालदास-कृत छोटी वृत्त, पृ० ९०-९३

२-वही, पृ० ९४-९५

३-वही, पृ० ९६-९६

४-वही, पृ० ९८

'मदीयं सरः' भी कहते हैं। 'हौज कौसर' के विषय में छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है कि 'मदीयं सरः'–'मदीयं मदकर हर्षोत्पादकम् सरः'' । 'इस प्रकार श्री शंकराचार्य ने इसकी व्याख्या की है। इस प्रकार देखें तो दिव्य ब्रह्मपुर के २५ पक्ष के नाम भी रहस्यपूर्ण हैं और वेदोपनिषद् शास्त्रानिर्दिष्ट हैं[१]'' ।

(१०–२५) आठ सागर और आठ जमी

उपरोक्त नौ पक्षों को घेरकर 'बन की नहर' का 'फिरावा' (घेरा) है। यह नहर 'नीर सागर' से निकली है। इसका जल परमधाम के विभिन्न भागों को सिंचित करता हुआ पुनः नीर सागर में मिल जाता है।

वन की नहर के आगे छोटी रांग (दुर्ग) का फिरावा है और इसके आगे बड़ी रांग है। बड़ी रांग में आठ सागर और आठ जमी (भूमि) [प्रत्येक सागर के बाद जमीन है।

ये आठ सागर हैं[२]–नूर सागर, नीर सागर, क्षीर सागर, दधि सागर, घृत सागर, मधु सागर, रस सागर, और सर्वरस सागर। इन सागरों का रंग और स्थान इस प्रकार है[३]

सागर	दिशा	रंग
नूर सागर	अग्नि कोना	लाल रंग
नीर सागर	दक्षिण दिशा	पीला रंग
क्षीर सागर	नैऋत्य कोना	नीला रंग
दधि सागर	पश्चिम दिशा	सफेद रंग
घृत सागर	वायव्य कोना	श्याम रंग

१–लालदास–कृत छोटी वृत्त (प्रकाशित), पृ० १००

२–नूर नीर खीर दधि, घृत मधु एक ही ठौर
रस सर्वरस सागर, बिन मोमिन न पावे कोई और

३–अग्नि, इस्मान, लाल, नूर, पीत रंग नीर दक्षिण
नैर्त्य खीर नीला रंग, दधि, सेत पश्चिम रोशन
घृत वाइव श्याम रंग, रंग आसमानी मधु उत्तर
दस रंग अमृत इसान, रस पूरव रंग सर भर

मधु सागर	उत्तर दिशा	आसमानी रंग
रस सागर	ईशान कोना	दस रंग
सर्वरस सागर	पूर्व दिशा	सर्व रंग

इन सागरों का प्रतीकात्मक अर्थ भी है, जो इस प्रकार है[१] —

नूर सागर	:	प्रकाश का प्रतीक
नीर सागर	:	श्यामाजी की शोभा का प्रतीक
क्षीर सागर	:	रूहों (सखियों) की एकदिली (प्रेम) का प्रतीक
दधि सागर	:	श्रीराजश्यामाजी तथा सखियों के श्रृंगार का प्रतीक
घृत सागर	:	इश्क का प्रतीक
मधु सागर	:	इल्म (ज्ञान) का प्रतीक
रस सागर	:	निसबत (सम्बन्ध–सखियों का) का प्रतीक
सर्वरससागर	:	मेहर [कृपा] का प्रतीक

नौ 'पखों' का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इस तरह परमधाम के ये पच्ची 'पख' हैं।

इसी वर्णन के आधार पर श्री जायसवालजी ने लिखा है–

"– – – स्वामीजी द्वारा परमधाम का जो विस्तृत विवरण दिया गया है, उससे स्वा-मीजी के शिल्प-कला सम्बन्धी महान ज्ञान का परिचय मिलता है। वह वर्णन भी अपने में इतना विराट है कि ताजमहल का निर्माता भी एक बार उसे पढ़कर चकित हो जायेगा[२]।"

कृष्ण-पक्ष की रात्रि को एक प्रहर तथा शुक्ल-पक्ष की रात्रि को दो प्रहर पर-मधाम के जिन भागों में घूमने जाते हैं,[३] उनका विवरण इस प्रकार है—

१–'सागर ग्रन्थ' में इस प्रतीकात्मक अर्थ का ही विवेचन है।

२–दूसरा प्रणाम, पृ० १३–१४

३–परमधाम में मन चाही पातशाही है। अर्थात् वहां प्रत्येक कार्य तथा स्थानों का निर्माण इच्छानुसार होता है। यह नियम तो केवल रूहों को समझाने के लिए किया गया है जैसा कि श्रीजी ने स्वयं" कहा है–

(बे शुमार ल्याऊं शुमार में, वास्ते ल्यावने रूह के दिल)

शुक्ल-पक्षः	प्रतिपदा– नूर सागर	अष्टमी – सर्वरस सागर
	द्वितीया– नीर सागर	नवमी – छोटी रांग
	तृतीया– क्षीर सागर	दसमी – वन की नहरें
	चतुर्थी – दधि सागर	एकादशी– मानिक पहाड़
	पञ्चमी – घृत सागर	द्वादशी – जवेरों की नहरें
	षष्टी – मधु सागर	त्रयोदशी– चौबीस हांस की मोहलात
	सप्तमी– रस सागर	चतुर्दशी – हौज कौसर (तालाब)

पूर्णिमा – रंग महल की दसवीं भूमि

छोटी रांग और चौबीस हांस की मोहलात के अतिरिक्त शेष भागों का वर्णन किया जा चुका है। इन दोनों का संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है—

छोटी रांग

आठ सागरों के घेरे को बड़ी रांग (दुर्ग) कहते हैं। छोटी रांग इसी बड़ी रांग के अन्दर है। छोटी रांग में एक फिरावा चौरस (चौखूंट) हवेलियोंका है। एक फिरावे में चार हार (पंक्ति) हैं और प्रत्येक पंक्तिमें बत्तीस-बत्तीस हवेलियां हैं।

चौबीस हांस की मोहलात

यह रंगमहल के दक्षिण की ओर, नौ लाख कोस के अन्तर पर है। यह चौबीस पहलवाला (गोल) 'मोहोल' (महल) है। यह महल 'पहलदार' है, इसके पांच भोम छठो चांदनी है।

मध्य वाले चौबीस मोहोल की छत पर पानी के चेहबचे हैं। इस मोहोल से उन चेहबचों तक पानी पहुँचता है और कुंड पर चारों ओर पानी गिरता है। इसके बाहर की तरफ चौबीस तालाब की चौबीस पंक्तियां हैं और किनार पर महल हैं जिसके दो भोम तीसरी चांदनी है। तालाबों के मध्य भागमें सुन्दर बगीचे हैं जिनमें नेहरें और चहबचे हैं उसमें से फव्वारे छूटते हैं। चांदनी रात में यह दृश्य दर्शनीय है। शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को इन मोहलों में बैठकर युगलस्वरूप तथा सखियां इस दृश्य का आनन्द लेते हैं।

इन विभिन्न स्थानों पर तीन से नौ बजे तक रहते हैं और यहीं फलादि आरोगते हैं।

कृष्ण-पक्ष वदी के पन्द्रह दिन, एक प्रहर-चौथे प्रहर में, तीन से छः बजे तक परमधाम के निम्न भागों में रहते हैं[१]—

प्रतिपदा – पाट-घाट

द्वितीया – बटका पुल

तृतीया – बट पीपल की चौकी तथा कुंज वन

चतुर्थी –फूलबाग दूब दुलीचा

पंचमी – पश्चिम की चौगान

षष्ठ – लाल चबूतरा

सप्तमी – बड़ा वन

अष्टमी – मधु वन, महावन

नवमी – पुखराज की तरहटी

दशमी – पुखराज की चांदनी

एकादशी – पुखराज ताल

द्वादशी – बंगला

त्रयोदशी – अधबीच कुंड

चतुर्दशी – मूल कुण्ड हपो-चबूतरा

अमावस्या – केल (का) पुल

अक्षरधाम

यह सच्चिदानन्द परमात्मा के सत् अंश का धाम है। यह रंगमहल से नौ लाख कोस दूरी पर और जमुनाजी से साढ़े चार लाख कोस के अन्तर पर स्थित है। अर्थात् अक्षरधाम और रंगमहल के ठीक मध्य में जमुनाजी नदी है। इस नदी के दोनों ओर सात-सात वन हैं। इन वनों पर केला, नींबू, अनार, आम, जामुन, नारंगी, बट के सात तरह के वृक्ष हैं[२] जो कि एक ओर रंगमहल तक और दूसरी अक्षरधाम तक चले

१– महन्त श्री जगमोहनदासजी के मतानुसार

२–केल लिंबोई अनार वन सोहे, पाट घाट देखत मन मोहें
जामुन नारंगी, बनो बट भारी, आगे तालाब परम सुखकारी –परचर्नी

गये हैं। जहाँ इनकी हारें समाप्त होती हैं, वहीं अक्षरधाम है। अक्षरधाम का बड़ा दरवाजा पश्चिमा-भिमुख और रंगमहल के सामने है। शेष तीन दिशाओं में भी एक-एक दरवाजा है। अक्षरधाम के पश्चिम की ओर, उपरोक्त सात वन हैं और शेष दो ओर दक्षिण पूर्व 'कुंज निकुंज' [गोल तथा चौखूंट फुलवारियां] हैं। और उत्तर तरफ महा, मधु बड़ा वन हैं।

परमधाम के अधिपति अक्षरब्रह्म हैं। ये पूर्णब्रह्म के सत् अंग और बालस्वरूप हैं। यह बालस्वरूप अक्षर भगवान संसार-रूपी खिलौने बनाकर क्रीड़ा में लीन रहते हैं[१]।

परमधाम में 'किशोर लीला' है तो अक्षरधाम में बाल-लीला। वहां आनन्द लीला है, यहां सत्य की लीला।

बालस्वरूप अक्षर भगवान प्रतिदिन अपने अंशी पूर्णब्रह्म परमात्मा के दर्शन करने के लिए केलपुल से आते हैं और दर्शन करके सात घाटों की परिक्रमा करते हुए बट-पुल से अक्षरधाम वापिस चले जाते हैं। आनन्द अंश [सखियां] और सत् अंश (अक्षर) एक-दूसरे की लीलाओं से अनभिज्ञ हैं और दोनों उसे देखना चाहते हैं, जिसका आगे सविस्तार उल्लेख किया गया है।

२-भगवानजी खेलें बाल चरित्र, आप अपनी इच्छा सो प्रकृत
कोटि ब्रह्माण्ड नजरों में आवे, क्षण में देखें पलमें उड़ावें प्रकाश, प्रगट-वाणी

बेहद् भूमि

अखण्ड भूमि अक्षरातीत की लीला भूमि है तो बेहद् भूमि अक्षर को। अक्षर के चार अन्तःकरण हैं-मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार। मन सत्स्वरूप है, बुद्धि केवल ब्रह्म स्वरूप, चित्त सबलिक ब्रह्म स्वरूप और अहंकार अव्याकृत ब्रह्म स्वरूप है। कोई भी कार्य बिना अहंकार के नहीं होता, इसलिए संसार रचना में अव्याकृत का महत्वपूर्ण स्थान है। सत्स्वरूप, केवल, सबल, तथा अव्याकृत में से प्रत्येक में चार स्थान-स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण हैं, जिनमें गोलोक, प्रणव ब्रह्म, मुक्ति-स्थान आदि निवसित हैं।

सत्स्वरूप से प्रणव ब्रह्म के स्थान तक बेहदभूमि कहते हैं। अखण्ड भूमि की तरह बेहद् भूमि में भी मुख्यतः पांच लीलाओं का समावेश है। ये पांच लीलाएं हैं-सत्स्वरूप की, केवल ब्रह्म की, नित्य गोलोक की, सबलिकब्रह्म की और अव्याकृत ब्रह्म की।

इस अध्याय में इन्हीं लीलाओं की मीमांसा की गयी है।

सत्स्वरूप

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सत्स्वरूप अक्षर ब्रह्म का मन-स्वरूप है। मनस्वरूप होने के कारण इसे 'कारण अक्षर' तथा 'विलास की सूरत' भी कहते हैं[1]। इसके अतिरिक्त इसे इच्छा-शक्ति, अचिन्त्य शक्ति तथा मूल प्रकृति आदि भी कहते हैं। सबलिक ब्रह्म के सूक्ष्म में स्थित चिदानन्द लहरी इसी मूल प्रकृति का प्रतिनिधि स्वरूप है। सत्स्वरूप में इन चारों स्थानों के अलावा एक और स्थान है। वह है निर्मल चैतन्य।

निर्मल चैतन्य

यह स्थान महाकारण स्थान से ऊपर है। इस स्थान में ब्रह्म सृष्टियों का प्रतिभासिक मुक्ति स्थान है अर्थात् ब्रह्मसृष्टि ने जिन पवित्र आत्माओं को अपना अधिष्ठान बनाकर खेल देखा है, वे जीव मृत्युपरांत निर्मल चैतन्य और ब्रह्म सृष्टियों की सुरताएं परम-धाम को प्राप्त होंगी। इन जीवों में ब्रह्मसृष्टियों ने स्वयं नहीं, वरन् उनकी सुरत (ध्यान अथवा प्रतिभास) ने प्रवेश किया है। ब्रह्मसृष्टियों के प्रतिभास से युक्त जीवों का स्थान होने के कारण इसे 'प्रतिभासिक मुक्ति स्थान, कहा गया है। इन जीवों के

१-अक्षर को 'विलस्यो मन, पाच तत्व चौदह भुवन।

अतिरिक्त वे जीव भी इस स्थान को प्राप्त होंगे जो ज्ञान प्रबुद्ध होकर ब्रह्मसृष्टियों के-से आचरण करेंगे[1]। इस स्थान को प्राप्त करनेवाले जीव अजर, अमर ज्ञानमय-सत्स्वरूप होकर नित्य परमानन्द का अनुभव करेंगे। जो विष्णु-रूप कृष्ण के भक्त हैं या गोलोक वासी कृष्ण के भक्त हैं, वे इस स्थान को प्राप्त कर सकने में असमर्थ हैं। चूंकि वे ऐसी कल्पना भी मन में नहीं लाते कि हमारे इष्ट से पर भी कुछ है।

इन मुक्ति स्थानों के अतिरिक्त अक्षर का 'मन' भी इसी स्थान (निर्मल चैतन्य में निवास करता है। महाकारण में चिदानन्द लहरी का मूल स्थान, मूल प्रकृति (इच्छा) है। 'कारण' स्थान में केवल ब्रह्म अधिष्ठित हैं। 'सूक्ष्म' में 'सबलिक' ब्रह्म और 'स्थूल' में अव्याकृत ब्रह्म हैं।

अतएव इन चारों स्थानों, स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण का उल्लेख 'केवल', 'सबलिक' और 'अव्याकृत' के साथ किया गया है।

केवल ब्रह्म

यह पूर्णब्रह्म की आनन्द-लीला का अंश-रूप है और सत्स्वरूप के कारण स्थान में स्थित है। केवलधाम से साढ़े चार लाख कोस पर श्री जमुनाजी हैं और यमुनाजी से साढ़े चार लाख कोस पर सबलिक-धाम है अर्थात् दोनों धामों (सबलिक धाम तथा केवल-धाम) में अक्षर तथा अक्षरातीत धाम की तरह नौ लाख कोस का अन्तर है और ये दोनों धाम अक्षरधाम तथा अक्षरातीत धाम की भांति पूर्व तथा पश्चिमाभिमुख हैं।

केवलधामकी रचना

अमृत सागर, जिसका विस्तार एक करोड़ कोस है, के मध्य में एक द्वीप है। इसका क्षेत्रफल पचास लाख कोस है। यह द्वीप स्वतः प्रकाशित है और नौ रंगों के नौ खण्डों में विभाजित है। आठ खण्ड, आठ दिशाओं में हैं और नवम खण्ड माणिक-मय मध्य में है। इस माध्यमिक खण्ड को, जो केवल लोक का राजनगर (राजधानी) है,

---

१-जो कदी जीवे संग कियो, ताको मेलो न करू भंग
रंगे मेल्ं वासना, वासना सत को अंग   कलस प्र० २३ चौ० ६

× × ×

ब्रह्म सृष्टि को ऐसो नूर, जो दुनियां थी बिना अंकूर
ताये नये अंकूर जो कर, किए नेहचल नूर नजर

मुख्य केवलधाम [राजमहल] कहते हैं।

'मुख्य केवलधाम' पहलदार [मोड़युक्त] और वर्तुलाकार (गोल) है। इसकी दस विभिन्न रंगों की दस भूमिकाएं हैं। यह राजमहल एक भूमि-भर ऊंचे [५० गज ऊंचा] चबूतरे पर स्थित है। इस चबूतरे पर चौंसठ थम्भ हैं और उनके बीच चबूतरे के मध्य में रत्न जड़ित स्वर्णमयी सिंहासन है। इस सिंहासन पर केवलब्रह्म अपनी स्वामिनी 'आनन्द योगमाया' सहित विराजमान है। इसी योगमाया के 'कारण' स्थान में अखंड रास (रासलीला) हुई थी। इसे रास का मुक्ति-स्थान भी कहा जाता है[1]।

केवलधाम में भी 'ब्रह्मानन्द' [पूर्णब्रह्म की आनन्द] लीला का ही रस है, परंतु यह पूर्णानन्द के कोटिक अंश का अंश-मात्र है; पूर्णानन्द तो सबलिक ब्रह्म के महाकारण महारास में है। यहां रसानन्द लीला को ही नवों खण्डों में नवरस के रूप में वर्णित किया गया है। नव भूमिकाएं भी नवों रसों की हैं। जब जिस खण्ड में जाते हैं, उसी रसका अनुभव होता है। विभाव, अनुभाव और स्थायी भाव के रूप में सर्वत्र ब्रह्मानन्द का अंशानन्द अभिव्यक्त हो रहा है। अर्थात् यहां पर जो कुछ है, रस-रूप है। यहां स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण [आदि के] क्रम का विधान नहीं है। बृहदारण्यकोपनिषद् ने भी 'रसो वै सः"[2] ब्रह्म वै रसः कहकर इसी तथ्य की पुष्टि की है। अर्थात्, यहां पर स्थित ब्रह्म [समस्त सामग्री] धाम मात्र [केवल] रस-रूप हैं, इसीलिए धाम का नाम भी केवल तथा ब्रह्म का नाम भी केवल है।

सबलिक ब्रह्म

सबलिक ब्रह्म सत्स्वरूप के सूक्ष्म स्थान में[3] केवल ब्रह्म से नौ लाख कोस के अन्तर पर स्थित है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण के अतिरिक्त सत्स्वरूप की तरह इसमें भी 'निर्मल चैतन्य' स्थान है जिनका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है—

स्थूल

सबलिक ब्रह्म के स्थूल स्वरूप को अव्याकृत का महाकारण भी कहते हैं जिसका सविस्तर वर्णन आगे किया गया है।

१—विस्तार के लिए देखिये, इसी अध्याय के अन्तर्गत 'त्रिविध लीला' शीर्षक।

२—सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० ६८

३—सृष्टि विज्ञान वर्णन पृ० ७०

सूक्ष्म

सबलिक ब्रह्म के सूक्ष्म स्थल में एक सुधा-सिन्धु है। इस सिन्धु में कल्प-वृक्षों से आवृत एक मणि द्वीप है जिसमें पांच शिव, नादशिव, ब्रह्मशिव, परमशिव, सदाशिव और शिव, और इनकी पांच शक्तियों से निर्मित एक मंच [पलंग] है१। चार शिवों के चार पाय (मंच के पैर) हैं और एक शिव का आसन बनाया गया है। चार शक्तियोंकी चार पाटी हैं२ और एक शक्ति की बुनाई है। इसपर 'चिदानन्द लहरी' नामक शक्ति अधिष्ठित है३। सबलिक ब्रह्म के चिद् अंश और केवलब्रह्म के आनन्दांश के संयुक्त स्वरूप को 'चिदानन्द लहरी' कहते हैं४। इसको 'सुरता' अथवा 'विद्या-शक्ति' भी कहते हैं। कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के हृदयाकाश से उदित 'शक्ति' यही सुमंगला शक्ति है। जब यह सृष्टि कार्य में प्रवृत्त होती है, तब पूर्व कथित अव्याकृत के महाकारण (शुद्ध स्थूल लोक) में अपनी सर्व सामग्री के साथ आ विराजती है और सद्रूपा माया (सुमंगला) नाम से जानी जाती है५।

चिदानन्द लहरी के साथ करोड़ों शक्तियों सहित महाप्रबल 'शिवा-कल्याणी शक्ति' रहती है६।

सबलिक ब्रह्म का कारण नित्य गोलोक-धाम

सबलिक ब्रह्म के कारण में नित्य गोलोक धाम है। यहां पर साढ़े तीन कोटि स-

---

१-शंकराचार्य-कृत सौन्दर्य लहरी

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपवाटी परिवृते।
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे॥
शिवाकारे मंचे परमशिवपर्यंकनिलयां।
भजन्ति त्वा धन्याः कतिचन चिदानन्द लहरीम्॥ —विराट पट-दर्शन पृ० ८०

२-भैरव यामले :

शिवात्मके महामंचे महेशानोपवर्हणे
मृनकाश्च चतुष्पादः काशिपुश्च सदाशिव —वही, पृ० १८१

३-सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० ६१

४-वही, पृ० ६२

५-विस्तार के लिए देखिए, इसी अध्याय में 'अव्याकृत' का 'महाकारण'

६-सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० ६२

खियों सहित श्री राधा-कृष्ण की व्रज-लीला होती है। इस मृत्यु लोक में चौरासी कोस व्रज मंडल में भगवान कृष्ण ने गोप तथा गोपिकाओं के साथ जो व्रज लीला की थी, उस चौरासी कोस व्रज मंडल सहित वहा की समस्त सामग्री (वस्तुएं), वन, पर्वत, यमुना, गोप-गोपी, गौ, ग्वाल-बाल, नन्द-यशोदादि यहीं से, मृत्यु लोक में अवतरित हुए। इस लीला को अक्षर-ब्रह्म ने अपने 'चिद्' अन्तःकरण [सबलिक] में अखण्ड रूप से धारण किया था। इसी स्थान को मूलतः व्रज की पांचवीं मुक्ति कहते हैं[1]। जो जीव इस लीला का चिन्तन करेंगे, वे ही इस स्थान को प्राप्त होंगे।

सबलिक ब्रह्म का महाकारण महारास

सबलिक के कारण स्थान में नित्य गोलोक है और महाकारण में नित्य-वृन्दावन अक्षर-ब्रह्म की परमधाम में अक्षरातीत तथा सखियों में होनेवाली प्रेमलीला को देखने की प्रबल इच्छा थी[2]। इस इच्छा-पूर्ति के लिए अक्षरातीत-पूर्णब्रह्म परमात्मा ने 'केवल ब्रह्म' के द्वारा 'अक्षर' को 'ब्रह्मानन्द रस' का जो अनुभव कराया, उसे 'अक्षर' ने अपनी जाग्रत बुद्धि द्वारा 'सबल वृत्ति' के अन्तःकरण में धारण कर लिया है। यह 'सबल वृत्ति' सबलिक ब्रह्म का 'महाकारण' है अर्थात् पूर्णब्रह्म के आवेश द्वारा केवलब्रह्म की स्वामिनी योगमाया के 'कारण' स्थान में जो रास की गयी थी, उसे अक्षर ने अपने मन [सत्स्वरूप] के महाकारण स्थान में अखण्ड स्मृति के रूप में रखा। सबलिक (शंबलित) के महाकारण स्थान को चौथो मुक्ति स्थान अथवा रास का मुक्ति स्थान भी कहा जाता है।

सबलिक ब्रह्म का निर्मल चैतन्य सबल ब्रह्म का धाम

सबलिक ब्रह्म के निर्मल चैतन्य को 'चिद्रूपाक्षर अथवा सबलिक का धाम' भी कहते हैं। यह अक्षर ब्रह्म का 'प्रतिभास' [प्रतिबिंब] स्थान है।

सबलिक ब्रह्म बाल-रूप में अपनी अर्धाङ्गिनी लक्ष्मीजी तथा अनन्त शक्तियों सहित यहां विराजमान हैं। सबलिक ब्रह्म कूटस्थ अक्षर-ब्रह्म के चिदंश का कोटिशः भाग स्वरूप भी माना गया है।[3]

१-वही, पृ० ६३

२-श्री मुखवाणी-'अक्षर मन उपजी एह, देखूं धनी जी को प्रेम स्नेह'

३-'सबलिक ब्रह्म का निर्मल चैतन्य व चिद्रूपाक्षर (सबलिक) को जो मुख्य धाम है - -

सबलिक ब्रह्म के 'नेत्र भ्रमण' में ही असंख्य ब्रह्मांड त्रिदेव, असंख्य देवी-देवता, अवतार तथा दानव-मानव उत्पन्न व लय हो जाते हैं।

श्री कृष्ण के तृतीय श्याम स्वरूप (जिसमें गोलोक की शक्ति है तथा जिन्होंने ११ दिन की लीला[1] की) का मुक्ति स्थान यहीं पर है। इस तृतीय कृष्ण के साथ, कृष्ण के तृतीय स्वरूप के उपासक भी प्रलय के पश्चात् इसी स्थान को प्राप्त होंगे।

अव्याकृत ब्रह्म

अव्याकृत ब्रह्म, सत्स्वरूप के स्थूल में स्थित हैं, इसलिए इसे 'सत्स्वरूप का स्थूल भी कहा जाता है।

अव्याकृत पुरुष अपने चारों स्वरूपों [स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण] सहित माया में अनेक प्रकार से बार-बार प्रविष्ट होता रहता है। ये चार स्वरूप हैं।

(क) अव्याकृत का स्थूल शुद्ध प्रणव

अव्याकृत के स्थूल में प्रणव का स्थान है जिसे प्रणव ब्रह्म [ॐकार] का धाम कहते हैं। यह प्रणव ब्रह्म अहंकार स्वरूप है। इसके पांच मुख, दस भुजाएं हैं। यह प्रकाशपुंज तथा अनुपम शोभा से युक्त है। इसे ओमित्याक्षर भी कहते हैं। यहीं से प्रत्येक विश्व के लिए जीवों का प्रदान होता है। इसके ज्ञानमय कोश 'गायत्री शक्ति' के निर्मल चैतन्य में जीव सृष्टि (आम खलक) का मोक्ष स्थल है। अनन्त जीवों को उत्पन्न कर उन्हें अपने में समेट लेना इस प्रणव ब्रह्म का ही कार्य है।

प्रणव के ज्ञान-अज्ञान भेद से दो स्वरूप हैं—

(१) अज्ञानमय प्रणव

यह स्वप्नावस्था का स्वरूप है। यह महाशून्य के ऊपर स्थित है। यह शुद्ध 'अहंकार' स्वरूप तथा स्वतः प्रकाशित है। इसके साथ मन-रूपी रोधनी-शक्ति है जो

सबलिक ब्रह्म कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के चिदांश का कोटिशः भाग स्वरूप है" (सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० ६५)-से स्पष्ट होता है कि 'सबलिक ब्रह्म' तथा 'चिद्रूपाक्षर सबलिक ब्रह्म' भिन्न हैं। अक्षर ब्रह्म के चिदांश को चिद्रूपाक्षर सबलिक ब्रह्म माना है, जबकि सबलिक ब्रह्म अक्षर के चिदांश के कोटिशः भाग हैं। परन्तु इस अन्तर का स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं हुआ।

[1] —इसी अध्याय में 'त्रिविध लीला' शीर्षक

साधारण जीवों को प्रणव ब्रह्म से आगे नहीं जाने देती। यह पन्द्रह दिन साकार और पन्द्रह दिन निराकार रहती है। जब साकार [व्यक्त] होती है तब विश्व का उदय होता है, जब निराकार होती है तब विश्व का अस्त हो जाता है।

क्षर में स्थित, अष्टावरण के ऊपर 'नादस्वभाव प्रणव ब्रह्म' [ज्योति-स्वरूप] इसी का प्रतिबिम्ब स्वरूप है।

अज्ञानमय प्रणवाकाश के अन्दर तीन स्थान हैं- (१) शुद्ध स्थूल, (२) शुद्ध सूक्ष्म, (३) शुद्ध कारण।

१-शुद्ध स्थूल में-ॐ की आकार मात्रा, ऋग्वेद, ब्रह्मा देवता, गार्हपत्याग्नि और पृथ्वी तत्व का सूक्ष्मतम रूप है।

२-शुद्ध सूक्ष्म में-ॐकार मात्रा, यजुर्वेद, विष्णु देवता, दक्षिणाग्नि और जल तत्व का सूक्ष्तम रूप है।

३-शुद्ध कारण में-मकार मात्रा, सामवेद, रुद्र देवता, आहवनीय अग्नि और तेज तत्व का सूक्ष्मतम रूप है।

इनसे पर प्रणव का ज्ञानमय कोश है जिसमें दो स्थान हैं—

१-शुद्ध महाकारण-में अर्ध मात्रा, गायत्री शक्ति अथर्व-वेद, ईश्वर देवता और वायु तत्व का सूक्ष्मतम रूप है।

२-निर्मल चेतन-बिन्दु मात्रा, स्वसंवेद, पुरुष देवता और आकाश तत्व का सूक्ष्मतम रूप है।

ज्ञानमय प्रणव : ज्ञान-शक्ति गायत्री[1]

अपर [अज्ञान] प्रणव में माया का बीज है और पर [ज्ञान] प्रणव विशुद्ध चैतन्य

१-देवी भागवत (१२-११-८६-८७):

तदायुधधरा देवी गायत्री परदेवता।
वेदाः सर्वे मूर्तिमन्तः शास्त्राणि विविधानि च॥
स्मृत्यश्च पुराणानि मूर्तिमन्ति वसन्ति हि
ये ब्रह्मविग्रहाः सन्ति गायत्री विग्रहाश्च ये॥
व्याहृतीनां विग्रहाश्च ते नित्यं तत्र सन्ति हि॥

—सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० ४९

है जिसे 'निर्मल चैतन्य' कहते हैं। यही ज्ञान-शक्ति गायत्री का धाम है। इस गायत्री धाम की सर्व सामग्री 'निर्मल स्वरूप [मानी गयी] है। यह गायत्री शक्ति के निर्मल चैतन्य का स्थान है जहां सम्पूर्ण जीवों का मुक्ति स्थान है। आदिनारायण के स्थूल में जो गायत्री-शक्ति है, वह इस गायत्री का ही प्रतिबिम्ब स्वरूप है।

पांचों वेद यहां पर अव्यक्त रूप से नित्य निवास करते हैं। यहीं से आदि नारायण के स्थूल, 'नाद स्वभाव' में होते हुए शेषशायी नारायण के श्वास द्वारा जगत् में स्थूल रूप से व्यक्त होते हैं।

(ख) अव्याकृत का सूक्ष्म : काल निरंजन

अव्याकृत के सूक्ष्म में काल-निरंजन का स्थान है। इसके निरंजन पुरुष, काल पुरुष, काल निरंजन, काल भगवान, निरंजन शक्ति, महाकाल, महारुद्र, महतत्व आदि अनेक नाम हैं[1]। महानारायण का सूक्ष्मपाद जिसे 'महतत्व' कहते हैं, इसी का [काल-निरंजन का] प्रतिबिम्ब है। अतः जितने भी महतत्व के नाम हैं, वे सभी मूलतः इसी के नाम हैं। इसका स्वरूप मन, वचन, दृष्टि से पर है। अव्याकृत में यह अत्यन्त सूक्ष्म सूरत रूप है। अनेक ब्रह्मांडों के जीव इसी में लय हो जाते हैं,[2] इसी से इसको 'महाकाल रूप' कहते हैं। असंख्य ब्रह्मांडों के जीवों का यही ब्रह्म है। यह अखण्ड के द्वार पर चौकी रूप है: जिसके कारण कोई भी अनाधिकारी जीव अखण्ड क्षेत्र में प्रवेश नहीं पा सकता।

काल-निरंजन के तीन स्वभाव हैं-

१. अध्यात्म-अध्यात्म स्वभाव के साथ चौबीस हजार शक्ति सहित 'सुमना शक्ति' रहती है। इन शक्तियों में से प्रत्येक के तीन-तीन स्वभाव हैं-इच्छा, क्रिया, ज्ञान।

२. अधिदैव के साथ-चौबीस हजार शक्तियों के साथ' विद्या और ब्रह्मविद्या नाम की दो शक्तियां रहती हैं। इनमें से भी प्रत्येक के तीन स्वभाव हैं-आवर्ण विक्षेप और काल।

३. अधिभूत-के साथ दश महाविद्या तथा चौबीस हजार शक्तियों के साथ ब्रह्माणी शक्ति है। इनमें से भी प्रत्येक के तीन-तीन स्वभाव हैं-असत्, जड़ और दुःख।

१-अथर्ववेद : काले तप काले ज्येष्टं काले ब्रह्म समाहितम।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापते ॥ -वही, पृ० ५०

२-महाभारत . काल कर्ता विकर्ता च सर्वमन्यदकारणम्।
नाश विनाशमैश्वर्यं सुखं दुःख भवाभवौ ॥ -वही, पृ० ५०

ये ही ७२,००० शक्तियां ब्रह्मांड के पिण्डों में नाड़ी रूप में हैं। इन्हीं शक्तियों के प्रभाव से यह निरंजन शक्ति अति प्रबल और प्रचंड कही जाती है।

अक्षर की पांच वासनाओं [सनत्कुमार, शुकदेव मुनि, कबीर, शिव, भगवान आदि] का स्थान भी यही (काल निरंजन) है। लीला-भेद से इसमें भी चार स्थान हैं-

१. स्थूल-स्थूल में इसकी निज लीला है।

२. सूक्ष्म-में अधिभूत, अधिदैव, अध्यात्म की लीला है।

३. कारण-में नित्य गोलोक (अखण्ड व्रज) का प्रतिभास है।

४. महाकारण-में 'नित्य गोलोक' (अखंड रास) की लीला का प्रतिभास (प्रतिबिंब) है।

(ग) अव्याकृत का कारण : सात महाशून्य

अव्याकृत के 'कारण-पाद' में सात महाशून्यों का विस्तार है। ये सातों शून्य सात रंग के हैं। विश्व में जितने भी राग रंग प्रतीत होते हैं, उन सबका मूल (केंद्र) यही है। वास्तवी, अनिर्वचनीय, तुच्छा, शिव-कल्याणी तथा उन्मुनी-ये पांच शक्तियां यहां अधिष्ठित हैं। वैसे भी इन शून्यों में असंख्य शक्तियों का निवास है। इन शून्यों में से अनेक प्रकार के राग-रंग उठते हैं। इसका (सात शून्यों) उल्लेख माया व ब्रह्म दोनों रूपों में किया जाता है। ये 'कारण' (इह) रूप से माया हैं और 'चेतन' रूप [अनीह रूप] में ब्रह्म कहे जाते हैं। 'इच्छा-शक्ति' को इसी का प्रतिबिम्ब स्वरूप माना जाता है। ये सातों शून्य अखण्ड हैं। महानारायण स्थूल रूप-इन्द्र, धर्मराज, ब्रह्मा, विष्णु, शिव और ॐकार तथा गायत्री-का 'बीजभूत जीव' (उत्पत्ति का मूल स्थान) यही है। इस शून्य मंडल से कमल तन्तु के सदृश चिदाभास की सूक्ष्म शिखा का एक सूत्र ऊपर की ओर चला गया है जो इसे महाकारण से मिला देता है। इस धाम से आगे जाने वाले मुक्त पुरुषों का यह पथ-प्रदर्शक बन जाता है। यहां आचार्यों का मुक्ति-स्थल है जिसे सातवां मुक्ति-स्थल अथवा फरिश्तों की बहिश्त भी कहा जाता है[1]।

(ग) अव्याकृत का महाकारण

इसे सबलिक ब्रह्म का स्थूल रूपभी कहते हैं। अव्याकृत के महाकारण में लीला भेद से चार स्थान हैं- (१) शुद्ध स्थूल, (२) शुद्ध सूक्ष्म, (३) शुद्ध कारण, और (४) शुद्ध महाकारण।

१-सृष्टि विज्ञान वर्णन पृ० ५४

(१) शुद्ध स्थूलः-

इसमें सुमंगला शक्ति है। यहां पांच शक्तियां ब्रह्म स्वरूप, व्यापिका, शिवस्वरूपा, संहारिका, विधि-शक्ति, उद्‌गारिका, विष्णु-शक्ति, पालिका तथा सर्व कारणों की कारण-रूपा सद्रूपा सुमङ्गला शक्ति तथा पांच शिव हैं, जिनका पलंग [शैया] बनाकर उसपर सुमङ्गला शक्ति विराजमान है[1]। यह सबलिक की सत्स्वभाव रूपिणी है अर्थात् उसकी सुरता रूप एक महान विद्या शक्ति है। सबलिक के सूक्ष्म-स्वरूप-चिदानन्द लहरी-का कार्य-रूप यह सुमङ्गला-शक्ति है। सत्स्वरूप के चिद् [सबलिक ब्रह्म] और आनन्द [केवलब्रह्म] अंश से निर्मित यह चिदानन्द लहरी, जब सत्स्वरूप के सत् अंश, अव्याकृत के शुद्ध स्थूल में आ जाती है तब यह सद्रूपा [सत् रूप] कहलाने लगती है[2]।

[२] शुद्ध सूक्ष्म

अव्याकृत के महाकारण के शुद्ध सूक्ष्म स्थान में चार द्वीप हैं-नित्य वैकुंठ, सत लोक, श्वेत द्वीप और पुष्कर द्वीप। ये अनेक आत्माओं के मुक्त होने के स्थान हैं। नित्य वैकुण्ठ रामोपासकों का, सतलोक कबीर-पंथियों का, और श्वेत द्वीप वैष्णवजनों का मुक्ति-स्थान है। इन चारों द्वीपों में भिन्न रूपों में सत्पुरुष की ही लीला है। सत् पुरुष को 'पर विष्णु' भी कहते हैं। इसके आगे विष्णु की लीला नहीं है अर्थात् प्रलय के समय, स्वर्ग लोक लय हो जाने पर विष्णु, विष्णु के अवतार रूप तथा विष्णु उपासक इसी स्थान को प्राप्त होते हैं। इसीलिए इसे रामोपासकों का 'परमपद' भी माना गया है।

(३) शुद्ध कारणः-

जिस ब्रज-लीला (बाललीला) को 'सबलिक' ने अपने 'चित्' में अखण्ड रूप से धारण किया है, उसी का प्रतिबिम्ब अव्याकृत के शुद्ध-कारण में पड़ता है।

रुक्मिणी के विवाह के समय माधवपुर में विष्णु-रूप श्रीकृष्ण ने लक्ष्मी रूप रुक्मिणी को संकेत रूप से जिस ब्रज का दर्शन कराया था, वह यही ब्रज है। शिव,

१-इसका वर्णन पहले किया जा चुका है

२-सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० ५४

विष्णु, ब्रह्मादि देव इसी ब्रज-विहारी श्री राधा कृष्ण की उपासना करते हैं और अन्त में इस स्थान को प्राप्त होते हैं, यहीं पर उनकी परात्म है।

ब्रजलीला के उपासक तथा भक्त नरसिंह मेहता, वल्लभाचार्य चैतन्य महाप्रभु आदि का मुक्ति-स्थान भी यहां है।

'वेद ऋचा गोपियों', जिनको उद्धव ने योगाभ्यास का उपदेश दिया था, का मुक्ति स्थान भी यहीं है।

'कार्य' ब्रह्म (क्षरपुरुष अथवा हदभूमि क्षेत्र के ब्रह्म) के लोक (बैकुण्ठादि) में सा-युज्य मुक्ति पानेवाले उन कार्य-ब्रह्म के नाश होने पर अपने-अपने इष्ट के साथ यहां पहुँच कर अनन्त काल तक मोक्ष-सुख का उपभोग करते हैं।

इसी स्थान को प्रणालिका में बैकुण्ठ (अथवा ब्रज) का [ऊपर से गिनने पर] छ-ठवां मुक्ति-स्थान कहा गया है [नीचे से गिनने पर यह तीसरा मुक्ति-स्थान ठहरता है][1]।

[४] शुद्ध महाकारण

सबलिक ब्रह्म ने अपनी बुद्धि में अखण्ड रूप से जिस रासलीला को धारण किया है, उसी का प्रतिबिम्ब अव्याकृत के शुद्ध महाकारण में पड़ता है। यहां पर यह लीला निरन्तर होती रहती है[2]। वेदों ने यहीं पर रासलीला का वर्णन करके श्रीकृष्ण के साथ रास रमण करने के लिये स्तुति की थी जिसे 'वेद स्तुति' कहते हैं।

ब्रज लीला तथा रासलीला का प्रतिबिम्ब 'अव्याकृत' के महाकारण की तरह 'आदिनारायण' के महाकारण में ज्यों-का-त्यों पड़ा है। अन्तर केवल यही है कि 'अव्या-कृत' की सब लीलाएं नित्य हैं जबकि 'आदिनारायण' की अनित्य। चूंकि महाप्रलय के समय ये लीलाएं भी आदिनारायण के साथ लय को प्राप्त होंगी।

अव्याकृत ब्रह्म साधारण जीवों के लिए अगम्य और दुर्लभ है। छः शास्त्र भि-न्न रूप से इसी को ब्रह्म कहते हैं-न्यायशास्त्र इसकी आत्म रूप में अभिव्यक्ति करता है, मीमांसा कई रूप से, सांख्य-प्रकृति पुरुष के रूप में (सबलिक के पुरुष भाव का इसमें प्रतिबिम्ब पड़ने के कारण इसे प्रकृति-पुरुष भी कहते हैं), योग दर्शन ज्योति-रूप से वैषेशिक काल-रूप से और वेदांत मत वाले इसे निर्गुण निराकार रूप में मानते हैं। 'मूल माया', 'निज माया', महामाया, 'अजात्रिवर्णी,' आदि भी इसी के नाम हैं।

१-श्री सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० ५८

२-सदाशिव संहिता

नास्य ज्ञानं ब्रह्मसृष्टिं विना कस्यापि जायते ।
अक्षरब्रह्महृदये वास्तवी विद्धि द्वाकरे ॥
नित्यं वृन्दावने या च सा स्मृता प्रातिभासिकी ।
ब्रजभूम्या च या लीला सा प्रोक्ता व्यवहारिकी ॥

–सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० ५८

हद भूमि

बेहद भूमि की सीमा प्रणव ब्रह्म तक है। उसके नीचे हद भूमि शुरू होती है। हद भूमि का विस्तार पाताळ से लेकर महाविष्णु तथा महाशून्य तक है।

अक्षर के मन में अक्षरातीत की लीला देखने का मोह (प्रबल इच्छा) पैदा हुआ[१]। नींद के आवरण [स्वप्न] में उसने मोहजल (मोहावस्था) में एक अण्डा देखा। यह अण्डा ब्रह्मांड रूपी था[३]। इस अण्डे के फूटने पर इसमें से आदिनारायण निकला, जिसने अपनी इच्छा से जलका निर्माण किया। नर से उत्पन्न होने के कारण इस जल का नाम नार हुआ[४]। ब्रह्मांड रूपी अण्डे के गर्भ में होने के कारण इस [जल] समुद्र को गर्भोदक समुद्र नाम दिया गया[५]।

इस समुद्र में 'शेष नाग तथा कूर्म' रहता है। यहीं पर जल के ऊपर और पृथ्वी के अधोभाग में नरक के चौरासी कुण्ड हैं[६]। इस कूर्म का मुख करोड़ योजन का है। इसकी पीठ का विस्तार उनचास (४९) करोड़ योजन है। इतनी ही विस्तृत इसकी कुक्षि [पेट] है, एक करोड़ के विस्तार वाला कण्ठ और एक-एक करोड़ विस्तारवाली आंखें हैं। इन आंखों की ऊंचाई [मुटाई] सत्तावन कोटी योजन है। इस कूर्म का मुह पूर्व की ओर, पूंछ पश्चिम को ओर तथा कुक्षि उत्तर-दक्षिण को ओर है। चारों दिशाओं में चार पैर है[७] इस कूर्म की पीठ पर सहस्रफन वाला शेषनाग रहता है। भगवान कृष्ण के भाई बलराम तथा राम अनुज लक्ष्मण इसी शेषनाग के अवतार थे।

इस शेषनाग पर महाविष्णु[८] का संकर्षण नामक व्यूह (शक्ति) का रूप शयन

१–इच्छा भई मोह तत्व भयो, फिर अण्ड भयो कोइ काल तरानी
जीव पड़ो ता मध्य में आएके, आयो कहां थे कोई तो जानी। –दासवाणी

३–विष्णु पुराण : निःप्रवेशे निरालोके सर्वतः तमसावृते।
बृहदण्डमभदेकमक्षरं कारणं परम्॥ – विज्ञान सरोवर, पृ० ६४

४–निजानन्द चरितामृत पृ० ४०४–४०५

५–सृष्टि विज्ञान वर्णन पृ० ४

६–जिसका वर्णन आगे किया गया है।

७–वर्तमान दीपक, कि० ३५, चौ० २५-३५

८–इसका वर्णन आगे किया गया है।

कर रहा है[1] नार (जल) को अपना घर [आसन] बनाने के कारण इस स्वरूप का नाम नारायण पड़ा[2] । शेषनाग की शैया बनाने के कारण इन्हें शेषशायी नारायण भी कहते हैं । इनकी पाद-सेवा लक्ष्मीजी कर रही हैं ।

शेषशायी नारायण की नाभि से एक कमल-नाल निकला, जिसपर सुदूर ऊपर को जाकर कमल मिला। इस कमल में से त्रिदेवा, -ब्रह्मा विष्णु, शिव की क्रमशः उत्पत्ति हुई[3] । त्रिदेवा को उत्पत्ति के विषय में ऐसा प्रचलित है—

सर्व प्रथम कमल नाल से ब्रह्माजी ऊपर आये और कमल पर विराजमान हुए । अकेले कमल पर बैठे हुए तथा चारों ओर जल देखकर वे ऊब गये और पुनः अपने (उत्पत्ति) स्थान की ओर कमल-नाल में प्रवेश कर वापिस गये । अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी वे अपने मूल स्थान को पाने में असमर्थ रहे और ऊब कर पुनः ऊपर आ गये । ब्रह्माजी के पुनरावर्तन से पूर्व ही विष्णुजी उस कमलनाल से ऊपर आकर कमल पर विराजमान थे । ब्रह्माजी ने आते ही भगवान विष्णु से प्रश्न किया कि आप यहा कब आये ? इस कमल पर प्रथम कौन आया ? इस विषय को लेकर दोनों में संघर्ष होने लगा । संघर्ष करते समय दोनों की स्वेद की बूदें पृथ्वो पर गिरीं जिसमें से शिवजी उठ खड़े हुए । शिवजी की मध्यस्थता से झगड़ा समाप्त हुआ और यह निर्णय किया गया कि विश्वरचना की जाये जिसके कर्ता ब्रह्माजो, भर्ता (पालनकरने वाले) विष्णुजी होंगे और मैं इस सृष्टि का संहार करूंगा ।

वेद :

नारायणजी की स्वास प्रगति से चारों वेद-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद-स्थूल रूप से प्रगट हुए[4] इन वेदों के समस्त मंत्रों ने मनुष्य जैसा स्वरूप धारण कर रखा है, इसे ही वेद'ऋचाए' [नारायण की सखियां] कहते हैं । इन वेदों के मंत्रों का उच्चारण सर्वप्रथम ब्रह्माजी, के मुख से हुआ । ब्रह्माजी के चार दिशाओं में चार मुख हैं । पूर्वाभिमुख मुंह से ऋग्वेद का उच्चारण हुआ, पश्चिमाभिमुख यजुर्वेद,

---

१-सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० ५

२-'पाताल थी परमधाम', पृ० ९

३-सृष्टि विज्ञान पृ० ५

४-'नारायण के स्वांस से ए वेद भए जो चार' —श्री मुखवाणी

उत्तराभिमुख से अथर्ववेद और दक्षिणाभिमुख से सामवेद का उच्चारण होता है। प्राणनाथजी ने इन चारों वेदों में अथर्ववेद को सर्वाधिक महत्व दिया है।

तीनों वेदों ने यूं कह्या, वेद अथर्बन सब को सार ।
ए वेद कुली में आखिर, त्रिगुण को उतारे पार ॥३२॥ (कीर्तन प्र० ७३)

शास्त्र :

जो कुछ चार वेदों में है, उसीका सविस्तार वर्णन छः शास्त्रों में है। जो इस प्रकार है—

गौतम कहे न्याय में, त्रिदेव परे रूप ब्रह्म
जै मुनि मीमांसा में, कर्म विधि गाथी है
कपिलदेव कहे सांख्य विषै, कह्या है प्रकृति पुरुष
शेष पातांजल जोत कर नाथी है
कर्णदेव कहे वैषिशिक मांहि कह्या है काल
शिवजी वेदांत वाणी सर्वत्र कर भाषी है
कहे छत्रसाल श्री प्राणनाथजी की दया बिना
षट् दर्शन षट अन्धन ज्यों हाथी है

ऋषि(शास्त्रकर्ता)	शास्त्र	वेद	विषय
गौतम	न्याय	ऋग्वेद	परमात्मा (त्रिदेवा नहीं) त्रिदेवा से परे है,
जैमुनि तथा (व्यासजी)	मीमांसा	सामवेद	कर्म प्रधान है [कर्मानुसार फल मिलता है,]
कपिलदेव	सांख्य	यजुर्वेद	रोधनी-प्रणव को ब्रह्म माना है अतः प्रकृति-पुरुष [स्वयंभू-सत्रूपा] का वर्णन है-माया-ब्रह्म का निर्णय किया है,
शेष	पातांजल	यजुर्वेद	इसमें ज्योतिस्वरूप ॐ को ही परमात्मा मानकर उसी का वर्णन किया है,

कर्णदेव	वैशेषिक	यजुर्वेद	काल को ही सर्व प्रधान माना है,
शिवजी	वेदान्त	अथर्ववेद	सर्वत्र ही परमात्मा है (अर्थात् ईश्वर घट-घट वासी है.)

वेद-शास्त्रों के इसी विषय का सविस्तार वर्णन सत्रह पुराणों में व्यासजी ने किया है। जब इन पुराणों को नारदजी ने देखा तो उन्होंने कहा. इन पुराणों में आपने ज्योति स्वरूप, प्रकृति-पुरुष आदि की ब्रह्म के रूप में व्याख्या की है, पर ये तो प्रलय में लय हो जाते हैं। जो लय हो जाये. वह परमात्मा नहीं। और व्यासजी को उन्होंने दो श्लोक सुनाये-जो कृष्णजी की ब्रजलीला तथा रासलीला से संबन्धित थे। इन्हीं को आधार बनाकर व्यासजी ने १८ वें पुराण-भागवत पुराण-की रचना की प्राणनाथजी के मतानुसार चार वेद, छः शास्त्र, अट्ठारह पुराणों में भागवत-पुराण ही श्रेष्ठ है।

इस गर्भोदक समुद्र के ऊपर तथा पाताल से नीचे दक्षिण दिशा की ओर नरक स्थान है। अधर्म करनेवाले जीव इस स्थान को प्राप्त होते हैं। मानव-शरीर पच्चीस तत्वों, पांच ज्ञानेन्द्रियों (आंखें, कान, नासिका. जिह्वा तथा त्वचा), पांच तन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध), पांच कर्मेंद्रियों, पांच भौतिक तत्व तीन गुण [रजः; तमः तथा सत्व], बुद्धि और जीव से यह शरीर निर्मित हुआ है। इन तत्वों की मात्राएं घटती-बढ़ती रहती हैं जिससे विभिन्न शरीर विभिन्न तत्वों के बनते हैं इसके अतिरिक्त आठ तत्व, सत्रह और अट्ठाइस तत्वों का भी शरीर होता है। अट्ठाइस तत्व वाले शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय पांच तत्व, पांच तन्मात्रा, चार अंतःकरण [मन, चित, बुद्धि, अहंकार] तथा तीन गुण और जीव-ये अट्ठाइस तत्व होते हैं। पच्चीस तत्व वाले शरीर को 'स्थूल शरीर' कहते हैं।

स्थूल शरीर जब मृत्यु को प्राप्त होता है तो पांच तत्व तथा तीन गुण समाप्त हो जाते हैं और सत्रह तत्व का शरीर रह जाता है। इसे 'यातना देह' भी कहते हैं। यातना देह नरक भोगने के लिए होती है। यह विभिन्न प्रकार के नरक के कष्टों-ताप दाह, मार, दुःख, पीड़ा आदि को सहन करने में समर्थ होती है। इसे सूक्ष्म शरीर, लिंग शरीर आदि भी कहते हैं। नरक भोगने के बाद यह शरीर पुनः अपने मूलभूतों में लय हो जाता है और जीव शेष कर्मानुसार जन्मादि धारण करता है[1]।

पुराणों में ८४ नरक कुण्डों का नाम सहित उल्लेख हुआ है परन्तु इसका यह

१-सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० २२

अर्थ नहीं की मात्र ८४ ही नरक कुण्ड हैं । इस नरक स्थान में विभिन्न विस्तार वाले असंख्य नरक कुण्ड हैं । पुराणों में केवल चौरासी नरक-कुण्ड का ही नामोल्लेख हुआ है । ये कुण्ड अत्यधिक गहरे और घोर अंधकार से पूर्ण हैं । यहां पर अधर्मी जीवों को नाना प्रकार के कष्ट पहुँचाने की व्यवस्था है । यह नियम नहीं कि प्रत्येक पापी पुरुष को सभी नरक भोगने पड़ते हों, अपराधानुसार दो, चार, दस, बीस भी भोगने पड़ते हैं । इन जीवों को यथाक्रम एक नरक से छुटकारा पाकर दूसरे में तथा दूसरे से तीसरे में धक्का दे दिया जाता है ।

इनके विपरीत सुकर्म करनेवालों को स्वर्ग, वैकुण्ठ, कैलास आदि ऊर्ध्व लोकों की प्राप्ति होती है । नरक-स्थान के ऊपर सात पाताल हैं ।

सात पाताल—

[१] 'नरक' के समीप ही पाताल है । यह नारायणजी से तीस सहस्र योजन [४ कोस-१ योजन] ऊपर है । यहां सर्पों की बस्ती है । यह सर्पों की मणियों के प्रकाश से प्रकाशित है । सूर्य, चन्द्र का प्रकाश यहां नहीं पहुँचता ।

[२] रसातल-यह पाताल से दस सहस्र योजन ऊपर है । यहां दानव रहते हैं। यहां भी मणियों का प्रकाश है ।

(३) महातल-यह रसातल से दस सहस्र योजन ऊपर है । यहां भी सर्पों की बस्ती है । यह लोक उनके अनुकूल सबै भोग्य पदार्थों से भरपूर है । यहाँ भी मणियों का प्रकाश है।

[४] तलातल-महातल से दस सहस्र योजन ऊपर है । यहां भी मणियों का प्र-काश है । यहां राक्षस रहते हैं । मायासुर यहां का शासक है । यह लोक राजा बलि के आधिपत्य में है[1] ।

[५] सुतल लोक-तलातल तथा सुतल लोक में भी अन्य लोकों की तरह दस सहस्र योजन का अन्तर है । यहां पर भी दानव रहते हैं। यहीं बलि राजाकी राजधानी है जिन्हें ब्रह्माजी, विष्णुजी तथा शिवजी क्रमशः चार-चार माह रहकर दर्शन देते हैं। यहां किसी प्रकार की व्याधि नहीं । अनेकों प्रकार के सुख-भोग हैं और यह स्थान

१-सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० ६

मणियों से प्रकाशित है।

(६) वितल–सुतल से दस सहस्र योजन ऊपर वितल है। यहां पर भी दानव रहते हैं। मणियों का प्रकाश है। यहां 'हाटकेश्वर महादेवजी' भवानी सहित विराजमान हैं और हाटक नामक रस की नदी बहती है।

(७) अतल–यहां मय दानव के पुत्र 'बल' का शासन है। यह बड़ा चतुर और मायावी है। इसने यहां स्वर्ग से भी सुन्दर महल, वनोद्यान आदि बनाये हैं। यह हाटक नाम के रस को बनाकर दानवों को उसका पान कराके उन्हें शक्ति प्रदान करता है।

ये सात पताल, जिन्हें 'बिल स्वर्ग', 'भू विवर' 'नीचे के सात लोक' आदि कहते हैं, स्वर्ग से भी अधिक ऐश्वर्यपूर्ण हैं और ये एक–दूसरे से दस सहस्र योजन की ऊंचाई पर हैं। इस 'सात पाताल' के ऊपर सात लोक हैं।

सात लोक—

[१] भूलोक–यह अतल लोक से दस सहस्र योजन ऊपर है। चौदह लोकों (नीचे के सात लोक और उपरोक्त सात लोक) को 'विराट पुरुष' की संज्ञा दी गयी है। इस लोक को वैराट पुरुष का उदर कहा गया है, चूंकि उदर की तरह यह भी अन्य लोकों से सर्वाधिक उपादेय है। इसी लोक में तपस्या करने पर मोक्ष प्राप्त होता है। अन्य लोकों को यह महत्व प्राप्त नहीं।

मृत्यु-लोक कर्म-भूमि है, अन्य लोक भोग-भूमियां हैं। मृत्यु-लोक में मनुष्यों की ही प्रधानता है। इस सुरदुर्लभ मनुष्य तन से ही चार पदार्थ-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-प्राप्त होते हैं। प्रत्येक प्राणी अपने कर्मानुसार चौरासी लाख योनि को प्राप्त होता है। मनुष्य अपने भक्ति अथवा कर्मानुसार पाताल से परमधाम तक के लोकों का सुख दुःख प्राप्त करता है।

इस मृत्यु–लोक को पहली भूमिका कहते हैं। यहीं पर नित्य प्रलय होती है। इसके ऊपरी भाग, आकाश में मेघ मण्डल हैं। यहां पर वरुण, पुष्कर, काल, नील, आवर्त्त, द्रोण आदि अनेक नाम के मेघ रहते हैं। जोकि इन्द्र की आज्ञानुसार पृथ्वी पर जल तथा वायु प्रदान करते हैं।

इस लोक से एक लाख योजन ऊपर सूर्य तथा दो लाख योजन ऊपर चन्द्रमा

भ्रमण करते हैं[1]। उन्हीं से यह लोक प्रकाशित होता है।

[२] भुवर्लोक-भूलोक से सौ योजन ऊपर यह लोक है। इसे पितृ-लोक, द्युलोक, अन्तरिक्ष आदि भी कहते हैं। जहां तक पृथ्वी-लोक के प्राणी, पक्षी, विमान जा सकते हैं, वह मृत्यु-लोक माना जाता है। उसके आगे सूक्ष्म पवन है। यहाँ सूक्ष्म शरीर धारण करनेवाले भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, किन्नर, विद्याधर आदि रहते हैं। भूलोक का कोई भी प्राणी जो अपने प्राण-वायु को उतना ही सूक्ष्म बना ले, उस लोक में जा सकता है।

(३) स्वर्ग लोक—

यह भूलोक से चौरासी हजार योजन ऊपर है और सुमेरू पर्वत के शिखर पर शोभायमान है। स्वर्ग-लोक में इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि की आठ दिशाओं में आठ पुरियां हैं। इन्द्र यहाँ के प्रधान देव हैं जिन्हें आदिनारायण का दसवां प्रतिनिधि रूप कहा जाता है। देवांगनाओं सहित तैंतीस कोटि देवता भी यहीं रहते हैं। कल्पना-मात्र से इच्छा-पूर्ति करने वाली पारिजात, कल्पवृक्ष, कामधेनु आदि निधियाँ भी यहीं पर हैं। स्वर्ग के पास का अन्तरिक्ष भी स्वर्ग ही कहा जाता है। यहाँ पर शिशुमार नामक चक्र है जो ध्रुव पर्यन्त स्थित है (यह 'ध्रुव' स्वर्ग-लोक तथा महर्लोक के बीच में स्थित है। यह ध्रुव स्थान द्वितीय प्रलय, अर्थात् नैमित्तिक प्रलय में भी लय नहीं होता)। तारागण तथा ग्रहगण शिशुमार चक्र में भ्रमण करते हैं। यहा त्रिदेवा की तीन पुरियां हैं जहाँ वे अपनी विशेष सत्ता से रहते हैं। पर इनका (त्रिदेवा का) मूल निवासस्थान सत्लोक है। ब्रह्मा का एक दिन व्यतीत होनेपर नैमित्तिक प्रलय होती है। इस प्रलय में पाताल से स्वर्ग तक के दस लोक लय हो जाते हैं। यह मृत्यु-लोक से दूसरी भूमि का है। यह लोक (स्वर्ग लोक) स्वतः प्रकाशित है।

(४) महर्लोक- यहां यमराज अपने गणों सहित रहते हैं। जब ये पापियों को सजा देते हैं तो पापी इन्हें यमराज, और धर्मी-कर्मी पुरुष न्याय के समय इन्हें धर्मराज कहते हैं। पुण्य आत्माओं को लेने 'गण' आते हैं और पापियों को लेने 'दूत' आते हैं।

यमराज शिवजी के प्रतिनिधि रूप तथा आदिनारायण के नववें स्वरूप हैं[2]। यहां पाप-पुण्य का निर्णय करके जीव को नरक-स्वर्ग दिया जाता है।

यह लोक यद्यपि नैमित्तिक प्रलय से अप्रभावित रहता है, तथापि नीचे के लोकों

१-वैज्ञानिकों का मत ठीक इस के विपरीत है।

२-सृष्टि विज्ञान वर्णन पृ० १७

का लय हो जाने से इनका कार्य बन्द हो जाता है। यह लोक स्वतःप्रकाशित रहता है। इसका विस्तार एक करोड़ योजन है। इसे 'अकृत लोक' भी कहते हैं।

(५) जनलोक-महर्लोक से दो करोड़ योजन ऊपर यह लोक है। यहां ब्रह्माजी के चार मानसिक पुत्र[१]-सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार-रहते हैं। इनके अलावा भृगु, मरीचि, अंगिरा पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, क्रतु, दक्ष, नारद आदि निवास करते हैं। यह लोक भी स्वतः प्रकाशित है। इसे भी अकृत-लोक कहते हैं।

(६) तपलोक-यह लोक जनलोक से आठ करोड़ योजन ऊपर है। यह स्वतः प्रकाशित तथा अकृत (कर्मरहित) लोक है जहां इच्छा-मात्र से ही इच्छा-पूर्ति होती है। यह लोक तपस्वियों को प्राप्त होता है।

महर्लोक, तपलोक सत्यलोक-तीनों लोक तपस्वियों के लिए हैं। जो जितना विशिष्ट तपस्वी होता है, उसे उतना ही आगे का लोक प्राप्त होता है। कल्पान्त तक ही उन्हें यह सुख प्राप्त होता है। प्राकृत प्रलय के पश्चात् नयी सृष्टि में पुनः पाप-पुण्य की गणना होती है।

[७] सत्लोक-यह तपलोक से बारह करोड़ योजन ऊपर है। इसे ब्रह्म लोक भी कहते हैं। यहां त्रिदेवा की तीन पुरियां हैं। अपनी-अपनी पुरी के ये अध्यक्ष हैं। मध्य में बैकुण्ठ (विष्णु) पुरी है। इसके दाहिनी तरफ शिवजी की कैलाश पुरी, बायीं तरफ ब्रह्माजी की ब्रह्मपुरी है। यहां पर उनके विभिन्न भक्तों को सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य नामक चार प्रकार की मुक्तियां मिलती हैं।

यहां पर निःश्रेयस बन है जो पारिजातक, कल्प वृक्ष, मन्दार, अम्बुज, नाग, पुन्नग, उत्पल आदि वृक्षों से सुशोभित है।

यह लोक पूर्वोक्त समस्त लोकों का मूर्धन्य लोक है। यह स्वतः प्रकाशवान है। प्रकृति प्रलय में यह मिटकर महानारायण में लय हो जाता है। ये तीनों देव महाविष्णु के आठवें, सातवें और छठवें स्वरूप हैं।

इन चौदह लोकों को घेर कर जल, अग्नि आदि के आठ आवरण हैं जिन्हें 'अष्टावरण' कहा जाता है।

अष्टावरण-

अष्टावरण को कृष्ण को आठ प्रकृतियां अथवा अपारा प्रकृति का स्वरूप भी कहा

१-सृष्टि तीन प्रकार की है-महद, मानसी, मैथुनी, नारद, सनकादिक आदि मानसी सृष्टि के हैं।

जाता है[1]। इसमें विभिन्न आठ तत्वों के जो आठ आवरण (घेराव अथवा पर्दा) हैं, उनका विस्तार अपने पहले वाले आवरण से दस गुणा है[2] जिनका विवरण इस प्रकार है—

(१) पृथ्वी तत्व का आवरण- इसका विस्तार पचास करोड़ योजन है। यह आवरण चौदह लोकों से बिल्कुल सटा हुआ है। इसी प्रकार अन्य आवरण भी एक-दूसरे से सटे हुए हैं। पाताल में शेषशायी नारायण से लेकर सतलोक तक को इसने घेरा हुआ है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध- इसके ये पांच गुण हैं। इस आवरण का रंग पीला है और देवता ब्रह्मा हैं। यह आवरण स्वतः प्रकाशमान है।

(२) जलतत्व का आवरण- शब्द, स्पर्श, रूप, रस-ये चार इसके गुण हैं। इसका रंग सफेद है तथा यह विष्णुजी के आधिपत्य में है। इस आवरण का विस्तार पांच अरब योजन है।

(३) अग्नि तत्व का आवरण-शब्द, स्पर्श, रूप,-इसके तीन गुण हैं। इसका रंग लाल है और देवता शिवजी हैं। इसका विस्तार पचास अरब योजन है।

(४) पवन तत्व का आवरण-इसके शब्द और स्पर्श दो गुण हैं। यह हरे [हरित] रंग का आवरण है। ईश्वर देवता है और विस्तार पांच खरब योजन है।

(५) आकाश तत्व का आवरण-इसका एक मात्र गुण शब्द है। इसका आवरण श्याम रंग का है। सदाशिव देवता हैं और विस्तार पचास खरब योजन है।
ये पांचों आवरण अत्यधिक प्रकाशवाले तथा स्वतः प्रकाशित हैं।

(६) मन का आवरण [तामस अहंकार]- इसमें अनन्त रंग हैं। इसमें माया की अनेक लीलाएं हैं। बाहर से यद्यपि यह प्रकाशित[3] दिखायी देता है, पर इसके अन्दर घोर अंधकार है। इसका विस्तार पांच नील योजन है। इसके अज्ञान-रूप इच्छा-शक्ति, महाघोर तमरूप आदि अनेक नाम हैं। अनेक पुरुष इसी को ईश्वर कहते हैं।

(७) बुद्धि का आवरण [राजस अहंकार]-इसका विस्तार पचास नील योजन है। यह बुद्धि का भण्डार है। इसमें माया की अनेक लीलाएं हैं। बहुधा लोग इसी को

१-सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० २४

२-श्री वैराट निरूपण, पृ० ४-५

३-आकाश तत्व का आवरण स्वतः प्रकाशित है। संभवतः उससे सटे होने के कारण ही इसका बाह्य भाग प्रकाशित है।

ब्रह्म मानकर इसकी पूजा करते हैं।

[८] अहंकार का आवरण (सात्विक अहंकार)-इसका विस्तार पांच पद्म योजन है। इसी को सात्विक अहंकार भी कहते हैं। इसका रंग [वर्ण] धुएं जैसा है। यह शुद्ध सत्व-गुण सम्पन्न है।

इसके अन्तर्गत अनेक सूक्ष्म दृश्य प्रतीत होते हैं जिनका साक्षात्कार योगी पुरुषों को होता है। कुछ इसी को ईश्वर मानकर इसकी पूजा करते हैं।

अष्टावरण सहित इन चौदह लोकों को आदिनारायण [सहित] के स्थूल शरीर का बिन्दु स्वभाव कहते हैं। इस अष्टावरण के ऊपर ज्योतिस्वरूप है।

ज्योति-स्वरूप

ज्योतिस्वरूपको 'ॐ' भी कहते हैं। इसके पांच मुख, दश भुजा तथा पन्द्रह नेत्र हैं। यह परम प्रकाश-स्वरूप है। यह ब्रह्मादि देवों को अलभ्य है। यह विराट का मूल है तथा जड़ चेतन की गांठ [मूल स्थान और शासक] है। यह अव्याकृत के स्थूल स्थान में स्थित प्रणव का प्रतिबिंब है। इसके साथ रहनेवाली 'गायत्री' भी 'रोधनी शक्ति' का प्रतिबिंब मात्र है। गायत्री के अतिरिक्त यहां अन्य पांच मुख्य शक्तियां अपनी अनेक शक्तियों सहित निवास करती हैं जिनके नाम हैं-इच्छिदोग, वमोचक, ऊर्ध्वगा, मध्यमा, तथा परमा। सत्, रज और तम, ये तीनों गुण इसी ज्योतिस्वरूप से उत्पन्न होते हैं। अहंकार, पंचमुखी शक्ति, शब्द ब्रह्म, प्रणवाक्षर शिव, मृत्युंजय, ज्योतिस्वरूप, ओमित्याक्षर, व्यापक ब्रह्म, जीवस्वरूप, महापुरुष, घटघट- वासी आदि इसके नाम हैं।

यद्यपि प्रणव-ब्रह्म से और रोधनी-शक्ति से जीवों की उत्पत्ति हुई है, परन्तु प्रत्येक ब्रह्मांड के लिए जितने जीवों को भेजा जाता है, वे सब अपने-अपने ब्रह्मांड के लिए अपने ब्रह्मांड के साथ संगठित इस ज्योतिस्वरूप ब्रह्म के द्वारा आते हैं। मूल ज्योतिस्वरूप [प्रणव ब्रह्म[से भेद दिखाने के लिए इसे 'नाद ज्योतिस्वरूप' कहते हैं।

इस ॐ के अकार से विष्णु, उकार से ब्रह्मा, मकार से शिव, बिन्दु से अष्टावरणयुक्त विराट, नाद [ध्वनि] से प्रणवाक्षर अर्थात् 'नाद स्वभाव ज्योतिस्वरूप' इस प्रकार ये पांचों प्रणव के स्वरूप में ही माने गये हैं।

जीवों में पाई जानेवाली चेतन शक्ति पर इस का शासन होने से इसे ईश्वर भी कहते हैं। यह आदिनारायण का पांचवां स्वरूप है। इसकी जाग्रतावस्था है।

गायत्री :

इसका स्थान ज्योतिस्वरूप के निर्मल चैतन्य में है। चारों वेद इससे उत्पन्न हुए हैं। यह निरन्तर वेदों का गायन करती रहती है। इसके साथ और भी हजारों शक्तियां हैं। इसका वाहन मोर है। इसकी समस्त सामग्री श्वेत वर्ण की है। गायत्री के अंतःकरण में सम्पूर्ण व्रज की तथा रास की लीला का प्रतिभास है। यह आदिनारायण का चौथा स्वरूप है। इसके ऊपर 'महतत्व' [मोह तत्व] है।

महतत्व : आदिनारायण का सूक्ष्म

असत्य, जड़, दुःख-ये तीन इसके स्वभाव हैं। यह अज्ञान का मूल कारण है। इसलिए इसकी अवस्था 'अंधकार नींद स्वरूप स्वप्नावस्था' कहलाती है। वेदान्तियों का यही ब्रह्म है। ज्ञान-शक्ति गायत्री, चार वेद तथा दश महाविद्या-काली, तारा, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, भैरवी, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी, षोड़शी, कमला आदि इसी के अंगभूत हैं। यहां सुमङ्गला शक्ति विद्या, ब्रह्मविद्या आदि चौबीस हजार शक्तियों सहित रहती है। यहां व्रजलीला तथा रासलीला प्रतिभासित है। अव्याकृत के सूक्ष्म स्थान में स्थित काल निरंजन के तीनों रूप-अधि भूत, अध्यात्म तथा अधिदैव- यहां प्रतिबिंबित होते हैं।

निरगुण, निराकार, शून्य, निरंजन, महानाद आदि इसी के नाम हैं।

प्राकृत प्रलय में चौदह लोक से महतत्व तक लय हो जाते हैं और महानारायण में लीन होते हैं। महतत्व के ऊपर सात शून्य हैं जो आदिनारायण के कारण स्थान में स्थित हैं।

सात शून्य-आदिनारायण का कारण-स्वरूप

आदिनारायण का कारण, इच्छा-शक्ति के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इन सात शून्यों से आदिनारायण के सात स्वरूपों-इन्द्र, धर्मराज, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ज्योतिस्वरूप, गायत्री-की उत्पत्ति होती है। इन शून्यों का विस्तार एक खरब योजन है इनसे अनन्त राग, तानें रंगों की तरगें उठती हैं। अजपा जाप वालों का यहीं स्थान है। यहां भी व्रजरास का प्रतिबिंब पड़ता है।

इसके इह 'इच्छा-रूप माया' तथा अनिह 'अनिच्छा ब्रह्म' दो रूप हैं। इसीलिए इसकी अवस्था सुषुप्ति (आधी जाग्रत-ब्रह्म तथा आधी नींद-इह माया) कही गयी है।

इसका प्रकृति, पुरुष, ईश्वर, माया ब्रह्म, इच्छा-शक्ति आदि नामों से उल्लेख मिलता है।

आदिनारायण का महाकारण

इसके महाकारण में अव्याकृत के महाकारण का प्रतिबिब है। महाकारण मण्डल यद्यपि एक ही है, तथापि लीला-भेद से इसके तीन भेद हैं।

शुद्ध सूक्ष्म-इसमें चार द्वीपों-नित्य वैकुण्ठ, सतलोक, श्वेत द्वीप और पुष्कर द्वीप-के प्रतिबिंब हैं। इसका मूल अव्याकृत के महाकारण में है। प्रत्येक के सौ-सौ

करोड़ हंस-रूप सखियां सत्पुरुष के साथ आनन्द-विहार करती हैं। यह सत् पुरुष 'चिद्रूपाक्षर सबलिक ब्रह्म' का बाल-स्वभाव है। इसको 'सत्पुरुष' तथा इसकी लीला को 'पुरुष लीला' कहते हैं। इसका स्थान अव्याकृत के महाकारण के शुद्ध सूक्ष्म में पड़ता है। इसी का प्रतिबिंब 'आदिनारायण' के महाकारण के 'शुद्ध सूक्ष्म' में पड़ता है। धर्मदास, कबीर तथा सत्पुरुष-ये 'महाविष्णु' के तीन अन्य स्वरूप हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर आदिनारायण के दस रूप हुए[1]। इन्हें ही 'क्षरपुरुष' के दस प्राण (५ ज्ञानेन्द्रियां तथा ५ कर्मेंद्रियां) कहते हैं। इन्हीं के द्वारा 'क्षर-पुरुष' का सारा व्यापार चलता है। शुद्ध सूक्ष्म में व्रजलीला के प्रतिभास का प्रतिभास है तथा निर्मल चेतन में रास का प्रतिभास है। अर्थात् अव्याकृत के महाकारण में होनेवाली पुरुष-लीला तथा अन्य दो प्रतिबिंबित लीलाओं, नित्य वृन्दावन तथा रास, की लीलाओं का इसमें प्रतिभास है।

आदिनारायण के इस महाकारण रूप के महाविष्णु, महानारायण, आदि-पुरुष, अव्यक्त पुरुष, ईश्वर, सबलिक, आनन्द ब्रह्म आदि नाम हैं। इसी आदि नारायण से युगारम्भ में प्रभव होता है और युगों का क्षय होने पर महाप्रलय में इसी में समा जाते हैं।

इस उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि जिस तरह 'बेहद भूमि' में अव्याकृत ब्रह्म आदि का सूक्ष्म, स्थूल, कारण, महाकारण स्थान हैं, उसी तरह महाविष्णु के भी स्थूल सूक्ष्म आदि स्थान हैं जहाँ महतत्व, ज्योतिस्वरूप आदि की लीला है :
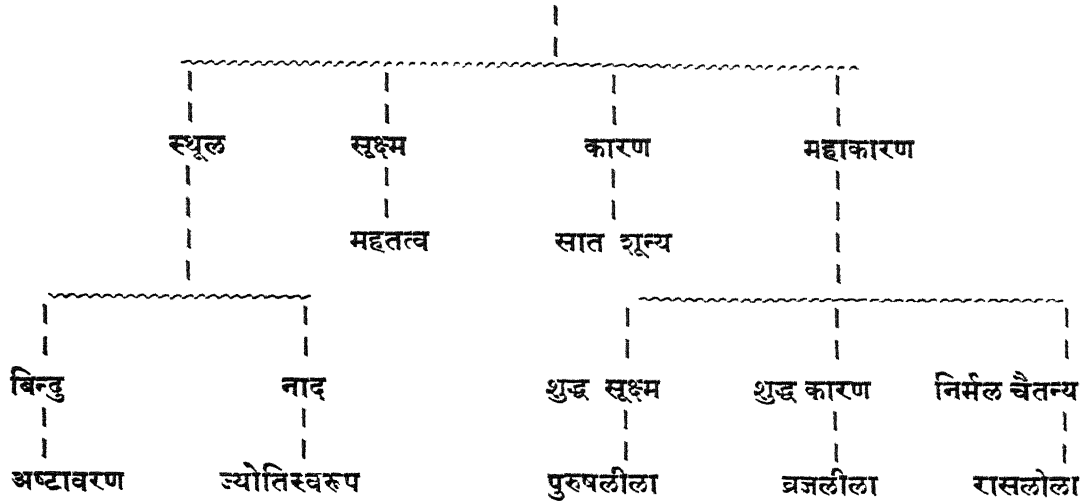
पाताल से लेकर महाविष्णु तक एक आवरण है जिसे महाशून्य समष्टि कहते हैं।

१-सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० ३६

महाशून्य समष्टि

महाविष्णु से परे दसों दिशाओं को घेरकर शून्यों की कारण-समष्टि (उत्पत्ति-लय) है, अतः इसे महाशून्य कहते हैं। अनेक ब्रह्मांडों के असंख्य व्यापक आकाशों का लय इसमें होता है। इसलिए इसे 'परमाकाश' तथा 'शून्य समष्टि' भी कहते हैं। इसके अलावा 'क्षर पुरुष', 'मोहनिद्रा', 'निराकार', 'निर्गुण' आदि इसी के नाम हैं[1]। अगम-अलख, महाकाल और अनन्त ब्रह्मांडों का यही मूल है। मनुष्यों के लिए विराट पुरुष, विराट पुरुष के लिए आदिनारायण तथा आदिनारायण के लिए इस महाशून्य को पाना असंभव है। चौदह लोक (विराट) सहित अष्टावरण, ज्योतिस्वरूप, महतत्व, इच्छ-शक्ति तथा आदिनारायणादि ब्रह्मांडों की यह महाक्षर समष्टि (लय) है। महाप्रलय में इसका भी लय हो जाता है।

यहाँ से 'हद भूमि का आरंभ तथा 'बेहद भूमि' का अन्त होता है। यह स्थान प्रणव ब्रह्म के नीचे है।

इस विश्व के निर्माण तथा लय के बीच असंख्य युग व्यतीत हो जाते हैं। इस असंख्य युगी ब्रह्मांड को ब्रह्मसृष्टि ने एक पलक [पलक झपकने तक का समय] से भी कम समय में देख लिया है। विश्व के समय के अनुसार परमधाम का एक पल इतना बड़ा होता है कि उस समय में अगणित ब्रह्मांडों की उत्पत्ति तथा नाश हो जाता है।

'श्रीराजजी' को दो शब्द क्रमशः कहने हैं-कुन (पैदा हो) तथा फय [नाश हो] उनके कुन कहते ही अक्षर पर नींद का आवरण आया तथा इस विश्व का निर्माण हो गया। ब्रह्म-प्रियाएं, जो इस विश्व को देखने के लिए अत्यधिक उत्सुक हैं, एकाग्रचित्त होकर इसे देखने लगीं। 'कुन' कहने के समय में ही उन्होंने इस विश्व को देख लिया है। प्राणनाथजी के मतानुसार यदि किसी वृक्ष को निशाना बनाकर तीर फेंका जाता है तो एक पत्ते को बेध कर दूसरे पत्ते तक पहुँचने में जितना समय लगता है, उतना समय भी इस विश्व को देखने में ब्रह्मात्माओं को नहीं लगा[2]। सन्ध्या के समय, दो

१-मोह, अज्ञान, भरमना, कर्म, काल, और शून्य।
ये नाम सारे नींद के, निराकार निरगुण ॥ -'कीर्तन'

२-एक तीर खेंच के छोडिए, तिन बेधाए कई पात।
सो पात सब एक चोटें, पाव पल में बेधात ॥२९॥ कलस ग्रन्थ प्र० २४

बड़ी दिन जब शेष था, सखियों की सुरताएं इस विश्व में उतरो हैं। यह ठीक वही समय है, एक क्षण भी अभी व्यतीत नहीं हुआ[1]। इस शून्य समय में ब्रह्म-सृष्टियों ने तीन ब्रह्मांडों-ब्रज, रास और जागनी-के क्रिया-कलापों को देख लिया है। यह ब्रह्मांड, जिसे 'ब्रह्मसृष्टि' ने देखा है, 'बैराट पुरुष' के बिभिन्न अंगों में बसा हुआ है।

वैराट पुरुष [भगवान्] का शरीर भी अपनी तरह पंचीकृत और स्थूल है। 'श्रीमद् भागवत' में कहा गया है कि 'वैराट पुरुष' की उत्पत्ति 'अहंकार' से हुई है। उस अहंकार से सत्व, रज और तमोगुण उत्पन्न हुए हैं। तीन गुण से चौबीस 'प्रकृति' उत्पन्न हुई। तमोगुण से-शब्द स्पर्श, रूप, रस गन्ध,-ये पांच तन्मात्रा बनी। उन पांच तन्मात्राओं के शब्द से आकाश, स्पर्श से वायु, रूप से तेज, रस से जल और गन्ध से पृथ्वी-ये पांच महाभूत उत्पन्न हुए [आकाश में सिर्फ एक ही तन्मात्रा-शब्द-है। वायु में शब्द और स्पर्श, दो तन्मात्राएं हैं। तेज [अग्नि] में तीन तन्मात्राएं-शब्द, स्पर्श और रूप हैं। जल में शब्द, स्पर्श, रूप, व रस-चार तन्मात्राएं हैं और पृथ्वी में पांच-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध-तन्मात्राएं हैं)। अर्थात्, तमोगुण से-पांच तन्मात्राएं और पांच तत्व-दस प्रकृति हुई।

रजोगुण से दस इंद्रियां-त्वचा, चक्षु, घ्राण, श्रोत्र, रसना-ये पांच ज्ञानेन्द्रियां और जिह्वा, हाथ, पैर, उपस्थ और गुदा ये पांच कर्मेन्द्रियां-हुई।

सत्व-गुण से मन, बुद्धि, चित् और अहंकार-ये चार अन्तःकरण उत्पन्न हुए। इस तरह तीन गुण से चौबीस प्रकृति बनी और इन चौबीस प्रकृतियों से वैराट-पुरुष। इस वैराट पुरुष के विभिन्न अंगों में विभिन्न चौबीस देवता निवास करते हैं—

> मुख में अग्नि, आंख में सूर्य कान में दिक्पाल, नासिका में अश्विनीकुमार, जिह्वा में वरुण, त्वचा में औषधियां, हाथ में इन्द्र, चरण में विष्णु, उपस्थ में जल, गुदा में मृत्यु, रोमावली में वनस्पति, नाड़ी में नदी, मन में चन्द्रमा, बुद्धि में ब्रह्मा, अहंकार में रुद्र, चित्त में क्षेत्रज्ञ, दांत में यमराज, हास्य में माया, पीठ में अधर्म, हृदय में धर्म, उदर में जठराग्नि, अस्थि-समूह में पर्वत, कुक्षि में सात समुद्र और कमर में लोकालोक पर्वत है[2]।

विराट पुरुष के स्थूल शरीर में सातवें पाताल में 'शेषशायी नारायण' निवास

१-'दिन दो घडी पिछला जब, सोई सायत है अब।'

२-वर्तमान दीपक, किरण, ३५

करते हैं। ब्रह्माजी के अंगूठे से नारदजी उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी के जन्मांग से स्वायंभू और 'डाबा' [कमर] से शतरूपा नाम की स्त्री पैदा हुई।

विराट स्वरूप के चार अन्तःकरण-मनस्वरूप नारद, बुद्धिरूप ब्रह्मा, चितस्वरूप विष्णु, अहंकार-स्वरूप रुद्र, हैं। इस तरह विराट स्वरूप का निर्माण हुआ। जिस चीज का निर्माण होता है, उसका नाश भी अवश्यंभावी है। अतएव वैराट पुरुष (संसार) मिथ्या है। 'इस वैराट पुरुष की चार भुजाएं और दो पैर हैं। इसके दोनों पैर 'शेष' [नाग] के सिर पर रखे हैं। इसके शरीर में चौदह लोक हैं। 'कमर' में मृत्यु-लोक है। कमर से नीचे 'सात' पाताल है और ऊपरी भाग के सात 'पातालों' अतल, वितल, सुतल और तलातल-में राजा बलि राज्य करते हैं। यहां इसके दास [दानव] रहते हैं। नीचे के तीन पातालों-रसातल, महातल और पाताल-में नाग और नागिनें रहती हैं।

वैराट पुरुष के चारण-तल में पाताल, चरण फलक में तलातल, घुटी (पैर और पिंडली का जोड़) में महातल, पिंडली में रसातल, घुटनों में सुतल, जंघा में वितल, जंघा और कटि-प्रदेश के बीच अतल है[1]।

वैराट के कटि प्रदेश में भूलोक, नाभि में भवर लोक, हृदय में स्वर्गलोक, छाती में महरलोक, कण्ठ में जनलोक, मुख में तपलोक और ब्रह्म रंध्र में सत्य लोक है।

भूलोक पचास कोटि योजन विस्तार वाली यह भूमि है। इस वैराट पुरुष के ऊपर आठ आवरण हैं जिसका वर्णन किया जा चुका है।

उक्त वैराट-पुरुष को 'क्षर' भी कहते हैं। क्षर का अर्थ है नाशवान्। अतएव उसके अन्तर्गत रहनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नारायण सहित यह दृष्टिगोचर होनेवाला समस्त ब्रह्मांड भी नश्वर हुआ।

१-'बंगला मन्दिर' की दीवार पर वैराट पुरुष का जो चित्र बना है उसके अनुसार दाहिनी जाघ में अतल और बाईं जंघा में वितल है तथा चरणफलक पर तलातल है।

भागवत के अनुसार —

भूर्लोक कल्पित पद्भ्या भुवर्लोकोऽस्य नाभित.।
हृदा स्वलोक उरसा महर्लोको महात्मन.॥
ग्रीवायां जनलोकोऽस्य तपोलोकस्तनद्वयात्
मूर्द्धाभि सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातन (भागवत–२–५–३८+३९)

मृत्यु-लोक

विश्व रचना का कारण :

एक दिन पूर्णब्रह्म परमात्मा अपने आनन्द अंश सखियों के साथ कुंजवन के रेतीले मैदान में खेल रहे थे, दौड़ते हुए श्री राजजी घुटनों तक बालू में धंस गये। सखियां खेल (मजाक) में एक दूसरी को उनपर धक्का देकर गिराने लगी। देखते-ही-देखते बारह हजार सखियों का ढेर उनपर आ पड़ा और श्रीराजजी नीचे दब गये। सखियों द्वारा किये गये इस व्यवहार का उन्हें बहुत बुरा लगा। इसी बात को लेकर एक दिन दोनों, श्रीराजजी तथा सखियों में, 'इश्क-रब्द' [प्रेम-संवाद] हुआ, अर्थात् किसका प्रेम अधिक है-सखियों का श्रीराजजी के प्रति या श्रीराजजी का सखियों के प्रति इस बात पर बहुत वाद-विवाद हुआ[1]। पूर्णब्रह्म ने सोचा, 'सखियों को मेरे बड़प्पन व प्रेम का तभी ज्ञान होगा, जब इन्हें वियोगाग्नि में जलना पड़ेगा।

परमात्मा के सत् अंग अक्षर प्रतिदिन पूर्णब्रह्म के दर्शनों के लिए आते हैं। वे रंगमहल में प्रवेश नहीं कर सकते, बाहर ही से दर्शन करके लौट जाते हैं। उनके मन में रंगमहल तथा उसमें होनेवाली लीलाओं को देखने की प्रबल इच्छा है। परमात्मा उसकी इच्छापूर्ण करना चाहते हैं।

प्रेम संवाद के बाद जब अक्षर भगवान नियमानुसार दर्शन के लिए आते हैं तो श्रीराजजी द्वारा प्रेरित होकर सखियां उसे देखती हैं। वे उसे देखकर चकित रह गयीं, क्योंकि वे तो यह समझती थीं कि 'श्रीराजजी के बगैर और पुरुष है ही नहीं। पूछने पर 'श्रीराजजी' ने बताया कि यह मेरा सत् अंग है, इसका कार्य विश्व रचना है।

सखियों ने व्यंग्य किया, साधारण बातें भी हमसे छिपाकर रखते हैं: फिर कहते हैं हमारा 'प्रेम' अधिक है। आज तक आपने विश्व और अपने सत् अंग से भी हमें परिचित नहीं कराया।

सच्चिदानन्द ने कहा, विश्व से अपरिचित रखने में इश्क की कमी नहीं, वरन् अधिकता का प्रदर्शन होता है। विश्व में अनेक प्रकार के दुःख व कष्ट हैं, तुम्हारे लिए

१-खिलवत ग्रन्थ, 'इश्क रब्द' का प्रकरण, तथा परिक्रमा ग्रन्थ

एक दूजी को ठेले तीसरी हडसेले, यूं पड़िया तीना गिर

कई और आवें गिरे ऊपरा ऊपरे, उठ न सके क्योए कर ॥ प्र० ४० ॥

यह नयी वस्तु होगी ! तुम इसे देखना चाहोगी, पर मैं तुम्हें इस दुखमयी विश्व में भेजना नहीं चाहता, इसलिए इस के बारे में तुम्हें नहीं बताया ।

दुःख शब्द सखियों के लिए अभिनव था । दुःख क्या है, इसे जानने की उनके मन में प्रबल इच्छा हुई । वे बार-बार श्रीराजजी से इसे दिखाने का अनुरोध करने लगीं । अनेकों बार समझाने पर भी जब वे टस-से-मस न हुई, तो पूर्णब्रह्म को उनकी इच्छा-पूर्ति के लिए बाध्य होना पड़ा ।

अक्षर की इच्छा-पूर्ति के लिए यद्यपि उन्हें सखियों सहित इस संसार में अवतरित होना ही था, पर स्वयं निर्दोषी बनने के लिए [जिससे सखियां यह न कहें कि आपने हमें दुखमयी संसार में भेजा], मात्र दिखावे के लिए सखियों को यह दुख-रूपी खेल देखने के लिए बार-बार [तीन बार] मना किया[1] । और कहा, तुम्हें वहां बड़े कष्ट उठाने पड़ेंगे, मुझे भूल जाओगी, स्वयं को भी भूल जाओगी, एक-दूसरे को न पहिचान सकोगी, परमधाम की तरह इकट्ठी न रह सकोगी आदि। सखियों ने उत्तर दिया, 'ऐसा कभी नहीं हो सकता।' वे ज्यों-ज्यों मना करते, त्यों-त्यों सखियां खेल देखने के लिए अधिक हठ करने लगीं और अन्त में पूर्णब्रह्म ने इन दोनों-अक्षरब्रह्म और सखियों की इच्छा-पूर्ति के लिए तथा सखियों को अपनी बुजुर्गी दिखाने के लिए इस विश्व में भेजा ।

इसके लिए उन्होंने अक्षर पर 'नींद का आवरण' डाला । अक्षर की स्वप्नावस्था में मन ने विलास किया, जिससे हदभूमि तथा चौदह लोक आदि का निर्माण हुआ । 'भूलोक' में रहने वाले धार्मिक वृत्ति वाले मनुष्यों की आत्मा में ब्रह्म-सृष्टि की सुरताओं ने प्रवेश कर यह संसार रूपी खेल छल प्रपंच से पूर्ण संसार, पापों का नाश करने के लिए होने वाले अवतार, प्रलय, जीवों की मुक्ति आदि देखा ।

इस अध्याय में 'भूलोक' शीर्षक के अंतर्गत इसी ब्रह्मांड, सृष्टि, अवतार, प्रलय मोक्ष आदि का वर्णन किया गया है ।

भूलोक :

इसे मृत्यु-लोक भी कहते हैं । यह देवयुग में एक ही शासन में था । परन्तु देवयुग की अप्रतिहत शक्ति और अपूर्व सामर्थ्य मानवयुग में यथावत् न रह सकी

१-धनी मने किया हमको तीन बेर, तब हम मांग्या फेर फेर
धनी कह्या घर की ना रहसी सुध, भूलसी आप ना रेहसी ए बुध प्रकास- 'प्रगटवाणी'

जिससे महाराजा प्रियवर्त ने इसे सात द्वीपों में विभक्त कर दिया।

प्रत्येक द्वीप को घेर कर एक समुद्र है[१]। इस प्रकार सात द्वीप तथा सात समुद्र इस मृत्युलोक में हैं। मध्यवाले द्वीप का नाम 'जंबू द्वीप' है। इसको घेरकर जो अन्य छः द्वीप तथा सात समुद्र हैं, एक-दूसरे से द्विगुणित होते चले गये हैं और ब्रह्मांड के अण्डकटाह[२] की ओर चक्रावृत्त रूप से ऊपर को बढ़ते हुए स्वर्ग के साथ जा मिले हैं[३]। इन सात द्वीपों और सात समुद्रों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं[४] —

सात द्वीप	सात समुद्र
जम्बू द्वीप (मृत्युलोक के मध्य में)	लवण (खारा) समुद्र
प्लक्ष द्वीप	इक्षु समुद्र
शाल्मली द्वीप	सुरा समुद्र
कुश द्वीप	घृत समुद्र
क्रौंच द्वीप	दधि समुद्र
शाक द्वीप	क्षीर समुद्र
पुष्कर द्वीप	मीठा (जल का) समुद्र

जम्बू द्वीप :

यह द्वीप मृत्युलोक के मध्य में है। इसका विस्तार एक लाख योजन है। इस द्वीप के इलाव्रत, कुरु, भद्राश्व, केतुमाल, किंपुरुष, हरिवर्ष, हिरण्य, रम्यक और भरत-खण्ड-ये नौ खण्ड हैं[५]। जम्बू द्वीप के मध्य में मेरु पर्वत है।[६]

१—संभवतः चारों ओर पानी [समुद्र] से घिरे होने के कारण ही इन सात खण्डों को सात द्वीप कहा गया है।

२—अण्डे के आकार में होने के कारण इस ब्रह्मांड को अण्डकटाह कहते हैं।

३—सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० ९ विष्णु पुराण अंश २—अ०—२:—

४—जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलिश्चापरो द्विज।
कुश क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः॥
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त-सप्तभिरावृताः।
लवणेक्षु सुरासर्पिर्दधि-दुग्धजलैः समम्॥६॥ विराट पट दर्शन, पृ० ६९

५—सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० १० ६—वैराट पट दर्शन, पृ० ७०—श्लोक—वि० पु० २—२—७

मेरु पर्वत :

इसका सोलह सहस्र योजन भाग पृथ्वी के अन्दर और चौरासी हजार योजन ऊपर है[1]। यह पांच धातुओं से निर्मित है। नीचे का भाग पत्थर का है। उसके ऊपर वाला भाग लोहे का है, उसके ऊपर ताम्बे का, तांबे के ऊपरवाला भाग चांदी का है और चांदी के ऊपरवाला भाग सोने का है। मेरु पर्वत के आठ शिखर सोने के हैं। सूर्यदेव के रथ की धुरी मेरु पर्वत की चोटी पर है। यहीं से वह ब्रह्मांड की परिक्रमा करता है[2]।

मेरु पर्वत के नीचे बीस पर्वत हैं। इस मेरु पर्वत के पास दस-दस हजार योजन ऊंचे चार पर्वत हैं। इन चारों पर जामुन, बरगद, कदम्ब और आम का एक-एक वृक्ष है। इनमें से प्रत्येक की ऊंचाई ग्यारह सौ योजन है। बरगद के नीचे पांच चहबचे (हौज) हैं, इसमें स्नान करने वाले का शरीर बज्र के समान मजबूत व बलवान हो जाता है और उसके शरीर से ऐसी सुगन्ध निकलती है जिसका प्रभाव पांच सौ कोस तक रहता है अर्थात् पांच सौ कोस की दूरी से ही उसे पहिचाना जा सकता है।

मेरु पर्वत के चारों ओर 'अष्टकुन' नामक चार पर्वत हैं। इसके दक्षिण में कामिनो (इलावृत्त) खण्ड है, यहां शिव-पार्वती पांच सौ करोड़ शक्ति सहित[3] निवास करते हैं।

मेरू पर्वत की पूर्व दिशा में भद्राक्ष [भद्राश्व] खण्ड है। वहां हयग्रीव-अवतार राज्य करता है। इस हयग्रीव की नासिका से 'स्वर-ज्ञान' का उदय हुआ है। इसके पास ही 'कुरु' खण्ड है। इसके नीचे ,किंपुरुष' खण्ड है जहां हनुमानजी राज्य करते हैं। हरिवर्ष खण्ड में नृसिंह अवतार का राज्य है। भरत खण्ड में 'नर-नारायण' के अवतार राज्य करते हैं।

मेरु की उत्तर दिशा में तीन खण्ड हैं। 'रम्यक खण्ड' में 'कामदेव' का राज्य है। हरिनाम खण्ड [केतुमाल खण्ड] में रामावतार राज्य करते हैं। हिरण्य खण्ड में 'कच्छप अवतार' का राज्य है। इन तीनों खण्डों में रहनेवाले मनुष्यों की आयु दस हजार वर्ष है।

१-वही, पृ० ९

२-वर्तमान दीपक, कि० ३५, पृ० २५५ ३-वही पृ० २५६

जम्बू द्वीप के चारों ओर लवण का समुद्र है। इसका जल खारा है। शेष द्वीपों के बीच में इक्षु, सुरा [मदिरा], घृत, दही, दूध और मीठे जल के समुद्र हैं। इसके बाद [परे] साढ़े बारह करोड़ योजन विस्तार वाला लोकालोक पर्वत है। सूर्य का रथ एक घड़ी लोकालोक पर्वत पर रहता है, दूसरी घड़ी मेरु पर्वत पर।

सूर्यनारायण का सात मुखवाला रथ 'अश्व' द्वारा खींचा जाता है। सूर्य का रथ पृथ्वी से एक लाख योजन ऊंचा है, उससे एक लाख योजन ऊंचा चन्द्रमा, चन्द्रमा से एक लाख योजन ऊंचा बुद्धग्रह, और इससे लाख योजन ऊंचा बृहस्पति, बृहस्पति से लाख योजन ऊंचा शुक्र, शुक्र से सात लाख योजन ऊंचा शनि और इससे पन्द्रह लाख योजन ऊंचा राहु और केतु है। सूर्य का प्रकाश चौरासी करोड़ योजन तक पड़ता है[1]।

सृष्टि :

अक्षर की जब-जब इच्छा होती है तब-तब संसार की उत्पत्ति होती है। उसकी इस इच्छा से [इस इच्छा के कारण से] शिव-प्रकृति, (चिदानन्द लहरी) शिव प्रकृति से आदि प्रकृति, [सुमङ्गला] आदि प्रकृति से महतत्व, महतत्व से अहंकार, अहंकार से पांच तन्मात्रा और इससे आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से प्रजा उत्पन्न हुई[2]।

मनुष्य (प्रजा) का शरीर 'पंच महाभूतों' से बना है। ये पंच महाभूत [तत्व] हैं–आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी। मनुष्य की हड्डियां, मांस, त्वचा और रोम आदि का निर्माण 'पृथ्वी तत्व' द्वारा होता है। 'जल तत्व' से पसीना और खून आदि का निर्माण होता है। भूख, प्यास, आलस्य, नींद आदि 'तेज तत्व' की देन हैं। मनुष्य का बैठना, उठना, चलना और दौड़ना 'वायु तत्व' की उपस्थिति के कारण संभव है और 'आकाश तत्व' से काम-क्रोध, शोक, मोह, भय आदि पैदा होते हैं[3] —

१–वर्तमान दीपक, कि० ३५

२–अथ श्रुतिः–एकोऽहं बहुस्यामिति। शिवात्मनः प्रकृति प्रकृतेर्महत्तत्वम् महत्तत्वादहंकारः।
अहंकारात्पंचतन्मात्राः। तन्मात्रा त आकाशः। आकाशाद्वायुः। वायुतोऽग्निः।
अग्नित आपः। अद्भ्यः पृथ्वी। पृथ्व्या अन्नम्। अन्नाद्वीर्यम्। वीर्यात्प्रजा।
इति श्रुतेः। –वर्तमान दीपक, कि० ३५

३–काम क्रोध भय शोक मोह ए आकाश तन के भाग
इनसे न्यारे मानियो, नित्य निहार तूं जाग

पंच महाभूत (तत्व)	तत्वों के कार्य				
आकाश — —	काम	क्रोध	शोक	मोह	भय
वायु — —	चलन	बोलन	धावन	प्रसारण	आकुंचन
तेज — —	क्षुधा	तृषा	आलस्य	निद्रा	कान्ति
जल — —	शुक्र [वीर्य]	शोणित (खून)	लार (कफ)	मूत्र	प्रस्वेद
पृथ्वी — —	अस्थि	मांस	त्वचा	रोम	नाड़ी

व्यान :

व्यान नाम का वायु सर्व अंगों में रहता है। समान-नाम का वायु नाभि प्रदेश में रहता है। नाभि स्थान पर 'जवा' के बराबर जठराग्नि है, यही भोजन को पचाती है। पाचन-क्रिया से निकलनेवाला रस नाभि में आता है, और व्यर्थ का भाग 'मल' द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है। नाभि स्थल में आनेवाला रस समान वायु द्वारा शरीर की मुख्य नौ नाड़ियों में आता है। शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियां हैं। नौ नाड़ियों में आनेवाला रस, इन बहत्तर हजार नाड़ियों द्वारा शरीर को तथा शरीर की साढ़े तीन करोड़ रोमावली को पुष्ट करता है।

बोलन, चलन, धावन, प्रसारण और संकोच
इनसे न्यारे जानियो, ए वायु तत्व से होत
नींद जम्हाई, आलस, जानो भूख और प्यास
अगिन की प्रकृति कही, नित्य निहार तूं जाग
रक्त पित्त कफ ये कहे, बिन्द पसेवा दोए
पानी की प्रकृति कही, नित्य वर्तत हो सोए,
चाम हाड़ नाड़ी कही, सम जान और मास
पृथ्वी की प्रकृति कही, अन्त सबन को नाश

पंच प्राण मनोबुद्धि–दशेन्द्रिय समन्वितम् ।
अपंचीकृत भूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम् ॥
अनाद्य विद्याऽनिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते ।
उपाधित्रितयादन्य–मात्मानमवधारयेत् ॥
स्त्रीपुंमलातुपंगात्मा देहो नास्य विजायते ।
किन्तु निर्दोष चैतन्यं भाति तुर्याख्यका तनुः[१] ॥

कुछ लोग इस सूक्ष्म शरीर को ही आत्मा मान लेते हैं। ऐसा करना अक्षम्य भूल है, क्योंकि स्थूल हो या सूक्ष्म, है तो वह शरीर ही और शरीर को आत्मा मानने से 'करोड़ों गोवध' के समान पाप लगता है।

देहात्मबुद्धिजं पापं तद्धि गोवधकोटिभिः ।
आत्म बुद्धिसमं पुण्यं, न भूतो न भविष्यति ॥

क्योंकि शरीर (चाहे वह कितने भी तत्वों का हो) विकारों से व्याप्त है और आत्मा पवित्र। शरीर निम्न छः विकारों से युक्त होता है– (१) जायते [जन्म], (२) अस्ति [अस्तित्व में आना], (३) विपरिणमते [बदलता है], (४) वर्धते [वृद्धि पाता है], (५)-अपक्षीयते [क्रमशः क्षीण होता है], और (६) विनश्यति [विनष्ट होता है]।

शरीर कर्ता है तो आत्मा दृष्टा। जिस तरह घड़े को देखनेवाला घड़े से भिन्न होता है और वह स्वयं घड़ा नहीं बन सकता, उसी तरह शरीर के कार्य कलापों को देखने वाली आत्मा शरीर नहीं हो सकती–

–उक्तं च रामपंचीकरणे–

घटद्रष्टा, घटाद्भिन्नो सर्वथा न घटो यथा ।
देह द्रष्टा तथा देहो, नाहमित्यवधारयेत् ॥

परमात्मा इस शरीर और आत्म दोनों से भिन्न है। सच्चिदानन्द परमात्मा से आगे कुछ भी नहीं, वही आत्मा की परम गति है। उपरोक्त चारों शरीरों से भिन्न, उनके कार्य-कलापों में लीन न होकर जब आत्मा ब्रह्मविद्या में लीन होती है तब उसे कैवल्य

१-वर्तमान दीपक, कि० ३५

[मोक्ष] की प्राप्ति होती है। आत्मा, ईश्वर तथा परमात्मा-स्वरूप अक्षर-ब्रह्म, इन सबकी परम आत्मा अक्षरातीत ब्रह्म है-

पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्टा सा परागतिः ।
आत्माऽनात्मा महात्मा च परात्मेति चतुर्विधाः ॥
परमात्मा परंब्रह्म परे धाम्नि विराजितः

इस जगत् के मनुष्य की उत्पत्ति स्वयंभू मनु और सतरूपा शक्ति से हुई। इनसे उत्पन्न होनेवाली सृष्टि को 'मैथुनी सृष्टि' कहते हैं[1]। स्वयंभू मनु के प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नाम के दो पुत्र थे। उत्तानपाद का पुत्र ध्रुव था। ध्रुव के लगभग ग्यारहवीं पीढ़ी में प्राचीन, बर्हिषना, प्रचेता आदि नाम के दस पुत्र हुए। इनका विवाह 'वृक्ष' की पुत्री वार्क्षी से हुआ जिससे 'दक्ष' नाम का पुत्र पैदा हुआ। उसके ग्यारह हजार पुत्रों को नारदजी ने आत्मज्ञान देकर बैरागी बना दिया। उसकी (दक्ष की) साठ पुत्री थीं जिसमें एक कन्या का विवाह धर्म से, तेरह कन्याओं का विवाह कश्यप से, सत्ताइस का चन्द्र से, दो का भूतों से, दो का अंगिरा मुनि से, दो का कृशाश्व से और चार का ताक्ष्यं से हुआ था।

कश्यप के निम्न पुत्र हुए-कश्यप मुनि की तिमी नाम की स्त्री से जलचर, सरमा स्त्री से श्वपदो, सुरभी स्त्री से दो 'खुरीवाला' पशु, ताम्र स्त्री से पक्षी, मुनि, अप्सरा, क्रोधवशा से सर्प, इला से वृक्ष, सुरसा से राक्षस, अरीष्ट से गंधर्व, काष्ठा से एक खरीवाला (एक सींग वाले) पशु, दनु से दानव, दिति से दैत्य। अदिति से बारह सूर्यों तथा अन्य देवताओं ने जन्म लिया।

मनु के दूसरे पुत्र 'प्रियव्रत' से अग्निध हुआ। अग्निध का पुत्र नाभि था, जिससे ऋषभदेव नाम के पुत्र ने जन्म लिया। ऋषभदेव के सौ पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र का नाम भरत था। इसके अलावा कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, यमस और करभाजन नाम के नौ प्रसिद्ध योगेश्वर थे। इक्यासी पुत्र कर्मनिष्ठ, ब्राह्मणों की तरह [शुभ] कार्य करने वाले थे। शेष-कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पर्क, विदर्भ तथा कीकट-ये नौ पुत्र नौ खण्डों के शासक थे।

१-हदभूमि (क्षर) में सृष्टि तीन प्रकार की है- महद, मानसी और मैथुनी। त्रिदेवा महद सृष्टि के हैं। नारद, सनत्कुमार आदि मानसी सृष्टि हैं और मनुष्य मैथुनी सृष्टि।

स्वयंभू मनु के इन दो पुत्रों के अलावा तीन कन्याएं-आकूती, देवहुती और प्रसूती थीं। आकूती का रूचि मुनि से, प्रसूती का दक्ष प्रजापति से तथा देवहुती का कर्दम मुनि से विवाह हुआ था। देवहुती की कोख से विष्णु के अंशावतार कपिलदेव और आकूती की कोख से विष्णुवतार 'यज्ञनारायण' ने जन्म लिया। प्रसूति की १६ कन्याएं थीं जिसमें तेरह कन्याओं का धर्म से, एक का पितृ से, और एक का महादेवजी से विवाह हुआ था। इन्हीं से आगे सृष्टि का विस्तार हुआ है।

अवतार

जब जब अधर्म का प्रसार और धर्म का नाश होता है, बैकुण्ठवासी विष्णु धर्म और सत्पुरुषों की रक्षा के लिए अवतरित होते हैं—

> परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्
> धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे (गीता अ० ४-८)

ऐसा भगवान कृष्ण ने कहा है।

धर्म संस्थापन और पाप के नाश के लिए चौबीस बार दैविक शक्ति विभिन्न रूप में अवतरित हुई। इन अवतारों के नाम हैं-बाराह, यज्ञावतार, कपिलदेव, दत्तात्रेय, सनकादिक, नरनारायण, व्यास, नारद, पृथु, ऋषभदेव, हयग्रीव, मत्स्य, कूर्म, नृसिंह हरि, वामन, हंस, धन्वन्तरी, परशुराम, राम, बलदेवजी, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि[1]:

> जय जय मीन, कुमठ, नर हरि, बलि वावन
> परशुराम, रघुवीर, कृष्ण, कीरति जग पावन
> बुद्ध, कल्कि, व्यास, पृथु, हरि, हंस, मन्वन्तर
> जग ऋषभदेव हयग्रीव, सूवर, धेनु, धन्वन्तर
> बद्रीपत, दत्त, कपिलदेव, सनकादिक, ए चौबीस रूप लीला रची।

श्री प्राणनाथजी के मतानुसार इन अवतारों में 'बुद्धावतार' तथा 'कृष्णावतार' विशिष्ट अवतार हैं, क्योंकि इनके रूप में पूर्णब्रह्म अवतरित हुए हैं जबकि शेष अवतार विष्णु के हैं। इन दोनों अवतारों-बुद्धनिष्कलंकावतार तथा कृष्णावतार-की व्याख्या भी उन्होंने अपने ढंग से की है।

१- देखिए, वर्तमान दीपक, कि० ३१

कृष्णावतार और त्रिविध लीला :

कृष्ण के रूप में अलौकिक शक्ति के अवतरित होने के निम्न कारण थे-
(१) अक्षर को अक्षरातीत की, तथा ब्रह्म अंगनाओं को अक्षर की लीलाओं का ज्ञान कराना,
(२) पापों का नाश करके पृथ्वी का उद्धार करना ।

पृथ्वी ने पापों तथा अत्याचारों से पीड़ित होकर भगवान विष्णु से प्रार्थना की, कि हे भगवान्, आप अवतार लेकर इन पापियों का नाश करें । वैकुण्ठ के इक्कीस अवतार होते हैं । भगवान विष्णु ने कहा, 'मैं इक्कीस अवतार ले चुका हूँ, बाईसवां अवतार तो गोलोक के कृष्ण का हो सकता है, अतः चलो भगवान कृष्ण से प्रार्थना करें ।' उनकी प्रार्थना कृष्णजी ने स्वीकार कर ली और शीघ्र ही अवतार लेकर पापों के नाश करने का उन्हें आश्वासन दिया ।

(३) अभिशाप पूर्ति-एक दिन उपरोक्त गोलोकी-कृष्ण प्रातःकाल अपना महल को छोड़कर विरजा[1] नामक सखी के घर गये । राधाजी उन्हें ढूंढ़ती हुई सुन्दरा के घर पहुँची । उसके द्वार पर द्वारपाल सुदामा खड़ा था । उसने कृष्णजी के आदेशानुसार उन्हें अन्दर नहीं जाने दिया । इससे राधा ने उत्तेजित होकर उसे अभिशाप दिया कि जिसके लिए तूं मेरी अवज्ञा कर रहा है, वही तेरा वध करे । स्वामी-भक्त सुदामा ने प्रत्युत्तर में राधाजी से कहा, जिसके लिए उत्तेजित होकर तुमने मुझ निरपराधी को यह अभिशाप दिया है, उसीका वियोग दुःख तुम्हें भी झेलना पड़े । यही कारण था कि गोकुल और मथुरा में इतनी समीपता होते हुए भी राधाजी कृष्णजी को न मिल सकीं, और वियोगाग्नि में जलती रहीं । सुदामा कंस बने और कृष्णजी के हाथों उसका उद्धार हुआ ।

(४) वेद-ऋचाओं की इच्छा-पूर्ति – सबलिक ब्रह्म के कारण-स्थल में होने वाली व्रजलीला तथा रासलीला का प्रतिबिंब अव्याकृत के महाकारण में पड़ा । अव्याकृत के महाकारण में होने वाली इस प्रतिबिंब रासलीला का प्रतिभास महाविष्णु के महाकारण में पड़ा । वेद ऋचाओं ने नारायणजी से उस रासलीला को देखने तथा वैसी ही रासलीला करने की इच्छा व्यक्त की ।

इन वेद-ऋचाओं की इच्छा-पूर्ति के लिए नारायणजी को कृष्णजी के रूप में मृत्युलोक [हदभूमि] में अवतरित होना पड़ा ।

---

[1] -निजानन्द चरितामृत, पृ० ४० संस्करण-१

(५) लक्ष्मीजी को बृज दिखाना – विष्णु भगवान प्रतिदिन की तरह आराधना कर रहे थे। नारदजी लक्ष्मीजी के पास पहुँचे और कहने लगे, 'तुम कहती हो विष्णु से बड़ी शक्ति नहीं है, ये ही सर्वशक्तिमान हैं; तो ये किसकी आराधना करते हैं ! लक्ष्मीजी विष्णुजी को ध्यानावस्थित देखकर दंग रह गयीं। ध्यान से निवृत्त होनेपर लक्ष्मी ने पूछा, 'आप किसका ध्यान करते हो ?' विष्णु ने उत्तर दिया, 'जिस स्वरूप का मैं ध्यान करता हूँ, वह शब्दातीत है, अवसर पाकर मैं तुम्हें उसके दर्शन करा दूंगा।' द्वापर में लक्ष्मी रुक्मिणी के रूप में और विष्णु कृष्ण के रूप में अवतरित हुए। विवाह के समय कृष्ण तथा रुक्मिणी सप्तपदी की प्रथा पूरी कर रहे थे। सुहागिनों द्वारा गाये हुए सुहाग-गीत में जब बृज और कृष्ण का नामोल्लेख हुआ तो कृष्ण [विष्णु-अवतार] मूर्च्छित हो गये। उस समय रुक्मिणी को विष्णु के उन शब्दों का ख्याल आया जो उन्होंने लक्ष्मी से बैकुण्ठ में कहे थे। आत्म-चक्षु द्वारा वे जान गयीं कि विष्णु इस स्वरूप [कृष्ण] की आराधना करते हैं[1]।

इन विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कृष्ण में विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न शक्तियों का आवागमन होता रहा—

१. कृष्ण-जन्म से कुछ क्षण पूर्व वसुदेव देवकी को दर्शन देने वाले कृष्ण-चतुर्भुजी वैकुण्ठवासी विष्णु थे। ये वसुदेव देवकी को पैदा होनेवाले पुत्र [कृष्ण] को नन्दजशोदा के यहां पहुँचाने का निर्देश देकर अन्तर्धान हो गये थे।

२. जन्म लेने वाले कृष्ण का कलेवर (शरीर) गोलोक का था, उसमें आत्मा नारायण की थी[2] और आवेश अक्षर की थी।

३. नन्द के घर में ग्यारह वर्ष और बावन दिन तक बाल-लीला तथा रासलीला करनेवाले कृष्ण में गोलोक का कलेवर था, अक्षर की आत्मा थी, जोश अक्षरातीत का था।

४. प्रातःकाल रासलीला करके घर लौटने वाले कृष्ण का कलेवर-गोलोक का था,

---

१–ये तो हुक्मे कई असुर देवें उडाए,
ऐसा बल है वैकुण्ठ राय
क्या समझें लोग अन्दर की बात,
आए लक्ष्मीजी को दिखाने साक्षात्।
—प्रकाश, प्रकरण 'लक्ष्मीजी का दृष्टान्त'

२–गोलोकनाथो भगवान्-श्रीकृष्णो राधिकापति. —निजानन्द चरितामृत पृ० ६१

और उसमें आत्मा नारायण की थी[1]। अर्थात् कृष्ण के रूप में विभिन्न तीन शक्तियां अवतरित हुई थीं—

(क) हदभूमि [नारायण] की शक्ति,

(ख) बेहदभूमि [गोलोक) की शक्ति, और

(ग) अखण्ड भूमि [अक्षर और अक्षरातीत] की शक्ति,

सखियां भी इन्हीं विभिन्न तीन स्थानों की थीं[2]।

वेद ऋचा सखियां-हद भूमि की, – वेद ऋचाएं सखियां
गोलोक की सखियां-बेहद भूमि की, – गोलोक की सखियां
अखण्ड भूमि की ब्रह्म-सृष्टि और ईश्वर-सृष्टि अथवा कुमारिकाएं सखियां.

इन सखियों का कृष्ण की ओर आकर्षित होने का मुख्य कारण यही अलौकिक सम्बन्ध था।

बाल्यकाल में कृष्ण ने अनेक प्रकार की लीलाएं की और बहुत-से राक्षसों का वध किया। एक दिन कृष्ण ने गोपियों से कहा, 'चलो आज रात को हम मिलकर रास-क्रीड़ा करें।' इस समय कृष्णजी की आयु ग्यारह वर्ष की थी। सखियों ने सामाजिक मर्यादा की दुहाई देते हुए ऐसा करने में असमर्थता व्यक्त की। कृष्णजी उनसे रुष्ट हो गये। बावन दिन तक उनसे नहीं बोले[3]। कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए गोपियां प्रयत्न करने लगीं। एक दिन कृष्ण जब गौएं चराने के लिए वन में गये तो शाम को घर वापिस नहीं आये। बलराम ने जब कृष्ण को प्रतिदिन की तरह वापिस चलने को कहा तो उन्होंने उत्तर दिया, "आप जाइए, मैं कल्याणजी के साथ आ जाऊंगा।" जब कल्याणजी ने उनसे घर चलने के लिए कहा तो उनको अपनी गौएं सौंपते हुए कृष्ण ने कहा, 'तुम इन्हें घर ले जाओ, मैं बलराम भैया के साथ आ जाऊंगा।'

अकेले रह जाने पर उन्होंने वृन्दावन जाकर कदम्ब के वृक्ष पर बैठकर वंशी बजायी। वंशी की ध्वनि में सखियों का नाम लेकर पुकारा। अपना-अपना नाम सुनते

१–प्रकाश, 'प्रगट वाणी' का प्रकरण

२–विस्तार के लिए देखिए 'जीवन वृत्त' अध्याय में पंडितों से शास्त्रार्थ'।

३–बावन दिन फिर बोले नहीं, ऐसी प्रेम कहानी
मोह माया में फंस के सजनी हो गई आज दिवानी [भजन]

ही गोपियां, वंशी की ध्वनि का अनुकरण करती हुई दौड़ पड़ीं। उन्होंने संसार की मर्यादाओं का इस तरह उल्लंघन किया जिस तरह 'गऊ-वत्स' के पैर के निशान को पार किया जाता है[१]। दौड़ते हुए तामसियों ने नहीं देखा कि उनके पैर कहां पड़ रहे हैं। एक पैर बालक पर पड़ा तो दूसरा पैर पति पर। कुटुम्बीजनों द्वारा रोके जाने पर स्वांतसियों ने प्राण त्याग दिये और 'राजसी सखी' जल्दी में उल्टे शृंगार करके ही कृष्णजी से मिलने चलीं[२]। कृष्ण से मिलने के पूर्व इन्हें मार्ग में योगमाया [केवलब्रह्म की अर्धांगिनी] मिली जिसने सब सखियों को षोड्श-वर्षीय बना दिया।

सखियों के पहुँचते ही कृष्ण ने इनकी परीक्षा लेने के लिए पूछा, 'तुम रात को घर छोड़कर यहाँ क्यों आई हो, पतिव्रता स्त्रियां किन्हीं भी परिस्थितियों में गृह तथा पति का त्याग नहीं करती।' जिस कृष्ण के लिए उन्होंने सामाजिक मर्यादा का गाय के पैर के चिह्न के समान (तुच्छ समझ कर) उल्लंघन किया, वही उन्हें उपदेश देने लगे[३]। गोपियों की स्थिति शोचनीय थी। वे घर अब जा नहीं सकती थी। कृष्ण भी उनके प्रति निष्ठुर प्रतीत हो रहे थे। स्वांतसियों तथा राजसियों के लिए निष्ठुरता असहनीय हुई और वे मूर्च्छित हो गयीं। तामसी सखियों ने अपने स्वभावनुसार कृष्ण से वाद-विवाद करते हुए स्पष्ट कह दिया-'आपने वेद-शास्त्रों से प्रमाण देकर कहा है कि पति को कभी भी नहीं त्यागना चाहिए, भले ही वह अपार अवगुणों का भण्डार हो। आपमें दुर्गुण कहां हैं? दुर्गुणी को नहीं छोड़ना चाहिए, तो हम आप-जैसे गुणी पतिको कैसे छोड़ सकती हैं?'[१]

मूर्छित गोपियां कृष्ण से आश्वासन पाकर स्वस्थ हुई। कृष्ण ने जितनी गोपियां थीं, उतने ही अपने रूप बनाये और रासलीला की। रासलीला करते हुए कृष्ण अन्तर्धान होकर राधा के अन्दर समा गये। सखियां उन्हें न पाकर विह्वल हुईं। ढूंढ़ने पर भी

१-'गोपद वत्स संसार' – रास,

२-ये बारह हजार सखिया थी जिनमें दो हजार स्वातसिया (शांत स्वभाव वाली), चार सहस्र राजसी और छ सहस्र तामसी [क्रोधी स्वाभाव वाली] सखिया थी। इनका यह नामकरण-राजसी, स्वांतसी तामसी-स्वभ वानुकूल हुआ है।

३-रास, 'उथला' प्र० ९

४-तमे रे तमारे मुंह कह्यो, तम न्याय रे कीधा निर्धारजी
अवगुण पति नव मूकिए, तो गुणी धनी मूकिए केमजी ॥३६॥ –वही, उथला प्र० ९

जब कृष्ण न मिले तो वे कृष्ण की बाल-लीलाएं करने लगी। राधा को कृष्ण बनाकर तथा अन्य सखियां ग्वाल-बाल, नन्द और जशोदा बनकर कृष्ण की बाल-लीलाओं को दुहराने लगीं। जब वे रासलीला करने लगीं तो प्रत्येक गोपी से कृष्ण प्रगट हुए। कृष्ण के इस स्वरूप को 'भजनानन्दी स्वरूप' भी कहते हैं चूंकि यह गोपियों के भजन (ध्यान) के फलस्वरूप प्रगट हुआ था।

रासलीला करते हुए श्री कृष्ण के अन्तर्धान होने का मुख्य कारण था कि पूर्णब्रह्म ने यह लीला अक्षर की इच्छा-पूर्ति के लिए ही की थी, पर अक्षर और उसकी सुरता [ध्यानस्वरूप] कुमारिका सखियां रास में इतनी लीन हो गयीं कि वे रासलीला होने के कारण को ही भूल गई थीं। कृष्ण के अन्तर्धान होने से रंग में भंग पड़ा जिससे सखियों तथा अक्षर का ध्यान टूटा और उन्हें वास्तविक स्थिति का ज्ञान हुआ[1]।

इसीलिए रास को 'योगमाया का ब्रह्मांड' भी कहते हैं क्योंकि इसमें चेतनता और अचेतनता का योग था अर्थात् अंतर्धान होने तक की लील उन्होंने बिना कारण जाने ही देखी और उसके बाद की लीला को कारण ज्ञान हो जाने के कारण अधिक सचेत होकर देखा।

(इसे योगमाया नाम देने के और भी कारण हैं जिसका उल्लेख तीन ब्रह्मांड शीर्षक के अन्तर्गत इसी अध्याय में किया गया है।)

श्री प्राणनाथजी के अनुसार रास की रात नारायण की रात्रि से भी बड़ी थी[2]। श्रीमद्भागवत के अनुसार रास की रात्रि छः माह लम्बी थी। इस रात्रि में पूर्णब्रह्म ने अक्षर को अपनी प्रेम-लीला दिखाकर उसकी इच्छा पूरी की और पौ फटने से पूर्व ही ब्रह्म-सृष्टियों [सखियों] की सुरता वापिस परमधाम में खींच ली। प्रातः होने तक जिन सखियों ने रास की वे वेद-ऋचाएं थीं, उनमें ब्रह्म-सृष्टियां नहीं थीं। और रास करने

१-धनीजी जोश लियो खेंच कर, तब चित्त चौक भई अक्षर
कौन वन, कौन सखी कौन हम यूं चौक के फिरी आतम। प्रकाश, प्रगट-वाणी

२-मृत्युलोक और स्वर्ग की, ब्रह्मा और नारायण
रास रात के बींच में, ए चारों दर्म्यान - खुलासा, प्र० १३, चौ० ४४

नोट मृत्युलोक की असंख्य चतुर्युगी व्यतीत होने पर ब्रह्माजी की रात होती है। इसी तरह ब्रह्मलोक के अगणित वर्ष व्यतीत होने पर नारायणजी की रात व्यतीत होती है।

वाला कृष्ण गोलोक का कृष्ण था, उसपर अक्षरातीत का आवेश नहीं था।

कंस का वध करनेवाले, उग्रसेन को टीका देकर, वसुदेव देवकी को कारागृह से मुक्त कराने वाले कृष्ण यही गोलोक के कृष्ण थे। मथुरा जाकर इन उपरोक्त कार्यों को करने के पश्चात् जब इन्होंने स्नान कर ग्वाल के वेष को उतार कर राजाओं का शृंगार किया तब गोलोक की शक्ति भी उनके अन्दर से जाती रही[१]। यही कारण था कि सुदामा-अभिशाप के अनुसार राधा व गोपियां उनके लिए तड़पती रहीं, पर वे गोकुल नहीं आये। गोलोक के कृष्ण होते तो उनके पास आते। उद्धव को यह बात सखियां स्पष्ट कहती हैं-'हमारे लिए ऐसे सन्देश भेजने वाला यह कृष्ण हमारा नहीं। यदि यह वही कृष्ण होता तो हमारे दुख से अवश्य पसीजता[२]।'

जब जरासंध [कंस के श्वसुर] ने दामाद की मृत्यु का बदला लेने के लिए मथुरा पर आक्रमण किया तो कृष्ण को अत्यधिक चिन्ता हुई। दानव के साथ युद्ध के लिए दैविक शक्ति की आवश्यकता थी। उस समय बैकुण्ठ लोक से रथ सहित विष्णु आये और कृष्ण ने उनमें समाकर जरासिंध का वध किया[३]।

इस समय विष्णु के इस विश्व में आने का मुख्य कारण जरासंध का संहार नहीं था। वैकुण्ठनाथ अपनी शक्ति के द्वारा अपनी पुरी में बैठे हुए ही इन जैसे कई असुरों का संहार कर सकते हैं। यहां आनेका मुख्य कारण लक्ष्मी को ब्रज दिखाना ही था[४]।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कृष्ण की इन्हीं तीन लीलाओं के आधार पर प्राणनाथजी ने कृष्ण के तीन रूप माने हैं—

१-अक्षरातीत के आवेश से युक्त-ब्रजलीला तथा रासलीला करने वाले कृष्ण,

---

१-गजमल कंस को कारज कियो, उग्रसेन को टीका दियो
काला गृह में दर्शन दिये जिन, आए बंध थे छुडाए तिन
वसुदेव देवकी के लोहे भान, उतारयो भेष कियो स्नान
जब राज बागे को कियो सिंगार तब बल प्राक्रम न रहयो लगार — प्रकाश, प्रगटवाणी

२-'ए यदुराय नहीं रे गोपियों न वालो' — षट्ऋतु, अंतिम प्र०

३-आए जरासिंध मथुरा घेरी, तब कृष्णजी को अतिचिन्ता भई
यों याद करते आया विचार, तब कृष्ण विष्णुमये भए निरधार
आयुध अपने मंगाए के लिए, कई विध युद्ध असुरों से किए।' — प्रकाश, प्रगटवाणी

४-एक कार्यार्थ मागत्य कोटि कार्य चकारह [गर्ग सं० ख० अ० १ निजानन्दचरितामृत प्र.]

२-गोलोक के कृष्ण-११ दिन की लीला करनेवाले, (असुरों सहित कंस का संहार करनेवाले)

३-विष्णुमय कृष्ण-जरासंध और शिशुपाल, दन्तवक्र आदि से युद्ध करने वाले

समयान्तर से इन विभिन्न तीन शक्तियों से युक्त होकर लीलाएं करने के कारण ही इनके द्वारा की गयी लीलाओं को तीन भागों में विभाजित कर 'त्रिविध लीला' नाम दिया गया है। 'कृष्णावतार तथा त्रिविध लीला' सम्बन्धी श्री प्राणनाथजी की यह व्याख्या उन्हें परम्परागत कृष्णोपासकों की श्रेणी से अलग लाकर खड़ा कर देती है।

इसी तरह उनका बुद्धावतार सम्बन्धी मत भी प्रचलित मतों से भिन्न है। उन्होंने गौतम बुद्ध को 'बुद्धावतार' नहीं माना।

तीन ब्रह्मांड और बुद्धनिष्कलंकावतार :

काल-माया का ब्रह्मांड

पूर्णब्रह्म ने अक्षर तथा सखियों की इच्छा-पूर्ति के लिए सखियों को ब्रज में भेजा। ब्रज में आने पर वे पूर्णतः भूल गयीं कि हम संसार में क्यों अवतरित हुई हैं, हम कौन हैं और पूर्णब्रह्म परमात्मा से हमारा क्या सम्बन्ध है। इस समय (काल) में वे ब्रह्म-लीलाओं को पूरी तरह भूल कर 'माया' में लीन हो गयीं, इसीलिए इसको 'काल-माया' कहा जाता है।

योग-माया का ब्रह्मांड

कृष्ण तथा गोपियों ने जिस स्थान पर रासलीला की थी, उसे 'योगमाया का ब्रह्मांड कहते हैं—

१-यह रासलीला 'बेहद भूमि' में योगमाया के 'कारण' स्थान में हुई थी। 'योगमाया' के स्थान में रास होने के कारण इसे 'योगमाया' का ब्रह्मांड' कहा जाता है।

२-अक्षर ने चिदानन्द तथा सखियों की प्रेमलीला देखने की इच्छा की थी, जिसकी पूर्ति रास में की गयी। अक्षर भगवान ने कृष्ण के अन्दर बैठकर रासलीला का अव-लोकन किया[1]। रासलीला देखने में अक्षर भगवान इतने तल्लीन हो गये कि वे रास लीला होने के कारण को भूल गये। उन्हें यह याद न रहा कि यह लीला मेरी इच्छा-पूर्ति के लिए की जा रही है। उसे इसकी याद दिलाने के लिए 'अक्षरातीत' ने कृष्ण

१-'अक्षर' के 'धनी' को 'आवेश', नन्दघर कियो प्रवेश। — प्रकाश, प्रगटवाणी

में से अपनी 'आवेश शक्ति' खींच ली और कृष्ण रासलीला करते हुए अन्तर्धान हो गये। सखियां रोती हुई, वृन्दावन में पेड़-पौधों तथा पशु-पक्षियों से कृष्णा का पता पूछती हुई वन में भटकने लगीं। रंग में भंग पड़ गया। तब अक्षर का ध्यान टूटा और उसे इस लीला का कारण याद आया[1] और वह उस रासलीला का, जिसे उसने नींदावस्था (अचेतन अवस्था) में देखा था, 'जाग्रत' [प्रबुद्ध] होकर आस्वादन करने लगा[2]।

नींद और जाग्रतावस्था का संयोग होने के कारण भी इसे 'योगमाया' कहा जाता है।

३-रास में परमात्मा तथा सखियों का मिलन (योग) हुआ।

४-रास में सखियों को लौकिकता-माया और अलौकिकता-ब्रह्म दोनों का ज्ञान था।

इन कारणों से इसे योगमाया का ब्रह्मांड कहा जाता है।

जागनी ब्रह्मांड

रासलीला अखण्ड (अक्षर के चित्तस्थ) हो जाने पर सखियों ने सोचा, 'श्रीराजजी' ने तो हमसे कहा था कि संसार में जाकर तुम एक-दूसरे को भूल जाओगी। तुम विभिन्न देशों में अवतरित होओगी और इस तरह एक साथ मिलकर न रह सकोगी, पर ब्रज और रास में हम सब सखियां एकसाथ रहीं, भिन्न-भिन्न देशों में अवतरित नहीं हुईं।

अक्षर ने भी सोचा कि मैंने रंगमहल में होनेवाली लीला तो देख ली है, पर रंगमहल की अन्दर की रचना नहीं देखी।

अक्षर तथा सखियों की इन इच्छाओं की पूर्ति के लिए पूर्णब्रह्म ने उन्हें इस विश्व में पुनः अवतरित किया—

नौ सौ नब्बे मास नव हुए रसूल को जब
रूहअल्लाह मिसल गाजियो मोमिन उतरे तब

अर्थात्, हिजरी सं० ९९० में ये सखियां विभिन्न देशों में तथा स्त्री-पुरुष दो विभिन्न

१-'मगन हुए खेलें दोउ नर नार'

× × ×

'सो याद देने मेरे पीउजी, हुए अन्तर्ध्यानजी' — प्रकाश, प्रगटवाणी

२-जब जोश लियो खींच कर, चित्त चौंक भई अक्षर
कौन वन कौन सखी कौन हम, यूं चौंक के फिरी आतम। —प्रकाश, प्रगटवाणी

वजूदों [शरीर] में अवतरित होकर इस संसार के दैहिक, दैविक और भौतिक दुखों में डूब गयीं। श्रीराजजी को भूलकर पानी, पत्थर, आग की पूजा करने लगीं। परमात्मा ने 'बुद्धनिष्कलंकावतार' के रूप में अवतरित होकर इस मोह-माया रूपी नींद से उन्हें जगाया; परमधाम में हुए प्रेम-संवाद का स्मरण दिलाया और कहा अब तुम स्वयं परमधाम और इस विश्व की तुलना करके देखो, कहां परमधाम के फूल-बाग, नूर बाग, जमुनाजी, रंगमहल और कहां यह 'चरकीन जमीं' (गन्दगी)।

'बेहदी' [अलौकिक] समाचार पाकर 'बेहद के साथी' (ब्रह्म-सृष्टि) सचेत हो गये। ब्रह्मसृष्टि अब इस बात का पूरा ध्यान रखने लगी कि हम इस संसार में तमाशा देखने आये हैं, तमाशाई बनने नहीं, इसीलिए वे माया के प्रपंचों से दूर रहीं और परमधाम तथा पूर्णब्रह्म के दर्शन को पूर्णतः प्रबुद्ध [जाग्रत] होकर ग्रहण किया, इसीलिए इस ब्रह्मांड का नाम 'जागनी ब्रह्मांड हुआ।

इस ब्रह्मांड के पूर्व अनेक ब्रह्मांडों की रचना हुई और आगे भी होती रहेगी,[1] पर उन ब्रह्मांडों में 'ब्रह्मलीला' का अभाव रहता है[2]। ब्रज में कृष्ण अवतरित होकर ब्रजलीला तथा रासलीला करते रहेंगे, पर उनमें न ब्रह्म-मुनि होंगे और न बुद्धावतार के रूप में अवतरित होनेवाले पूर्णब्रह्म परमात्मा। क्योंकि इस संसार में परमात्मा का आगमन अपनी आनन्द अंगनाओं [ब्रह्म मुनियों] के कारण ही हुआ है। ब्रह्म-सृष्टि संसार में खेल देखने के लिए अवतरित हुई है और परमात्मा उनकी इच्छा को पूरा करके परमधाम वापिस ले जाने के लिए बुद्धनिष्कलंकावतार के रूपमें अवतरित हुए।

बुद्धनिष्कलंकावतार :

> स्वप्नेन शरीरमभिप्रहत्याऽसुप्तः सुप्तानभिचाकशीति ।
> शुक्रमादाय पुनरेति स्थानं हिरण्मयः पुरुष एकहंसः ॥
> (बृहदारण्यको० ४।३।११)

१–पल में कई ब्रह्मांड उपजत खपत —प्रकाश, प्रगटवाणी
तथा – भगवानजी खेलें बाल चरित, आप अपनी इच्छा सो प्राकृत
कोटि ब्रह्मांड नजरों में आवे, क्षण में देखे पल में उड़ावें —परिक्रमा, प्र० ३

२–ए तीन ब्रह्मांड हुए जो अब, ऐसे हुए न होसी कब
तीनों में ब्रह्मलीला भई' ब्रज रास और जागनी कही' —प्रकाश, प्रगटवाणी।

३–आनन्द सागर, पृ० ३७६

अर्थात्, तेजोमय ब्रह्म स्वरूप अद्वितीय परमहंस पुरुष, स्वप्न द्वारा शरीर धारण कर स्वयं असुप्त-प्रबुद्ध, यद्यपि ब्रह्म मुनियों के प्रबोधार्थ मनुष्यतन धारण किया है, तथापि निष्कलंक बुद्धियुक्त होने से उनकी बुद्धि में स्वप्नादि, भ्रमादि कलंक नहीं है, अतएव जाग्रतावस्था होने के कारण इसे असुप्त कहा है। सोये हुए ब्रह्म-मुनियों को तारतम्योपदेश दे जाग्रत करेगा और तदन्तरजन्म-मरण के बंधन में पड़ी हुई बीज-रूप जो चित्त की वृत्ति है, उसे लेकर पुनः अपने मूलधाम को प्राप्त होगा।

वेद-पुराणों के अनुसार निष्कलंक बुद्धस्वरूप [परमात्मा] कलियुग के अन्त में प्रगट होगा —

कलेरन्ते बुद्धरूपी जनानामनुकम्पया।
अवतीर्यासिना ज्ञानरूपेणाच्छिद्य संशयम्॥
धामस्थाननुमन्त्र्यादौ तेभ्यस्तत्त्वमुदीर्य च।
अथ तांश्च समादाय गमिष्यति निजालयम्॥ — पद्म पुराण

अर्थात्, कलियुग के अन्त-फल के निमित्त जीवों पर करुणा कर परमात्मा निष्कलंक बुद्धनाम से प्रसिद्ध होगा जो ज्ञानरूपी तलवार से निज-जनों के संशय को छेदन कर एवं निजधामवासियों को बुलाकर उन्हें तत्व-ज्ञान देगा और तदन्तर उन्हें लेकर अपने धाम को जायेगा। और प्राणनाथजी ने भी—

'हम आए इतने काम, ब्रह्म सृष्टि लेने घर धाम[१]'

तथा— कलियुगे चेहन अंत के सब किए, लोग अजहूं बतावे दूर अन्त'

कहकर कलयुग के अन्त में प्रगट होकर ब्रह्मसृष्टि को घर ले आनेवाले शास्त्र-सम्मत पूर्णब्रह्म परमात्मा का अपने रूप में अवतरित होने का दावा किया है, और स्पष्ट शब्दों में स्वयं को बुद्धावतार कहा है—

चलता पूर लिए दोऊ किनारे, डर धरता बुद्धजी का।
मद चढ्यो करि एकल छत्री, ले बैठा सिर टीका[२]॥

१—प्रकाश [प्रगट वाणी]

२—कीरन्तन, प्र० ६०

तथा— प्रगटे निशान धूमरकेतु क्षय मास

पर सुध न करे अज' कोई इत ।

वेगे ने पधारो रे बुद्धजी या समे

पुकार कहे श्री महामति[१] ॥

अर्थात्, पुराणों के अनुसार वि० सं० १७३५ में ग्यारह महीने का साल होगा और धूम्रकेतु नक्षत्र प्रगट होगा, उस समय बुद्धावतार होंगे ।

उन्होंने कुंभ के मेले पर हरिद्वार में पण्डितों आदि को शास्त्रार्थ में बताया कि शास्त्र-सम्मत ये समस्त निशान इस समय स्पष्ट हैं (संवत १७३५ चल रहा है । यह साल भी ग्यारह माह का है तथा धूम्रकेतु नक्षत्र भी प्रगट है) । तब पण्डितों ने कहा, 'शास्त्रों के अनुसार बुद्धनिष्कलंकावतार तो कलियुग के अन्त में होगा, कलियुग की आयु चार लाख बत्तीस हजार साल है और अभी तो कलियुग के केवल चार हजार पांच सौ वर्ष ही व्यतीत हुए हैं, अतएव यह तो कलियुग का आरंभ है । कलियुग के अन्त में आनेवाले बुद्धावतार कलियुग के आरंभ में कैसे प्रगट हो गये ?' तब प्राणनाथजी ने कहा—"शास्त्रों आवरदा कही कलियुग की, चार लाख बत्तीस हजार, काटे दिन पापे लिखया माहे शास्त्रों, सो पाइए अर्थ अन्दर के विचार, कलियुग चेहन रे अन्त के सब किए, लोग बतावें अजहूं दूर अन्त, अर्थ अन्दर का कोई न पावहीं, बारे अर्थ बाहर के ले डूबत"[२] ॥

अर्थात्, कलियुग में अत्यधिक पाप होने के कारण इस युग में प्राप्त होने वाली प्रत्येक वस्तु क्षय को प्राप्त हो रही है—

अनवरतं चात्र कलियुगे क्षयमागात्यखिल एवैष जनः[३]

—विष्णु पुराण, ४ अंश, २४ अध्याय

पापों के कारण इसकी उम्र घटकर ५,५०० वर्ष रह गयी है—

वर्ष होगा पांच हजार सौ पांचा

तब यह वचन होयेगा सांचा[४] —कबीर

१—वही, प्र० ५७, चौ० २१ । २—वही, प्र० ५७, चौ० १७-१९ ३—आनन्द सागर, पृ० ३७९

४—'वर्तमान दीपक' में संग्रहीत 'कबीर साखी' से

और शेष चार लाख छब्बीस हजार पांच सौ वर्ष ग्रहण में[1] कट जायेंगे। एक ग्रहण लगने से कलियुग की एक सौ पच्चीस वर्ष उम्र कम हो जाती है। कलियुग के इन पांच हजार पांच सौ वर्षों में ३४१२ ग्रहण लगने से इसकी आयु समाप्त हो जायेगी—

जब ग्रहण लगे चौतीस सौ बारा
तब कलियुग को होए निपटारा[2]

इन पैंतालीस सौ वर्ष में उनतीस सौ चौंसठ ग्रहण लगे चुके हैं, शेष चार सौ अड़तालीस ग्रहण एक हजार वर्ष में लगने हैं। इस तरह अब (वि० सं० १६३५ में) कलियुग की उम्र सिर्फ १००० वर्ष ही शेष रह गयी है अर्थात् यह कलियुग का अन्तिम चरण ही है[3]। इस तरह उन्होंने अपने को 'विजयाभिनन्द बुद्ध सिद्ध किया और इसी नाम से अपना शाका भी चलाया—

सोलह सौ लगा रे शाका सालबाहन का, संवत् सत्रह सौ पैंतीस
बैठा रे शाका विजयाभिनन्दबुद्ध का, यूं कहे शास्त्र और ज्योतिष[4]

श्रुतियों के उपरोक्त श्लोकों से स्पष्ट है कि बुद्धावतार ने ब्रह्म-मुनियों के प्रबोधार्थ मनुष्य-तन धारण किया है। वह ज्ञान-रूपी तलवार से निजजनों के संशय का छेदन कर उन्हें अपने धाम को ले जायेगा।

प्रणामी भी प्राणनाथजी को ही बुद्धावतार मानते हैं और इसकी पुष्टि में निम्न तर्क देते हैं—

'निष्कलंका च या बुद्धिः पूर्णानन्दात्मिका परा
तया बुद्धया वर्तमानो निष्कलंक सुबुद्धकः

अर्थात्, पूर्णानन्द को प्रकाश करने वाली कलंकरहित यानी जिसमें स्वप्नादि माया-जन्य कलंक नहीं है, ऐसी पराबुद्धि से युक्त होने के कारण प्राणनाथजी का नाम 'निष्कलंकबुद्ध है[5]।

श्री प्राणनाथजी का उपाधि-नाम 'महामति' था। यह महामति नाम उनके बुद्ध-

---

१—विद्वानों के अनुसार पृथ्वी पर अत्यधिक पाप होने से ग्रहण लगता है।

२—'वर्तमात दीपक' में संग्रही 'कबीर साखो' से

३—'तेने समय अमे आविया, मानचिन्तामणि मित्र' — बीतक-साहित्य

४—कीरन्तन, प्र० ५७, चौ० १७

५—आनन्द सागर, सप्तम किरण

बतार होने का संकेत करता है। 'महा' + 'मति' का अर्थ है 'बड़ी बुद्धि'। बड़ी बुद्धि अक्षर-ब्रह्म की बुद्धि को माना गया है (सांसारिक बुद्धि को नहीं) —

धनीजी का जोग आत्म दुल्हन
नूर, हुकम, बुद्धि 'मूलवतन'[१]
ए पांचो मिल भई 'महामति'
वेद कतेब पहुंची सरत[२] ॥

इसे ही इस्लामिक भाषा में 'असराफील' कहा गया है—

'बुद्धजी को असराफील, विजयाभिनन्द इमाम
उरझे सब बोली मिने, वास्ते जुदे नाम
ब्रह्मसृष्टि कह्या मोमिन को, कुमारिका फिरश्ते नाम
ठौर अक्षर सदरतुल मुंतहा, अरश अजीम सो धाम'[३]

यह 'असराफील' फरिश्ता कयामत के समय जाहिर होगा—

'असराफीलके अमल में, शक शुभा नहीं कोय
कयामत फल पाया इतहीं, मगज मुसाफी सोए'[४]

१—अक्षर—ब्रह्म की बुद्धि ने जिसने रास में कृष्ण के रूप में अक्षरातीत की प्रेमलीला देखी थी, उसने ही रास के ४६६० वर्षों बाद, कलियुग में प्राणनाथजी के अन्दर प्रवेश करके उस रंगमहल को देखा जिसे देखने की उसकी प्रबल इच्छा थी। अक्षर की बुद्धि के अवतरित होने के कारण ही कलियुग में होनेवाले अवतार का नाम बुद्धनिष्कलंक पड़ा—

'धनीजी ध्यान तुम्हारे बैठा बुद्धजी सहस्र चार
छः सौ साठ बीता समय, दुनिया के भए आचार्य ॥१॥' —कीर्तन ग्रंथ, प्र० ५२ —

जब कलियुग का ४६६० था, तब हिजरी सं० १०५० था। (विस्तार के लिए देखिए, परिशिष्ट में दिया गया 'गोशवारा')

२—प्रकाश, अन्तिम प्रकरण

३—खुलासा प्रकरण १२

४—वही प्रकरण १४

क्यामत ग्कारहवीं सदी में होगी। इस समय हक, इमाम व महमद जाहिर होंगे और इनके प्रगट होने का समय ग्यारहवीं सदी अर्थात् हिजरी सन् १०९० है[1]—

ग्यारहवीं बीच बड़ो विस्तार
प्रगटे बुलन्द सबो सिरदार
सब न्यामते सिफते दइयां सितार
जो उतरियां आयते उस्तवार[2] ॥

× × ×

इत थे अमल भयो इमाम, चालीस बरसों फजर तमाम
ग्यारही के दस बरसों कही फजर, दुनिया भई एक नजर[3]

जब हिजरी संवत् १०९० था, तब वि० सं० १७३५ और सालबाहन शाका १६०० था[4]। कुरान के अनुसार इस समय असराफील (अक्षर की 'बुद्धि') को प्रगट होना था और पुराण के अनुसार बुद्धनिष्कलंकावतार को। अतएव प्राणनाथजी का बुद्धावतार होना पुराण के साथ-साथ कुरान-सम्मत भी है (इससे उन्होंने जो इमामत का दावा किया है, उसको भी पुष्टि होती है)।

बुद्धजी धनी हुकम माहीं, फरिश्ता असराफील
तिन कान दिए सुनने आज्ञा का, अब हुकम को नहीं ढील[5]

१-'सो कह्या असराफील आवसी आखर
फल लैलतुल कदर का, पाया तीसरी फजर' —खुलासा १४

२-'क्यामतनामा ग्रन्थ', अन्तिम प्रकरण

३-क्यामत नाम – आमेत सालन का प्रकरण, २२

४-विस्तार के लिए देखिए इस शोध-प्रबंध के अन्त में दिया गया 'गोशवारा'।

५-कीरन्तन, प्र० ६९

नोट . विद्वान् लोग प्राणनाथजी को बुद्धावतार सिद्ध करने के लिए भविष्य पुराण के निम्न श्लोक का भी उद्धरण देते हैं –

'अगनंच पंच सलंच, विक्रमी तदेगता। उगे चेतासरू एकानिमास क्षीण भवति, ॥

यह श्लोक अशुद्ध है जिससे इसकी प्रामाणिकता की जाच करना असंभव है।

त्रिसृष्टि :

श्री प्राणनाथजी ने इस विश्व के असंख्य मनुष्यों का तीन भागों में विभाजन किया है -

(क) ब्रह्म सृष्टि [ख] ईश्वरी सृष्टि (ग) जीव सृष्टि

(क) ब्रह्म सृष्टि- सच्चिदानन्द परमात्मा की आनन्द अंग' सखियों का जो अक्षर का खेल (संसार) देखने के लिए इस संसार में अवतरित हुई है, नाम ब्रह्म-सृष्टि है। मुसलमान इन्हें मोमिन और पुराणों में इन्हें 'ब्रह्म आत्माए' तथा 'ब्रह्म-मुनि' कहा गया है। ब्रह्म-सृष्टि में तीन तरह की सखियां हैं-स्वातसी सखी, राजसी सखी और तामसी सखी[१]। इनका नामकरण इनके स्वभावानुसार हुआ है। शांत स्वभाववाली 'स्वांतसी', राजाओं के-से स्वभाववाली 'राजसी' और 'तामस' [गुस्सा] स्वभाववाली 'तामसो' सखो हैं। इन सखियों की संख्या बारह हजार है जिसमें दो हजार 'स्वांतसी' सखी हैं, चार हजार राजसी हैं और छः हजार 'तामसी' हैं। :

इनका मूल स्थान परमधाम है। इस विश्व की रचना का मूलभूत कारण भी इन्हीं में निहित है। इन्होंने ही विश्व को देखने की अपनी इच्छा को परमात्मा के समक्ष प्रगट किया था जिसके फलस्वरूप इस विश्व की रचना हुई[२] और कालमाया, योगमाया और जागनी ब्रह्मांड में अवतरित होकर इन्होंने अपनी इच्छा पूरी की[३]। इन ब्रह्मात्माओं ने स्वयं इस विश्व में प्रवेश नहीं किया, परन्तु उनकी 'सुरताओं' (ध्यान) ने जिन प्राणियों में प्रवेश किया, उनको ही 'ब्रह्मसृष्टि' कहा जाता है। इन सुरताओं ने केवल उन्हीं प्राणियों की आत्माओं में प्रवेश किया जो इस संसार के छल. प्रपंचों से दूर हैं व जिनकी आत्मा पवित्र हैं।

[ख] ईश्वरी सृष्टि - इस सृष्टि में 'अक्षरधाम' की सखियों की गणना होती है। इनकी संख्या चौबीस हजार है। इन्हें अक्षर की सुरता अथवा कुमारिका सखियां भी कहा जाता है[४]। इन्हीं के द्वारा अक्षर ने रास के सुख का रसास्वादन किया था।

१-तामसियां राजसिया दौड के चिली

स्वांत सिया शरीर छोड के मिली

२-'हम ही कारण कियो ए संच'

३-जिसका वर्णन इसी अध्याय मे 'तीन ब्रह्मांड' शीर्षक के अंतरगत पहले किया जा चुका है।

४-कुमारिका ब्रज बधु संग जेह, सो सुरती सबे अक्षर की हैं।

प्राणनाथजी ने इनको ईश्वर सृष्टि (अर्थात् अक्षर की सृष्टि) नाम दिया। इनकी संख्या चौबीस हजार है।

(ग) जीव सृष्टि – इन दो प्रकार की सृष्टियों के अतिरिक्त जितने भी प्राणी हैं, वे जीव-सृष्टि के अंतर्गत आते हैं जिसे 'आम खलक' भी कहते हैं। इसे ही प्राणनाथ-जी ने 'मायावी' (माया के) जीव कहा है। ये ऐसे जीव हैं जिनके लिए यह विश्व ही सब कुछ है। इसे जितना भोग सको, भोगो –यही उनका सिद्धांत है। इनके जीवन में परमात्मा का विशेष स्थान नहीं। यदि ये ईश्वर को अपने जीवन में स्थान देते हैं तो केवल अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए और स्वयं को नास्तिक कहलाने से बचने के लिए। इसी आधार पर इनको तीन श्रेणियों में रखा गया है[1] —

(१) मर्यादी जीव – समाज की मर्यादा को बनाये रखने के लिए ही धार्मिक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। अर्थात्, ऐसे व्यक्ति जिनके जीवन में धर्म का स्थान नहीं होता परन्तु अपने आसपास के व्यक्तियों का अनुसरण कर धार्मिक स्थानों, मन्दिर अथवा सत्संग में जाते हैं।

(२) प्रवाही जीव – पूर्णतः संसार के कार्य-कलापों के प्रवाह में बहने वाले तथा धार्मिक कार्यों से एकदम उदासीन प्राणियों की गणना इन जीवों में होती है।

(३) पुष्टि जीव – इस श्रेणी में ऐसे जीव आते हैं जो केवल ऐसे ही कार्य करना चाहते हैं जिनकी पुष्टि धार्मिक सिद्धांतों द्वारा होती है।

प्रलय :

(अ) ब्रह्माजी की उम्र और मनु – कलियुग, द्वापर, त्रेता और सत्य-चारों को 'चतुर्युगी' कहते हैं। एक चतुर्युगी में तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष होते हैं जिसमें कलियुग के चार लाख बत्तीस हजार साल, द्वापर-युग के आठ लाख चौंसठ हजार वर्ष, त्रेता युग के बारह लाख छियानवे हजार वर्ष और सतयुग के सत्रह लाख अट्ठाइस हजार वर्ष होते हैं।

जब हजार चतुर्युगी व्यतीत होती है तो 'ब्रह्मा' का एक दिन व्यतीत होता है[2]। एक दिन व्यतीत होने पर जब ब्रह्माजी रात को सोते हैं तो दस लोक, पाताल

१–प्रकाश, 'अठत्तर सौ पख' प्र० ३४

२–लल्लू भट्ट आदि कुछ लोगों के मतानुसार हजार चौकड़ी व्यतीत होने पर स्वर्गलोक का एक दिन

से स्वर्ग लोक तक, लय हो जाते हैं। ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनु होते हैं। ब्रह्माजी की उम्र सौ वर्ष होती है। इस समय ब्रह्माजी की उम्र पचास वर्ष है और अट्ठाइसवीं चतुर्युगी चल रही है[१]। इस समय सातवां मनु, वैवस्वत मनु है[२]।

(आ) चार प्रकार की प्रलय - [१] नित्य प्रलय : पदार्थ का नित्य प्रति क्षय होना तथा मनुष्य की मृत्यु की गणना इस प्रलय में होती है।

[२] नैमित्तिक प्रलय : एक हजार चतुर्युगी का ब्रह्मा का एक दिन होता है, इतनी ही बड़ी रात्रि होती है।

दिन व्यतीत होने पर जब रात्रि को ब्रह्माजी शयन करते हैं तब इस लोक (पाताल से लेकर स्वर्गलोक तक) लय हो जाते हैं। इस प्रलय में महर्लोक की सीमा तक प्रलय का जल आ जाता है। महर्लोक के पास ही ध्रुव लोक है। यह नैमित्तिक प्रलय में लय नहीं होता।

[३] प्राकृतिक प्रलय : ब्रह्माजी की आयु के जब सौ वर्ष व्यतीत होते हैं तो 'एक कल्पांत' होता है। एक कल्पांत व्यतीत होने पर प्राकृतिक प्रलय होती है जिसमें चौदह लोक, अष्टावरण, ज्योतिस्वरूप और महत्तत्व लय हो जाते हैं।

(४) महाप्रलय : इस प्रलय में हद्-भूमि की समस्त वस्तुएं, पाताल से लेकर जीवों को उत्पन्न करने वाले आदिनारायण [महाविष्णु] तथा महाशून्य तक, (समस्त क्षर सृष्टि) अपने मूल अव्याकृत में लीन हो जाती हैं।

मोक्ष

वेदशास्त्र के अनुसार अपने आराध्यदेव के धाम को प्राप्त हो जाना ही मोक्ष है। बैकुण्ठ की चार प्रकार की मुक्तियां हैं- [१] सालोक्य, [२] सामीप्य, [३] सारूप्य, [४] सायुज्य।

सायुज्य मुक्ति वाले विष्णु भगवान् के अन्दर विलीन हो जाते हैं, शेष तीन

होता है। स्वर्गलोक के छ. माह व्यतीत होने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है।

१-'अट्ठाबीस द्वापर के अन्त में गोकुल प्रगटी नार' — दासवाणी

२-हजार चतुर्युगी, ब्रह्मा का एक दिन होता है जिसे कल्पांत कहते हैं और दिन में चौदह मनु होते हैं, अथात् ७१ चतुर्युगी तक एक मनु रहता है। अतएव सातवा मनु ५०० चतुर्युगी बाद में होना चाहिए, न कि अट्ठाइसवीं चतुर्युगी मे।

मुक्तिवाले प्रलय के बाद फिर जन्म लेते हैं और चौदह लोकों में चक्कर लगाया करते हैं[१]।

श्री प्राणनाथजी के मतानुसार वह मोक्ष ही क्या जो जीव को 'आवागमन' से रहित न कर सके। ये चार प्रकार की मुक्तियां तो बैकुण्ठ की हैं। तीसरी प्रलय 'प्राकृत प्रलय' में बैकुण्ठ भी लय हो जाता है। जिसका स्वयं ही सर्जन तथा विसर्जन होता है, वह स्थान मोक्ष-स्थल कैसे कहा जा सकता है[२]।

श्री प्राणनाथजी ने मोक्ष की परिभाषा इस प्रकार की है-'जीव का आवागमन से रहित हो जाना ही मोक्ष है। जीव का संसार में बार-बार जन्म लेना आगमन है और मृत्यु को प्राप्त होना गमन है। यह जीवन-मरण का चक्र ही 'आवागमन का चक्र है।

जन्म लेते समय मनुष्य को हजार बिच्छु के काटने जितना कष्ट होता है। इतना ही कष्ट मृत्यु के समय होता है। विश्व में रहते हुए भी मानव को दैहिक, दैविक, भौतिक कष्टों को झेलना पड़ता है अर्थात् जीवन से मृत्युपर्यन्त इस विश्व में कष्ट ही कष्ट हैं। व्यक्ति की मृत्यु पर कहा जाता है कि वह संसार (के कष्टों) से मुक्त हो गया। वस्तुतः ऐसा होता नहीं है। दुःखों से वह मुक्त नहीं, वरन् और अधिक कष्टों में पड़ता है। क्योंकि मृत्युपरांत अपने कर्म-फल के अनुसार जीव को 'चौरासी लाख योनियों' में जाना पड़ता है।

चौरासी लाखयोनि - इस विश्व में मुख्यः चौरासी लाख प्रकार की वस्तुएं हैं जिसमें बीस लाख प्रकार की स्थिर वस्तुएं वृक्ष आदि हैं। नौ लाख प्रकार के जल-जीव हैं। ग्यारह लाख प्रकार के रेंगनेवाले (पेट के बल चलनेवाले) कीड़े हैं। दस लाख प्रकार के पक्षी हैं। तीन लाख प्रकार के चार-पैरों वाले जीव हैं, जिनमें चौपाये जानवरों आदि की गणना होती है तथा चार लाख प्रवृत्ति वाले मनुष्य हैं। यही कारण है कि शारीरिक गठन में अभिन्नता होने पर पर भी मानव स्वभाव से भिन्न है। [चार लाख व्यक्तियों में से प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न विचार रखता है। आठ लाख मनुष्यों में मात्र दो मनुष्य ही समान विचारधारा वाले मिलेंगे] -

बीस स्थिर नौ वारिचर ग्यारहरुद्र कीट दस पक्ष
तीस चतुष्पद, चार नर, ए चौरासी लक्ष

१-सृष्टि विज्ञान वर्णन, परिशिष्ट, पृ० ३
२-लालदास-कृत बीतक, 'चारों समुदायवालो से शास्त्रार्थ' पृ० १६२

इस चौरासी लाख योनि में 'मानव योनि' ही सर्वश्रेष्ठ है। मानव शरीर प्राप्त होने पर व्यक्ति प्रयत्न करके मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। देवता भी, जो दूसरी प्रलय में लय हो जाते हैं, मोक्ष-प्राप्ति के लिए मानव शरीर धारण करने के इच्छुक रहते हैं। क्योंकि यही एकमात्र ऐसी योनि है जिसे मोक्ष के साधन उपलब्ध हैं। मोक्ष के लिए चार पदार्थ अपेक्षित हैं- (१) भरत खण्ड, (२) कलियुग, (३) मानव शरीर और (४) सत्गुरु-

विरथा कां निगमोरे, पामी पदारथ चार
उत्तम मानखो खण्ड भरतनो, अने श्रेष्ठ कुलि सिरदार[१]

देवताओं का निवास-स्थान- स्वर्गलोक, भरतखण्ड [मृत्यु लोक] से परे और चतुर्युगी [कलियुग] आदि से अप्रभावित है अर्थात् मोक्ष के लिए आवश्यक चारों पदार्थ उन्हें अनुपलब्ध हैं। प्रत्येक मनुष्यको इन चारों पदार्थों का एक साथ प्राप्त होना बड़ा कठिन है। यदि ये चारों पदार्थ एकसाथ प्राप्त हो भी जायें तो उससे लाभ उठाने वाले बहुत ही कम होते हैं। परन्तु इतना तो निर्विवाद रूप से सत्य है कि इनकी प्राप्ति का एकमात्र सौभाग्य मानव को ही प्राप्त है[२]। इसीलिए तो देवता भी इसके गौरव को देखकर स्वर्ग आदि समस्त उच्च वर्ग पदों को तुच्छ मानते हुए यहां के मनुष्यों को धन्यवाद देते हैं[३]। मनुष्य को मोक्ष दिलाने में इन चारों का महत्वपूर्ण स्थान है।

सत्गुरु - मानव को अध्यात्म मार्ग की ओर उन्मुख करनेवाला गुरु है। गुरु का 'सद्' होना आवश्यक है और सद्गुरु की निशानी है—

सत्गुरु साधो वाको कहिए, जो अगम की देवे गम
हद बेहद सबे समझाए, भाने मन को भरम[४]

अर्थात्, सत्गुरु वह है जो उस परमात्मा को, जिसे वेदों ने निगम कहा है,[५] स्वरूप

१-कीरन्तन ग्रन्थ

२-कल्पायुषां स्थानजयात् पुनर्भवात् क्षणायुषां भारतभूजयो वरम्।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः॥ (भागवत ५-१९-२३)

३-सृष्टि विज्ञान वर्ण, पृ० ८ ४-कीरन्तन ग्रंथ

५-वेद अगम कहे उलटे पीछे, नेति नेति कर गाया
खबर न पड़ी बिन्द उपज्या कहां से, ताथे नाम निगम धराया' -कीरन्तन

तथा स्थान निर्धारित करके उस अलख कहे जाने वाले ब्रह्म के दर्शन कराने की सामर्थ्य रखता हो। ऐसे गुरु से दीक्षा लेनी चहिए—

श्री महामति कहे गुरु सोई कीजे, जो अलख की देवे लख
इन उलटी से उलटाए के, पिया प्रेमे करे सन्मुख[१]

सद्गुरु के ज्ञान को 'जागृत जीव' ही ग्रहण कर सकता है, साधारण जीव नहीं।

जाग्रत जीव अथवा आत्मा –

श्री प्राणनाथजी के अनुसार मन का सम्बन्ध सांसारिक कार्य-कलापों से तथा आत्माका सम्बन्ध परमात्मा से होता है। आत्मा जब तक सुप्तावस्था में रहती है, उसे तब तक अध्यात्म ज्ञान प्राप्त नहीं होता। वह मनको प्रेरणा के अनुरूप ही सब कार्य करती है। वह स्वतः अच्छाई-बुराई का निर्णय करने में असमर्थ रहती है। इस आत्मा की इसी सुप्तावस्था को 'जीव' कहते । जब यही जीव मन का साथ छोड़कर ईश्वर की ओर उन्मुख होता है तो 'जाग्रत जीव' या आत्मा' कहलाने लगती है। 'जाग्रत जीव' तथा मन में विरोध बना रहता है। मन विषयों में लिप्त रहने के कारण ऐसे कार्य कर बैठता है जिनसे जीव को नरक में जाना पड़ता है,[२] परन्तु आत्मा ऐसे बुरे कार्यों का सदा विरोध करती है। बुद्धि को सदा आत्मा का ही अनुसरण

१–वैराट का कोहेडा उल्टा नामक 'कलस' के प्रकरण में प्राणनाथजी ने विश्व की तुलना वृक्ष से की है। परन्तु यह वृक्ष उल्टा है–इसकी जड़ ऊपर [आकाश की ओर] और फैलाव, पत्तियां नीचे हैं–

अक्षर रूपी वृक्ष है, निरंजन तिनकी डार
त्रिदेवा शाखा भई, पत्र भयो संसार –[कबीर]

संसार (मृत्युलोक) के ऊपर सतावां लोक–सतलोक है जहाँ त्रिदेवा-ब्रह्म विष्णु, शिव–की तीन पुरी हैं। इनसे ऊपर काल निरंजन है तथा काल निरंजन से ऊपर अक्षर भगवान हें। इस संसार–रूपी वृक्ष का बीज अक्षर भगवान में (कारण–रूप में) निहित है। इस वृक्ष की मुख्य डार तना 'काल निरंजन' है और प्रशाखाएं त्रिदेवा हें, जिनमे विश्व–रूपी पत्तियां निकली हैं। अतः यह विश्व–रूपी वृक्ष उल्टा हुआ। जो गुरु इस उल्टे को सुल्टा करके शिष्य को जड़ (अक्षर तथा अक्षरातीत) तक पहुंचाने की सामर्थ्य रखता हो, वही सद्गुरु है।

२–मन का कहा न मानिये मन है पक्का धूर्त
ले जाये नरक में, और बाह देवे छूट – [कबीर]

करना चाहिए, मन का नहीं। प्राणनाथजी ने मन से आत्मा की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए 'आत्मा की आवाज़' को महत्व दिया है। जिस काम में आत्मा को साक्षी (समर्थन) प्राप्त न हो, वह कार्य नहीं करना चाहिए—

जो लौं आतम न देवे साख, तो लौं प्रमोध दीजे भले दस लाख[1]

आत्मा की आवाज का अनुसरण करनेवाला मनुष्य ही दुर्लभ चार पदार्थों का सदुपयोग कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

कलियुग

कलियुग में यद्यपि सर्वत्र अधर्म व अन्याय का बोलबाला है[2] तथापि ईश्वर-भक्तों के लिए यह सुअवसर है। इसमें ढाई घड़ियों में ही परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है[3]। जिसने कलियुग में परमात्मा को प्राप्त नहीं किया, वह कभी भी परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि जो वैरागी चित् से लगभग एक घंटे भी तपस्या नहीं कर सका, वह अन्य युगों में सैकड़ों वर्षों तक तपस्या कर सकेगा, यह कैसे संभव व विश्वसनीय है।

३८,८८,००० वर्षों के बाद कलियुग का पुनरागमन होता है। इसकी उम्र भी अन्य तीन युगों से कम है। सतयुग की आयुष्य १७,२८,००० वर्ष, त्रेता युग की १२,९६,००० वर्ष द्वापर युग की ८,६४,००० वर्ष और कलियुग की ४,३२,००० वर्ष की होती है।

कलियुग में पापों का बोलबाला होने से इसकी उम्र चार लाख बत्तीस हजार साल से भी कम हो जाती है[4]। एक ग्रहण [सूर्य अथवा चन्द्रग्रहण] लगने से इसकी उम्र के एक सौ पच्चीस वर्ष कम हो जाते हैं। चौंतीस सौ बारह ग्रहण कलियुग में लगते हैं[5]। अतः ४२,६५,०० वर्ष तो कलि के पापों (ग्रहण) में कट जायेंगे[6]। बाकी

१–प्रकाश ग्रंथ हिन्दी

२–'केहेर किया रे बडा कलिए जग में' – कीरन्तन ग्रंथ

३–एक घडी साढ़े २२ मिनट की होती है। लगभग ५६ मिनट में ही, कलियुग में परमात्मा का साक्षात्कार किया जा सकता है।

४–कीरन्तन– 'कलियुग की आबरदा [उम्र] कही, चार लाख बत्तीस हजार।
काटे दिन पापे, लिखेय मांहे शास्त्र, देखो अर्थ अन्दर के विचार'

५–'जब ग्रहण लगे चौंतीस सौ बारहा, तब कलियुग को होए निपटारा'

६–सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० १०

पांच हजार पांच सौ वर्ष ही कलियुग की उम्र होगी अर्थात् कलि का प्रभाव पांच हजार पांच सौ वर्ष तक ही रहता है१ । अन्य युगों को देखते हुए यह आयुष्य (समय) बहुत ही कम है । इतने लम्बे तीन युगों के बाद आनेवाले इस समय में मानव को मोक्ष प्राप्ति के लिए अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिए ।

भरत खण्ड

अतल लोक से दस हजार योजन ऊपर मृत्यु-लोक है । मृत्यु लोक में बहुत समय पहले [देवयुग में] एक ही शासन था । महाराजा प्रियव्रत ने इसे सात द्वीपों में विभक्त कर अपने पुत्रों में बांट दिया । जम्बू द्वीप का विस्तार एक लाख योजन का है । जम्बू द्वीप के पुनः नौ खण्ड हुए जिनमें एक भरतवर्ष [अथवा भरत-खण्ड] है अर्थात् जिस भारतवर्ष में हम रहते हैं, यह जम्बू द्वीप का नौवां भाग है । तीनों [स्वर्ग मृत्यु पाताल], लोकों में मृत्युलोक और उसमें भी भारतवर्ष खण्ड को विशेष महत्व देने का कारण यह है कि—

१. कर्म-भूमि होने के कारण भारतवर्ष का गौरव सबसे अधिक माना गया है । इसके अतिरिक्त जितनी भी अन्य भूमियां हैं' वे सब भोग भूमियां हैं,

२. पूर्णब्रह्म परमात्मा के अवतारों के चरण-स्पर्श का सौभाग्य केवल इसी खण्ड को प्राप्त है ।

३. स्वर्ग के सुखों को देनेवाले तथा मानसिक विचारों को पवित्र करनेवाले साढ़े तीन कोटि तीर्थ-स्थान भी इसी खंड में हैं । प्राणनाथजी का यह मत उपनिषदों के अनुरूप ही है-'सार्ध त्रिकोटितीर्थेषु स्नानपुण्यप्रभावतः प्रादुर्भूतो मनसि मे विचारः सोऽय-मीदृशः' [महोपनिषद्]२ ।

४. ऋषि, महर्षि एवं अनेक महापुरुषों ने इसको अपार गौरव प्रदान किया है । कर्म, उपासना तथा ज्ञान-इन तीन काण्डों का सम्यक् अनुसरण भी इसी आस्तिक खण्ड में होता है । धर्माधर्म एवं सदसत् विवेक के लिए एकमात्र खण्ड ज्ञान भूमि है । इसी खण्ड में तीन देवों की तीन पुरियां हैं, ब्रह्मा की प्रयाग, विष्णु की मथुरा और शिव की काशी ।

१–'बीतेगा पांच हजार सौ पांचा, तब यह वचन होयेगा सांचा' –'जुगलदास की पत्री' सं० १७३५ तक कलियुग ४५०० वर्ष व्यतीत हो चुके थे, बाकी एक हजार वर्ष आयु थी। इस १००० वर्ष में ४४८ ग्रहण लगने थे, क्योंकि १७३५ तक २९६४ ग्रहण लग चुके थे ।

२–सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० ११

५. अपरा विद्या-वेद, शास्त्र, उपनिषदादि का प्रचार अथवा तत्वबोध तथा परा विद्या-ब्रह्मज्ञान द्वारा ब्रह्मतत्व का बोध भी यहीं पर होता है ।
६. सर्वाधिक महत्वशाली बात यह है कि आत्मा-साधन का मुख्य साधन-रूप परमात्मा की जैसी भक्ति यहां बन सकती है, वैसी अन्यत्र कदापि नहीं ।

मोक्ष-प्राप्ति में सहायक उपरोक्त चार पदार्थों को पाकर भी जिसने मोक्ष प्राप्त नहीं किया, वह अभागा है । इस समय को [कलियुग में सद्गुरु प्रगट होने के समय की] और इन चारों पदार्थों की इच्छा तो 'मोरध्वज'[1] आदि तथा अन्य ऋषि मुनियों ने भी की थी । इसी से इसका महत्व स्पष्ट है । मोक्ष की कामना करने वालों को आठ श्रेणियों में रखा गया है, उसी के अनुसार मोक्ष-स्थल [जिसे आठ 'बहिश्त' भी कहते हैं] निर्धारित किये गये हैं[2] जो इस प्रकार हैं—

१—ब्रज की बहिश्त	५—पद्मावतीपुरी की बहिश्त
२—रास की बहिश्त	६—कुमारिकाओं की बहिश्त
३—महम्मदी बहिश्त	७—पैगम्बरी बहिश्त
४—मलकूती बहिश्त	८—आमखलक की बहिश्त

१—प्रह्लाद युधिष्ठर वसुदेव, बलि रुक्मांगद हरिचन्द्र
सगाल दधीचि मोरध्वज, कसनी कर छूटे या फंद
सतवादी नाम केते लेऊं, कई हुए तरन तारन
सत न छोड़ें कई दुख सहे, सो यादिन के कारण "कीर्तन"

२—बहिश्त हाल चार कुरान में, कह्या आठ होसी आखर
ए भी सुनो तुम वेवरा, देखो मोमिनो सहुर कर ॥ ११ ॥
तिन भिस्त हाल चार का वेवरा, एक मलकूती बहिश्त
दो बहिश्त अव्वल लैल के, चौथी महम्मद आए जित १२ ॥
आखर बहिश्तों का वेवरा, जो नइया होसी चार
जो होसी वक्त क्यामत के, तिनका कहूं निर्वार ॥ १३ ॥
भिस्त अव्वल रूहों अक्स के, ए जो होसी भिस्त नई
भिश्त होसी दूजी फरिश्त, जो गिरोह जबरूत सो कही ॥ १४ ॥
पैगम्बरो बहिश्त तीसरी, जिन्हें दिये हक पैगाम
चौथी बहिश्त जो होएसी, पावे खलक जो आम ॥ १५ ॥ [खुलासा, प्र० ५]

(१) व्रज की बहिश्त [मोक्ष स्थान] – यह अक्षर के चिद्-सबलिक के कारण में है। गोलोक की सामग्री से युक्त चौरासी कोस व्रजभूमि-जहां श्रीकृष्ण की बाललीला हुई-की समस्त सामग्री [जीव] तथा भगवान कृष्ण की ग्यारह वर्ष की उम्र तक की कीगयी बाललीलाओं का ध्यान करनेवालों [अर्थात् 'बालकृष्ण' के उपासकों] का यह मोक्ष-स्थल है।

(२) रास की बहिश्त – इसके दो विभाग किये गये हैं :

[क] श्रीकृष्ण रास खेलते हुए अन्तर्धान होगये थे। अन्तर्धान तक की रास का ध्यान धरने वाले रास की बहिश्त, जो सबलिक ब्रह्म के महाकारण में है, को प्राप्त होंगे[1]।

[ख] अन्तर्धान के बाद कृष्ण के पुनः प्रगट होने से प्रातः तक होनेवाली रास का स्थान है। यह 'केवलब्रह्म' में है[2]।

(३) पद्मावतीपुरी की बहिश्त – यह अक्षर के सत् अंग सत्स्वरूप के 'शुद्ध चेतन' [अथवा निर्मल चैतन्य] में है। परमधाम की सखियों की सुरताओं ने जिन जीवों पर बैठकर इस विश्व के कार्य-कलापों को देखा उन जीवों के लिए यह स्थान सुरक्षित है।

(४) कुमारिका बहिश्त – इसे फरिश्तों की बहिश्त भी कहते हैं। यह स्थान 'सत्स्वरूप' के महाकारण-स्थान में है। अक्षरधाम की चौवीस हजार सखियां, जिन्हें 'कुमारिका' कहते हैं, इस स्थान को प्राप्त होंगी। इस बहिश्त का नामकरण भी उन्हीं सखियों के नाम पर ही किया गया है।

(५) आमखलक की बहिश्त – इस बहिश्त में जीवों को मोक्ष प्राप्त होगा। यह मोक्ष-स्थल अर्थात् प्रणव-ब्रह्म में (अव्याकृत के स्थूल में) है।

(६) महम्मदी बहिश्त – इसमें महम्मद पर ईमान लाने वाले तथा बावन मसले अरकान [महम्मद के फुरमान] पर चलनेवाले जीव आते हैं। यह स्थान सबलिक के निर्मल चैतन्य में है[3]। इसे तृतीय कृष्ण का मुक्तस्थान भी कहते हैं[4]।

(७) मलकूती बहिश्त – यह त्रिदेव, ब्रह्मा, विष्णु, शिव का मोक्ष स्थान है। यह सबलक के स्थूल में है[5]।

१–वैराट निरूपण, पृ० २३ तथा सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० ६४

२–कुछ लोगों के मतानुसार यह बहिश्त सबलिक–ब्रह्म के शुद्ध चेतन में है जिसे निर्मल चेतन भी कहते हैं।

३–सृष्टि विज्ञान वर्णन [जामनगर प्रकाशन] पृ० ६४

४–विराट पट दर्शन, पृ० १५८

५–'ए जो ठौर सबलक त्रिगुण को परात्म।'

(८) पैगम्बरी बहिश्त–यह 'अव्याकृत' के कारण में है[१]। यह स्थान ईश्वर अथवा महम्मद का पैगाम [सन्देश] देनेवाले जीवों को प्राप्त होगा। इसे आचार्यों का मुक्ति-स्थल भी कहते हैं[२]।

स्वप्नावस्था और ब्रह्मांड

नींद की चार अवस्थाएं मानी गयी हैं-स्वप्न, सुषुप्ति, जाग्रत और तुरिया। कभी-कभी मनुष्य नींद में उन वस्तुओं अथवा घटनाओं को देखता है जिसे वह अपने जीवन काल में कभी देख चुका होता है। जाग्र होने पर नींद में देखी हुई इन घटनाओं को वह प्रायः भूल सा जाता है। क्योंकि इन्हें उसने 'स्वप्नावस्था' (अचेतनावस्था) में देखा था। जिन घटनाओं को वह सुषुप्ति अवस्था [चेतनाचेनतावस्था] में देखता, है वह उसे जाग्रत होने पर भी याद रहती है। मनुष्य के सो जाने पर भी कभी-कभी उसका मस्तिष्क जाग्रतावस्था जैसा-ही कार्य करता रहता है। वह पास में होनेवाली बातों को सुनता-समझता तो है, पर नींदावस्था में होने के कारण उत्तर नहीं देता। यह नींद की 'जाग्रतावस्था' है। 'ध्यान' को तुरियावस्था कहते हैं। आर्थात् जब मानव किसी भी कार्य में इतना तल्लीन होता है कि उसे अपने आस-पास होनेवाली घटनाओं का ज्ञान नहीं रहता और उसकी अवस्था सोये हुए व्यक्ति से अभिन्न होती है, वैसी अवस्था को ही 'ध्यानावस्था अथवा 'तुरियावस्था' कहते हैं।

इन विभिन्न अवस्थाओं में, मानव शरीर में विभिन्न तत्वों की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है-

स्वप्नावस्था का शरीर – पांच तत्वों और चार अतःकरणों से बना होता है। ये पांच तत्व हैं-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश और चार अन्तःकरण हैं-मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार।

सषुप्ति का शरीर – निम्न सत्रह तत्वों का बना हुआ होता है – पांच तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, पांच ज्ञानेंद्री-जीभ, त्वचा, आंख, कान, नासिका पांच तत्व और मन तथा बुद्धि।

जाग्रतावस्था का शरीर – पच्चीस तत्वों का बना होता है पांच तत्व, पांच तन्मात्रा, पांच ज्ञानेन्द्री, पांच कर्मेन्द्री चार अन्तःकरण और जीव।

तुरिया का शरीर – छः तत्वों का बना हुआ होता है-पांच तत्व और आत्मा।

१–कुछ लोगों के मतानुसार यह सबलिक के कारण में है।

२–सृष्टि विज्ञान वर्णन, पृ० ५४

श्री प्राणनाथजी के अनुसार इस ब्रह्मांड की उत्पत्ति भी नींद के फलस्वरूप हुई है[१]। जब अक्षर भगवान तथा सखियों ने एक-दूसरे की लीला को देखने की इच्छा की तो पूर्णब्रह्म ने उनपर नींद का आवरण डाल दिया। वे 'स्वप्नावस्था' में काल-माया का ब्रह्मांड और उसमें होनेवाली ब्रजलीलाओं को देखने लगे[२]। योगमाया के ब्रह्माण्ड और उसमें हानेवाली रासलीलाओं को अक्षर तथा सखियों ने सुषुप्ति अवस्था में देखा। रासलीला देखने के बाद जब वे [अक्षर तथा सखियां[एक क्षण के लिए सचेत हुए तो सखियों को भान हुआ हमने पानी, पत्थर और आग की पूजा नहीं की और अक्षर को आभासित हुआ कि मैंने परमधाम नहीं देखा-यह उनकी 'जाग्रतावस्था' थी। इसी 'ध्यान' में लीन वे इस 'जागनी ब्रह्मांड' को देखने लगे। यह उनकी तुरियावस्था हुई। इस ब्रह्मांड को देखने के बाद जब वे अपने-अपने धाम में उठेंगे और सोचेंगे कि हमने क्या-क्या देखा है, वह अवस्था 'तुरियातीत' होगी।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्राणनाथजी ने अखण्ड-भूमि तथा बेहद भूमि का जो वर्णन किया है, वह सर्वथा नवीन है। दर्शन के क्षेत्र में प्रचलित मान्यताओं तथा प्राणनाथजी के चिन्तन में यदि कोई समानता है तो वह सिर्फ जीव, जगत् व आत्मा आदि की व्याख्या में ही है। इसका तुलनात्मक अध्ययन आगे किया जा रहा है। नि-जानन्द सम्प्रदाय का दर्शन : तुलनात्मक संदर्भ में।

श्री प्राणनाथजी के समय में भारतीय दर्शन के क्षेत्र में अद्वैतवादी, द्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी, नाथ, सिद्ध, सन्त, जैन और बौद्धों की परम्परा भी किसी-न-किसी रूप में चल रही थी। इनमें से कुछेक का उल्लेख प्राणनाथजी ने स्वयं किया है-

'आए गछ चौरासी जो अरहन्ती, दत्तजी दशनामी जो महन्ती
　　　　आए सकल उपासी वेदान्ती
आए चारों सम्प्रदाय के साधुजन, चार आश्रम और चार वर्ण

१-नारायण की नींद से ए उपजो संसार
पांच तत्व गुण तीन भये, चौदह लोक विस्तार
नारायण जब जागहीं, सकल सुपन मिट जाये
पुरुष प्रकृति न रहे, पिण्ड ब्रह्मांड सब लय हो जाये

२-ज्यों जाग्रत में खेलते हुते, त्यों सपने में देखने लगे'।

आए चारों खूंटो के गावते गुण
आए षट् दर्शन षट् शास्त्रभेदी, बहत्तर फिरके अथर्व वेदी
आए सकल कैदी और बेकैदी

अब देखना यह है कि अपने युग में प्रचलित इन विभिन्न चिन्तन धाराओं तथा प्राणनाथजी की चिन्तन धारा [प्रणामी दर्शन] में कहां तक साम्य अथवा वैषम्य है।

शांकराद्वैत और प्रणामी दर्शन :

अद्वैतवाद के मुख्य समर्थक शंकराचार्य हैं, उनके अनुसार सत्यं ज्ञानमनन्तं हैं और जगत् मिथ्या, क्योंकि ब्रह्म बिना किसी प्रयोजन के, सिर्फ लीला के लिए संसार की उत्पत्ति करता है।

श्री प्राणनाथजी इस मत से सहमत नहीं, उनका कहना है कि विश्व को मिथ्या नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें ब्रह्मकी सत्ता है-'जो यामें ब्रह्म सत्ता न होती तो अधक्षण रहने न पावे'। यदि ब्रह्म-सत्य है तो उसकी सत्ता से युक्त वस्तु मिथ्या कैसे हो सकती है? अतएव यह दृश्य-जगत् यद्यपि नश्वर है, पर मिथ्या नहीं।

भक्त और भक्ति के बारे में भी प्राणनाथजी का यही मत है। शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म के अलावा प्रत्येक वस्तु मिथ्या है, अतएव भक्त और भगवान का भेद भी मिथ्या है और भक्ति भी मिथ्या है। पर प्राणनाथजी के अनुसार ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र साधन भक्ति है[1]। यदि 'भक्ति' मिथ्या है तो परमात्मा को सत्य कैसे माना जा सकता है, क्योंकि मिथ्या द्वारा मिथ्या वस्तु की ही प्राप्ति हो सकती है, सत्य और अखण्ड वस्तु को नहीं। यदि परमात्मा सत्य है तो भक्ति को मिथ्या कदापि नहीं कहा जा सकता।

माध्व मत (द्वैतवाद) और प्रणामी मत :

माध्व के अनुसार पांच प्रकार के भेद शाश्वत हैं –

१. ईश्वर और जीव का भेद – 'ईश्वर सर्वज्ञ है और जीव अज्ञानी'
२. ईश्वर और जगत् – 'ईश्वर चेतन है और जगत् जड़ है'
३. जीव व जगत् – 'जीव चेतन, जगत् जड़ है'

१–ऐसा न कहियो कोई जन, धनी पाया कसनी बिन,

४. जीव व जीव – भेद 'संसारिक कार्य कलापों का अनुभव प्राप्त करनेवाला जीव और मोक्ष प्राप्त करनेवाला जीव,

५. जड़ और जड़ – 'पत्थर और वृक्ष ।

श्री प्राणनाथजी के मतानुसार जब तक जीव सुप्तावस्था में रहता है या संसार में लिप्त रहता है, वह अज्ञानी होता है । जब वह भक्ति मार्ग का अनुसरण करके ई-श्वर-प्राप्ति के पथ पर आगे बढ़ता है तो वह जाग्रत जीव अथवा आत्मा कहलाता है । इस जाग्रत जीव का सम्बन्ध परमात्मा से है । वह परमात्मा से उसी समय तक भिन्न है जब तक वह जाग्रन नहीं होता । इसी तरह ईश्वर से रहित संसार की प्रत्येक वस्तु भले ही वह चेतन वस्तु अथवा मानव ही क्यों न हो, जड़ है । जगत् का वह अंश चेतन है जिसे अध्यात्म ज्ञान प्राप्त है जिसे पूर्णब्रह्म की पहिचान है ।

मोक्ष से संबन्धित प्राणनाथजी का मत अभिनव है [जिसका सविस्तार उल्लेख इसी अध्याय में 'मोक्ष' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है] और माध्व-मत से सर्वथा भिन्न है ।

प्राणनाथजी का 'अवतारवाद' से सम्बन्धित मत भी 'माध्व' से भिन्न है । माध्व ने विष्णु के अवतारों को ही महत्व दिया है जबकि प्राणनाथजी ने पूर्णब्रह्म पर-मात्मा के अवतारों- बुद्धनिष्कलंक तथा (विशिष्ट) कृष्णावतार – को ही महत्व दिया है (सविस्तार उल्लेख 'अवतार' शीर्षक के अन्तर्गत इसी अध्याय में किया गया है) ।

निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैत और प्रणामी मत :

जीव, प्रकृति और परमात्मा में द्वैत और अद्वैत सम्बन्ध मानने के कारण सिद्धांत द्वैताद्वैतवाद कहलाया[1] ।

प्राणनाथजी ने परमात्मा का सम्बन्ध आत्मा से माना है, जीव से नहीं । परमात्मा सच्चिदानन्द है । आनन्द प्राप्ति के लिए उसे द्वैत रूप धारण करना पड़ा । आनन्द अंग के विश्लेषण से श्री श्यामाजी तथा सखियों का अस्तित्व माना गया है । वे उनके साथ लीला विहार करते हैं, अतएव परमात्मा स्वलीलाद्वैत है ।

१–इस मत में जीवात्मा, परमात्मा और प्रकृति, ये तीनों आपस में भिन्न हैं, इसीलिये ये द्वैतवादी हैं । जीव तथा प्रकृति ये दोनों परमात्मा के आधीन हैं । परमात्मा के बिना इन दोनों की स्थिति ही नहीं हो सकती, परमात्मा से उनका इतना ही अंतर है, जितना कि समुद्र का जल की तरंग से इसीलिए अद्वैतवादी हुए । – उमेश मिश्र · भारतीय दर्शन, पृ० ४२१

द्वैताद्वैत सम्प्रदाय तथा प्राणनाथजी के मत में यदि कोई समता है, तो यही कि साधन के क्षेत्र में दोनों ने प्रेम-लक्षणा अनुरागात्मक भक्ति को महत्व दिया है।

चैतन्य का भेदाभेदवाद और प्रणामी मत :

भेदाभेदवाद के अनुसार संसारिकावस्था में जीव परमात्मा से भिन्न है, परंतु मोक्षावस्था में यह परमात्मा से मिल जाता है, इसलिए जीव और परमात्म में भेद और अभेद दोनों हैं[1]।

प्राणनाथजी ने जीव को विशेष महत्व नहीं दिया, जैसा कि ऊपर कह जा चुका है। उन्होंने 'जाग्रत' जीव (आत्मा)[2] को ही परमात्मा से सम्बन्धित माना है।

श्री प्राणनाथजी का मत 'चैतन्य महाप्रभु' के मत से बहुत कुछ मिलता है। उन्होंने चैतन्य की तरह श्रीकृष्ण को भी आराध्य माना है, परन्तु ये वृन्दावनवासी कृष्ण नहीं हैं, ये ग्यारह वर्ष और बावन दिन की उम्र वाले तथा रास खेलने वाले कृष्ण हैं जो पूर्णब्रह्म परमात्मा के आवेश से युक्त हैं[3]।

चैतन्य ने रमणीय उपासना को महत्व दिया है[4] तो प्राणनाथजी ने भी "सखि भाव से भजिए भरतार" कहकर गोपी भाव से आराधना की है और श्रीमद् भागवत को ही अपना शास्त्र माना है। भागवत शास्त्र में भी उन्होंने दशम-स्कन्ध के प्रथम पैंतीस अध्यायों को ही विशेष महत्व दिया है क्योंकि इसमें 'कृष्ण-गोपी-वल्लभा' का उल्लेख किया गया है। इससे भी अधिक महत्व उन्होंने उन पांच अध्यायों को दिया है जिसमें रासलीला का वर्णन है। इस 'पंचाध्यायी' को ही वे भागवत का सार मानते हैं। चूंकि इसमें उस प्रेम के दर्शन होते हैं जो सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है। इससे स्पष्ट है कि जहां तक प्रेम-भक्ति और रमणीय साधना का प्रश्न है, प्राणनाथजी तथा चैतन्य मत में पर्याप्त समानता है।

जैन-बौद्ध दर्शन और प्रणामी मत :

उपर्युक्त पद्धतियां वैदिक प्रमाण को स्वीकार करके चलने वाली दर्शन पद्धतियां थीं।

१-वही, पृ० ३९९-४०४

२-'जीव क्यों टल होसी आतम'

३-विस्तार के लिए देखिए इसी अध्याय के अन्तर्गत 'त्रिविध लीला' शीर्षक।

४-'भागवत सम्प्रदाय,' पृ० ५१९

इसके अलावा भारतीय दर्शन की एक और धारा प्रवाहित थी जो वैदिक प्रमाण को अस्वीकार कर चली थी। वह थो जैन और बौद्ध दर्शन की धारा।

एक पद[1] में सिद्धों और नाथ पंथियों से प्राणनाथजी के शास्त्रार्थ होने का उल्लेख मिलता है। नाथ पंथियों का सम्बन्ध बौद्ध से है। बौद्ध-मत की दो शाखाएं महायान और हीनयान थीं। महायान से वज्रयानी सिद्धों का जन्म हुआ, जिसने आगे चलकर अवधूत-मत का रूप धारण किया। सिद्ध मार्ग अथवा अवधूत मार्ग में योग को विशेष महत्व दिया गया था। यही योग-मार्ग नाथ-मत था।

श्री प्राणनाथजी शुद्ध साकार के उपासक थे। सगुणोपासना योगियों की साधना पद्धति के प्रतिकूल है। उन्होंने योग की विभिन्न प्रक्रियाओं तथा मन्त्र चमत्कार की सिद्धियों का विरोध किया है,[2] और प्रेमलक्षणा भक्ति को महत्व दिया है। "आनन्दे

१-आए नवनाथ चौरासी सिद्ध, बरसया नूर सकल या विध।
इत आए बुद्धजी ऐसी किध, भई नई रे नवखण्ड आरती ॥ — कीरन्तन ग्रन्थ

२-"कई कहावें दर्शनी, धरें जुदे जुदे भेष
सुध आप ना पार की, हृदय अंधेरी विशेष ॥६॥
कई नोंचे कई मूंडे, कोई बढावे केस
कई काले कई उजले, कई धरे भगुए भेस ॥७॥
कई छेदे कई न छेदे, कोई बहुत फारे कान
कोई माला तिलक धोती, कोई धर बैठे ध्यान ॥८॥
कई जिन्दे मलंग मुल्ला, बाग दे मन धीर
कई जाये पाक होवही, कई मीर पीर फकीर ॥९॥
कई लांगरी, बोदले, कई आलम पढ़े इलम
कई औलिए बेकैद सूफी, पर छोडे नहीं जुलम ॥१०॥
कई जुगते जोगी जंगम, कई जुगते सन्यास
कई जुगते देह दमे, पर छोडे नहीं यम फांस ॥११॥
कोई शिवी कोई वैष्णवी, कोई साखी समरथ
लिए जो सारे गुमाने, सब खेले छल अनर्थ ॥१२॥
कई अवतार तिथकर, कई देव दानव बडे बल
बुजरक नाम धरावहीं, पर छोडे न काहू छल ॥१५॥

रोतां रमिए एम, जेने कहिये ते लक्षण प्रेम१।'

सन्त मत :

सन्त-मत का जन्म विभिन्न साधनाओं के संयोग से हुआ था। इसमें वैष्णवों को भक्ति, सूफियों के प्रेम और नाथों की योग-साधना के एकसाथ दर्शन होते हैं।

प्राणनाथजी के अनुसार ये मत-मतान्तर व्यर्थ हैं, क्योंकि वे सब 'याही इण्डमें रहे उरझाए'। बेहद का समाचार देनेवालों को ही साधु, सन्त कहा जा सकता है। क्योंकि-

"हद चले सो मानवी, बेहद चले सो साध,
हद बेहद दोनों तजे ताको मतो अगाध।'

कई डिंभक करामात, कई जंतर मंतर मसान
कई जड़ी मूली औषधी, कई गुटका धात रसायन ॥१७॥
कई जुगते सिद्ध साधक, कई व्रतधारी मौन
कई मठ वाले, पिण्ड पाले, कई फिरे होय नगन ॥१८॥
कई षट् चक्र नाड़ी पवन, कई अजपा अनहद
कई त्रिवेनी त्रिकुटी, ज्योति सोहम् राते शब्द ॥१९॥
कई संत जो महंत, कई देखिते दिगम्बर
पर छल न छोड़े काहू को, कई कापडी कलन्दर ॥२०॥
यों वैराग जो साधना, करें जुदे जुदे उपचार
यूं चले सब पंथ पैंडे, यूं खेले संसार ॥२८॥
बाजीगर न्यारा रह्या, ए खेलत कबूतर
तो कबूतर जो खेले के, सो क्यों पावें बाजीगर ॥३१॥
धरे नाम खसम के, जुदे जुदे आप अनेक
अनेक रंगे, संगे, ढंगे, विध विध करे खेल बिवेक ॥३३॥
खसम एक सबन का, नहीं न दूसरा कोय
ए विचारे तो करे, जो आप साचे होय ॥३४॥ (कलस – प्र० १४)

१– पंथ होवे कोट कलप, प्रेम पहुंचावे मिने पलक
× × ×
जब चढ़िये घाटी प्रेम, तब नरहे कछु नेम
जब चढे प्रेम के पुंज, तब नजरों आया निकुंज।

जो उस 'अगम' की 'गम' दे सके, वही सन्त है—

सत्गुरु, साधो वाको कहिए, जो अगम की देवे गम
इन उल्टी से उल्टाये के, पिया प्रेमे करे सन्मुख (कीर्तन)

बेहद तक पहुंचने वाले सिर्फ कबीर और वल्लभाचार्य हैं[1] शेष साधु सन्त इसी इण्ड के हैं। कबीर की गणना तो प्राणनाथजी ने अक्षर भगवान तक पहुँचने वाले पांच महापुरुषों में की है—

पहले कह्या मैं साथ को, इन पांचो के नाम।
शुकदेव और सनकादिक, कबीर शिव भगवान ॥ (कलस)

कबीर से प्राणनाथजी का मतैक्य सिर्फ हिन्दू-मुस्लिम एकता और दोनों को पाखण्डपूर्ण रीतियों और सामाजिक कुरीतियों का विरोध करने में है। उन्होंने कबीर की तरह अपने इस मत को 'कथनी' तक ही सीमित नहीं रखा, व्यवहारिक जीवन में भी स्थान दिया है। उनकी धार्मिक सभा में कुरान और पुराण का एक साथ पाठ होता था। उनके अनुयायों में हिंदू मुस्लिम दोनों थे।

सूफी मत :

श्री प्राणनाथजी और सूफियों में केवल प्रेम-साधना में ही कुछ साम्य है, पर इसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने सूफी विचारधारा से प्रेरणा या प्रभाव ग्रहण किया है।

सूफियों की साधना प्रेम-साधना है। प्रेम और सौन्दर्य का चिर सम्बन्ध है। प्राणनाथजी को जिस सौन्दर्य ने आकर्षित किया है, वह अलौकिक तो था ही, उस तक पहुँचने का सामर्थ्य भी लौकिक नहीं था। सूफियों ने 'इश्क मजाजी' को ही माध्यम स्वीकार किया है।

युगलस्वरूप के अंगों का 'नूर' और 'गोराई' वर्णनातीत है। एक नाखून के नूर के सामने करोड़ों चांद और सूर्यों का प्रकाश भी फीका है। युगलस्वरूप का हंसता हुआ मुखमण्डल, मीठी रसना और बांकी चीतवन किसका मन न मोह लेगी। सुन्दर शरीर पर सुन्दर श्रृंगार से शोभा हजार गुनी बढ़ गयी हैं जिस अंग पर भी

१-विस्तार के लिए देखिए 'साधना' अध्याय

दृष्टि जाती है, उसी को निर्निमेष देखती रहती है[1]। माशूक का यह सुन्दर स्वरूप आशिक को अपनी ओर खींचता है। आत्मा सांसारिक बन्धनों को तोड़कर परमात्मा से मिलने के लिए तड़प उठती है। सूफियों की तरह प्राणनाथजी ने यह स्वीकार नहीं किया कि माशूक [परमात्मा] आशिक (आत्मा) से मिलने के लिए व्याकुल रहता है।

मुस्लिम एकेश्वरवाद :

प्राणनाथजी के समय में इस्लाम का काफी बोलबाला था। यह कट्टरवादी, अनुदार औरंगजेब का शासनकाल था। वह हिन्दूधर्म पर प्रहार करता था। पण्डितों का अनादर करना और मन्दिरों को क्षति पहुँचाना, हिन्दुओं पर 'जजिया' लगाकर उन्हें मुसलमान बनने के लिए बाध्य करना, उसके धर्म के आवश्यक अङ्ग बन चुके थे।

श्री प्राणनाथजी ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई और कहा, 'हिन्दु-मुस्लिम में भेद कर अपने ही भाई 'आदम जात' पर जुल्म करना नासमझी है। दोनों कौमों में कोइ अन्तर नहीं। दोनों के मूलभूत सिद्धांत एक ही हैं, यदि कोई अन्तर है तो भेश-भाषा का-

बोली जुदी सबन की, सबका जुदा चलन
नाम जुदा कर दिया, तार्थे समझ न परी किन

और– जो कुछ कहा वेद ने, सोई कहा कतेब
दोनों बन्दे एक साहिब के, पर लड़त पाये बिन भेद

१–'स्वरूप सुन्दर सनकूल सकोमल रूह देख नैना खोल नूर जमाल
फेर फेर मेहबूब हृदये आवत जो किया किनने तेरा कौल फेल हाल
जामा जड़ाव जुडे अंग जुगत सों चार हार अम्बर करे झलकार
जगमगे पाग जोत जबर ज्यों, मुख मींठ नैनों पे जाऊं बलिहार
लाल अधुर हंसत मुख हरवटी, नासिका तिलक, निलवट भौंये केस
श्रवण भूषण मुख, दन्त मीठो रसना, ए देख दर्शन आवे जोश आवेश
बाहें चुड़ी बाजूबन्द सोहे, फुमका, पहुंची, काडो कडी हस्त कमल को मुदरी
नख का नूर चीर चढ़या आसमान में, ज्यों हक चलवन करत सब अंगुरी
रोशनी पटुके करि आकाश में, चरण भूषण, जामे, इजार जाडे
कहे श्री महामति मोमिन रूह दिल को, माशूक खेंचे तोहे अरस के माहिं।" - कीरन्तन ग्रंथ

वेद और कतेब [कुरान] में अन्तर नहीं है- इस्लाम का मुराद [तात्पर्य] उस जमात से है जो खुदा के साथ किसी को शरीक नहीं मानती है और फरिश्तों (देवी-देवताओं) आदि को परमात्मा का स्थान नहीं देती, उस पर परमात्मा की रहमत और सलामती अवश्य होगी। ऐसी धारणा होने के कारण इसका नाम इस्लाम रखा गया।

इस्लाम अनुयायियों के अनुसार उपरोक्त मत को स्वीकार करने वाले ही मुसलमान हैं। उनके मतानुसार हिन्दुओं के कई देवी-देवता हैं, उनका कोई एक परमात्मा नहीं। प्राणनाथजी ने कहा, हिन्दू भी 'एकेश्वरवाद' में विश्वास करते हैं, विभिन्न देवी-देवताओं का हिन्दूधर्म में वही स्थान है जो इस्लाम में फरिश्तों का। ईसाइयों के 'गाड' हिन्दुओं का ब्रह्मा, विष्णु, शिव और मुसलमानों के मेकाईल, अजाजील, अजराईल में सिर्फ भाषा का ही अन्तर है[1]।

हिन्दुओं को भी उन्होंने यही बात समझायी कि 'सबका खाविन्द एक ही पीऊ' है। धर्म और परमात्मा के नाम पर झगड़ा करना व्यर्थ है। अवतार अथवा पैगम्बर एक ही है। 'निष्कलंकावतार' और 'इमाम मेंहदी' भी एक ही हैं। अवतार अथवा पैगम्बर ईश्वर के ही 'अंश' हैं और परमात्मा का पैगाम देने के लिए ही अवतरित होते हैं, अतः उनके उपासक भी अन्ततोगत्वा उसी पूर्णब्रह्म परमात्मा के अनुयायी हैं-राम-रहीम का अन्तर व्यर्थ है।

प्राणनाथजी का यह मत इस्लाम के एकेश्वरवाद और पैगम्बरवाद से साम्य-रखता है।

इन विभिन्न मत-मतांतरों तथा प्रणामी-मत में दर्शन की अपेक्षा साधना के क्षेत्र में अधिक समानता है जिसका विवेचन 'साधना' अध्याय में किया गया है।

---

१ - गाड - जी : जनरेटर - ब्रह्मा : निर्माण कर्ता (मेकाइल)
ओ : आपरेटर - विष्णु : पालनकार्ता (अजाजील)
डी : डिस्ट्रक्टर - शिव संहारकर्ता (अजराईल)

विष्णु अजाजील फरिश्ता, ब्रह्मा मेकाईल।
जब्राईल जोश धनी का, रुद्र तामस अजराईल — खुलासा प्र० १२

होती है[1], वे उसी क्षण से 'क्षर' की उपासना छोड़कर 'अक्षरातीत' की उपासना करने लगती हैं। इस प्रकार ब्रह्मसृष्टि ने भी यद्यपि क्षर-पुरुष की उपासना की है, पर अस्थायी रूप से। उसके [क्षर के] स्थायी उपासक तो 'जीव-सृष्टि' ही हैं[2]।

इससे स्पष्ट है कि प्राणनाथजी ने पूर्णब्रह्म परमात्मा को ही आराध्य माना है, परन्तु त्रिसृष्टि सूत्र के आधार पर त्रिदेव आदि को जीव सृष्टि के आराध्य के रूप में स्वीकार किया है। त्रिदेव के अतिरिक्त उन्होंने श्रीकृष्णजी, ईसा तथा महम्मद (जिसकी व्याख्या उन्होंने विशिष्ट रूप में की है) को भी पूज्य माना है, पर इनका वही रूप मान्य था जो पूर्णब्रह्म परमात्मा की शक्ति से युक्त था। उदाहरण के लिए उन्हों ने ग्यारह वर्ष और बावन दिन की आयु वाले कृष्ण तथा रासलीला करनेवाले स्वरूप को ही मान्यता दी है, बादवाली लीलाएं करनेवाले कृष्ण को नहीं, क्योंकि रासलीला करनेवाले कृष्ण पूर्णब्रह्म की शक्ति से युक्त थे और बादवाले कृष्ण गोलोक और विष्णु के अवतार थे, पूर्णब्रह्म के नहीं (जिसका सविस्तार उल्लेख 'दर्शन' अध्याय में किया गया है)। ईसा और महम्मद भी इसीलिए पूज्य हुए, चूंकि यही कृष्ण कालांतर से ईसा [रूह अल्लाह] और आखरी महम्मद (इमाम मेंहदी) के रूप में प्रगट हुए[3] अर्थात् तीनों स्वरूप एक ही शक्ति (पूर्णब्रह्म की शक्ति) से युक्त थे, अतएव पूजनीय हुए।

श्री ठकुरानीजी रूह अल्लाह, महम्मद श्रीकृष्णजी श्याम।
सखियां रूहें दरगाह की, सूरत अक्षर फरिश्ते नाम ॥ (खुलासा)

आराधक

श्री प्राणनाथजी ने आराध्य और आराधक का विभाजन 'सृष्टि' के आधार पर

१–अहनिश तूं मेलो रहे, अपने पीऊ के संग
पीठ दे तिन पीऊ को, करे ऊपर के रंग ॥३॥
× × ×
तूं आपे न्यारी होत है, पीऊ नहीं तुम से दूर
परदा तूं ही करत है, अन्तर न आडे नूर ॥५॥–कीरंतन, प्र० १३२

२–देखो दोऊ पलडे, दुनिया और अरश अर्वाह
रूहें पूजे बक्कासूरत, दुनिया खुदा हवाए ॥९॥ –खुलासा, प्र० १

३–महमद आया इसे मिनें, तब अहमद हुआ श्याम।
अहमद मिल्या मेहदी मिनें, ए तीन मिल हुए इमाम ॥

किया है। उन्होंने तोन सृष्टि मानी है-जीव-सृष्टि [आमखलक], ईश्वरीय-सृष्टि (खास), और ब्रह्म-सृष्टि (खासलखास)१। जीव-सृष्टि के उपास्य देव 'क्षर' पुरुष हैं। 'क्षर पुरुष' में त्रिदेव, नारायण, तैंतीस करोड़ देवता तथा महाविष्णु आदि आते हैं जिनमें त्रिदेव की उपासना ही अधिकतर की जाती है। जीव-सृष्टि पूर्णब्रह्म परमात्मा की भी उपासना कर सकती है, पर हद के जीव बेहद का समाचार पा सकने में प्रायः असमर्थ हैं,२ इनमें से पूर्णब्रह्म तक पहुँचनेवाला कोई विरला ही होता है।

इस तरह उन्होंने आराध्य के आधार पर आराधक भी तीन प्रकार के माने हैं- ब्रह्मसृष्टि अक्षरातीत उपासक, ईश्वरी सृष्टि अक्षर उपासक३ और जीव सृष्टि क्षर उपासक (जिनका सविस्तर उल्लेख 'दर्शन' अध्याय में किया गया है) है। जीवोपासकों की उन्होंने इक्यासी श्रेणियां मानी हैं, जो इस प्रकार हैं।

जीव-उपासक तीन प्रकार के हैं-पुष्टि, प्रवाही, मर्यादी। इनमें से प्रत्येक वर्ग के जीव विभिन्न नौ तरह से (नवधा भक्ति)४ ईश्वर की आराधना करते हैं जिससे ये सत्ताइस तरह के उपासक हुए। ये सत्ताइस तरह के उपासक त्रिदेव उपासक हैं अर्थात् सत्ताइस तरह के उपासक ब्रह्मा के हैं। सत्ताइस तरह के विष्णु के और सत्ताइस प्रकार के शिव के हैं। इस प्रकार ये कुल इक्यासी तरह के उपासक हुए५।

१-इसका सविस्तार उल्लेख 'दर्शन' अध्याय में 'तीन सृष्टि' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।

२-'बेहद के साथी सुनो, बोली बेहद बानी
बडे बडे रे हो गए, पर काहू न जानी
उपाए किए अनेकों, पर काहू न लखानी
ए बानी निजबुध बिना, न जाए पहिचानी'। —प्रकाश, 'बेहदबानी' प्रकरण

३-'इन आतम को घर एही अक्षर है, ए तो पारब्रह्म पर खाधा' —कीरन्तन ग्रन्थ, प्र० १५

४-'पृथु 'अर्चन' सुकदेव 'कीर्तन' 'श्रवण' परीक्षत किया है
'दास भाव' हनुमान, 'सखा' है अर्जुन, 'बन्दना अक्रुर सो लिया है
'आत्मनैवेद्य' कियो बलिराजा, 'सुमरण' प्रह्लाद किया है
भक्ति नवधा कहीं शास्त्र में, 'पादसेव' लक्ष्मी को दिया है' [ब्रह्म विज्ञान भास्कर पृ० ८८ दा.बा]

५-पुष्ट मर्यादा ने पर्वाह पख, याको सार बताऊं लख
ताके हिस्से किए नौ, चढे सीढी भगत जल भौं॥

८२ वीं तरह के उपासक कृष्णोपासक 'वल्लभाचार्य हैं[1] । ८३ वीं तरह के उपासक अक्षरोपासक-कबीर, शिव भगवान, सुकदेव मुनि और सनकादिक (सनत्-कुमार) हैं[2] ।

प्राणनाथजी के मतानुसार माला में एक सौ आठ पख साभिप्राय रखे गये हैं[3] । प्रथम तिरयासी 'पख' उपर्युक्त तिरयासी उपासकों और उपासनाओं की याद दिलाते हैं और शेष पच्चीस पख परमधाम के पच्चीस पखों का स्मरण दिलाते हैं[4] ।

इस तरह प्राणनाथजी ने एक सौ आठ तरह के उपासक माने हैं । माला के एक सौ आठ पख, इन्हीं उपासकों और इनकी उपासनाओं के प्रतीक हैं ।

आराधना :

श्री प्राणनाथजी के मतानुसार मन 'चाक चकरड़ा' है[5] । अर्थात् कुम्हार के 'चकरड़े (जिस पर घड़ा बनाया जाता है) की तरह फिरता रहता है। यही ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है[6] । गुण, अङ्ग, इन्द्रिय सब इसके अधीन हैं । यह स्वयं भी

ताके बाटे किए सताइस, ऊंचे चढे सूरत बांध जगदीश
ताके बांटे किए अस्सी और एक, पहुंचे वैकुण्ठ चडे इन विवेक ।। —प्रकाश ग्रन्थ प्र० ३४

१—पख व्यासींमा जो कह्या, बल्लभाचारज तहा पहुंचया —वही, प्र० ३४

२—तेरासीमां पख परवान, जो वासना पाचो लिया निरवाण
× × ×
एक भगवानजी वैकुण्ठ का नाथ, महादेवजी भी तिन के साथ
सकजी और सनकादिक दोए, कबीर भी इत पहुंचया सोए ॥१४॥ —वही प्र० ३४

३—अब कहूं हृदय रख, अठोतर सौ जो हैं पख
ए वचन सुनो प्रवान, याके सार काढ़ूं निर्वाण —वही, प्र० ३४

४—पख पच्चींस या ऊपर होए, तारतम के वचन हैं सोए
इन वचनों में अक्षरा तीत, श्रीधाम धनी साथ सहित —वही, प्र० ३४

५—अब तोको कहूं चाक चकरडा, चड़ बैठा जीव के सिर
तें खाली ऐसा फिराया, रह न सके क्योए थिर ॥८१॥
अंध अभागी हुआ क्यों ऐसा, तें सुने नहीं धनी के वचन
धनी मिले तू थिर न हुआ, फिट फिट भूंडे मन ॥८२॥ —प्रकाश प्र० ७०

६—आतम नारायण, बुद्धि ब्रह्मा, निस दिन फिरे नारद मन
वैराट नटवा नचवत विध विध सों, नचावत व्यास करम ॥५॥ —कीरन्तन प्र० ६

दुनिया में भटकता है और गुण, अंग, इन्द्रियों को भी इसमें भटकाता है और झूठे सांसारिक सुख के पीछे सच्चे अखण्ड सुख को खो बैठता है[1]। उनके मतानुसार परमधाम के अखण्ड सुख को प्राप्त करने के लिए गुण अङ्ग इन्द्रियों का दमन नहीं करना चाहिए वरन् इन्हें परमात्मोन्मुख करना चाहिए। यदि लोभ, मोह, इच्छा आदि का दमन कर दिया जाय तो परमात्मा की प्राप्ति कैसे संभव है, जब इच्छा का दमन कर दिया जायेगा तो परमात्मा प्राप्ति की इच्छा कहां से आयेगी। इसी प्रकार यदि मोह का दमन कर दिया जायेगा तो उसके अभाव में ईश्वर से अनुराग असंभव है,[2] अनुराग के बिना परमात्मा प्राप्ति का प्रयत्न नहीं किया जायेगा और मानव इस प्रकार परमात्मा को पाने में असफल रहेगा[3]। इसलिए प्राणनाथजी इन्द्रिय-दमन के नहीं, इन्द्रिय-निग्रह के पक्ष में थे,[4] जिसे आधुनिक भाषा में 'उन्नयन' कहा जा सकता है।

इन्द्रिय निग्रह तभी संभव है जब इनके सरदार-मन पर नियंत्रण कर लिया जाये[5]। मन पर नियंत्रण करने का एकमात्र साधन यही है कि भजन करते समय माला फेरते समय उपर्युक्त एक सौ आठ पक्षों को ध्यान में रखना चाहिए अर्थात् भजन करते समय मन को सांसारिक कार्य-कलापों से मुक्त रखना चाहिए, संसार से मन को हटाने पर उसमें जो रिक्तता होगी, उसकी पूर्ति क्षर-अक्षर और अक्षरातीत के ज्ञान से

१- 'इन झूठे दुख ते भाग के, खोवत सुख अखण्ड' —वही प्र० १६

२-ममता तूं भई माया की, हलाक किए हैरान
फिट फिट भूंडी चंडालन, तें बडी करी मोहि हान
अब ममता आओ मेरे पीऊ में, तोको पहिले दई बिकार
अब संधानन हो तूं मेरी, मोहे मिले धनी सिरदार प्रकाश प्र० २०

३-'गुण अंग इन्द्री फिराए हैं' वही प्र० २०

४-'गुण पख इन्द्री उलटे करत हैं सब जोर
सो सब टेढे टाल के, कर देऊं सीधे दौर --कलस प्र० २१

५-संकल्प विकल्प हैं जो तुझमें, सेवा कर धनी धाम
उमंग, अंग आन निस वासर, कर पूरन मन काम ॥८५॥
बात बड़ी कहे मन मेरी, मैं सकल विध जानूं
मूल बिना करू सिर्दारी, जीव को भी बस आनूं ॥८६॥ -प्रकाश प्र० २०

करनी चाहिए[१]। जाप करते समय मन को जब इन विभिन्न पक्षों का ध्यान करना पड़ेगा, एक के बाद एक विभिन्न सीढ़ियां चढ़नी पड़ेगी तो उसे माया में भटकनेका अवसर नहीं मिलेगा। इस तरह मन पर नियंत्रण करके ढाई घड़ी भी भजन कर लिया जाये तो परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है[२]।

परमात्मा के समक्ष मन की स्थिति नगण्य है, यह आंक के तूल का 'कोटिमा' भाग भो नहीं। इसे तिनके अथवा चींटीके बराबर कहा जा सकता है, पर कितने आश्चर्य की बात है कि तिनके ने पर्वत (परमात्मा) को ढंक रखा है[३]। इस चींटी ने हाथी को निगल लिया है। अतएव परमात्मा के साक्षात्कार के लिए इसपर नियंत्रण आवश्यक है[४]। इसे नियंत्रित करने पर ही जीव प्रबुद्ध हो सकता है। यह प्रबुद्ध जीव ही आत्मा कहलाती है और आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से है अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति के लिए जीव को प्रेममें ढालकर [शुद्ध करके] आत्मा बनाना चाहिए। क्योंकि योग्य आधार के बिना आधेय की सत्ता नहीं हो सकतो-

केसरी दूध न रहे रज मात्र, उत्तम कनक बिना जो पात्र

प्राणनाथजी का यह मत वैष्णव साधना के अनुरूप ही है कि वैष्णव साधना में देह को शुद्धता पर बल दिया है और इसी आधार पर भाव-देह और बाह्य-देह दो भेद किये गये हैं। बाह्य देह मलीन, दोषपूर्ण तथा अशुद्ध मानी गयो है और भाव-देह मालिन्य आदि दोषों से रहित शुद्ध देह है[५]। प्राणनाथजी की साधना में देह का महत्व नहीं है,

१-समर्थ मन तूं वडा जोरावर, कहा कहूं तेरो विस्तार
तुझ में फैल विध विध के, अलेखे अपार ॥८३॥
अब तोसूं काम बडा मेरा, मदमस्त मेंवार
फिर तूं पख पच्चीस माहिं, बलवन्त बेसुमार ॥८४॥ —वही प्र० २०

२-खडबांगे नाम राजर्षि मुहुर्त मुक्त एहीबान

३-एक वचन इत यूं सुनाए, चीटी पग कुंजर बंधाए
तिनके पर्वत ढापया, सो तो कहूं न देखया
चीटी हस्ती को बैठी निगल, ताकि पड़ी न काहूं कल। —प्रकाश प्र० ३२

४-कोटि करो बन्दगो, बाहिर होवो निर्मल
तो लों पीऊ न पाइए, जो लों न साधे दिल ॥२॥ —कीरन्तन प्र० १३२

५-भागवत सम्प्रदाय पृ० ६४५-४६

पर आत्मा [शुद्ध जीव] और जीव [अशुद्ध जीव] की व्याख्या वैष्णवों की उपर्युक्त व्याख्या से बहुत कुछ मिलती है।

इक्यासी तरह के उपासकों (जीव-सृष्टि) में 'जीव शुद्धि' और 'इन्द्रिय-निग्रह' पर बल नहीं दिया जाता, वे बाह्यशुचता अथवा कर्मकांड को ही महत्व देते हैं। कर्मकांड से मन शुद्ध नहीं होता, अतएव उजु आदि व्यर्थ हैं, इससे अधिक महत्व-पूर्ण कार्य है शुभ-कर्म करना। ये शुभ कर्म हैं सत्य का पालन करना, आपसी वैमनस्य समाप्त करना,[1] सत्संग करना आदि।

शुभ कर्म से अधिक महत्व उपासना का है। इस की व्याख्या भी प्राणनाथजी ने अपने ढंग से की है। उपासना का अर्थ व्रत करना नहीं, वरन् इन्द्रियों का उपास (व्रत) करना है। इन्द्रियों का आहार दृश्य जगत् के आकर्षण हैं, इन आकर्षणों से दूर रहना ही इन्द्रियों का उपास है।

उपासना से श्रेष्ठ बैराग है। बैराग की व्याख्या प्राणनाथजी ने इस प्रकार की है-

बैराग का अर्थ गेरुए वस्त्र धारण करना नहीं, वरन् संसार और सांसारिक वस्तुओं से वैर रखना और परमात्मा से प्रेम करना ही (वैर + राग) बैराग है। प्राणनाथजी ने इन साधनाओं से अधिक महत्व 'तुरिया' अथवा 'ध्यानावस्था' को दिया है[2]। तुरियावस्था में कर्मकांड [शरीयत] और उपासना [तरीकत] का कोई महत्व नहीं रह जाता और साधक मानसी पूजा को ही महत्व देता है। पूजा, पुजापा, पुजारी आदि वह स्वयं ही होता है। मानसी पूजा में मूर्ति-पूजा का भी स्थान नहीं रह जाता। अतएव वैष्णव सम्प्रदाय में पूजा, इज्या आदि पूजा के जो उपकरण माने गये हैं, 'श्रीजी' की साधना में उसके लिए स्थान नहीं है। सदाचार आदि का भी उन्होंने कहीं स्पष्ट

१-ज्यों ज्यों प्रीत होत है साथ में, त्यों त्यों मोहीको होत है सुख
ज्यों ज्यों क्रोध बढत है साथ में, अन्त वाही को है जो दुख

२-'भूमिका सात कही वशिष्ठे, तामे पांचवी केवल विदेही
छठी को शब्द न निकसे तो सातवी दृढ क्यों होवही' —कीरन्तन प्र० २९
"पहली है शुभ कर्मणा दूसरी उपासना जान
तीसरी है वैराग चौथी हे ज्ञान,
पाचवी है केवल विदेही, छठी है विज्ञान
सातवीं है 'तुरिया'' कोई विरला जाने निरवान' —दासवाणी

उल्लेख नहीं किया। उन्होंने 'शब्द समाना शून्य' कहकर अखण्ड भजन व कीर्तन आदि का भी विरोध किया है। उनके मतानुसार उठते-बैठते, खाते-पीते सुपन सोवत जाग्रत अपने इष्ट के 'ध्यान' में मग्न रहना ही अखण्ड भजन है।

यह ध्यानावस्था अथवा तुरिया साधना है। तुरिया से आगे एक और साधना है। वह है प्रेम साधना अथवा प्रेम-भक्ति, जिसे 'तुरियातीत' भी कहा जा सकता है। यह भक्ति केवल 'ब्रह्म-सृष्टि' की है। या वे लोग पा सकते हैं जिन पर उनकी अनु-कम्पा होती है- "दिया तुम्हारा पावहीं दुनियां चौदे तबक"

इससे स्पष्ट है जिस प्रकार प्राणनाथजी ने आराध्य और आराधक का वर्गीकरण 'सृष्टि' के आधार पर किया है, उसी तरह आराधना के वर्गीकरण का आधारभी 'सृष्टि' ही है। जीव सृष्टि के आराधना के मार्ग कर्मकाण्ड, उपासना (नवधा भक्ति) और वैराग आदि हैं, तो ईश्वरीय सृष्टि की साधना का मार्ग 'ज्ञान' है (जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है) और ब्रह्म-सृष्टि का 'तुरिया' और 'तुरिया तीत'। इसका अर्थ यह नहीं कि ब्रह्मसृष्टि की साधना में उपासना, वैराग, शुभ कर्म आदि का कोई स्थान नहीं, वहां भी इनका महत्व है, पर विशिष्ट अर्थ में। जीवसृष्टि के लिए, 'वजूदी बन्दगी' अर्थात् शरीर को शुद्ध रखना, झूठ आदि न बोलना ही शुभ कर्म है। विभिन्न साधनों से ईश्वर की आराधना करना, उपवास करना, आरती तथा कीर्तन करना 'उपासना' है और गेरुए वस्त्र धारण करना, गृह-त्याग कर जंगल में जाना ही बैराग्य है। परन्तु ब्रह्मसृष्टि के लिए-

शुभ कर्म : धर्म-कार्य करना अर्थात् धर्म के नाम पर 'कुर्बानी' करना,

उपासना : गुण अंग इन्द्रिय पर नियंत्रण रखना,

वैराग : दुनिया से वैर और परमात्मा से राग अर्थात् प्रेम करना,

ज्ञान : परमात्मा और उसके स्थानादि का ज्ञान रखना,

केवल बिदेही अर्थात् जीवन-मुक्ति : संसार में रहते हुए भी सांसारिक वस्तुओं से लगाव न रखना, काम-क्रोध-लोभ-मोह आदि से दूर रहना,

विज्ञान : परमात्मा और उसके स्थानादि का जो ज्ञान प्राप्त किया हो, उसी में लीन रहना

तुरिया : खाते-पीते, उठते-बैठते परमात्मा का ध्यान रखना-

'खाते- पीते उठते बैठते सुपन सोवत जाग्रत
दम न छोडे माशूक के, जाकी असल हक निसबत"

ओ तो आगे अन्दर उजली, छिन छिन होत उजास ।
देह भरोसा ना करे, पिया मिलन की आस ॥

तुरियातीत : यह प्रेम भक्ति है और उपरोक्त साधनाओं की अन्तिम उपलब्धि है ।

तुरियातीत साधना : प्रेम भक्ति :

खाते-पीते, उठते-बैठते परमात्मा के ध्यान में लीन रहना तुरिया-साधना है । जिस वस्तु का ध्यान आठ प्रहर चौंसठ घड़ी किया जाता है, उससे लगाव हो जाना स्वभाविक है । धीरे-धीरे यही लगाव प्रेम में बदल जाता है । यह प्रेमावस्था तुरियातीतावस्था' है । यह साधना का सर्वश्रेष्ठ साधन है । इसमें कृच्छ साधनाओं के लिए स्थान नहीं होता, क्योंकि परमात्मा का सम्बन्ध आत्मा से है । आत्मा का परम रूप [परम × आत्मा] ही परमात्मा है । परमात्मा को पाने के लिए शरीर को कष्ट देना व्यर्थ है[१] शरीर तो आत्मा का पड़ाव मात्र है और उसका सम्बन्ध सांसारिक कार्य-कलापों से है ।

इसीलिए प्राणनाथजी ने कृच्छ साधनाओं का विरोध किया है । उनके मतानुसार हिम में गलना, आग पर चलना, शरीर के बालों को नुचवाना, कोड़ों से अपने शरीर पर चोट करना[२] आदि, 'कसनी' (कष्ट साधना) शरीर से सम्बन्ध रखती हैं । नश्वर [शरीर] का सम्बन्ध नश्वर [संसार] से है । अतएव शारीरिक कसनी सांसारिक जीवों को वश में कर सकती है, परमात्मा को नहीं । 'परम-आत्मा' को वश में करने के लिए 'आत्मिक-कसनी' की आवश्यकता है । क्योंकि-

दुख से विरहा उपजे, विरहा प्रेम इश्क
इश्क प्रेम जब आइया, तब नेहचे मिलिए हक[३] ॥१३॥

दिन रात प्रिय-वियोग में जलना और उस वियोग-दुःख को अकेले ही झेलना, किसी पर व्यक्त न होने देना ही तो आत्मा की कसनी है । व्यक्त करने पर दुःख कम हो जाता है, परन्तु वह इसे व्यक्त करे भी तो कैसे ? क्योंकि 'हक अंगना के दिल की बातें-आशिक जाने या माशूक' इसलिए छिपकर उसे रोना है[४] । अपने दुःख को छिपाने

१-'दुख न दीजे देह को, सुखे छोड़िए शरीर'

२-कलस ग्रंथ ३-किरन्तन, प्र० १७

४-,पडोसन पण न सुने ई' आशिक गुझी गेए' सिन्धी

के लिए इच्छा न होते भी सांसारिक कार्यों को करना है, यही छिपी बन्दगी [साधना] है। यही उसकी अग्नि-परीक्षा है कि संसार में रहते हुए उसके कार्यों को करते हुए भी इस आकर्षणपूर्ण संसार को 'गोविन्द भेड़ा'[1] समझना है।

परमात्मा के वियोग दुःख को ही प्राणनाथजी ने आत्मा-रोग कहा है[2]। यह आत्म-रोग सूफियों की 'प्रेम की पीर' के अनुरूप ही है। अन्तर सिर्फ यही है कि सूफियों की प्रेम पीर इश्क मजाजी से इश्के हकीकी की ओर अग्रसर होती है जबकि आत्म-रोग में 'इश्के मजाजी' का स्थान नहीं है। प्राणनाथजी के मतानुसार यह रोग बहुत बुरा है, चूंकि यह एक ऐसा रोग है जिसकी दवा संसार में नहीं है[3]। इसीलिए आत्म-रोग से लोग भागते हैं[4]। सभी सुख के साथी हैं, दुःख के साथी तो बिरले ही हैं[5]। दुःख से भागनेवाले आत्म-ज्ञान से वंचित रह जाते हैं[6]। आत्म-ज्ञान के अभाव में परमात्मा को पाना असंभव है अर्थात् दुखाभाव में 'ईश्वरसाक्षात्कार' संभव नहीं[7]। किसी भी महान उपलब्धि के लिए कष्ट झेलने ही पड़ते हैं। प्रेमी आत्मा के लिए कष्ट व दुःख, दुख न रहकर दवा हो जाते हैं। प्रिय प्रदत्त होने के कारण ये शोषक तत्व उसके

१–अन्तर्कथा के अनुसार 'गोविंद भेड़ा, जादू का बाजार था। यहां पर भूत सामान बेचते थे। इस रास्ते से निकलनेवालों को वे तरह-तरह की चीजें दिखाकर के अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करते थे। जो उन चीजों को स्पर्श करते, वे भूत बन जाते और अपने सम्बन्धियों को छोड़कर उन में रहने लगते। 'ब्रह्म-सृष्टि' भी इस संसार की ओर आकर्षित हो गयी और अपने साथियों को भूल गयी।

२–'आतम रोग कासों कहिए, जिन पीठ दई परआतम।
ए दुख क्यों ए न मिटे, जो लों देखे न मुख ब्रह्म ॥२॥' —कीरन्तन प्र० १७

३–'सखी री आतम रोग बुरो लग्यो, याको दारू न मिले तबीब' —वही प्र० १६

४–'दुख को निबाहू कोई न मिल्या, सुख को तो सब ब्रह्मांड
इन झूठे दुख से भागके, खोवत सुख अखण्ड ॥४॥' —वही प्र० १६

५–चाहने वाले दुख के, दुनिया में ढूंड देख।
ब्रह्मांड यार है सुख को, दुख दोस्त हुआ कोई एक ॥३२॥ —वही प्र० १७

६–'दुख बिना न होए जागनी, जो करे कोट उपाय ॥१४॥' —वही प्र० १७

७–दुख से पीऊ जी मिलसी, सुखे न मिलिया कोय
अपने धनी का मिलना, सो दुख ही से होय ॥१०॥' —वही प्र० १७

लिए पोषक बन जाते हैं[१]। आत्मा को ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की इच्छा नहीं रहती। परमात्मा की भक्ति करना ही उसका मुख्य ध्येय रहता है। उसे ईश्वर के नाम का कोई ऐसा स्वाद लगजाता है कि छुड़ाने पर भी नहीं छूट सकता, क्योंकि ,जिन पिया प्रेम प्याला, क्यों उतरे मस्ती तिन'। परन्तु वह अपने इस प्रेम को, इस लगन को व्यक्त नहीं होने देती। यही छिपी बन्दगी है[२]।

समयांतर से यह परमात्मा का प्रेम बढ़ने लगता है और वह समय आ जाता है जब छिपाने पर भी यह प्रेम नहीं छिपता। परमात्मा की भक्ति के अलावा आत्म-रोगी के समस्त कार्य शिथिल हो जाते हैं[३]। ईश्वर के अतिरिक्त उसे किसी वस्तु का ध्यान नहीं रहता। यही विज्ञान-साधना (हजूरी बन्दगी) है। 'मारफत' (अध्यात्म) की राह पर चलनेवाला यह 'विज्ञान-साधक' जीवित होते हुए भी विश्व में मृतक के समान रहता है। इतना ही नहीं, वह इस विश्व के प्राणियों को मृतक समझकर उसकी परवाह नहीं करता[४]। परमात्मा ही उसका सर्वस्व होता है। इन आत्म-रोगियों का शरीर तो संसार में रहता है, पर मन परमात्मा के पास[५]। यही मानसी-पूजा है[६] जिसमें उसे पूजा सामग्री की आवश्यकता नहीं रहती। वह स्वयं ही पूजा, पुजापा, दान-दक्षिणा होता है। यह मानसी-पूजा ही पूजा का एकमात्र उपादान है। 'निस्व' हो जाने पर 'आत्म' को विसर्जित कर देने पर आराध्य और आराधक के बीच का अवरोध मिट जाता है। पुजारी पूज्यमय हो जाता है और यही पूजा की महानतम उपलब्धि है। यह मानसी पूजा, प्रेमलक्षणा-भक्ति की देन है, इसलिए प्राणनाथजी ने मानसी-पूजा और प्रेम-लक्षणा भक्ति को ही सर्वाधिक महत्व दिया है।

१–दुख तो हमारो आहार है, औरन को दुख खाए।
दुख के भागे सब फरें, कोई बिरला साध निबाहे ॥१३॥ –वही प्र० १६

२–'छिप के साहिब कीजे याद, खासल खास नजीकी स्वाद।

३–जब चढ़ि विकट घांटी प्रेम, तब चेहेन न रहे कछु नेम।

४–पहिले आप मुर्दे हुए, पीछे दुनी करी मुरदार।
हक तरफ हुए जीवते, उड़ पहुंचे नूर के पार॥

५–ओखेले पार पयासों, और देखने को तन सागर माहिं।

६–कहा भयो जो मुख से कह्यो, जो लों चोट न निकसी फूट।
प्रेम बान तो ऐसे लगत हैं, अंग होत है टूक टूक ॥१॥ –कीरन्तन प्र० ९

प्रपत्ति के कारण

'हम आए इतने काम, ब्रह्म सृष्टि लेने घर धाम, कहकर प्राणनाथजी ने स्पष्ट कह दिया है कि हमारा उद्देश्य ब्रह्म सृष्टि को उसके 'अंशी' का ज्ञान कराके उन्हें अपने मूल स्थान [परमधाम] को ले जाना है। अतएव उन्होंने साध्य अथवा साधन का जो मार्ग बताया है, उसका सम्बन्ध ब्रह्म-सृष्टि से ही है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उन्होंने 'ब्रह्म-सृष्टि' को ध्यान में रखकर ही साधना का मार्ग निर्धारित किया है, जीव सृष्टि के उपास्य और उपासना का उल्लेख तो प्रसंगवश हुआ है। यही बात 'प्रपत्ति के सम्बन्ध में भी लागू होती है। प्रपत्ति के कारणों की व्याख्या भी उन्होंने ब्रह्म सृष्टि को ध्यान में रखकर ही की है।

उनके मतानुसार ब्रह्मसृष्टि का परमात्मा की ओर उन्मुख होने का प्रमुख कारण 'पूर्व का सम्बन्ध' है। पर यह कारण जाग्रतावस्था का है, अर्थात् जब उनकी आत्मा प्रबुद्ध हो जाती है और वह समझने लगती है कि हम खेल देखने आये हैं, यह इक्या-सी तरह की उपासना और उपासक इसी खेल के अंशमात्र हैं तो वह उन्हें त्याग देती है, क्योंकि ये सब साधन उसे उसके घर, 'परमधाम' और प्रिय पूर्णब्रह्म तक पहुँचाने में असमर्थ है[1]। उसे पश्चाताप होता है कि मैंने इतने दिन व्यर्थ ही ऐसे ज्ञान में व्यतीत किये जिसमें परमात्मा नहीं मिल सकता था। पहले ही मैंने अपना ध्यान पच्चोस पक्षों और पूर्णब्रह्म में केन्द्रित क्यों नहीं किया, और वह कह उठती है-

"आंखा खोल तूं अपनी, देख धनी श्री धाम।
ले खुशबोए याद कर, बांध गोली प्रेम काम॥
प्रेम प्याला भर भर पीऊं, त्रिलोकी को छाक छकाऊं।
चौदह भवन में करूं उजाला, फोड़ ब्रह्मांड पीऊ पासे जाऊं॥
वाचा मुख बोले तूं वाणी, कीजो हांस बिलास।
श्रवण तूं संभार अपनी, सुन धनी को प्रकाश॥
कहे बिचार जीव के अंग, तुम धनी दिखाया जेह।
जो कदी ब्रह्मांड होवे प्रलय, तो भी न छोडूं पीउ स्नेह॥

१-बाजीगर तो न्यारा रह्या, ये खेलें सब कबूतर।
तो कबूतर जो खेल के, सो क्यों पावें बाजीगर॥ —कलस-ग्रन्थ, प्र० १४ चौ ३१

खोल आंखा तू हो सावचेत, पहचान पीऊ चित ल्याये ।
ले गुण तूं हो सन्मुख, देख पर्दा उड़ाए ॥५॥
एते दिन वृथा गमाए, मैं किया अधम का काम ।
कर्म चण्डालन भई मैं ऐसी, न पहिचाने धनी श्रीधाम ॥६॥
भट परो मेरे जीव अभागी, भट परो चतुराई ।
भट परो मेरे गुण प्रकृति, जिन बूझो न मूल सगाई ॥७॥
आग पड़ो तिन तेज बल को, आग परो रूप रंग ।
धिक धिक पड़ो तिन ज्ञान को, जिन पाया नहीं परसंग ॥८॥
धिक धिक पड़ो मेरी पांचों इन्द्री, धिक धिक पड़ो मेरी देह ।
श्री श्याम सुन्दर वर छोड़ के, संसार सों कियो सनेह ॥९॥
धिक धिक पड़ो मेरे सर्वाअंगों. जो न आए धनी के काम।
बिन पहचान डारे उल्टे, न पाए धनी श्री धाम ॥१०॥
तुम तो तुम्हारे गुण न छोड़, मैं तो करो बहुत दुष्टाई ।
मैं तो कर्म किए अति नीचे, पर तुम राखी मूल सगाई ॥११॥"[1]

परन्तु सुप्तावस्था [परात्म की पहिचान के अभाव] में प्रपत्ति के विभिन्न कारण होते हैं, जैसे-आर्त, वैराग, दृप्ति आदि । स्वयं प्राणनाथजी के जीवन में, उन्हें परमात्मा की ओर उन्मुख करने में, इन कारणों का महत्वपूर्ण स्थान था ।

आर्त्त :

वैसे तो प्राणनाथजी को बचपन से ही ईश्वर से अनुराग था, पर वि० सं० १७२२ में उनके जीवन में जो अविस्मरणीय घटना घटी, उसने उन्हें हमेशा के लिए संसार को त्यागकर परमात्मा की शरण में जाने के लिए बाध्य किया । उन्होंने अनुभव किया- 'संसार में नहीं कुछ सार,' प्रभु की शरण में आओ, और उन्हें अपना सर्वस्व अर्पित करो, प्रभु दया के सागर हैं, गुण के आगार हैं, वे प्रत्येक मानव पर दया करते हैं :

१-प्रकाश ग्रन्थ प्र० २२

श्री इन्द्रावती कहे दिल दे रे दे, जिन गुण किए सो ए रे ए ।
तेरे कहना होय सो केहे रे केहे, लाभ लेना होय तो ले रे ले ॥
तारतम कहे आ रे आ, हजार बार कहूं हां रे हां ।
माया से कीजे ना रे ना, नाबूंद फेरा जिन खा रे खा ।
धनी के चरणों जा रे जा, ऐसा न पावे दा रे दा ।
जो चूका अब के ता रे ता, तो सिर में लगसी घा रे घा ।
संसार में नहीं कुछ सा रे सा, श्री धाम धनी गुण गा रे गा ।"[१]

लोक-मर्यादा ने सदा उनका विरोध किया जिसका संकेत उनके निम्न पद में मिलता है-

"मैं तो बिगड़्या विश्व थे बिछुड़्या, बाबा मेरे ढिग आवो मत कोई ।
बेर बेर बरजत हूं रे बाबा, न तो हम ज्यों बिगड़ेगा सोई ॥
मैं लाज, मत, पत, दई रे दुनी को, निलज्ज होए भया न्यारा ।
जो राखे कुल वेद मर्यादा, सो जिन संग करो हमारा ॥
लोक सकल दौड़त दुनियां को सो मैं जान के खोई ।
मैं डार्या घर जार्या हंसते, सो लोक राखत घर रोई"[२]

परन्तु उन्होंने लोक-मर्यादा की कभी भी परवाह नहीं की । लौकिक सुखों का उन्होंने सहर्ष त्याग कर दिया था, क्योंकि उन्हें तो 'अलख' का सुख चाहिए था—

"देत दिखाई सो मैं चाहत नाहीं, जा रंगराची लोकाई,
मैं सब देखत हूं ए भरमना, सो इनों सत कर पाई
मैं कहूं दुनियां भई बावरी, ओ कहे बावरा मोहे
अब एक मेरे कहे कौन पतीजे, ए बहुत झूठे क्यों होई
चित में चेतन अन्तर्गत आपे, सकल में रह्या समाई
'अलख' को घर या को कोई न लखे, जो बहुत करे चतुराई

१–प्रकाश ग्रन्थ प्र० ३५

२–कीरन्तन, प्र० १९

सत्गुरु संगे मैं ए घर पाया, दिया पार ब्रह्म दिखाई
श्री 'महामति' कहे मैं या विध बिगड़या, तुम जिन बिगड़ो भाई[1]

इससे स्पष्ट है कि वे सिर्फ आर्त्त भाव के कारण परमात्मा की शरण में नहीं पहुंचे, इसका मुख्य कारण तो ईश्वर की लीला, रूप और सौंदर्य था जिसने उन्हें अपनी ओर आकर्षित किया।

परमात्मा की शरण में जाने का कारण दृप्ति भी हो सकता है अर्थात् इस देह के विशेष प्रारब्ध कर्मों को भोगने के बाद अन्य देह धारण न करनी पड़े। प्राणनाथजी ने 'दृप्ति' को महत्व नहीं दिया, क्योंकि जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्राणनाथजी की 'वाणी' और उसमें बतायी गयी बातों का सम्बन्ध सिर्फ 'ब्रह्म-सृष्टियों' से, जिसमें वे स्वयं भी हैं। यह ब्रह्म-सृष्टि सांसारिक कार्यों की दृष्टा है, कर्ता नहीं। कर्ता तो जीव सृष्टि है। प्रारब्ध भोग कर्ता को भोगने पड़ते हैं, दृष्टा को नहीं। इस प्रकार प्राणनाथजी ने न तो पंचरात्र में बताये गये प्रपत्ति के कारण को महत्व दिया है और न ही वल्लभ सम्प्रदाय में मान्यता-प्राप्त प्रपत्ति के कारणों, मर्यादिकी और पुष्टि-मार्गी को। क्योंकि उनका मत था कि जितने भी मत-मतांतर प्रचलित हैं, उन सब का सम्बन्ध हद-भूमि से है। अखण्ड-भूमि से अवतरित होनेवाली ब्रह्म आत्माओं के लिए इसका कोई महत्व नहीं। ब्रह्म आत्माओं का ईश्वर की ओर आकर्षित होने का एक मात्र कारण 'पूर्व सम्बन्ध [परमधाम का सम्बन्ध] है। इससे स्पष्ट है कि उनका प्रपत्ति का सिद्धान्त परम्परागत विभेदों की परिभाषाओं से अलग और स्वतन्त्र है।

वैराग :

यह दृश्य जगत् नाशवान है, कुबुद्धि का भण्डार है, यह अखण्ड सुख नहीं दे सकता। यह सोच कर वे इस दुनिया से दूर भागे और शून्य, निरंजन निराकार को पार करते हुए अखण्ड भूमि में जाकर शरण ली, जहाँ उन्हें सुख मिल सकता था-

"तुम समझ के संगत कीजो रे बाबा, मुझ जैसा दीवाना न कोई
जाही सों लोक लज्या पावे, सो तो मोहे बड़ाई
मैं तो बात करूं रे दीवानी, दुनियां तो स्यानी सुजान
स्याने दीवाने संग क्योंकर होवे, तुम मिलियो मोहे पहिचान

१-वही, प्र० १९

मैं त्रिलोकी अगिन कर देखी, सो दुनियां को सुख
दुनियां को अमृत होय लागी, मोहे लागत है विष
जब मरम पायो मोह जल को, तब मैं भागा रोई
डर के ऊवट चढ़ा उबाटे, बाट बड़ी मैं खोई
अहिनिस डर आया मेरे अंग में, फिरचा दिलड़ा भया दीवाना
भली बुरी कहे सो मैं कछुए न देखूं, भागवे को मैं स्याना
मैं छोड़ कुटुम्ब सगे सब छोड़े, छोड़ी मत स्वांत सरम
लोक, वेद, मर्यादा छोड़ी, भाग्या छोड़ सब धरम
ए सूरे पाऊं धरे क्यों पीछे, इनको तो लज्जा लागे
देवे सीस सकल सुख खोवे, पर भाइयों को छोड़ न भागे
ए मिलकर मर्द चले ज्यों महीपति, जानो पड़ता अंबर पकड़सी
मोहे अचम्भा ए डरे नहीं किनसों, पर ए खेल केते दिन रेहेसी
देखत काल पछाड़त पल में, तो भी आंख न खोले
आप जैसा कोई और न देखे, मद छाके मुख बोले
इनमें से मैं नाठचा निसंक कायर होयके, फेर न देखिया ब्रह्मांड
सून्य निरंजन छोड़ मैं न्यारा, जाए पड़चा पार अखण्ड
अब तो कछू न देखत मद में, पर ए मद है पल मात्र
श्रीमहामति दीवाने को कह्यो न मानत, तो पीछे करसी पछताप ।'[१]

भक्ति के साधन :

(१) शास्त्र-श्रवण –

इन्द्रियों को माया से विमुख करने पर ये रिक्त हो जायेंगी, इस रिक्तता की पूर्ति आवश्यक है, नहीं तो ये पुनः विषयों की ओर उन्मुख होंगी। इस रिक्त स्थान की पूर्ति शास्त्र-श्रवण द्वारा की जा सकती है। इन्द्रियों को अपनी ओर आकर्षित करने

१-कीरन्तन, प्र० २०

वाली वस्तुएं हैं-सौंदर्य, शक्ति, प्रेम, दया आदि। संसार के इन आकर्षणों से गुण, अङ्ग, इन्द्रिय तभी मुक्त हो सकेंगी, जब इन्हें इससे अधिक आकर्षण वाली वस्तु मिलेगी। इन सांसारिक वस्तुओं से अधिक आकर्षक वस्तुएं 'हद भूमि' से परे 'बेहद' और 'अखण्ड भूमि' में हैं, जिनका वर्णन वेदों और शास्त्रों में मिलता है[1]। इन वेदों और शास्त्रों का अध्ययन करने पर इन अनुपम और अपूर्व सुन्दर वस्तुओं को देखने की इच्छा प्रबल हो जाती है, जीव उसे पाने के लिए प्रयत्न करता है और सांसारिक वस्तुओं के प्रति उसका मोह शिथिल होने लगता है।

वह धर्मशास्त्र, जिसमें उपर्युक्त अलौकिक वस्तुओं का आकर्षक वर्णन है, 'सुसमवेद'[2] और 'भागवत शास्त्र'[3] हैं। तारतम सागर ही सुसमवेद (स्वसंवेद्य)[4] हैं जिसमें आत्मा को आकर्षित करने की उपरोक्त समस्त वस्तुएं उपलब्ध हैं।

(क) सुसमवेद –

इस वेद में परमधाम के 'पच्चीस पक्ष' का वर्णन है। गुण, अङ्ग, इन्द्रियों और इनके सरदार मन को वश में करने के लिए इन्हीं 'पच्चीस पखों' का ध्यान धरना चाहिए[5] (जिसका सविस्तार वर्णन पहले किया जा चुका है)। इसके अध्ययन-मनन पर जीव स्वतः अनुभव करता है कि (इन अलौकिक वस्तुओं की तुलना में) सांसारिक वस्तुएं नाचीज हैं, गन्दी हैं, 'चरकीन' हैं[6] और उसे इन लौकिक वस्तुओं से घृणा हो जाती है।

स्वसंवेद्य में युगलस्वरूप का श्रृंगार और स्वरूप वर्णन भी उल्लेखनीय है। 'पच्चीस पक्षों' की 'परिक्रमा' करने पर जब आत्मा युगलस्वरूप के दरबार में उपस्थित होती है तो युगलस्वरूप के अनुपम सौंदर्य को देखकर मोहित हो जाती है और उसके

१–जिन जानो शास्त्रों में नहीं, है शास्त्रों में सब कुछ।
पर जीव सृष्टि क्या जानही, जिनकी अकल है तुच्छ ॥ –कीर्तन ग्रन्थ

२–वेद हमारे सुसम है –श्री निजानन्द साधना-पद्धति

३–शास्त्र श्रवण श्री भागवत –वही, साधना पद्धति

४–तारतम सागर स्वसवेद्य है
बुद्ध निष्कलंक का जिसमें भेद है। –भजन

५–पख पचबीस छे आपना, तेमा कीजे रंगविलास

६–'कौन खुशबोए में हते' 'अब आई कौन बदबोए'
तथा इस चरकीन जमीं से काढन वाला, एसा न मिलसी कोए'

लौकिक प्रेम (मोह) का स्थान अलौकिक प्रेम ले लेता है।

पियाजी की दया भी अपरम्पार है। उनका यह गुण आराधक को अपनी ओर आकर्षित करने की अनुपम शक्ति रखता है-

अब तो मेरे पिया की, दया न समावे इण्ड।
ए गुण मुझे क्यों विसरे, मोसों हुये सब अखण्ड ॥१॥
× × ×
पल पल आवे पसरती, न पाइए दया को पार।
दूजा तो सब मैं मापिया, पर होय न दया को निर्वार ॥५॥[१]

(ख) भागवत शास्त्र–

भागवत में बारह स्कन्ध हैं। इस के दशम स्कन्ध में 'प्रेम लक्षणा भक्ति' के दर्शन होते हैं। प्राणनाथजी ने इसी अध्याय को विशेष महत्व दिया है। दशम स्कन्ध के नब्बे अध्याय हैं जिसमें प्रथम तीस अध्यायों में भगवान कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन है और पांच अध्यायों में रासलीला का। प्राणनाथजी ने इसी पंच अध्यायी को समस्त भागवत का सार कहा है[२]। क्योंकि इसमें चौदह भवन में दुर्लभ प्रेम गोपियों के रूप में साकार हो उठा है[३]। यह प्रेम ईश्वर-प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

(२) सत्संग–

सत्संग का तात्पर्य 'सच्चा संग' है अर्थात् ऐसे मनुष्यों का साथ करना जो 'सत्य' के दर्शन करा सके। मानव को सत्य के मार्ग पर ले जाने में सिर्फ साधु, संत ही नहीं, 'आत्मा की आवाज' का भी बड़ा हाथ होता है। आत्मा मनुष्य को सदा सन्मार्ग पर ले चलती है, पर मन इसमें बाधा उपस्थित करता है। जो मनुष्य मन के चक्कर में पड़ जाते हैं, उन्हें नरक भोगना पड़ता है-

---

१-कलस, प्र० २१

२-प्रकाश, भागवत को सार

३-नवधा से न्यारा कह्या, चौदह भवन में नाहीं।
सो प्रेम कहा से पाइए, जो बसत गोपिका माहिं॥
सुक व्यास कहे भागवत में, प्रेम न त्रिगुण पास।
प्रेम बसत ब्रह्म सृष्टि में, जो खेलन स्वरूप ब्रजरास॥
-परिक्रमा, प्र० ३७

मन का कहा न मानिए, मन है पक्का दूत
ले बोरे दरियाव में, गए हाथ से छूट ॥

चूंकि मन का सम्बन्ध संसार से है, वह मनुष्य को परमात्मा से विमुख कर संसार में लीन रखता है। इसके विपरीत आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से है[१]। मन अस्थिर है: उसके द्वारा लिये गये निर्णय भी अस्थिर होते हैं, ठोस नहीं[२]। मन तो नारद है,[३] ढाई घड़ी से अधिक किसी निर्णय पर ठहरता नहीं, विभिन्न कार्यों व इच्छाओं में फंसाकर मानव को नचाता है, पर सन्त लोग इनके संकेत पर नहीं नाचते, कर्म ही उसकी बुद्धि के संकेत पर नाचते हैं। उनकी बुद्धि 'सनत्कुमारों की बुद्धि' (माया से निर्लिप्त) होती है[४]। वे गुण, अङ्ग, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखते हैं, मन के चक्कर में नहीं पड़ते। उनकी बुद्धि इस संसार को गोरखधंधा समझती है और 'परमात्म ज्ञान'

१–कीरन्तन ग्रन्थ तथा खुलासा, प्र० १२, चौ० ४६

२–इसमें सम्बन्धित एक रोचक घटना का वर्णन भी प्राणनाथजी ने किया है

"एक बार चारों सनत्कुमारों ने ब्रह्माजी से प्रश्न किया कि मन और आतम (जीव) एक ही है या अलग, ब्रह्माजी ने इसका उत्तर व्यावहारिक रूप में देना चाहा, अत: वे विष्णुजी के पास गए। विष्णुजी हंस का रूप धारण करके सनत्कुमारों के पास आये और उन्होंने आत्मा का विरोध करने वाला मन, सनत्कुमारों का निकाल लिया। 'आत्मा की आवाज' से सनत्कुमारों ने पहिचान लिया कि ये हंस भगवान विष्णु हैं। अब विष्णु ने उनके मन पर से अपना नियन्त्रण हटा लिया। मन ने मुक्त होते ही 'आत्मा की आवाज' का विरोध किया और सनत्कुमारों को संशय में डाल दिया। वे सोचने लगे, यदि ये विष्णु भगवान हैं तो इन्होंने हंस का रूप क्यों धारण किया है? ये विष्णु भगवान न होकर ब्रह्माजी के वाहक हंस ही हैं। यह सोचकर उन्होंने हंस से प्रश्न किया, 'हे हंस, तुम्हारे यहां आने का कारण क्या है?' तब विष्णु ने अपना वास्तविक रूप धारण किया और उन्हें अपने आने का कारण बताया। –विस्तार के लिए देखिए 'प्रकाश ग्रन्थ'

३ निस दिन फिरे नारद मन –खुलासा, प्र० १२, चौ० ४६

४ आतम विष्णु नाचत बुद्धि सनतजी, गोकल ब्रह्मो शिव मन
कर्म शुकदेव नाचत नचवत, गावत प्रगट वचन ॥ –कीरन्तन प्र० ६

की उपलब्धि का प्रयत्न करती है। ऐसे मनुष्यों का संग करना चाहिए[1] और मन के स्थान पर 'आत्मा की आवाज' को महत्व देना चाहिए, यही 'सत्संग' है। 'शब्द समाना सुन्य' कहकर उन्होंने कीर्तन आदि को सत्संग के रूप में स्वीकार नहीं किया, क्योंकि यह प्रचार का साधन है, परमात्मा प्राप्ति का नहीं।

(३) अखण्ड भजन

परमात्मा को पाने के लिए अखण्ड भजन की आवश्यकता है। श्री कृष्ण ने स्वयं गीता में कहा है जो निरन्तर मेरा स्मरण करता है, वही मुझको पा सकता है-

'अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः' ॥[2]

श्री प्राणनाथजी ने भी अखण्ड भजन को बहुत महत्व दिया है। उनके मतानुसार जिन्हें परमात्मा प्रिय है, वे 'आठ प्रहर चौंसठ घड़ी' उठते-बैठते, सोते-जागते, यहां तक कि स्वप्न में भी, ईश्वर का ध्यान नहीं छोड़ते-

खाते पीते उठते बैठते, सोवत सुपन जाग्रत
दम न छोड़े माशूक के, जाकी असल इक निसबत[3]

ऐसे लोग ही परमात्मा को पा सकते हैं, क्योंकि-

'बन्दगी खुदा और इन के बीच नहीं तफावत'

(४) विषयों का त्याग -

विषयों का त्याग करनेवाले मनुष्य ही ब्रह्मका 'नजीको स्वाद' पा सकते हैं। परमात्मा की समीपता पाने के लिए घर छोड़कर जङ्गल में जाने की आवश्यकता नहीं[4]।

१-बड़ी मति सो कहिए ताए, श्रीकृष्णजी सों प्रेम उपजाए।

× × ×

बिना श्रीकृष्णजी जेती मत, सो तूं जानियो सबे कुमत। -प्रकाश, प्र० २यु

२-वही, ८। १४

३-सिंगार

४-प्राणनाथजी के धर्म पर जिनको है परतीति।
घर तज बन न जावहीं घर ही करे प्रतीति ॥

संसार में रहते हुए भी जो मनुष्य उसके आकर्षणों से दूर रहता है, वही सच्चा इन्द्रिय विजेता है। ऐसे मनुष्य की स्थिति मृतक से अभिन्न होती है-

(क) कोटि करो बन्दगी, बाहिर हो निर्मल
तो लौं पीऊ न पाइए, जो लौं न साधे दिल

(ख) मर मर सब कोई जात है, चाहिए मोमिन को मोत फरक
जो जीते न मरेंगे मोमिन, तो क्या मरेंगे मुनाफिक

मोमिनों [ब्रह्म-सृष्टि] के दिल में परमात्मा के लिए स्वतः ही प्रेम होता है, इसके द्वारा परमात्मा को आसानी से पाया जा सकता है परन्तु विषयोन्मुख होकर यही अनुराग परमात्मा और आत्मा के बीच दीवार बन जाता है-

तूं आपे न्यारी होत है, पीऊ नहीं तुझ से दूर
पर्दा तूं ही करत है, अन्तर न आड़े नूर।

विषयों की आसक्ति और विषयों का त्याग कर देने पर आत्मा को परमात्मा का साक्षात्कार होता है-

पहिले आप मुरदे हुए, पीछे दुनी करी मुर्दार
हक तरफ हुए जीवते, उड़ पहुँचे नूर के पार

श्री प्राणनाथजी की साधना पद्धति का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उनकी साधना में एक ओर हितहरिवंश की रस-साधना के, हरिदास के 'सखी सम्प्रदाय' के और वल्लभ की पुष्टिमार्गी साधना के तत्व हैं तो दूसरी ओर प्रेम की पीर में सूफियों के प्रेम की झलक। परन्तु यहां स्मरणीय है कि प्राणनाथजी ने सूफियों की तरह लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम का माध्यम नहीं माना। प्रियतम युगलस्वरूप या राजश्यामाजी से साधक का सीधा सम्बन्ध रहता है, जबकि सूफी इश्क-मजाजी से इश्क हकीकी की ओर जाते हैं[१]। इस तरह इनका प्रेम सूफियों से अलग, वैष्णव साधना के अनुरूप है। इतना ही नहीं प्राणनाथजी ने अपनी साधना में शरीयत, तरीकत, हकीकत मारफत इश्क आदि इस्लामी शब्दावली का प्रयोग भी किया है पर अर्थ दार्शनिक अर्थ उनके अपने हैं। इसलिए साम्य शब्द-रूपों का है, कथन की भंगिमा भी कहीं-कहीं एक-सी है, पर इनका कथ्य मूलतः अपना है।

---

१ विमल कुमार जैन-सूफीमत और हिन्दी साहित्य। पृ० १८१

इसी तरह 'सखी भाव भजिए भर्तार', युगलस्वरूप को जाप है, परम किशोरी इष्ट है' आदि वाक्यों का प्रयोग उन्हें सखी सम्प्रदाय और रस-साधना के समीप ला खड़ा करता है परन्तु गहराई में जाने पर ज्ञात होता कि इन साधनाओं से 'प्रणामी साधना में साम्य से वैषम्य अधिक है। अब देखना है कि इनसे (हित-हरिवंश, हरिदास और वल्लभ मत से) प्राणनाथजी की साधना का कहां तक साम्य तथा वैषम्य है।

तुलनात्मक अध्ययन

हितहरिवंश (रस साधना) और प्राणनाथजी :

राधावल्लभीय सम्प्रदाय में राधा और उनके 'वल्लभ' श्रीकृष्ण के 'किशोर' तथा प्रेमामृत स्वरूप को ही महत्व दिया गया है। इनकी साधना 'प्रेम-साधना' है और साधक जीव 'प्रेमरूपा-सखी भाव' से युगल-किशोर' की आराधना करता है। इनकी साधना 'रस साधना' है और रसिकाचार्य हैं हित हरिवंश[१]।

इस सम्प्रदाय के मतानुसार 'युगलस्वरूप' 'दिव्य गोलोक' के निवासी हैं। यह गोलोक वेदों के लिए अगम और अगोचर है। युगलस्वरूप, सखियां और यहां [गोलोक] की समस्त सामग्री श्रीकृष्ण के 'प्रेम-अंग' स्वरूप हैं। रसेश कृष्ण ने 'लीला' के लिए इन समस्त वस्तुओं का निर्माण किया है और वे स्वयं माधुर्य और शृंगार की मूर्ति हैं।

श्री कृष्ण एक ही हैं, उन्हें कोई निर्गुण कहे या सगुण। नारायण और महाविष्णु का रूप इन्हीं का 'कारण रूप' है। कृष्णादि अवतार इनके कला और अंशावतार हैं।

राधा और कृष्ण एक ही वस्तु-प्रेम के दो रूप हैं। ये दोनों भिन्न नहीं इनका वही सम्बन्ध है जो समुद्र और उसमें उठनेवाली लहरों का होता है। फिर यह प्रेम सहचरी (सखियों) और श्रीवन आदि चार (दो रूप युगलस्वरूप) और फिर अनन्त रूपों में विस्तीर्ण हो जाता है। रसिकाचार्य श्री हितहरिवंशचन्द्र महाप्रभु के अनुसार स्थावर जंगम जो कुछ भी विश्व विलास है, वह सब एक ही वस्तु 'हित' प्रेम-है[२]। श्री लाड़िलीदासजी के अनुसार जहां तक धाम है और उनके वासी धामी हैं, सब उसी एक 'हित-मित्र' (प्रेम देवता) के चित्र हैं-'सर्वैचित्र हित मित्र के जहाँ लौ धामीधाम'[३]।

भगवान, ईश्वर परमात्मा और ब्रह्म एक ही रूप हैं, भेद सिर्फ नाम का है।

१-भागवत सम्प्रदाय,　　पृ० ५७

२-भागवत सम्प्रदाय, पृ० ४४९

३-वही पृ० ४६३

श्री हित हरिवंश के मतानुसार ब्रह्म और जीव का अन्तर भी भ्रमपूर्ण है जिनकी दृष्टि प्रेम-रस से सिक्त हो चुकी है, जिन आंखों में वह रूप बस चुका है, उनको तो सर्वत्र अपनी आराध्या के ही दर्शन होते हैं, उनके लिए जीव और परमात्मा का भेद मिथ्या है।

इनके युगलस्वरूप स्वकीया-परकीया, विरह-मिलन और स्व-पर भेद रहित नित्य विहार-रस में लीन रहते हैं। इस विहार रम में प्रति क्षण नूतनता का स्वाद है। निरन्तर पान करने पर भी प्यास बनी रहती है-

जै श्री हितहरिवंश विचारि प्रेम विरहा विन वस्स
निकट कन्त नित रहत मरम कहा जानै सारस[1]

इनकी साधना की जो अन्य विशेषता है, वह यह कि इन्होंने लीला के आधार पर भगवान कृष्ण के तीन रूप माने हैं-

(क) श्री वृन्दावन विहारी श्री कृष्ण- ये कृष्ण जीवरूपा सखियों (गोपियों) के साथ शृंगार-रस की क्रीड़ाएं करते हैं और विशिष्ट समय (द्वापर) में अवतरित होते हैं।
(ख) मथुरावासी श्री कृष्ण
(ग) द्वारकावासी श्री कृष्ण

श्री प्राणनाथजी ने भी 'युगलस्वरूप' की आराधना की है[2]। युगलस्वरूप सदा किशोरावस्था में रहते हैं[3]। प्राणनाथजी ने भी प्रेम-साधना पर बल दिया है[4]।

श्रीजी ने भी पूर्णब्रह्म के निवास स्थान को 'दिव्य ब्रह्मपुर धाम' कहा है[5]। यह दिव्य-ब्रह्मपुर धाम, जिसे परमधाम भी कहते हैं, वेदों के लिए अगम और अगोचर है।

प्राणनाथजी के मतानुसार भी कृष्ण व राधा शृंगार और माधुर्य की मूर्ति हैं। माधुर्य को महत्व देने के कारण ही उन्होंने भागवत के दशम स्कन्ध को विशेष

१-वही, पृ० ४४०

२-'युगलस्वरूप को जाप है' (पद्धति) तथा 'निशिदिन ग्रहिये प्रेम सों, श्री जुगलस्वरूप के चरण' —'सागर' (झलमिलावा)

३-'ये तो लीला है किशोर, सैया सुख लेवें अति जोर', —परिक्रमा ग्रन्थ
तथा 'परमकिशोरी, ईष्ट है' (पद्धति)

४-जब बढ़े प्रेम के पुंज, तब नजरों आया निकुंज
जब चढिये घाटी प्रेम, तब न रहे कछु नेम

५-'दिव्य ब्रह्मपुर धाम है, वर अक्षरातीत निवास' (पद्धति)

महत्व दिया है[१] और चैतन्य महाप्रभु की तरह इन्होंने भी अपना शास्त्र 'भागवत' को माना है[२]।

प्राणनाथजी ने भी हितहरिवंश की तरह स्वीकार किया है कि 'जब चढ़िये घाटी प्रेम, तब न रहे कछु नेम', जिनकी नजरों में प्रेम बस चुका है, उन्हें प्रत्येक वस्तु प्रेम-मयी दिखायी देती है।

परमात्मा अपनी आनन्द अङ्ग श्यामाजी तथा सखियों के साथ विहार करते हैं[३]। इस विहार रस में सदा नूतनता बनी रहती है।

प्राणनाथजी ने भी कृष्ण के तीन स्वरूप माने हैं—

(क) व्रजवासी, ग्यारह वर्ष और बावन दिन तक बाल-लीला तथा रास-लीला करनेवाले।

(ख) मथुरा और गोकुल में ग्यारह दिन की लीला करने वाले।

(ग) द्वारकावासी - विष्णु के अंशावतार कृष्ण[४]।

इस त्रिविध स्वरूप कृष्ण का सविस्तार उल्लेख 'दर्शन' अध्याय में किया गया है।

राधावल्लभियों ने गोलोकवासी अपने आराध्य राधाकृष्ण को पूर्णब्रह्म और 'रसरूप' (रसौ वै सः) माना है। पर प्राणनाथजी ने 'रसरूप' केवल ब्रह्म को माना है। उनके मतानुसार 'पूर्णब्रह्म', गोलोकवासी कृष्ण और केवल-ब्रह्म दोनों से आगे, अखण्ड भूमि में निवास करते हैं जबकि गोलोक धाम 'बेहद भूमि' में है। प्राणनाथजी ने गोलोक वासी राधाकृष्ण को पूर्णब्रह्म नहीं माना।

राधा वल्लभियों ने प्रेम की ही लीला मानी है पर प्राणनाथजी ने 'आनन्द' की। उनके मतानुसार श्री श्यामाजी 'चिदानन्द ब्रह्म' का आनन्द अङ्ग हैं और सखियां श्यामाजी का आनन्द अङ्ग हैं। सखियों का आनन्द अङ्ग खूब खुशाली हैं। खूब खुशालियों का आनन्द अङ्ग पशु-पक्षी और पशु-पक्षियों का आनन्द स्वरूप पेड़-पौधे आदि हैं अर्थात्

१–प्रकाश ग्रन्थ

२–'शास्त्र श्रवण श्रीमद् भागवत' (पद्धति)

३–'लीला नित्य बिहार स्वरूप पर, भई श्री महामति कुर्बान निरख छबि'

४–'मथुरा द्वारका लीला कर, जाए पहुंचे विष्णु बैकुण्ठ घर' —प्रकाश ग्रंथ, प्रगटवाणी

\+ \+ \+

दिन ग्यारह ग्वालों भेष, तिन पर नहीं धनी को आवेश।
सात दिन गोकुल में रहे, चार दिन मथुरा के कहे। प्रकाश–प्रगटवाणी

ये समस्त वस्तुएं अन्ततोगत्वा उसी परमात्मा के आनन्द अङ्ग हैं और प्रत्येक वस्तु निम्न पांच गुणों से युक्त है–चेतनता, सुन्दरता, कोमलता, सुगन्ध और प्रकाश।

श्री हितहरिवंश के मतानुसार स्थावर जंगम जो कुछ भी विश्व–विलास है, वह सब एक ही वस्तु 'हित' प्रेम है। पर प्राणनाथजी के मतानुसार जिस प्रेम के दर्शन गोपियों में मिलते हैं, वह प्रेम चौदह भवन में नहीं—

"नवधा से न्यारा कह्या. चौदह भवन में नाहीं
सो प्रेम कहां से पाइए जो बसत गोपिका माहिं

राधावल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायियों के मतानुसार भगवान, ईश्वर, ब्रह्म और परमात्मा एक ही हैं। पर प्राणनाथजी ने इनमें भेद माना है। उनके मतानुसार 'भगवान' शब्द का प्रयोग त्रिदेव, नारायण, महाविष्णु और कभी–कभी 'अक्षर' के लिए भी होता है[1]। ईश्वर इनसे भिन्न हैं, ये मूल प्रकृति की सहायता से विश्वोत्पत्ति करते हैं[2]। 'ब्रह्म' अक्षर भगवान को कहते हैं, और पूर्णब्रह्म इससे भी आगे हैं[3]। जिनकी दृष्टि प्रेम रस से सिक्त हो चुकी है, उनके लिए पूर्णब्रह्म के अलावा और किसी वस्तु का महत्व नहीं है[4]।

हरिदासजी का सखी–सम्प्रदाय और प्राणनाथजी :

हरिदासजी निम्बार्क–मत के अनुयायी थे। उनका मत था कि ईश्वर–प्राप्ति के लिए एकमात्र उन्नत साधन है गोपि–भाव से ईश्वर की आराधना करना; और इसी आधार पर उन्होंने स्वतन्त्र मत 'सखी सम्प्रदाय' की प्रतिष्ठा की। इस सम्प्रदाय के वैष्णव वृन्दावन चन्द्र की सखि–भाव से उपासना करते हैं और इनकी आराधना का मार्ग है प्रेमनुगा भक्ति।

श्री प्राणनाथजी ने भी प्रेम–लक्षणा भक्ति को ही सर्वाधिक मान्यता दी है। उनकी साधना में 'नित्य नियम' (कर्मकांड) का स्थान नहीं है, क्योंकि 'जब चढ़िये घाटी

१–भगवानजी खेलें बाल चरित, आप अपनी इच्छा सो प्राकृत
कोटि ब्रह्माड नजरों मे आवे, क्षण में देखके पलमें उड़ावे।

२–न ईश्वर न मूल प्रकृति, तादिन की कहूं आपा बीती।

३–'पूरण ब्रह्म ब्रह्म से न्यारे, आनन्द अखण्ड अपार।

४–इश्क बड़ा रे सबन में, न कोई इश्क समान।
एक तेरे इश्क बिना, उड गई सब जहान।

प्रेम तब न रहे कछु नेम' और 'जब चढ़े प्रेम के पुंज, तब नजरों आया निकुंज'। प्रेम की घाटी पर चढ़ने वाले ही परमात्मा और परमधाम का दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। उनकी प्रेम लक्षणा भक्ति में ज्ञान के लिए भी स्थान है, क्योंकि जब तक परमात्मा के स्वरूप तथा परमधाम के पच्चीस पक्षों का तथा इस बात का ज्ञान नहीं होगा कि यह दुनिया गोरखधंधा है, तब तक परमात्मा से प्रेम होना असंभव है। इससे स्पष्ट है कि प्राणनाथजी सखी-सम्प्रदाय वालों की तरह 'ज्ञान' के विरोधी नहीं थे। विरोधी थे तो ज्ञान के क्षेत्र में चतुराई और तर्क से काम लेने के[1]। क्योंकि ऐसे ज्ञानियों के साथ शैतान [श्रद्धा हीनता] होता है जो परमात्मा की राह में बाधा उपस्थित करता है। पर जो ज्ञान भोले-भाव से प्राप्त किया जाता है, उसमें श्रद्धा होती है। श्रद्धासे प्रेम और प्रेमसे परमात्मा मिलता है। दोनों के आराध्य देव में भी अन्तर है। सखी-सम्प्रदायवालों ने वृन्दाबन स्वरूप की आराधना की है, पर प्राणनाथजी के आराध्य पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं।

वल्लभ-मत और प्रणामी मत

वल्लभाचार्य का सिद्धांत शुद्धाद्वैत कहलाता है। शंकर के अद्वैतवाद से भिन्नता

१-ज्ञान संग स्यानप मिले, तित क्यों कर आवे दरद।
न आपे न दरद किन्हें, सो हो जाए सब गरद।
दर्दी दर्दा जानहीं, ज्ञानी जाने ज्ञान।
राह दोउ जुदी पडी, मिले न कासों तान।
दीवाना मूरख मिले, स्यानप मिले शैतान।
दर्दी ज्ञानी दोउ जुदे, मिले न पिण्ड पहिचान।
कभी मूढ दर्दी मिले, पर दर्द न कबहूं शैतान।
बीज अकूर दोउ जुदे, वैर सदा ही जान।
ज्ञाने प्यारी स्यानप, दरदे सेती वैर।
दरदे प्यारी दीवानगी, स्यानप लगे जहर।

—सनन्ध ग्रन्थ, प्र० ४, चौ० ३०-३४

तथा—ऐसा तो कोई न मिलिया, जो दोनों पार प्रकाश।
मगन पिया के प्रेम में, भी स्यानप ज्ञान उज्जास।
जो कोई ऐसा मिले, सो देवे सब सुध।
मायने गुझ बताए के, कहे वतन की विध।

—वही, प्र० ५, चौ० ६२-६३

दिखाने के लिए ही अद्वैत के साथ 'शुद्ध' विशेषण जोड़ा गया है। शुद्ध शब्द का प्रयोग सप्रयोजन हुआ है। अद्वैत में माया शबलिक ब्रह्म को जगत् का कारण माना गया है जबकि वल्लभ-मत के अनुसार माया से अलिप्त-शुद्ध, ब्रह्म ही जगत् का कारण है। इसलिए इनके मत को 'शुद्धाद्वैत' कहा गया है।

शंकराचार्य ने ब्रह्म के सगुण व निर्गुण दो रूप माने हैं। मायाशबलित होने के कारण सगुण ब्रह्म को (निर्गुण से) 'हीन' माना है। पर वल्लभ ने ब्रह्म के दोनों रूप को ही सत्य माना है[1]। प्राणनाथजी के मतानुसार निर्गुण 'क्षर' पुरुष है और 'सगुण ब्रह्म' अक्षरातीत हैं[2]। सांसारिक लोग तो अंधेरे में भटकने वाले जीव हैं, वे सगुण-निर्गुण के चक्कर में पड़कर सत्य की प्राप्ति में असफल रहे हैं[3]।

वल्लभ-मत के अनुसार ब्रह्म तीन प्रकार का है–

आधिभौतिक – जगत्

आध्यात्मिक – अक्षर-ब्रह्म

आधिदैविक – परब्रह्म [या पुरुषोत्तम]

श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं जिनका शरीर सत् + चिद् + आनन्दमय है। जब वह अन्तःरमण करता है तो आत्माराम कहलाता है। जब बाह्य रमण की इच्छा से वह अपनी शक्तियों की बाह्याभिव्यक्ति करता है तब पुरुषोत्तम कहलाता है[4]। इसमें आनन्द की चरमाभिव्यक्ति होने के कारण वह आनन्दमय, परमानन्दस्वरूप आदि भी कहलाता है। अक्षर-ब्रह्म में इस आनन्द का कुछ अंश है।

श्री प्राणनाथजी ने क्षर, अक्षर और अक्षरातीत ब्रह्म तीन भेद किये हैं। उन्होंने अक्षर को ब्रह्म का सत् अंश माना है। वल्लभ ने जिस कृष्ण को सच्चिदानन्द माना है, वह प्राणनाथजी के अनुसार गोलोकी कृष्ण हैं, सच्चिदानन्द तो अखण्ड भूमि में निवसित अक्षरातीत हैं।

१–भागवत सम्प्रदाय, पृ० ३७८

२–मोह, अज्ञान भरमना, करम काल और शून्य।
ए सारे नाम नींद के, निराकार निर्गुण॥

३–ए दुनी आदि अनादि की, चली जात अंधेर।
निरगुण सगुण होय के, सब फिरे याही के फेर॥

४–भागवत सम्प्रदाय, पृ० ३७८

वल्लभ-मत के अनुसार ब्रह्म के आनन्द आदि अंशों के तिरोभाव से जीव-रूप ग्रहण करता है और निर्गुण सच्चिदानन्द ब्रह्म ही अविकृत भाव से जगत् रूप में परिणत हो जाता है। इस 'आविर्भाव' तथा 'तिरोभाव' के सिद्धांत को प्राणनाथजी ने नहीं माना। उनके अनुसार संसार की उत्पत्ति तथा लय के कार्य का संचालन अव्याकृत ब्रह्म [अक्षर के अहंकार] द्वारा होता है (जिसका सविस्तर वर्णन 'दर्शन' अध्याय में किया गया है), बाजीगर [परमात्मा] तो इन खेल के कबूतरों (संसार के जीवों) से अलग है।

वल्लभ ने साधना के तीन मार्ग माने हैं-पुष्टिमार्ग, प्रवाह-मार्ग और मर्यादा मार्ग[1]। प्रवाह मार्ग को, सांसारिक जीवों के निमित्त होने के कारण त्याज्य माना है। वेद-प्रतिपादित कर्म और ज्ञान के सम्पादन का मार्ग-मर्यादा-मार्ग की पहुँच अक्षर तक है और आत्म-समर्पण तथा रसात्मिका प्रीति का साधन-पुष्टिमार्ग, की पहुँच ब्रह्म तक है; और इस मार्ग को ही उन्होंने सर्वाधिक महत्व दिया है। इसी प्रकार फलाकांक्षी मर्यादा भक्ति से निष्काम पुष्टि भक्ति को उन्होंने अधिक महत्व दिया है[2]। भगवान के अनुग्रह को महत्व देने के कारण ये पुष्टिमार्गी कहलाये।

प्राणनाथजी के अनुसार पुष्टि-प्रवाह और मर्यादा मार्ग का महत्व जीव सृष्टि के लिए है, ब्रह्मसृष्टि के लिए नहीं। ब्रह्मसृष्टि के लिए तो सकाम और निष्काम भक्ति से ऊपर विज्ञान या मारफत, जिसे प्रेमलक्षणा-भक्ति (अथवा तुरियातीतावस्था) भी कहा जा सकता है, का ही महत्व है।

वल्लभाचार्य के अनुसार भी भगवतनुग्रह की सिद्धि के लिए भक्त के हृदय में उत्कट प्रेम की सत्ता नितांत आवश्यक है। भगवान से मिलने के लिए आतुरता तथा उसके वियोग में नितांत व्याकुलता का होना भक्त-हृदय की विशिष्ट घटना है। प्रेम के परिपाक में इस विरह के गौरव से साधक परिचित हैं।[3] प्राणनाथजी के मतानुसार भी-

"दुख से विरहा उपजे, विरहा प्रेम इश्क
इश्क प्रेम जब आइया, तब नेहचे मिलिये हक

कहकर प्राणनाथजी ने भी प्रेम-भक्ति में विरह को महत्व दिया है।

१-पुष्टि प्रवाह मर्यादा विशेषेण पृथक् पृथक्
जीव देह क्रिया भेदै: प्रवाहेण फलेन च —सूर और उनका साहित्य, पृ० ३७९

२-भागवत सम्प्रदाय, पृ० ३८४

३-भागवत सम्प्रदाय, पृ० ३९०

श्री प्राणनाथजी की साधना में गृह-त्याग [बन में जाने] का कोई स्थान नहीं है। उन्होंने 'केवल विदेह' अर्थात् 'जीवन-मुक्ति' को ही स्थान दिया है। 'जल में न्हाइए कोरे रहिए' कह कर उन्होंने प्रेमी साधकों को संसार में कमल की तरह रहने का परामर्श दिया है अर्थात् जिस प्रकार कमल जल में रहते हुए भी 'कोरा' (जल से अप्रभावित) रहता है, उसी प्रकार साधकों को संसार में रहते हुए भी उसके आकर्षणों से अप्रभावित रहकर 'खाते-पीते, उठते-बैठते, सोवत, सुपन, जाग्रत' परमात्मा के ध्यान में ही लीन रहना चाहिए। यही मानसी पूजा है। वल्लभ ने भी तनुजा और वित्तजा से मानसी पूजा को ही श्रेष्ठ माना है। तथा पुष्टि-मार्ग में गृह-त्याग आवश्यक नहीं माना[1]।

वल्लभ-मत में प्रपत्ति को भक्ति से श्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि भक्ति में भजन पूजन आदि साधनों की आवश्यकता होती है, परन्तु प्रपत्ति अथवा शरणागति में पूजन, भजन आदि आवश्यक नहीं हैं। उसमें आत्मनैवेद्य अथवा समर्पण ही सर्वस्व है। पर प्राणनाथजी के मतानुसार 'आत्म नैवेद्य' नवधा भक्ति का ही एक अङ्ग है और इससे श्रेष्ठ प्रेम लक्षणा भक्ति है। यह नवधा भक्ति तो 'जीवसृष्टि' की उपासना का माध्यम है। वल्लभ को नवधा भक्ति मान्य है, परन्तु मर्यादामार्गीय जीव के लिए ही पुष्टिमार्गीयजीव के लिए नहीं। इससे स्पष्ट है कि वल्लभ मत में भी आराधना के आधार पर आराधक के भेद किये गये हैं जबकि प्राणनाथजी ने आराधक के आधार पर आराधना और आराध्य के भेद किये हैं। वल्लभ ने पुष्टिमार्गीय, प्रवाही मार्गीय और मर्यादामार्गीय, साधक की ये तीनों श्रेणियां मानी हैं और भक्ति दो प्रकार की-मर्यादा-भक्ति और पुष्टि-भक्ति और आराध्य एक ही पुरुषोत्तम सच्चिदानन्द परब्रह्म श्रीकृष्ण को माना है[2]।

श्री प्राणनाथजी ने आराधक का भेद सृष्टि के आधार पर किया है और तीन प्रकार के आराधक माने हैं-जीव सृष्टि और ईश्वरीय सृष्टि, और ब्रह्मसृष्टि। आराध्य और आराधना का वर्गीकरण इन्हीं आराधकों के आधार पर किया है। आराध्य और आराधना भी उन्होंने तीन प्रकार की मानी है-आराधक, आराधना :- शरीयत तरीकत [कर्म, उपासना] हकीकत (ज्ञान) और मारफत (विज्ञान व प्रेम-भक्ति)[3] और आराध्य हैं

१-डा० हरवशलाल . सूर और उनका साहित्य, पृ० ३८५

२-वही, पृ० ३८४, तथा ३८५, ३७८

३ यह शब्दावली तथा उसका अर्थ इस्लाम तथा सूफियों के अनुरूप ही है। देखिए, सूर और उनका साहित्य, पृ० १०५

क्षर-पुरुष, अक्षर तथा अक्षरातीत पूर्णब्रह्म, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। प्राणनाथजी ने सच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म की उपासना पर ही बल दिया है। उनके उपास्य सच्चिदानन्द ब्रह्म वल्लभ के उपास्य सच्चिदानन्द ब्रह्म से भिन्न हैं। वल्लभ-सम्प्रदाय के उपास्य सच्चिदानन्द बेहद भूमि में निवसित गोलोक के कृष्ण हैं और प्राणनाथजी के उपास्य सच्चिदानन्द बेहदभूमि से आगे 'अखण्डभूमि' के अधिपति पूर्णब्रह्म श्रीराज हैं। वल्लभाचार्य कृष्ण के बाल-रूप के उपासक हैं।

इतना वैषम्य होने पर भी प्राणनाथजी वल्लभ की मूल भावना प्रति श्रद्धावान थे, क्योंकि वल्लभ की उपासना 'त्रिदेव' के ऊपर की है और उनका स्थान इक्यासी तरह के उपासकों से ऊंचा है (जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है)। पर आगे चलकर वल्लभ-मत का विकास जिस रूप में हुआ, उसे वे सुकृति नहीं विकृति मानते थे जिसका उल्लेख उनके इस प्रकरण में मिलता है-

वचन विचारो रे मीठंड़ी, वल्लभाचारज बानी
अरथ लिए बिना ए अंधेरी, करत सबों को फानी
बानी गाऊं श्री वल्लभाचारज, ज्यों वैष्णव को सुख होए
सत वचन बहुत तो न कहूं, जानो दुख पावे दुष्ट कोए

कौन तुम कहां से आए, और कहां है तुम्हारा घर
ए कौन भूमि कहां श्रीकृष्णजी, पाओगे कौन तर

विध न लहो विवाद करो, न देखो वचन विचारी
वल्लभ बानी समझे बिना, खोवत निध तुम्हारी

कुकरम करो कुटिल गत चालो, आगे पीछे चींटीहार
वल्लभ कुंअर कितने को वरजे, कई उलटे सेवक संसार
दोष नहीं इन बानी केरो, ए तो दुष्ट दासी की कमाई
अधम शिष्य गुरु को बुरा कहावे, पर सोने न लगत स्याही

> ए बानी तुम नहीं पहिचानी, या विध विध के प्रकाश
> इन प्रकाश में खेले श्रीकृष्णजी, रमे अखण्ड लीला रास
> तुम पनधारी आतम निवेदी, वाणी न देखो विचारी
> अजहूं न मानो तो इत आओ, मैं दिखाऊं लीला तुम्हारी
> वैष्णव होय सो वचन मानसी, और जो वल्लभ बानी से टलिया
> 'श्रीमहामति' कहे वह काहे को जन्मया, गर्भ माहें क्यों न गलिया[१]

इससे स्पष्ट है कि निजानन्द सम्प्रदाय की साधना तथा पुष्टिमार्गी साधना पर विहंगम दृष्टि डालने से पर्याप्त समता दृष्टिगोचर होती है, पर गहराई में जाने पर ज्ञात होता है कि दोनों मतों में पर्याप्त अन्तर भी है।

सन्त-मत और प्राणनाथजी

सन्त-मत विभिन्न साधनाओं के मिलन बिन्दु पर पैदा हुआ था। इसमें एक ओर नाथपंथियों की अन्तःसाधना थी, तो दूसरी ओर सूफियों का प्रेम तत्व, और ये दोनों वैष्णव-भक्ति साधना के साथ एकरस हो गयी थीं। इनकी साधना में 'ज्ञान' और 'भक्ति' को महत्व मिला, कर्म को नहीं। इन्होंने 'भक्ति' के दोनों पक्षों प्रेम और श्रद्धा को समान महत्व दिया है, इसीलिए सूफियों का प्रेम-तत्व इनके यहां अविकृत रहा जबकि परवर्ती सूफियों और वैष्णवों में यह प्रेम-तत्व सदैव आध्यात्मिक और सूक्ष्म भावात्मक भूमिका पर नहीं रह सका। कहीं बाह्य कर्मकांडों में और कहीं-कहीं व्यवहारिक धरातल पर भी उसकी भव्यता पर दाग आ गये थे। जहां तक एकेश्वरवाद और 'अविकृत-प्रेम का प्रश्न है, प्राणनाथजी का मत इन सन्तों से मिलता था, पर अन्तः साधना के क्षेत्र में इन निर्गुणी सन्तों का भिन्न मार्ग था।

श्री प्राणनाथजीने भी निर्गुणपंथी सन्तों की तरह वर्ण-व्यवस्था पर प्रहार किया, हिन्दु-मुस्लिम एकता पर बल दिया[२] और 'सबका खाविन्द एक' कहकर एकेश्वरवाद को महत्व दिया।

सन्तों के आराध्य निर्गुण निराकार हैं, पर प्राणनाथजी ने सगुण साकार की भक्ति की है।

सगुणोपासना अन्तःसाधना का मार्ग अवरुद्ध करती है। घट के भीतर के चक्रों, सहस्रदल कमल, इला-पिंगला नाड़ियों आदि की ओर संकेत करनेवाली रहस्यबानी से प्राणनाथजी दूर ही नहीं रहे, इनका विरोध भी किया। इन उपायों से जनता को भले ही कोई ठग ले; पर परमात्मा को नहीं ठगा जा सकता[1]। बाहरी पूजा अर्चा की विधियों का यद्यपि श्रीजी ने विरोध किया है पर वे वेद शास्त्रों के कभी विरोधी नहीं रहे[2]। श्रीजी ने 'मानसी-पूजा' को महत्व दिया है। मानसी पूजा से उनका तात्पर्य अन्तःसाधना से कदापि न था, वरन् खाते-पीते, उठते-बैठते, सुपन, सोवत, जाग्रत परब्रह्म तथा परम-धाम के पच्चीस पक्षों का ध्यान करना ही मानसी-पूजा है।

निर्गुणोपासक सन्तों ने साधना में 'कर्म' को महत्व नहीं दिया, सिर्फ ज्ञान और भक्ति का ही मार्ग अपनाया है। श्रीजी ने कर्म, ज्ञान और भक्ति में से केवल भक्ति को ही अपनाया है, ज्ञान को नहीं, क्योंकि 'भोले संग भगवान और ज्ञानी संग शैतान' रहता है[3]। अतएव उन्हें भोले-भाव से ईश्वर-भक्ति करना ही अभीष्ट हुआ।

इससे स्पष्ट है कि प्राणनाथजी की साधना तथा सन्त-साधना में विशेष समता नहीं है और उन्होंने-

"सुनो भाई सन्तो कहूं रे महन्तो. एक बात कहूं समझाई
या फंद बाजी रची माया की, तामें सब कोई रह्या उरझाई"

कहकर माया में उलझे हुए सन्तों, महन्तों को फटकारा है, उनकी बाह्य और आंतरिक अशुचिता और हठयोगी आडम्बर को असाधु बताया है, पर कबीर की साधना के प्रति उनकी दृष्टि उदार थी। कबीर को उन्होंने वल्लभाचार्य से भी अधिक महत्व दिया है क्योंकि उनके मतानुसार वल्लभ ने यद्यपि हद को पार कर बेहद तक पहुँचने का प्रयत्न

१-धनी न जाये किनको धृतो, जो कीजे अनेक धुतार।
तुम चेहेन ऊपर के कई करो, पर छूटे नहीं विकार॥ —कीर्तन

२-जिन जानों शास्त्रो में नही, है शास्त्रो में सब कुछ।
पर जीव सृष्टि क्या जानही· जिन की अकल है तुच्छ॥

३-इल्म चातुरी खूबी अग की, मोहे एही पट लिख्या अकूर।
एही न देवे देखने, मेरे दुल्हे के मुख का नूर॥ कीर्तन प्र० ६२

किया है, पर वे इण्ड में छेद्‌करके ही रह गये हैं, गोलोक का ही दर्शन कर सके, पर अक्षर तक नहीं पहुँचे, जबकि कबीर बेहदभूमि की चोटी–अक्षर-भगवान तक पहुँचे हैं। इसीलिए उन्होंने 'अक्षर केरी पांच वासना, सुकदेव सनकादिक कबीर शिव भगवान' कहकर कबीर की गणना अक्षर की पांच वासनाओं में की है और साधना में इन्हें तिरासीवां स्थान दिया है जबकि वल्लभ को बयासीवां पद ही मिला है (जिसका सविस्तार वर्णन इसी अध्याय में 'एक सौ आठ पक्षों' के विवेचन में किया जा चुका है)।

इस तुलनात्मक विवेचन के आधार पर यही कहा जा सकता है कि प्राणनाथजी ने जिस अभूतपूर्व मत की स्थापना की है, उसमें वैष्णवों का प्रेम है, वेदान्तियों का अद्वैतवाद है, और है सन्तों का एकेश्वरवाद। जिसे कि उन्होंने यह कहकर स्वयं स्वीकार किया है कि–

तब जानों इन बात की, कोई देवे दूजा साख
सो हलके हलके देत गए, मैं साख पाई कैलाख

खिलवत प्र० १ चौ० २१

अर्थात् मैंने जिस अपूर्व मत की स्थापना की है, उसकी थोड़ी बहुत साक्षी सर्वत्र मिलती है। उनके इस कथन से स्पष्ट है कि उन्होंने इस 'समता' को 'साक्षी' माना है, प्रभाव नहीं, क्योंकि उनका मत था कि—

हक इलम की बारीकियां, हक के दिये आवत।
सीखे सिखाए न सोहबते, हक मेहरों पावत॥

अर्थात् अक्षरातीत के ज्ञान को किसी की सोहबत से प्राप्त नहीं किया जा सकता, वरन् इसे तो परमात्मा के कृपा-मात्र से हो पा सकते हैं। बुद्धनिष्कलंकावतार, इमाममेंहदी तथा 'हक-अङ्गना' होने के कारण यह कृपा-दृष्टि उन्हें ही प्राप्त थी[1] जिससे वे इस 'अपूर्व' वस्तु (साध्य, साधना साधक के अपूर्व मत) का वर्णन कर सके।

यदि प्राणनाथजी की इन उक्तियों को मान लिया जाये तो यही कहना पड़ेगा कि प्राणनाथजी की साधना-पथ तथा दार्शनिक चिन्तनधारा विभिन्न मतों से समर्थित है, पर वह उनके समर्थन पर जीवित नहीं। यदि सूफी, सन्त और राधावल्लभी आदि न भी होते तो भी यह इसी रूप में होती।

—:०:—

१-कदमो लाग करूं सेजदा, पकड़के दोऊ पाए। हुकम करत माशूक, बीच आशिक के दिल आए॥
माशूक तुम्हारी अगना, तुम अंगना के माशूक। हुकमे इलमें दृढ किया, इन रूह क्यों न होए टूक टूक॥

भावानुभूति और अभिव्यक्ति अध्याय ७

श्री प्राणनाथजी न कवि थे और न काव्यशास्त्र के पण्डित। कविता लिखना उनका उद्देश्य नहीं था। एक प्रकार से कविता उनके सिद्धांत निरूपण और प्रवचनों का परिणाम है। जहां उन्होंने पदों में अलौकिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना की है और उनकी रचनाएं काव्य के निकष पर भी कसी जा सकती हैं, वहां भी उनका लक्ष्म काव्य रचना नहीं है। इस तथ्य के सम्बन्ध में प्राणनाथजी सजग भी थे, इसलिए उन्होंने कहा है कि "लघु और गुरु की योजना और छन्द शास्त्रीय चातुर्य तो कवि के लक्षण हैं। कवि कर्म मेरा लक्ष्य नहीं है, मैं तो 'धनी श्रीधाम' (परमात्मा) की चर्चा करता हूं[१]।"

यह बात नहीं थी कि प्राणनाथजी साहित्य शास्त्र से अपरिचित थे। विभिन्न भाषाओं का ज्ञान और उनकी कृतियां इस बात का प्रमाण हैं कि विभिन्न भाषाओं के सीखने में उनकी रुचि थी, पर वे काव्य शास्त्र के प्रति समर्पित नहीं थे। इस दृष्टि से उन्हें सिद्धों, नाथों और सन्तों के साथ रखना अधिक समीचीन नहीं होगा। उनमें सन्तों की तरह ही भाषा का लोक-प्रचलित रूप प्रमुख है जिसमें व्याकरण और छन्दशास्त्र के बन्धन बहुत बार अनायास शिथिल हो गये हैं। जो प्रश्न कबीर के सम्बन्ध में (कि कबीर कवि थे या नहीं) हिन्दी के पुराने आचार्यों [रामचन्द्र शुक्ल आदि) ने उठाया था, वही प्रश्न प्राणनाथजी के सम्बन्ध में भी उठाया जा सकता है। अभिव्यक्ति के कौशल की दृष्टि से प्राणनाथजी को कवि और कलाकार कहने में संभवतः काव्य-शास्त्रियों को हिचक हो, पर अनुभूति की ईमानदारी और निःश्छल आत्माभिव्यक्ति की दृष्टि से उनके बहुत से पद काव्यत्व की कसौटी पर खरे उतरते हैं। यहां पर संक्षेप में उनकी अनुभूति और अभिव्यक्ति-शिल्प का विश्लेषण किया जा रहा है।

भावबोध और अनुभूति :

श्री प्राणनाथजी के काव्य में वर्णनातीत, ज्ञानातीत और लोकातीत पूर्णब्रह्म परमात्मा के साक्षात्कार की अनुभूतियों की व्यंजना है। यह रसात्मक आस्वादन उनकी भावभूमि में अवतरित होकर सरलतम शब्दों में व्यक्त हुआ, इसलिए इनकी रचनाओं को

१-'लघु दीर्घ पिंगल चतुराई, ए तो छे कविनी बडाई' —रास ग्रन्थ

'मारे नथी काई किव नू काम, वचन केहेवा धनी श्रीधाम' —प्रकाश ग्रन्थ

आवेश-वाणी कहा जाता है[1]। आवेश के क्षणों की स्वानुभूतिमयी व्यंजना स्वभावतः भावात्मक होती है। संयोग और वियोग के क्षणों में भाव और भी तीव्र हो गये हैं। रासलीला वर्णन में संयोग-पक्ष के दर्शन होते हैं और संसार में अवतरित सखियों को जब परमात्म और परमधाम की याद आती है, उन क्षणों में विप्रलंभ के।

संयोगजन्य प्रणय-भाव की मुख्यतः तीन श्रेणियां हैं—

(१) परिचय और आकर्षण
(२) आत्मीयता और साहचर्य
(३) तादात्म्य (एकांत संयोग रस)

सखियों का (जिनमें इन्द्रावती सखी-प्राणनाथजी, भी हैं) के पूर्णब्रह्म के अवतार कृष्ण की ओर आकर्षित होने का कारण पूर्व परिचय है। व्रज में अवतरित होते ही सखियों के मन में अपने 'धनी' से मिलने की उत्कट अभिलाषा थी,[2] इसीलिए कृष्ण के रूप में पूर्णब्रह्म के अवतरित होने पर सखियां इस तरह उमड़ी—'ज्यों उमड़यो सागर पूर'। इसी पूर्व परिचय के कारण वे कृष्ण की ओर आजन्म आकर्षित रहीं। इस आकर्षण में दृष्टि-पथ के मिलन सुख के चित्रण का भले ही अभाव हो, पर आत्मीयता और साहचर्य के चित्रणों का अभाव नहीं। रासलीला में सखियां निरन्तर साहचर्य का सुख प्राप्त करती हैं, कृष्ण ने भी अपने उतने ही रूप बना लिये हैं जितनी सखियां हैं और विभिन्न सखियों के साथ विभिन्न लीलाएं कर रहे हैं,[3] कहीं 'फुंदड़ी' खेल रहे हैं तो कहीं 'गढ़नणी' रामत हो रही है, कहीं भुलवनी क रामत हो रही रहे है तो कहीं आंख-मिचौनी खेल रहे हैं[4]।

१—गैब आवाज हुई इसारत, उतरी इलाही इन सूरत।
आठ महीने हुए इन पर, तब पहला किताब हुई मथम्मर।
—बड़ा क्यामतनामा, प्र० १२, चौ० २३

तथा—'ए किताब मारफत सागर की हकताला के हुकम से पैदा हुई। हादी के दिल पर जाय बैठकर बिगर हिजाब बारीक बातें चोपाइया मुंह से कहवाई।' —मारफत सागर, आदि की पुष्पिका

२—उपजत ही मन आसा घणी, हम कब मिलसी अपने धनी।

३—'सखी सखी प्रति श्याम घन, वालाजो ए देह धरया' —रास, प्र० ४४, चौ० १

४—रास ग्रन्थ

श्री प्राणनाथजी की रचनाओं में तादात्म्य के ऐसे चित्रण भी मिलते हैं जिनमें प्रणय-भाव का घनिष्ठतम रूप व्यक्त होता है। ये चित्र दो तरह के हैं—

(क) वैयक्ति मिलन ले चित्र,

(ख) राधा मिलन के चित्र,

वैयक्तिक संयोग के चित्र वे हैं, जिनमें प्राणनाथजी इन्द्रावती सखी के रूप में स्वयं उपस्थित हैं और जहां उन्होंने अपनी अनुभूति की बात उत्तम-पुरुष में कही है—

"दूध दधि मखन लावें, हम पियाजी के काज,
तित दधि हमारा छीन के, देवे ग्वालों को राज
भाग जायें ग्वाल न्यारे, हम पकड़ राखे पीऊ पास
पीछे पीऊ सो एकांत में, हम बन में करें बिलास"

व्यक्तिगत मिलन के चित्र रास में अनेक हैं[1]। कहीं-कहीं राधा के मिलन के चित्र भी हैं,[2] पर ऐसे चित्र बहुत ही कम हैं। व्यक्तिगत मिलन के चित्र का ही आधिक्य है।

गौड़ोय वैष्णवों ने संयोग के चार प्रकारों का वर्णन किया है। ये चारों अवस्थाएं विप्रलंभ को चार स्थितियों पर आधारित हैं-संक्षिप्त, संकीर्ण, समृद्धमान और सम्पन्न। पूर्वराग के पश्चात् का प्रथम मिलन संक्षिप्त संयोग होता है। मान के बाद का मिलन संकीर्ण होता है। प्रवास के बाद का मिलन समृद्धमान होता है और प्रेम-वैचित्र्य की दशा के पश्चात् का मिलन सम्पन्न संयोग होता है। प्राणनाथजी ने रस-विवेचन की सूक्ष्मताओं पर ध्यान नहीं दिया, अतः उनके काव्य में इन सब संयोग अवस्थाओं के उदाहरण खोजना व्यर्थ है, सम्पन्न संयोग के चित्र उनकी रचनाओं में अवश्य मिल जाते हैं[3]। जब कृष्ण रासलीला करते हुए अन्तर्धान हो गये थे, उस समय सखियां बहुत विह्वल हो गयी थीं[4] और जब वे पुनः प्रगट हुए तो सखियों को बड़ा आनन्द

१-रास ग्रन्थ, प्र० ४२, ४३

२-सखी वृषभान नन्दनी, कठ कर कृष्ण नी।
जोड एक अगनी, रमती रगे रास री।
भूषण लटके भामनी, काडि तेज करणकामनी।
सग जोड श्याम नी, वनमा करे विलास री'॥'

३-रास ग्रन्थ, प्र० २५, २६

४-वही, प्र० ३१-३२

हुआ था। उस समय का जो चित्रण प्राणनाथजी ने किया है, उसे 'समृद्धिमान' के अन्तर्गत रख सकते हैं[1]।

वियोग :

गौड़ीय वैष्णव-रसशास्त्र के अनुसार विप्रलंभ की चार अवस्थाएं होती हैं- पूर्वराग, मान, प्रेम वैचित्र्य तथा प्रवास। पूर्वराग चित्र दर्शन, स्वप्न-दर्शन, गुण-श्रवण अथवा साक्षात् दर्शन आदि कई कारणों से होता है। अनुराग की उत्पत्ति से प्रिय के साक्षात् मिलन तक की अवस्था पूर्वराग है।

पूर्वराग और मानके चित्रों का तो प्राणनाथजी की रचनाओं में प्रायः अभाव-सा है, पर प्रेम वैचित्र्य तथा प्रवास के चित्रण के दर्शन रास तथा षट्ऋतु में अवश्य हो जाते हैं।

(क) प्रेम-वैचित्र्य -

वियोग में प्रेम के कारण चित्त की दशा जब अनुरागमयी होती है तब विप्रलंभ शृंगार का रूप प्रेम-वैचित्र्य कहा जाता है। यह अनुराग दशा तीन प्रकार की होती है-

(१) रूपानुराग : प्रियतम के रूप में अनुराग,

(२) आक्षेपानुराग : अनुराग में प्रियतम या प्रियतम की वस्तुओं आदि पर आक्षेप करना,

(३) रसोद्गार : बीती रसलीला की स्मृति।

श्री प्राणनाथजी के काव्य में रूप अनुराग के अनेक स्थल हैं जो सिंगार[2] सागर, खिलवत, कीरन्तन[3] आदि ग्रन्थों में मिलते हैं। आक्षेप के चित्र बहुत कम मिलते हैं। कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने पर, अपनी सारी पीर को समेट कर सखियां इतना ही कहती हैं-हममें ऐसा क्या अवगुण था जो हमें इस तरह रोता छोड़ गये, रंग में भङ्ग डाला। हमने लाख गलती की हो, पर 'वालाजी' ने ऐसा व्यवहार क्यों किया, हमें इस

१-'उछरंग अग सुन्दरी, हेत चित मन धरी।
सुख लाव्या वालो वली, सुख लाव्या वालो वली।
कर माहिं कर करी, सकल मिली हर बरी।
बाहें न मूके श्याम नी, अलगी न जाए कोए टली'। —रास ग्रंथ, प्र० ३'५

२-मुख मेरे मेहबूब का, रग उज्जल अति गुलाल।
क्यों कहूं शोभा नाजुकी, नूर नजल्ला नूरजमाल।

३-लाल अधुर हंसत मुख हरवटी, नासिक तिलक निलवट भौंहें।
केश श्रवण मुख दन्त मीठी रसना ए देख दर्शन आवे जोश आवेश।

तरह रोता हुआ छोड़कर क्यों चले गये। उनमें तनिक भी दया नहीं[1]। रसोद्गार के चित्रों की कमी उनके काव्य में नहीं है। कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने पर सखियां उसकी लीलाओं-गोरस लीला, रासलीला, को दुहराती हैं। 'इन्द्रावती' की भावना में निराशा नहीं। वह समस्त व्याकुल सखियों को समझाती है कि कृष्ण हमारे प्राणाधार हमें छोड़कर जा ही नहीं सकते, जब तक हममें प्राण है तब तक हमारे आधार हमारे साथ हैं, आधार के बिना प्राण कैसे रह सकते हैं, कृष्ण हमसे दूर नहीं हैं, चलो हम कृष्ण व ग्वाल-बाल बनकर लीला करें, कृष्ण अपने आप आ जायेंगे। इन्द्रावती की यह भावना रंग लाती है, सखियों द्वारा रासलीला किये जाने पर कृष्ण [स्वतः ही] प्रगट हो जाते हैं।

(ख) प्रवास–

प्रियतम जब प्रिया के पास नहीं रह जाता, तब विप्रलंभ की प्रवास दशा होती है। कृष्ण मथुरा चले गये हैं। जाते समय कह गये थे कि चार दिन के लिए जा रहा रहा हूं, पर जब अवधि से अधिक दिन व्यतीत हो जाते हैं और कृष्ण के आने के बदले आते हैं 'उधव,' तो गोपियों को निश्चय हो जाता है कि 'कृष्ण अमें मूकी ने गया'।

काव्यशास्त्र में प्रवास-विरह की दस स्थितियां बतायी गयी हैं- असौष्ठव अथवा मलिनता, सन्ताप, पाण्डुता अथवा विवृत्ति, कृशता, अरुचि, अवृत्ति अथवा चिद् की अस्थिरता, विवशता अथवा अनावलम्ब, तन्मयता, उन्माद तथा मूर्च्छा। इसी से मिलती जुलती विरह की दस दशाओं का उल्लेख किया गया है-अभिलाषा, चिंता, गुण-कथन, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। पर यह जरूरी नहीं कि विरही में उक्त समस्त दशाएं हों।

श्री प्राणनाथजी के काव्य में, विशेष रूप से षट्ऋतु ग्रन्थ में-उक्त विरह की दशाओं में से कुछेक उदाहरण मिल जाते हैं। पर उनका वियोग प्रलाप उन्माद और व्याधि जड़ना और मरण की दशाओं तक नहीं पहुंचता इसका विशेष कारण है षट्ऋतु में सखियाँ सोचती हैं, यदि हम लोक-व्यवहार से निंदित होंगे तो प्रियतम को भी हमारे

१-मारो जीव कल्कले आकलो, अने काया थरके अग।
कहोजी अवगुग अमतणा, जे कीधा रगमा भग।
सखी सेवा चूका हसू आपन, पण वालो करे एम केम।
आपन ने एम रोवना, वालो मूको गयो छे जेम ॥ २२ ॥
सखियो रे आपुन ने मूकी गयो, एने दया नही रे लगार। रास ग्रन्थ, प्र० ३२

वर्णन कहीं-कहीं अत्यन्त संक्षिप्त हैं और उसे समझने के लिए दास-वाणी की शरण लेनी पड़ती है—

"सात दिन गोकुल में रहे, चार दिन मथुरा के कहे
गज मल्ल कंस को कारज कियो, उग्रसेन को टीका दियो
कालागृह में दर्शन दिए जिन, आए बंध थे छुड़ाए तिन
वसुदेव देवकी के लोहे भान, उतारो भेष कियो स्नान
जबराज बागे को कियो सिनगार, तब बल पराक्रम न रह्यो लगार
आए जरासंध मथुरा वेरी सही, तब कृष्णजी को अति चिंता भई
यों याद करते आया विचार, तब कृष्ण विष्णुमय भये निर्धार
शिशुपाल की जोत वैकुण्ठ गई, समाई श्रीकृष्णजी में तित न रही
आयुध अपने मंगाय के लिए, कै विध युद्ध असुरों सो किए
मथुरा द्वारका लीला कर, जाए पहुँचे विष्णु बैकुण्ठ घर"[१]

मथुरा में जाकर कंस द्वारा नियुक्त गज, मल्ल आदि राक्षसों का वध, कंस का वध करना, उग्रसेन का राजतिलक करना, वसुदेव देवकी को बन्दीगृह से मुक्ति, शिशुपाल-वध, जरासंध से युद्ध आदि जिन विषयों को लेकर श्रीमद् भागवत के पृष्ठ पर पृष्ठ रंग दिये गये हैं, उनका वर्णन प्राणनाथजी ने केवल पांच चौपाइयों में कर दिया है। इसी तरह कृष्ण जन्म व बधाई सम्बन्धी एक ही पद इनकी रचनाओं में मिलता है। कृष्ण पर जन्म पर समस्त ब्रजवासियों का हृदय विलोड़ित हो उठा है, सारा वातावरण ही आवेशमय प्रतीत होता है—

"आज बधाई ब्रज घर घर, प्रगटे श्रीनन्द कुमार।
दूध दधि उमर धोए, तोरन बांधे ब्रज नार॥

न बैठ सके विरहनी, सोए सके न रोए।
राज पृथ्वी पाव दाव के, निकसी या विध होए। सनन्ध, प्र० ७

अभिलाषा उपजत ही मन आसा घनी, हम कब मिलसी अपनेधनी।
जेती कोई है ब्रह्मसृष्टि, प्रेम पूरण धनी पर दृष्टि। —प्रकाश ग्रन्थ, प्रगटवाणी

१—प्रकाश ग्रन्थ, प्रगटवाणी

एक बीजीने छांटे नाचे, आनन्द अंग न माए
अनेक विधना बाजा रस बाजे, गृह गृह उच्छव थाए
लई ने बधावो सांचरी, भवन भवन थी नार
गाए ते गीत सुहामना साजे सकल सिनगार
अबीर गुलाल उछाळती आवे' छाया न सूझे सूर
चाल चरण छवे नहीं भोमें, जाणे उमड़यो सागर पूर
जुत्थ जुत्थे जोवंतियो, उछरंगतियो अपार
उच्छव करती आवियो, बाबानन्द तणे दरबार
धसमसियो मन्दिर मां पेसे, माननी सर्वे धाए
नन्द ने बधावो दई ने बल्या, मांडवे मङ्गल गाए
ब्राह्मण भाट गुनी जन चारण, मलिया ते मांगनहार
निरत नटवा गंधर्व राग संगीत थेई थेई कार
नाद वृन्द पड़छन्दा पर्बते वर्त्यों जय जय कार
नन्द गोप सहु गेहेला हरषे, खुलावे भण्डार
गाए गोधा अन्न वस्त्र पहिरावे, गोप सकल दातार
केहे ने धन केहे ने भूषण नव निध दे दे कार
ए लीला रे अखण्ड थई, एनो आगल थासे विस्तार
प्रगटचा पूरन पार ब्रह्म, महामति तणो आधार

संयोग प्रसंग में भावों में और भी तीव्रता आ गयी है। सुख-विलास, रास, वृन्दावन, विहार, जल-क्रीड़ा आदि के पद भावों के तीखेपन से ओतप्रोत हैं। जब कृष्ण ने वंशी में गोपियों का नाम लेकर पुकारा तो समस्त व्रज-वनिताएं रात को ही घर छोड़कर दौड़ पड़ी, जल्दी में किसीने हाथों के आभूषण पैरों में और पैरों के हाथों में पहिन लिये हैं, कोई खाना परोसकर ले जा रही है और उसी समय उसे वंशी की ध्वनि में अपना नाम सुनाई पड़ा, वह थाली वहीं फेंक कर दौड़ पड़ी, उसका एक पैर पति के हृदय पर पड़ा तो दूसरा बालक पर। यदि कोई सखी नहा रही थी तो अपना

नाम सुनते ही वस्त्रों का ध्यान किये बिना ही दौड़ पड़ी[1]। कृष्ण के पास पहुँचते ही सखियों को जब कृष्ण वेद्-पुराण-समस्त लोकमर्यादा की दुहाई देते हैं[2] तो इस बौद्धिकता के आगे गोपियों के रूप में उमड़ने वाली भाव प्रवणता फीकी पड़ने लगती है।

भाव की यह तीव्रता सिर्फ संयोग पक्ष में ही नहीं; वियोग-पक्ष में भी दर्शनीय है। रासलीला करते हुए जब कृष्ण अन्तर्धान हो जाते हैं तो सखियां उन्हें ढूंढ़ती हुई जङ्गल में भटकने लगती हैं। कोई कृष्ण पर आक्षेप कर रही है तो कोई प्रलाप कर रही है और कोई 'फड़कला खाकर' (मूर्च्छित होकर) गिर पड़ी है।

कृष्ण को ढूंढ़ने के जब सखियों के सारे प्रयत्न विफल हो जाते हैं तो वे निश्चय करती हैं कि चलो, हम लोग पूर्ववत रासलीला करें, जहां भी कृष्ण होंगे, स्वतः ही आजायेंगे। हमें छोड़कर वे जा ही नहीं सकते। कहीं छिपकर बैठ गये हैं और हमें नहीं मिल रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि यहां भी उनकी भावुकता पर बौद्धिकता ने विजय पा ली है। इसलिए भावों में अत्यधिक तीव्रता नहीं आने पायी। क्योंकि जब-जब भावों में तीव्रता आने का अवसर आता है, उस समय बौद्धिकता उनपर हावी हो जाती है, इसलिए भाव की विशेषताओं-तीव्रता, विस्तार और गहराई-को उनकी रचनाओं में अंशतः ही स्थान मिलता है, पूर्णतः उनका निर्वाह नहीं हुआ। उनकी अधिकांश रचनाएं बुद्धि प्रधान ही हैं। रास, सागर और सिनगार यदि भाव-प्रधान रचनाएं हैं तो कलस, सनन्ध कोरन्तन, खुलासा, परिक्रमा, मारफत और कयामतनामा बुद्धि प्रधान रचनाएं हैं।

इस बौद्धिकता के आधिक्य का कारण है अध्यात्मिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि। उन्हें धर्म के नाम पर हो रहे अत्याचारों और पाखण्डपूर्ण रीतियों को समाप्त करना था। धर्म की अस्त-व्यस्त परम्पराओं और ध्वस्त मूल्यों के खण्डन-मंडन करने और समन्वयवादी दृष्टिकोण को स्थापित करने में बौद्धिक पक्ष का प्रबल हो जाना स्वभाविक है[3]। इतना ही नहीं, उन्हें परमधाम से आनेवाली अपनी सखियों को पूर्णब्रह्म और निजधाम को याद दिलानी है, उन्हें सचेत करना है। ये सखियां विभिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रों और विभिन्न सम्प्रदायों में अवतरित हुई हैं। कोई हिन्दुओं में अवतरित होकर

१—रास, ग्रन्थ प्र० ५

२—'उथला' का प्रकरण

३-'साधो हम देख्या बड़ा तमाशा।

विश्व देख भया मे विसमय, देख देख आवत मोहि हासा। पर पृष्ठ

पावन गंगा-यमुना को अपना तीर्थ-स्थान माने हुए हैं, तो कोई मूर्ति की पूजा कर रही हैं और कोई मुसलमानों में अवतरित होकर फिरका-परस्ती में डूबी हैं। उन सब तक उन्हें सन्देश पहुंचाना है। इतना ही नहीं, उन्होंने 'बुद्धावतार' तथा 'इमामत' का दावा भी किया था, जिसे कुरान और पुराण से उन्हें सिद्ध करना पड़ा तथा विभिन्न लोगों से शास्त्रार्थ भी करना पड़ा। इन समस्त कारणों से उनमें बौद्धिक पक्ष प्रबल हो गया है। इस बौद्धिकता का प्रभाव भावुक क्षणों में भी रहता है, इसलिए भावुकता पागलपन की सीमा तक नहीं पहुँची।

अभिव्यक्ति

भावभिव्यक्ति का आवश्यक अङ्ग भाषा है। उन्हें तो अपने 'धामधनी' के वचन कहने थे, इसलिए जिस विधि से उसे कहना सूझ गया, वैसा ही कह दिया, आवेश में जैसी भाषा निकल गयी' उसे वैसा ही रख दिया, उसे काट-छांट कर, सुधार-संवार कर आकर्षक बनाने का प्रयत्न उन्होंने नहीं किया। भाषा अथवा अलंकार आदि का जो प्रयोग उनकी रचनाओं में हुआ है, वह बिना प्रयास के स्वभाविक रूप से हुआ है।

भाषा –

श्री प्राणनाथजी की जन्म-भूमि गुजरात थी। धर्माभियान में उन्होंने देश के विभिन्न भागों का भ्रमण किया, जिसमें सूरत, उज्जैन, औरंगाबाद, दिल्ली, आगरा, मथुरा, रामनगर, मेरता पन्ना का नाम उल्लेखनीय है। इसलिए मातृभाषा के अतिरिक्त उर्दू-फारसी और हिन्दी से भी उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था।

मेरी मेरी करते दुनी जात है, बोझ ब्रह्माड सिर लेवे।
पाव पलक का नहीं भरोसा, तो भी सिर सरजन को न देवे।
सिर ले काम करे माया को, निशंक पछाड़े आप अंग।
न करें भजन दोष देवें साईं को, कहे दया बिना न होवे साध संग।
बाधत बध आप को आपे, न समझे माया को मरम।
अपनो कियो न देखे अंध, पीछे रोवे दोष दे दे करम।
समझे साध कहावे दुनी में, बाहर दिखावें आनन्द।
भीतर आग जले भरम की, कोई छूट न सके या फन्द।
परत नहीं पहिचान पिंड की, न सुध अपनो घर।
मुख से कहे मोहे संशय मिटिया, मे देखे साध केते या पर। कलस, प्र० ४

श्री प्राणनाथजी का मुख्य उद्देश्य औरंगजेब तक अपना पैगाम पहुँचाना था, इसीलिए उन्हें उपरोक्त भाषाओं के अतिरिक्त अरबी भाषा को भी अपनाना पड़ा, क्यों कि औरङ्गजेब जैसा कट्टरपंथी मुसलमान भारतीय भाषा में दिये गये धार्मिक पैगाम को सुनने के लिए तैयार न था—

सो पाती हिन्दवी की, क्यों कर सुने कान
सरियत है जोरावर, है पोहरा मुसलमान
× × ×
कोई कहे हिन्दवी मिने, लिखे ए कलाम
बातां तो बर हक हैं, पर हमें रवां नहीं इस ठाम

श्री प्राणनाथजी प्रणामी-धर्म का प्रचार व प्रसार भी करना चाहते थे, इसलिए उन्हें विभिन्न प्रांतीय भाषाओं को भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाना पड़ा, जिनमें मुख्य है-गुजराती, हिन्दुस्तानी (हिन्दी + उर्दू), अरबी, सिन्धी। प्राणनाथजी की मातृभाषा गुजराती थी और उन्होंने प्रथम चार ग्रन्थों (रास, प्रकाश, षट्ऋतु, कलस) की रचना गुजराती में की, परन्तु उनकी अधिकांश रचनाएं हिन्दी में हैं। इसका विशेष कारण है प्राणनाथजी का मत था कि संसार में बिना हिसाब बोलियां प्रचलित हैं, उनमें सर्वाधिक सरल और बहुभाषी लोगों की भाषा हिंदी है अर्थात् यह (हिन्दी भाषा) एक ऐसा साधन था जिसके द्वारा प्राणनाथजी देश के विभिन्न भागों तक अपना पैगाम पहुंचा सकते थे। उन्होंने कहा है—

सब को प्यारी अपनी, जो है कुल की भाख
अब भाषा कहूं में किन की, यामें भाषा तो कई लाख
बोली जुदी सबन की, और सब का जुदा चलन
सब उरझे नाम जुदे धर, पर मेरे तो कहना सबन
बिना हिसाबें बोलियां, मिने सकल जहान
सबको सुगम जान के, कहूँगी[1] हिन्दुस्तान

१-प्राणनाथजी स्वयं को परमधाम की 'इन्द्रावती सखी' का अवतार मानते थे इसीलिए (स्त्रीलिंग) 'कहूंगी' का प्रयोग किया है।

बड़ी भाषा यही भली, जो सब में जाहेर
करने पाक सबन को, अन्तर माहिं बाहेर[1]

'हिन्दुस्तानि' शब्द का प्रयोग सप्रयोजन हुआ प्रतीत होता है। इस बहुभाषी हिन्दुस्तान में हिन्दीतर प्रचलित मुख्य-मुख्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग प्राणनाथजी की रचनाओं में प्रचुर मात्रा में हुआ है। इसी मिश्रित भाषा को हिन्दुस्तानी कहा गया है।

हिन्दुस्तानी और गुजराती के अतिरिक्त प्राणनाथजी ने सिन्धी-भाषा में भी रचना की है। भाषा की दृष्टि से उनकी रचनाओं का अध्ययन प्रस्तुत है।

गुजराती भाषा की रचनाएं :

रास, प्रकाश, षट्ऋतु और कलस की रचना प्राणनाथजी ने मातृभाषा गुजराती में की है। इसमें बोलचाल की भाषा को ही अपनाया है—

रास : हवे पहेलां मोह जलनी कहूं बात, तेतां दुख रूपी दिन रात
दावानल बले कई भांत तेनी केटली कहूं विख्यात
विश्व ने लागी जाणे ब्राध, माहें अगिन बले अगाध
तेतां पीड़े दुष्ट ने साध नहीं अधक्षण नी समाध[2]

प्रकाश : हवे पक्ष व्यासीमों जे कह्यो, वल्लभाचारज ते ग्रह्यो
स्यामाव्रल्लभी एथी जोर, पण बन्ने रह्या इण्डानी कोर॥[3]

षट्ऋतु : रुत सघली रे हूं घणूं कलपी, पण वालैए न लीधी मारी सार
न जाणूं जीव मारो केम करी राख्यो, नहीं तो नव रहे निरधार॥[4]

कलस : वैराट आकार सुपननो, ब्रह्मा ते तेहनी बुध
मन नारद फरे माहें, वेदे बांध्या बंध बेसुध॥[5]

१–'सनन्ध ग्रन्थ,
२–रास ग्रन्थ, प्र० १, चौ० १, २
३–प्रकाश गुजराती, प्र० ३४, चौ० ५
४–षट्ऋतु, प्र० ७, चौ० २
५–कलस (गुजराती), प्र० ६, चौ० २

हिन्दी की रचाएं :

प्रकाश, हिन्दुस्तानी, कलस हिन्दुस्तानी, खिलवत, परिक्रमा, सागर, सिनगार की रचना खड़ी-बोली में हुई हैं ।

प्रकाश हिन्दुस्तानी : इसकी रचना यद्यपि हिन्दी भाषा में हुई है, पर इसके अधिकांश प्रकरणों में गुजराती शब्दावली का बाहुल्य है—

साथ सकल तुम याद करो, जिन जाओ वचन विसरजी
धनी आपुन को मिले माया मिने, जिन भूलो ए अवसरजी

कलस हिन्दुस्तानी : इसकी रचना हिंदी, बोलचाल की भाषा में हुई है—

कै संत जो महन्त, कै देखी ते दिगम्बर
पर छल न छोड़े काहू को, कै कापड़ी कलन्दर
कै आचारी अपरसी, कै करें कीरन्तन
यो खेलें जुदे जुदे, सब पड़े वस मन ॥

सनन्ध : सनन्ध में अरबी, हिन्दी और उर्दू-तीन भाषाओं का प्रयोग हुआ है जिनके उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

हिंदी— ओठा लेवे जिमी बिना, पांव बिना दौड़ी जाये
जल बिना भव सागर, तामें गोते खाये ॥

उर्दू— प्यारा नाम खुदाय का, फेरे तसबी लगाएके तान
खूनी की सोहोबत ना करें, या दीन मुसलमान ॥

अरबी— अल्लजी इमाम आगवो, हो हस्ना हिंद मकान
व ला एगी कलाम गैर, मिसल हिंदी इलाने कफियान

श्री प्राणनाथजी को हिंदी भाषा में ही उपदेश देना अभीष्ट था, परन्तु ऐसे लोगों के लिए, जो हिंदी समझने में असमर्थ थे, प्रांतीय भाषाओं का भी प्रयोग करना पड़ा जिसकी पुष्टि उनकी निम्न उक्ति से होती है—

अनी हवो कुल्लो मुस्लिम, लाकिन जायद सिंध
हाला न कलिम सिंध मुस्लिम, बाद कलिम अनाहिंद[1]

---

[1]—प्र० ३४, चौ० १८ सनध

अर्थात् पहले मैं सिन्ध के मुसलमानों के लिए सिन्धी में कहूंगा, फिर हिन्द के मुसलमानों के लिए हिंदी में ।

कीरन्तन : 'कीरन्तन की रचना भिन्न-भिन्न स्थानों पर हुई है । इसलिए उसमें हिंदी के साथ-साथ विभिन्न स्थानों की भाषाओं (गुजराती, सिन्धी) के पद भी संगृहीत हैं । इसमें १३३ प्रकरण हैं जिसमें दो प्रकरण सिन्धी भाषा के, २२ गुजराती के और शेष हिन्दी के हैं । हिंदी के भी दो रूप हैं-साहित्यिकभाषा, और बोलचाल की भाषा । अधिकांश प्रकरण बोलचाल की भाषा के ही हैं ।

साहित्यिक भाषा– वेद अगम कहे उल्टे पीछे, नेत नेत कर गाया
खबर न परी विंद उपज्या कहां थे, ताथे नाम निगम धराया[१]

बोलचाल की भाषा–"मानखे देह अखण्ड फल पाइये, सो क्यों पाये के बृथा गमाइये
ए तो अध खिन को अवसर, सो गमावत मांझ नींदर[२] ॥

गुजराती— विरह थी विछोड़ी दुख दीधां विसमां, अहनिस निस्वासा अंग उठे कटकार
दुख भंजन सहुविध पीऊ समरथ, कहे महामति सुख देन सिणगा॥[३]

सिन्धी – धोरीड़ा मां मूके तारी धूसरी ॥टेक॥
बाटड़ी विसमी गाड़ी भार भरी धोरीड़ा मां मूके तारी धूसरी
धोरीड़ा आरे मारे रे, हारे तूने गोधे घणे रे,
तूं तो नाके नथाणो, तूं तो वंध बंधाणो, गुण आपणा रे[४] ॥

खुलासा ग्रन्थ :

इसकी भाषा हिन्दुस्तानी है । हिन्दी के साथ-साथ उर्दू शब्दों का प्रयोग भी बहुत हुआ है । भाषा भावानुकूल है । कुरान के प्रसंगों में उर्दू भाषा का और पौराणिक विषय में हिंदी भाषा का प्रयोग किया गया है । उदाहरणार्थ—

१-पृ० ५२२, प्र० ३, चौ० २
२-पृ० ५२२, प्र० ४, चौ० २
३-पृ० ५५९, प्र० ४०, चौ० ४
४-प्र० १३०, चौ० १

उर्दू बेवरा वेद कतेब का, दोनों की एक हकीकत
इलम एक ही विध का, दोऊ की एक सरत
पहिले लिख्या फुरमान में, आवसी ईसा इमाम हजरत
मारेगा दज्जाल को, करसी एक दीन आखत ॥

हिन्दी – वेदों कह्या आवसी, बुद्ध ईश्वरों का ईश ।
मेट कलियुग असुराई, देसी मुक्ति सबों जगदीश[१]

खिलवत, परिक्रमा, सागर और सिनगार : इन ग्रन्थों में हिन्दुस्तानी भाषा के ही प्रकरण संगृहीत हैं । उदाहरणार्थ —

खिलवत – ऐसा खेल देखाइया, मांग लिया है हम ।
अब कैसे अरज करूं, कहोगे मांग्या तुम[२] ॥

परिक्रमा – अब कहूं रे इश्क की बात, ईश्क शब्दातीत साक्षात ।
जो कदी आवे मिने शब्द, तो चौदे तबक करे रद[३] ॥

सागर – आगूं नूर मकान की कंकरी, देखत न कोटि सूर ।
तिन जिमी के नंग रोसनी, सो कैसो होसी नूर[४] ॥

कहीं-कहीं सिर्फ उर्दू भाषा का भी प्रयोग हुआ है—

म्याराज हुआ महम्मद पर, नेक तिन किया रोशन ।
अब मुतलक जाहिर तो हुआ, जो अरस में मोमिनो तन[५] ॥

सिन्गार – रूह चाहे वर्णन करूं, अखण्ड स्वरूप की इत ।
सुपन में सत स्वरूप की, किन कही न हक सूरत[६] ॥

१–प्र० दो नामा किताब, चौ० २९–३१
२–प्र० १, चौ० १
३–प्र० १, चौ० १
४–प्र० १, चौ० २६
५–प्र० १, चौ० २९
६–प्र० १, चौ० २

सिन्धी ग्रन्थ :

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इसकी भाषा सिन्धी है। परन्तु अरबी और गुजराती की रचनाओं की तरह लिपि देवनागरी ही है—

आखर वेरा उत्थनजी, आई रूहें छडे जा रांद।
उत्थी विच्च अरसजे, कोड़ करे मिड्ड कांध[१] ॥

'मारफत सागर' और 'क्यामत नामा' की भाषा हिन्दुस्तानी है। इनमें उर्दू शब्द अधिक और हिन्दी के शब्द बहुत ही कम हैं। पढ़ने पर ऐसा लगता है, जैसे हिन्दी लिपि में उर्दू लिखी गयी है। उदाहरणार्थ—

मारफत सागर—गधा बड़ा दज्जाल का, ऊंचा लग आसमान।
पानी सात दरियाव का, पहुँचा नहीं लगरान ॥

छोटा क्यामतनामा—जीवते मारिये आप को, यों शब्द पुकारत हक।
जो जीवते न मरेंगे मोमिन, तो क्या मरेंगे मुनाफक ॥

बड़ा क्यामतनामा—खास उम्मत सो कहियो जाये, उठो मोमिनों क्यामत आई
कहती हूं माफिक कुरान, तुम्हारे आगे करूं बयान ॥

इन उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्राणनाथजी ने अपनी रचनाओं में गुजराती, सिन्धी, उर्दू अथवा हिन्दी भाषा के प्रचलित, बोलचाल के रूप को ही अपनाया है। इन भाषाओं के अलावा दो-एक प्रकरणों में जाटी भाषा का भी प्रयोग हुआ है। 'प्रकाश हिन्दुस्तानी' में जाटी भाषा का एक प्रकरण संगृहीत है जिसका शीर्षक है 'जाटी भाषा में विलाप'।[२]

श्री प्राणनाथजी ने यद्यपि गुजराती, सिन्धी; अरबी आदि विभिन्न भाषाओं को अपनाया है, परन्तु उनकी लिपि देवनागरी ही है। 'अरबी की आयतों' और सिन्धी भाषा के लिए भी अरबी अथवा फारसी लिपि के स्थान पर देवनागरी का ही प्रयोग हुआ है।

१-प्र० १, चौ० १

२-किसी प्रति में 'जाटी भाषा में विलाप करे हैं' शीर्षक और किसी में 'जाटी भाषा में विलाप ही शीर्षक है।

हिन्दी, गुजराती, अरबी, उर्दू, सिन्धी, जाटी भाषा, मराठी, पंजाबी आदि भाषाओं के साथ-साथ संस्कृत का भी प्रयोग प्राणनाथजी ने किया था ।[१]

उनकी 'वाणी' में इतनी अधिक भाषाओं के प्रयोग का कारण है—

१-कबीर आदि सन्तों की तरह प्राणनाथजी ने भी जनता की भाषा को ही अपने प्रवचन का माध्यम बनाया । वे धर्म-प्रचार के लिए देश के विभिन्न स्थानों पर गये और विभिन्न भाषा-भाषियों से उनका सम्पर्क हुआ, इसी लिए उन्हें स्थानानुकूल विभिन्न भाषाओं का प्रयोग करना पड़ा ।

२-प्राणनाथजी का कार्य-क्षेत्र मुख्यतः दिल्ली था जहां उस समय उर्दू-फारसी का बोल-बाला था । सोलहवीं-सत्रहवीं शती में गुजराती कवियों द्वारा उर्दू में रचनाएं करने के उदाहरण मिलते हैं ।[२]

३-मुगल शासन-काल में 'दीवान' रहने के कारण विभिन्न भाषाओं के सम्पर्क में आये ।

४-प्राणनाथजी की मातृभाषा गुजराती थी ।

५-उनके साहित्य में आध्यात्मिक अनुभूतियों के साथ-साथ सामाजिक जीवन भी प्रतिबिंबित है, इसलिए समाज में प्रचलित विभिन्न भाषाओं के शब्दों का समावेश होना भी स्वाभाविक था ।

भाषा का स्वरूप

जीवित भाषाओं के शब्द-समूहों में आदान-प्रदान की प्रक्रिया सतत चलती रहती है, क्योंकि भाषा की व्यंजकता बढ़ाने के लिए दूसरी भाषाओं के शब्दों को लेना और अपनी भाषा के शब्दों में परिमार्जन करना वांछनीय है । अतः भाषा की प्रकृति की परीक्षा उसके शब्द-भंडार से उतनी नहीं होती जितनी उसके व्याकरण से, क्योंकि व्याकरण में अधिक स्थिरता होती है । दूसरी भाषा के शब्दों के ग्रहण में भी व्याकरण के रूप अपनी भाषा के ही रखे जाते हैं । प्राणनाथजी की रचना में प्राप्त संज्ञा, सर्वनाम आदि की रूप-रचना पर कुछ विचार कर लेना अनुचित न होगा ।

संज्ञा –

प्राणनाथजी की मातृभाषा यद्यपि गुजराती थी, पर उन्हें हिन्दुस्तानी भाषा में रचनाएं करना ही अभीष्ट हुआ, क्योंकि उनका मत था कि यह भाषा बहुत सरल

१–देखिए, 'बीतक-साहित्य' 'हरिद्वार आगमन' प्रकरण

२–के० एम० मुंशी गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर

है और इसे अधिकांश लोग समझ सकते हैं[1]। हिन्दी भाषा की संज्ञाएं अधिकांशतः स्वरान्त ही होती हैं। उनकी रचनाओं में स्वरांत शब्द इस प्रकार मिलते हैं-

अकारान्त : नन्द, स्याम, नाथ, नखन, आकाश, काम, शीश, मूरत, अङ्ग, हक, माशूक, आशिक, सरूप, ओत, सूरत, बैन, बछ।

आकारांत : नैना, ओधवड़ा, राधा, बहेड़ा, महुला, छोत्रा, उपलेटा, दूधला, गोंदा, जमुना, चन्द्रमा।

इकारान्त : वनस्पति, लिंबोइ

ईकारान्त : भृकुटी, इन्द्रावती, सुन्दरबाई, खजूरी, कांकड़ी, चीभड़ी, बोरड़ी, कबोई, कांकसी, चम्बेली, जावन्त्री, तरबूजी, कारेली, तुलसी, एलायची।

उकारान्त : टीबरू, आसु

ऊकारान्त : पीऊ, तेड़सू, कैसू, जांबू

एकारान्त : नगारे, हरड़े, केवड़े

ओकारान्त : बेलड़ियों, आंवलियों, कसुबो, काथो, मरओं, नैनों[2]

औकारान्त : ऊधौ, माधौ।

संज्ञाओं के बहुवचन के रूपों में तारतम-सागर में दो ही रूप मिलते हैं—

(१) शब्दों के अन्त में 'यों' अथवा 'ओं' जोड़कर- नैनों, बलड़ियों, आंवलियों आदि,

(२) शब्द के अन्त में 'न' जोड़कर-नैनन, गुणन आदि[3]।

सर्वनाम –

सर्वनामों के प्रायः प्रचलित रूप ही मिलते हैं। उत्तम पुरुष सर्वनाम के मूलरूप मैं, हूं, मारो, मूने ही मिलते हैं। 'हूं' और 'मारो' शब्द गुजराती के हैं जिनका प्रयोग 'मैं' और 'हमारी' के लिए हुआ है तथा 'मूने' का प्रयोग 'मुझे' के लिए हुआ है। मध्यम-पुरुष के रूप उत्तम-पुरुष के अनुरूप ही मिलते हैं। मूल रूप में तू और गुजराती में 'तूने' मिलता है। प्रश्नवाचक आदि सर्वनामों में भी अधिकांशतः गुजराती के ही रूप मिलते हैं। जैसे-कहां, तहां आदि शब्दों के लिए 'क्यांहे,' 'त्यांहें' का प्रयोग हुआ है।

१–'सबसे सुगम जान के कहूंगी हिन्दुस्तानी'

२–रास ग्रन्थ

३–प्रकाश ग्रन्थ

सम्बन्ध कारक में 'तुझको', तुझसे, आदि शब्दों के स्थान पर गुजराती के तूने, तोसूं, मोसूं, आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

परसर्ग : (की) बाहें मेरे माशूक की प्यारी

ज्योत नखन की क्या कहूँ

हाथ की अंगुरी

नैनों की गति

(के) इन अंग के जीवरा

अंग अरस के जोत

गुन नैनों के क्यों कहूँ

माशूक के सोहे बैन

खेंचत भर के शीश

(का) मेहबूब का रंग

माशूक का अंग सब

(में) कहनी में आवे

आकाश में नहरें

(पर) कमल पर शोभत

(से) हरवटी से जो सुध

(सौं) इच्छा सौं मंगावे

(थे) इत थे जो फिर कर गइयां

तित थे झोंटि ले चली

(पे) छीन लेत है जिन पे गोप

इससे स्पष्ट है कि परसर्ग के रूप में प्राचीन ब्रजभाषा के सौं, थे, ते, पे आदि शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

संयोगात्मक रूप : उठी – धनी आवत हैं उठि प्रात (उठकर)
नजरों– सुख नजरों सबों को देवें (नज़र से)
लटकनियां-सैयां लटकतियां करे चाल (लटकती हुई)
आवत– सैयां आवत बोले बानी (आती हुई)

लिंग –

श्री प्राणनाथजी ने अपनी रचनाओं में प्राचीन राजस्थानी अथवा अपभ्रंश की तरह तीन लिंग न मानकर दो लिंग–स्त्रीलिंग और पुल्लिग–को ही प्रयुक्त किया है। प्राणहीन वस्तुएं भी इन्हीं के अन्तर्गत रखी हैं। जैसे–

पुल्लिग – बालाबालम जी मारा, जीरे प्रीतम अमारा

पुल्लिङ्ग व स्त्रीलिंग – पिया जाने या प्यारी

हकअंगना के दिल की बातें आशिक जाने या माशूक

प्राणहीन स्त्रीलिंग – नाड़ी तो अति शोभा धरे

पुल्लिङ्ग व स्त्रीलिंग – कंचुकी ना कांठला उपर कोरे

वचन –

कर्ता और कर्म अविकारी रूपों में, संज्ञा का एक ही रूप दोनों वचनों में प्रयुक्त मिलता है–"पांव आभूषण न दिया बाजवां" (रास)। आभूषण का प्रयोग बहुवचन में हुआ है, पर एकवचन के रूप से कोई भिन्नता इसमें नहीं है। विकारी रूपों के बहुवचन कई प्रकार से बने हैं, जैसे–

नैन - नैनां (-आं जोड़कर)

नेत्र - नेत्रों (-ओं जोड़कर)

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि प्राणनाथजी द्वारा प्रयुक्त 'सबसे सुगम भाषा' [हिन्दुस्तानी) का मूल ढांचा तो यद्यपि हिन्दी भाषा के अधिक निकट है, पर उसमें गुजराती और ब्रजभाषा के शब्द-रूपों का मिश्रित प्रयोग भी मिलता है।

शब्दावली –

भाषा का स्वरूप निर्धारित होता है व्याकरण द्वारा, और वह सुन्दर तथा सशक्त बनतो है मुहावरे, लोकोक्तियों और शब्दावाली द्वारा। रचना में प्रयुक्त शब्दावली से रचयिता की भाषागत स्मृद्धि शैलो का रूप सामने आता है।

प्राणनाथजी की रचनाओं में विविध भाषाओं का प्रयोग हुआ है जिससे उनको भाषागत स्मृद्धि का पता चलता है। उन्होंने तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों के साथ-साथ विदेशी भाषाओं के शब्दों को भी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है।

तत्सम –

अखण्ड (क० २१, १५), अदृष्ट (प्र० ४-३), अनुभव (प्र० ६,७६), अहंकार (प्र० २०,३१), अद्भुत [प्रकाश ग्रन्थ], आहार [प्र०], आवरण [प्र०६, ६३], आयुध [क०१८,२१] अंतरिक्ष [क०प्र० १],१ अक्षर [क० १७,१९],२ अव्याकृत, उन्माद [प्रकाश ग्रंथ], अबला, आदि

कल्पना (प्र० २०,६४), कोटि [प्र० ३, ८], काल [प्र० ५, ३६], जाग्रत [प्र० ५, २१], ज्ञान शक्ति गायत्री

तिमिर [क० १,२,[तृप्ति [प्र० ३, ५], तत्काल [प्र० ५, ३५], दृष्टांत [प्र० ६, ४३], दृष्टि [प्र० ५-२१], दृढ़ [क० १], नासिका [प्र० ६, २३], निर्वाण [प्र० ५,३१], निधि [प्र० २, १६],३ नक्षत्र [क० १, २],

प्रदक्षिणा [प्र० १०,२५], प्रण [प्र० ६,४४], प्रभात, प्रणव ब्रह्म [प्र० ६,४१], प्रतिबिम्ब [प्र० ६,४१], प्रकाश [प्र० ४,१८], प्रकृति [प्र० ६,१६], मकरन्द [रा० २५]

१-किन्ही प्रतियों में 'अंतरीख' शब्द मिलता है।

२-किन्ही प्रतियों में 'अख्यर' शब्द मिलता है।

३-किन्ही प्रतियो में 'निध' शब्द मिलता है।

शेष [प्र० ५, १३]
विख्यात (प्र० ४, ९), विरह [प्र० ५, ३७], विवेक [प्र० २०,७१, क० १५,८]
साक्षात (प्र० ११,१०), स्वरूप [प्र० ९,११], स्तुति (प्र० ४,९), सूर्य[1] (प्र० ४,१२),१
सावधान (प्र० २०, ५८)
श्रवण (प्र० ६,२३), श्रीफल (क० ५, १५-८)

तद्‌भव –

प्राणनाथजी की रचनाओं में तत्सम से अधिक तद्‌भव शब्द हैं।

गर्राजिया (स० ३०, ३२)
जोग (क० १)
तिवरता (प्र० ०, १०४), तारुनी (क० ५)
निठुर (प्र० ५, ३३), नैन (प्र० ६, २३), निहेचे (क० २), निरास) क० २)
पूरन (प्र० १), परबस (प्र० ५,३४), पातसाह (स० ३३,११), परकार (क० १), परपंच (क० १), पृथीपति (क० १३,३७), भमरियां (प्र० ११,९), मूरख (प्र० २०,३६)
रहस (क० २३, ४१)
लज्या (क० १३, २६)
विसवास (क० ३), विछुरे (क० ७), विसेख (क० १४,६), वखिख्यन [क० २९, ५०], वास (प्र० ६,७०), विरथा (प्र० २२, ६)
सरग (क० १७,३०), संकोड़ (क० ३), समरथ (प्र० १५,९), साख्यान (क० २), सुपन (प्र० ५,७), सुगन्ध (प्र० ६,९), सुभाव (प्र० २०,५४), स्वास (क० १५,१०), सृस्ट (स० २५, ४१)
ग्रस्ना (प्र० २०, ४०)

अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द : गुजराती के शब्द –

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्राणनाथजी की मातृभाषा गुजराती थी, इसलिए गुजराती-इतर रचनाओं में भी गुजराती शब्दों का आजाना स्वाभाविक है, जिसमें से कुछेक शब्द नीचे दिये जा रहे हैं-

आपुण, आनिध, घणा, सूने, बकोर, मूको (कीर०), एकली (प्र० ५,२३), चाल्या, मारे,

१ किन्हीं प्रतियों में 'सूरज' शब्द है।

हुती, जोऊं, पाछे, तमने, कज्जो, खांड़ा, आंझू (प्र० ५,२३), फजीत (प्र० ५, १६), भूंडा (प्र०, ५, ३६), मेली (प्र० ६, २१)।

मराठी के शब्द –

यद्यपि उनकी रचनाओं में मराठी शब्दों का प्रयोग भी मिलता है, पर बहुत ही कम। दो-एक शब्द ही इस भाषा के मिलते हैं-कुलुर, किल्ली।

पंजाबी भाषा के शब्द –

कलेजा, कसनी, उछाड़, दुखड़े, सिरहाना, नगरी, उमेदा, ठगनी,१ करमाणे (क०-२१. २८), कानि (प्र० २०, ५८)।

जाटी भाषा के शब्द –

भभूके, भमरिया, सई, रैन, साह, फूटे, सैयल, सूल, सूई, हिय, मोह, मूंदो, नोह, न्यात, जोन, निगोड़ी, देसड़े, दारू, तलफूं, तरवार, झालां, कटारी, कूक, उरझी, आंझू, अंगमरोर२।

विदेशी शब्द –

प्राणनाथजी का उद्देश्य हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव को मिटाकर उन्हें एकसूत्र में बांधाना था। उन्हें दोनों को उपदेश देना था, इसलिए उनकी रचनाओं में हिन्दी के साथ-साथ अरबी व फारसी शब्दों का प्रयुक्त होना स्वाभाविक है। इनमें से कुछेक शब्द नीचे दिये जा रहे हैं-

आरफो, अस्मा, असल्ल, अल्लजी अलगवर, आगवो, अस्किल, आदम, अलाम, इलाने, इलम, इमाम

कलाम, कसीदे, कलम, किजवो, कुल्लू, कलिम, कफयान, कादर, कल्लब, कुरब, कदम, कुम, गैर. जिद, तरोक, फाल, फास, फी, फाली,

बदल, माइ, मिन्हो, मकतूब, मिसलह, मिन्हुम, मिसल, मुहबा, मुस्किल

यकीन, रसूल, लाकिल, लागिल, लुगाद, लिसान, ला

बाहेद, सिदक, सेसमा हक, हकाइयां हुरम, हस्ना, आदि३।

१-प्रकाश, प्र० २८, २९, ३०

२-प्रकाश, प्र० ७ ३०

३-सनन्ध ग्रन्थ, प्र० २, ३४

फारसी शब्द :

आशिक (स० १,३,४), असल (स० १-४), आजिज (स० १९), आखर (स० २६),
आवेश (प्र० १) इश्क (परि० १), उमत (स० १९), उनमान (क० प्र० ९),
कादर (स० १, २, ४), काफर [स० १९], कुफर (स० १९), कायम (स० १९),
कासद. कजा (स० १९)
खसम, खुदा (स० १, ३, ४)
गफलत (क० ११-२८)
बेबरा, बातून (स० १९), बरकत (क० २४ ११)
भिस्त (स० १९)
जाहेर, जमात, जहान, जामिन (स० १९)
तबकों [स० १९], तहकीक [स० १९], तफावत [स० २०]
नूर [स० १. ३. ४], नाजी [स० १९], नबी स० २०]
पाक [स० १, २ ,३,)
रूह [स० १, ३, ४], रेहमान [स० १९]
सहूर [स० ११]
हकीकत [स० १, ३, ४]
मुसाफ [स०२०], मायने, मेहबूब, मोमिनों, माशूक, मजहब [स०१,३,४] मौला, मेहरबान [स.१९]

प्राणनाथजी ने इन विदेशी शब्दों का प्रयोग कहीं मौलिक रूप में किया है और कहीं अपनी भाषा-ध्वनियों के अनुरूप उनमें समुचित परिवर्तन करके किया है।

देशज शब्द –

भाषा की दृष्टि से उनकी रचनाओं का अध्ययन करते समय देखा जा चुका है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में, चाहे वे गुजराती भाषा की हों अथवा सिन्धी या हिन्दी की, उन्होंने (उस) भाषा के प्रचलित रूप को ही लिया है। लोक-भाषा की इस ममता के कारण ही उनकी रचनाओं में चिकटे, निकसे, ठाड़े जैसे लोक भाषा के विशुद्ध शब्द सहज ही आ गये हैं।

मुहावरे और लोकोक्तियां –

मुहावरे और लोकोक्तियां समाज की परम्परागत सम्पति हैं। समाज के सम्मिलित अनुभव अपने लक्ष्यार्थ में रूढ़ होकर अभिव्यक्ति के प्रमुख साधन बन जाते हैं। परिस्थिति

विशेष में लोग इन लाक्षणिक उक्तियों का सहारा लेकर कटु-से-कटु बात भी शिष्टतापूर्वक कह सकते हैं और इनसे भाषा भी आकर्षक और शक्तिशाली बनती है।

लोकोक्ति –

लोकोक्तियोंका प्रयोग प्राणनाथजी ने कथन की पुष्टि के लिए किया है, कहीं उन्होंने प्रचलित लोकोक्तियों को ज्यों-का-त्यों अपना लिया है और कहीं-कहीं इनका परिष्कार कर प्रयुक्त किया। अतएव इनके द्वारा प्रयुक्त लोकोक्तियों के दो रूप हैं, सामान्य और विशिष्ट।

(क) सामान्य प्रयोग–

धनी जब अपना आप संभारे तब चोरी करे क्यों चोर, पतंग कहिये तिनको जो दीपक देख झंपाए, मूल बिना करे सिरदारी, चोरी अङ्ग मीठड़े भराव्यो, ओंठा लेवे जमी बिना, अंधनी आंख रुदे तणी, आसमाने भोम पछाड़ो, ताता मां वली दिए तापण [जले को और मत जलाओ], छींट न लागे घड़े चिकटे, आदि हिन्दी-गुजराती की प्रचलित कहावतों का प्रयोग उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है।

(ख) विशिष्ट प्रयोग –

ज्यारे अन्ध भटके दीवाल मां, घण लागे कपाल (दीवाल से सिर फोड़ना), देखिता न देखे अन्ध [देखकर भी अन्धे बने रहना], ज्यों मीन जल से बिछुरी होए, छींट न लागे घड़े चिकटे [चिकने घड़े पर छींटे नहीं पड़ते, आदि। ऐसे प्रयोग बहुत ही कम हैं।

मुहावरे –

मुहावरे कोशार्थ से अधिक समर्थ और प्रभावोत्पादक होते हैं। तारतम-सागर में मुहावरों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है, जिससे भाषा अधिक सजीव और प्राणमयी हो उठी है। प्राणनाथजी ने हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं के मुहावरों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ –

(क) हिन्दी के मुहावरे –

त्राहि त्राहि करना, तृप्त होना (प्र० २०.४०), आंखें फूटना (प्रकाश), मुह छिपाना (कलस), आकाश-फूल, शशिक सींग, मृग जल आदि।

(ख) गुजराती के मुहावरे –

चाक-चकरड़ा, खांगडू होना, सुख भंडार, आदि । छेतरी (धोखा देना), 'खांगडू, होना अधिक प्रयुक्त हुआ है । इसके कई रूप हैं –

'ऐसा रहा खांगडू होय, खांगड़ होय जुदा पड़ा' आदि

कहीं-कहीं मुहावरे भाषा के साथ इस तरह मिल गये हैं कि इनको पहिचानना भी मुश्किल हो गया है । ऐसे स्थानों पर भाषा अधिक सजीव और सशक्त हो उठी है–

'आया न आंखों लोहू रे' — आंखों में खून उतरना

'मुख नीचा होयसी' — सिर नीचा होना

'दिल टूक-टूक होय न जाये' — दिल के टुकड़े होना

'बातां करसी सिर उठाये के' — सिर उठाकर चलना

'भान भून टूक कर' — टुकड़े-टुकड़े होना, और

'पावे फल कारन विश्वास' — विश्वास का बेड़ा पार

यहां मुहावरों का प्रयोग सामान्य रूप में न होकर विशिष्ट रूप में हुआ है ।

अभिव्यक्ति के तत्व

वर्ण-योजना

शब्द और अर्थ काव्य के मूल आधार होते हैं । शब्दों की रचना वर्णों से होती है । ये वर्ण ही कवि की भावाभिव्यक्ति का माध्यम होते हैं । इन वर्णों को काव्य में यदि सुनियोजित रूप से रखा जाये अर्थात् विशेष वर्णों को विशेष स्थानों पर रखा जाये तो उनमें लयात्मकता आ जाती है । यह लयात्मकता भावानुरूप वातावरण तैयार करती है जिससे श्रोता अथवा पाठक को रसानुकूल पृष्ठभूमि मिलती है । काव्य में वर्ण योजना का विशेष महत्व है और वर्ण योजना में साम्य वर्णों का । यह वर्ण-साम्य आलंकारिक भाषा में अनुप्रास, कहलाता है ।[1] अनुप्रास के छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास, अन्त्यानुप्रास, लाटानुप्रास, यमकानुप्रास आदि अनेकों प्रभेद हैं ।

प्राणनाथजी ने अपनी रचनाओं में वर्ण-सौंदर्य के सृजन का सचेतन प्रयास तो नहीं किया, यदि कोई अनुप्रास मिलते भी हैं तो उनका प्रवेश सहज ही हुआ है ।

१–अलंकार मीमांसा, पृ० ६७

सप्रयास लाया हुआ अनुप्रास केवल अन्त्यानुप्रास ही लगता है, जिसकी पदशैली में अनिवार्य आवश्यकता थी।

नाद तत्व –

श्री प्राणनाथजी के पदों की वर्ण-ध्वनि श्रवणेन्द्रियों को सुख देने के साथ-साथ पद में निहित अर्थ को भी मूर्तिमान करतो है–

झनके झन झांझरी, घूंघरी घमके माझरी।
कड़ला बाजे माहें कावेरी, बिछुआसुर मिलापरी।
धमके पांव धारुनी, रमती रास तारुणी।
फिरती जोड़ फेरनी, न चढ़े कोने सांसरी[१]।

'झनके झन झांझरी' तथा 'घमके पाऊं धारुनी' का अनुप्रास श्रवणों को सुख देनेवाला है साथ ही इसकी ध्वनि आभूषणों से उठने वाले स्वर का साक्षात चित्र प्रस्तुत करती हैं और ऐसा लगता है जैसे वर्ण ही भूषण बनकर स्वर उत्पन्न कर रहे हैं। 'धरनी' और 'तरुणी' के स्थान पर 'धारूनी' और तारुणी' का प्रयोग अधिक प्रभाव उत्पन्न कर रहा है। 'झनके झांझरी', 'धमके धारुनी', 'फिरती फेरनी' में वर्ण-मैत्री दर्शनीय है।

क्रीड़ा के चित्रों में यह कौशल विशेष रूप से दर्शनोय है–"लटके चटके मटके दौड़ जो, रखे पग पाछा देता'[२] में ऐसा लगता है कि रचयिता ने एक-एक वर्ण को बड़े प्रयत्न से एकत्र कर उनपर एकरूपता का मुलम्मा चढ़ाया है। इस पंक्ति में वर्ण-मैत्री दर्शनीय है।

गुण –

माधुर्य, प्रसाद और ओज गुणों का वर्ण-योजना से गहरा सम्बन्ध होता है। काव्य में मधुर वर्णों का प्रयोग जितना अधिक होता है, कविता उतनी ही माधुर्य गुण युक्त होती है, इसके विपरीत परुष वर्ण पदगत माधुर्य को खण्डित कर देते हैं।

प्राणनाथजी ने पूर्णब्रह्म परमात्मा के रसमय रूप तथा रासलीला को ही मुख्य रूप से अपने वाणी का विषय बनाया है, इसीलिए शृंगार (सिनगार)-सागर ग्रन्थ, तथा

---

१ रास ग्रन्थ, प्र० १६

२-रास ग्रन्थ प्र० २०

रास ग्रन्थ जिनमें स्वरूप वर्णन और रासलीला का वर्णन है' के अधिकांश प्रसंग सरस हैं। इनमें उनको मधुर वर्ण-योजना ही मिलती है[१]-

आ भूमि नूं रंग उजलो, तेज तनो अंबार।
वस्तर भूखन आपना, सू कहूं सरूप सिंगार॥

× × ×

उठे अलेखे किरने, झलकारों झलकार[२]।

रंग, अंबार, सिंगार, निहिकलंक, चांद, बनमां, सहू, आदि शब्दों में अनुनासिक ध्वनियों की प्रधानता मधुरता उत्पन्न कर रही है। माधुर्य के लिए ही 'भूषण' को 'भूखन', 'शृंगार को सिंगार' किया गया है। 'झलकारों झलकार' में वर्ण-ध्वनि भी कम सरस नहीं।

श्रवण मात्र से अर्थ की प्रतीति करने वाले सरल और सुबोध शब्द प्रसाद-गुण के अन्तर्गत माने जाते हैं। ऐसे अनेक सरल और सुबोध 'प्रकरण' उनकी रचनाओं में मिलते हैं जिनमें समासका सर्वथा अभाव है और उनमें ऐसे वर्ण हैं जो बोलो के सहेज रूप के समोप हैं[३]।

ओजपूर्ण प्रसंगों में भी प्राणनाथजी ने सरल शब्दों का ही प्रयोग किया है-

राजा ने मलो रे राणे राय तणो, धर्म जाता रे कोई दौड़ो।
जागो ने योद्धा रे उठ खड़े रहो, नींद निगोड़ी रे छोड़ो।
छूटत है रे खडग छत्रियन सों, धर्म जाता रे हिन्दुआन।

× × × ×

असुर माते रे असुराई करें, तो भी मिले न रे धर्म जाते[४]।

यद्यपि इस पद में सरल भाषा का प्रयोग किया गया है, फिर भी 'तो भी मिले न रे धर्म जाता, 'छूटत है खरग छत्रियन सों,' 'नींद निगोड़ो रे छोड़ो' 'धर्म जाता रे कोई दौड़ो' आदि पंक्तियों में ललकार और फटकार ध्वनित होती है।

१-परिक्रमा ग्रन्थ, 'आठों पहर को बीतक' प्रकरण

२ रास ग्रन्थ, प्र० ४१

३ परिक्रमा, 'आठो प्रहर को बीतक

४-कीरन्तन ग्रन्थ, प्र० ५८

प्राणनाथजी का प्रतिपाद्य पूर्णब्रह्म तथा उनकी आनन्द-अङ्गनाएं, ब्रह्मसृष्टि हैं, उन्हीं की आनन्द-लीला, प्रेमलीला तथा वियोग और विरह वर्णन ही उन्हें अभीष्ट हुआ, इसलिए उनकी रचनाओं में ओजपूर्ण शब्दावली का प्रायः अभाव-सा है। प्रसंगवश युद्ध, नरक और असुर संहार प्रसंगों का भी उल्लेख मिलता है पर सरल शब्दावली में—

'कहे कयामत में सबे उठाए, दस विध फेल पूछे जाए।
बन्दर सूरत होसी सुकन चीन, जिनके हृदय में नहीं आकीन।
सूअर सूरत हरामखोर कहे, जो कबहूं हलाल के ढिग ना गए।
गधे सूरत कहे हराम कार, जिनके बुरे फैल रोजगार।
सूद खानेवाले हुए अन्धे, उसी खेचसे दोजख फन्दे।
न किया सेजदा न सुनी पुकार, सो हुए बहरे पड़सी दोजख मार।
गूंगे कहे जालिम हुकम, वे सबके तले न ले सके दम।
पढ़े जुबां काटे पीब लोहू बहे, झूठे फैल मुख सीधे कहे।
मले दोजखी हाथ पांव दोए, ताए देखे भिस्ती अचरज होए।
उड़न वाले कहे मोमिन, मुतकी भी पड़ोसी तिन।
ताय हर भांत रंज पहुंचाया जिन, सो लटके बीच सूली अगिन।
चुगलखोर काटे हाथ पांव, और सख्ती दिलों को लगे घाव।
ए दस भांत की कही दोजख, 'जिन कोई यामें ल्याओ शक'।
जिन्हों फैल जैसे किए तिन्हों बदले तैसे दिए[१]।

भयानक रस का वर्णन भी प्राणनाथजी ने सीधी-सादी सरल शब्दावली में किया है, कहीं भी वीभत्स दृश्यों को उपस्थित करने का प्रयत्न नहीं किया। कृष्ण की संहारक लीलाएं, असुर-वध, कंस-वध आदि भयानक रस के उपयुक्त स्थल थे, पर इन संहारक लीलाओं का वर्णन उन्होंने अति संक्षेप में किया है। इसी संक्षिप्तता के कारण उन्हें ओजपूर्ण शब्दावली के प्रदर्शन का अवसर नहीं मिला।

१-क्यामतनामा ग्रन्थ, प्र० २२

वर्षा के प्रसंग में यत्र-तत्र वर्ण-योजना के वैलक्षण्य के दर्शन होते हैं-

मेघ लियो आवीने आषाढ़े धडुके ।
सेरड़ियो साम सामी रे हलूके ।
मोरलिया कोयलड़ी रे टहुके ।
एणे समे कंथ कामिनीयो ने केम मूके[१] ।

'धडुके' में बादल गंभीर गर्जन का आभास मिलता है और इस धडुके के साथ ताल-मेल बैठा रहा है मोर और कोयल का 'टहुके' शब्द, जिससे बादलों के छा जाने पर मोर आदि के प्रसन्न होने और नाचने का दृश्य निर्मित हो जाता है। पर जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, ऐसे प्रसंग बहुत ही कम हैं, माधुर्य गुणयुक्त वर्णनों का ही बाहुल्य है।

शब्द शक्ति

शब्द में निहित अर्थ ही शब्द की शक्ति होता है। पढ़ते अथवा सुनते समय बिना किसी घुमाव-फिराव के सहज रूप से जो अर्थ उपस्थित होता है, वह वाच्यार्थ होता है। जो अर्थ थोड़े तोड़-मोड़ से प्राप्त होता है, वह लक्ष्यार्थ होता है और बात को घुमा-फिराकर कहने से वाच्यार्थसे भिन्न जो अर्थ प्राप्त होता है, वह व्यंग्यार्थ होता है। वाच्यार्थ प्रस्तुत करने वाली शक्ति को अभिधा, लक्ष्यार्थ प्रस्तुत करने वाली शक्ति को 'लक्षणा' और व्यंजनार्थ प्रस्तुत करने वाली शक्ति को 'व्यंजना' कहते हैं। इस प्रकार के अर्थ को व्यक्त करने की शब्द की सामर्थ्य 'व्यंजना शक्ति' कहलाती है। काव्य में इन विभिन्न शक्तियों का अपना-अपना महत्व है। देखना है कि प्राणनाथजी की रचनाओं में इन शक्तियों का क्या स्थान है।

अभिधा स्वभावोक्ति का सहारा लेकर चलती है, इसलिए यह चमत्कारवादी कवियों को प्रिय नहीं होती, क्योंकि उसमें वक्रता के लिए स्थान नहीं होता। 'मारी न थी कांई किव नू काम, ए वचन कहवा मारे धनी श्रीधाम' कहकर प्राणनाथजी ने स्पष्ट कर दिया है कि उनका उद्देश्य कविता करना नहीं, वरन् सीधी-सादी सरल भाषा तथा स्वभावोक्ति के आश्रय से अपने आराध्य का गुणगान करना है, इसीलिए उन्होंने अधिकांशतः अभिधा का ही प्रयोग किया है। जिन स्थानों पर 'आनन्दात्मक' अभिव्यक्ति की गयी है, वहां अभिधात्मक वर्णन सरस हो उठा है-

१-षट्ऋतु ग्रन्थ, प्र० ६ 'बारहमासी'

"सैयां दौड़ दौड़ के जावें आरोगने की वस्तु लावें ।
एक ले चली शाक कटोरी, तापे छीन ले चली दूसरी ॥
तित थे झपटि ले चली तीसरी, चौथी वापे ते ले दौरी ।
जो कदी छीन लेत है जिन पे, पर रोष न काहूं किन पै ॥
इतये जो फिर कर गइयां, तिन और कटोरी जाए ल्याइयां ।
यूं एक एक परलेत तित थे एक दुजी को देत"[१] ॥

'रास' ग्रन्थ में रासलीला में वाच्यार्थ का ही महत्व है । सखियों के साथ कृष्ण भी नृत्य कर रहे हैं उस आनन्दात्मक वातावरण का अनुभव वाच्यार्थ से ही होता है-

करताल मां बाजे झरमरी, श्री मण्डल हाथ ।
चंग तंबूरे रंग मले, वालो नाचे सकल साथ ॥
भूषण बाजे भलीभांत सों, धरती करे धमकार ।
शब्द उठे सुहावना, उछांग बांध्यो अपार ॥
एक पोहोर आनन्द भरी, काइ रंग भर रमिए एह ।
साथ सकल मां वालो जीए, रमता कीधा सनेह[२] ॥

विवरणात्मक प्रसंगों में अभिधात्मक वर्णन के नीरस हो जाने की संभावना रहती है, पर प्राणनाथजी ने ऐसे स्थलों में आभूषणों की झंकार भर के उसे भी सरस बनाने का प्रयत्न किया है—

तीजी भोम की जो पड़साल, ठौर बड़े दरवाजे विशाल
धनी आवत हैं उठ प्रातः, बन सींचत अमृत अघात
पशु पक्षी को मुजरा लेवें, सुख नजरों सबो को देवें
पीछे बैठ करें सिनगार, सखियां करावें मनुहार
श्री श्यामाजी मन्दिर और, रंग आसमानी है वाही ठौर
चार चार सखियां सिनगार करावे, श्री श्यामाजी धनीजी के पास आवें

१-परिक्रमा ग्रन्थ, प्र० ३

२-रास ग्रन्थ, प्र० २९

साथ सिनगार करके आवे, जैसा धनीजी के मन भावे
सैयां लटकतियां करे चाल, ज्यों धनी मन होत रसाल
× × ×
सैयां आवत करें झनकार, पांव भूषण भूमि ठमकार
\+ × ×
कै फलंग दे उछलतियां, कई फूल लता ज्यों फिरतियां
कई आवत ठेलतियां, जुत्थ जल लहरा लेवतियां
कई आवे भंमरी फिरतियां, एक दूजी पर गिरतियां
कई सीधियां कै सलकतियां, कै विध आपे जो चलतियां

अवधि के अन्दर कृष्ण के न लौटने पर सखियां उपालम्भ भी सीधी-सादी भाषा में देती हैं। उन्होंने कहीं भी व्यंग्य का सहारा नहीं लिया—

वाला तमे चालता ते चार दिनड़ा कह्या
हां रे अमे एणी रे आशाए जोइने रह्या
वाला अमे वचन तमारा ग्रह्या
हवे ते अवधि ऊपर दिनड़ा गया
हो श्याम पीऊ पीऊ करी रे पुकारूं[1]

अपने वचनानुसार समय पर न लौटने से सखियां कृष्ण को कुटिल नहीं समझतीं और न हो सूर की सखियों की तरह कहती हैं—

मधुकर देखि स्याम तन तेरो
या मुख की सुनी मीठी बातें, डरपत है मन मेरो

परन्तु कहीं-कहीं ऐसे प्रयोग भी मिलते हैं जो वाच्यार्थ से दूर लक्ष्यार्थ प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए 'षटऋतु ग्रन्थ' को उपर्युक्त पद की अन्तिम पंक्ति 'हो श्याम पीऊ पीऊ करो रे पुकारूं' में 'पुकारने' के साथ सखियों की अवसादावस्था भो लक्षित होती है।

१–षट्ऋतु ग्रन्थ, प्र० ६

"वाला मारा हेमालेथी हेम रुत हाली
ते तो बेरण आवी रे विरहणियों ऊपर चाली
व्रजड़ी बींटी रे लीधी बच्चे घाली
पिऊजी तमे हजीए कां बैठा आप झाली[१]

में 'एक शब्द 'हजीए' ने पूरे पद का अर्थ बदल दिया है। साधारणतः इसका अर्थ यही है कि हेम ऋतु वियोगनियों के ऊपर चढ़ाई करने के लिए आ गयी है, पर आप अभी तक नहीं आये। पर 'हजिए' से अन्य अर्थ भी लक्षित होता है-दीन-हीन की रक्षा के लिए आप हमें त्याग कर गोकल से मथुरा तक दौड़े गये, पर वियोगनी अबलाओं की रक्षार्थ अभी तक नहीं आये, आप कैसे दीनबन्धु हैं ?

प्रगट, उधवड़ा, कटाक्ष आदि कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग भी प्राणनाथजी की रचनाओं में मिलता है जो वर्ण्य को मूर्त करने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

प्रगट— जहां कहीं भी ईश्वरीय शक्ति के अवतरित होने का प्रसंग आया है, वहां 'प्रगटे' शब्द का ही प्रयोग हुआ है—

(क) 'प्रगटे पूरण पार ब्रह्म, महामति तणो आधार।

(ख) आज वधाई ब्रज घर घर, प्रगटे श्री नन्द कुमार।

शेष स्थलों पर 'उत्पन्न आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है-

'ए जो वासना बाई रतन, लीला बाई के उदर उत्पन्न'

उद्धवड़ा- रे ओधवड़ा ! तूं एटलो जान निर्धार
एणी मते पामीश नहीं तूं पार
तूं पण तारा धनी सूं विछड़ीश आवार[२]

'ओधवड़ा' शब्द उद्धव के कठोर दिल की ओर लक्ष्य करता है।

इण्डूं (कलश(ओधव ! तें तो अक्रूर पर इण्ड़ रे चढ़ाव्यो[३]

१-षट्ऋतु ग्रन्थ, प्रकरण २, 'बारहमासी'

२-वही, अंतिम प्रकरण, चौ० ५

३-वही, चौ० ४

'डूंडू चढ़ाव्यो' से लक्षित है कि अक्रूर दुःख देकर कृष्ण को ले गये थे और अब उद्धव 'योग समाचार' देकर प्राण लेने आये हैं। अक्रूर तो क्रूर थे, पर उद्धव उसके भी 'सिरताज' निकले।

पापी– अमे तूने जाण्यो नहीं एवो 'पापी'[१]

हमने तुम्हें ऐसा पापी नहीं समझा था अर्थात् तुम तो बड़े पापी निकले। पापी शब्द के प्रयोग से इस पंक्ति का वाच्यार्थ से भिन्न यह अर्थ निकला है।

कटाक्ष– 'नैने कटाक्षे बल पापण चलावे पल'[२]

प्राणनाथजी की रचना में लक्षणा के गिने-चुने उदाहरण ही मिलते हैं।

जहां वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ से काम नहीं चल सका, वहां इन्होंने व्यंजना का भी सहारा लिया है। जैसे—

'सखियो हवे समझया संदेशड़े आपण'[३]

सखियां उद्धव के 'ज्ञानोपालंभ' से जलभुन गयी हैं। यह अदृश्य ज्वाला आपस में कहे गये इन शब्दों "सखियो हम सब ने इस संदेश का भाव समझ लिया है न" - में व्यक्त हो गयी है।

'बारहमासी' प्रसंग व्यंजनात्मक है। षट्ऋतु अथवा बारहमासा का वर्णन इन्होंने ऋतु वर्णन के निमित्त नहीं किया है, उसको उद्दीपन के रूप में ग्रहण किया गया है। ऐसे वर्णन व्यंजना-युक्त हैं।

कृष्ण ने गोपियों को वंचित किया है, इसका जो क्षोभ उन्हें है, उसकी व्यंजना वे इस प्रकार करती हैं—

सखियो ! हवे दुखड़ा केही ऊपर कीजे
आपणो नन्दकुंवर होय तो रीझे
आपणी बातो जदुनो राय न भीझे
सखियो ! ओधवने संदेशा शा दीजे[४]

१–षटऋतु ग्रन्थ, चौ० ७

२–रास ग्रन्थ, प्र० ३८ चौ० १

३–षटऋतु ग्रन्थ, अंतिम प्रकरण, चौ० ६

४–वही, अंतिम प्रकरण, चौ० ८

वे एक-दूसरे से कहती हैं-कोई भी उधव को किसी भी तरह का सन्देशा मत देना, जिसके लिए सन्देश देना है, वह तो हमारी बात सुनेगा नहीं, वहां कोई नन्दकुंवर थोड़े ही हैं जो हम ग्वालिनों की बात सुने, वे तो यादवों के राजा हैं।

चित्रण :

भावानुभूति को मूर्तिमान करने के लिए कलाकार चित्र बनाता है, चित्रकार तूलिका द्वारा, संगीतकार नाद तथा भाव-भंगिमा द्वारा और कवि शब्द द्वारा प्रतिपाद्य का चित्र पाठक या श्रोता के सामने खींचता है। जिस कवि का चित्रण जितना सजीव होता है, उसका काव्य उतना ही चित्ताकर्षक होता है। अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए उसके (अनुभूति] विषय अथवा पात्र के रूप का चित्रण अथवा मूर्त चेष्टाओं का अंकन आवश्यक होता है। इसे शास्त्रीय भाषा में आलम्बन विधान और अनुभाव विधान भी कहते हैं।

आलम्बन के चित्र

श्री प्राणनाथजी को प्रेम-भक्ति का मुख्य कारण अपने अंशी सच्चिदानन्द का अनुपम सौंदर्य है। जब उनका ध्यान पूर्णब्रह्म के मधुर रूप पर जाता है तो वे उसे शब्दों में उतार देते हैं[१]। यह चित्र कहीं नख से शिख तक किया गया है,[२] तो कहीं सिर्फ ऊपर के अंगों का[३]। प्राणनाथजी के नखशिख वर्णन' में सूर की तरह उपमाओं की भरमार नहीं है। क्योंकि उनके पास उपमाओं का अभाव है, अलौकिक सौंदर्य के लिए लौकिक उपामान काम नहीं दे सकते। परन्तु लोगों को समझाने के लिए उन्हें इस 'शब्दातीत निधि को शब्दों में लाना' है, इसलिए कहीं कहीं लौकिक उपमान जुटाने पड़े हैं। फिर भी नेत्र और मुख के दो-एक उपमानों को छोड़कर सर्वत्र उपमानों का अभाव है[४]।

प्राणनाथजी की रचनाओं में कृष्ण-राधा या गोपियों के नखशिख चित्रण का भी अभाव है, क्योंकि उनके आराध्य सच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म युगलस्वरूप हैं, राधा कृष्ण नहीं, इसलिए उन्हीं का गुणगान उन्हें अभीष्ट हुआ। युगलस्वरूप, श्रीराज-श्यामाजी में

१-सिनगार ग्रन्थ, प्र० १२

२-वही, प्र० १२, २२

३-वही, प्र० १५-१७, २०

४-वही, प्र० १५ तथा २२

भी मुख्यतः अपने माशूक (श्रीराजजी) के ही नखशिख का वर्णन किया है, क्योंकि दोनों स्वरूप (श्रीराज और श्यामाजी) अभिन्न हैं—

> आतम चाहे वर्णन करूं युगलस्वरूप विध दोय
> ए दोउ वर्णन कैसे करूं, ए दोऊ एक कहावत सोय[1]

बाललीला के चित्रण भी उनकी रचनाओं में नहीं-के-बराबर हैं क्योंकि उनके अभीष्ट किशोर स्वरूप (अमरद सूरत) है[2]। रास-ग्रन्थ में ही कृष्ण के रासलीला के प्रसंग में में 'ऊखल बंधन' आदि का एकाध चित्र मिल जाता है—

> एक जाने जशोदा होए काह्नजी माखन मांगे रोय
> उहां दूध चूल्हे उभराये, माता नू मन कल्पाय
> काह्नजी ने रीस अति थई, पहिलो माखन दई न गई
> ते तो झाली न रही रीस, घोळीना कटका कीधां बीस
> एवो बांधो दामणीए बंध, जुओ काह्नजी रुए अचंभ
> तहां काह्नजी रोतो रीकतो जाए, रह्यो वृक्ष ऊखल भराए
> तहां थी निसरवां कीधुं जोर, पड्यूं वृक्ष थयो अति शोर
> इहां आवी जशोदा उजानी, काह्नजी भीड़ी रही सुजतानी
> सांस माहे न माए सांस, मुख चूमती आस ने पास[3]

इधर कृष्णजी मां का दामन पकड़े हुए माखन की मांग कर रहे, उधर चूल्हे पर दूध उफन रहा है। कृष्ण की मांग की पूर्ति किये बिना ही जसोमति दूध उतारने चली गयी है. इसपर कृष्ण को बड़ा गुस्सा आया और माखन की मटकी के टुकड़े-टुकड़े कर दिये हैं। 'ते तो झाली न रही रीस, घोळीना कटका कीधा बीस' तथा 'काहनजी रोतो रीकतो जाए' में बाल-स्वभाव का जैसा सुन्दर चित्रण है, वैसा ही सुन्दर अंकन 'सांस माहे न माए सांस, मुख चूमती आसने पास. में वात्सल्य का।

१–सागर ग्रन्थ, प्र० ५, चौ० १०

२–'ए छबि अंग अरस के, जोत अंग हक सूरत।
ए कहनी में आवे क्यों कर, जो कही अमरद सूरत ॥ ४ ॥ सिनगार ग्रन्थ, प्र० १२

३–रास ग्रन्थ, प्र० ३३

रमन रेती के मैदान में खेलती हुई सखियों का चित्रण भी दर्शनीय है—

एक चुटकी लेके भागी ताली देके, कहें दौड़ मिलियो आए
एक गली घर में दे परिक्रमे, उमंग अंग न माए
एक का कपड़ा धाए के पकड़ा, खेंच चली चितचाहे
एक दूजी को ठेले तीसरी हड़सेले, यूं पड़ियां तीनों गिर
कई और आवे गिरे ऊपराऊपर, उठ न सके क्यों ए कर
एक दौड़ी जाए दई हांसीए गिराए, हुओ ढेर ऊपराऊपर
एक खेलती हारि जाए पड़ी न्यारी, खेल होत इन पर
होवे इन विध हांसी, अंग उलासी सूल आवत पेट भर
एक सूल भर पेटे इन विध लेटे, देखो खेलखबर
एक लेटतिया जाए सूल उभराय, उठावें कर पकड़
आए तिन हांसी मावे न सांसी, गिरी पकड़े कर[१]

इस प्रकरण में 'रमन रेती' के मैदान में खेलती हुई सखियों का चित्रण किया गया है। जिस सखी पर दाव है, उसे ताली देकर अन्य सखियां चुनौती देती हैं कि हमें पकड़ो। वह दौड़कर एक का कपड़ा पकड़ लेती है। उसे मुक्त कराने के लिए एक सखी भागती हुई दूसरी सखीको धक्का देकर उनपर फेंकती है, तीनों गिर पड़ती हैं। पीछे से आनेवाली सखी धक्का देनेवाली सखी को धक्का देती है, उसके पीछे वाली सखी उसे धक्का देती है, यही क्रम कुछ देर तक चलता रहता है, देखते-ही देखते सखियों का ढेर लग जाता है। यह दृश्य देखकर सब हंस रही हैं और भागने का प्रयत्न करती हैं। हंसने और दौड़ने के कारण उनका श्वास फूल रहा है, दौड़ती हुई स्वयं ही गिरती जा रही हैं, दूसरी उसे उठाने का प्रयत्न करती है तो वह भी गिर पड़ती है। ऐसे दृश्यों को देखकर सखियों के पेट में बल पड़ रहे हैं और भूमि पर लेटती चली जा रही हैं। इस समस्त क्रीड़ा का चित्रण प्राणनाथजी ने कितने सरल और सुनियोजित ढंग से किया है। 'एक चुटकी ले के भागी ताली दे के', 'एक खेलती हारी, जाए पड़ी न्यारी' आदि पंक्तियों में दौड़ती हुई लय तथा 'एक का कपड़ा धाए

१-परिक्रमा, प्र० ३८

के पकड़ा' आदि पंक्तियों में दौड़ते हुए वर्ण दौड़ती हुई सखियों को पाठक या श्रोता के सामने ला खड़ा करते हैं और वह उतने ही आनन्द का आस्वादन करता है जितना कि वह प्रत्येक्षदर्शी होने पर करता। सिर्फ रासलीला तथा 'रमन रेती' की क्रीड़ाओं में ही ऐसे प्रकरण उपलब्ध हैं।

अनुभाव के चित्र

प्राणनाथजी की रचनाओं में अनुभावों के चित्र विरले हैं। उनकी रचना में अनुभाव-विधान चित्रण के सहज प्रसाधन, स्वेद, स्वरभंग, मूर्छा (प्रलय) आदि ढूंढ़ना व्यर्थ है। अनुपम सौंदर्य को देख कर ठगे रह जाने के ही कुछ चित्र यत्र-तत्र मिल जाते हैं जिन्हें 'स्तम्भ' अनुभाव के अन्तर्गत रखा जा सकता है।[1]

प्रकृति चित्रण-

प्राणनाथजी की रचनाओं में प्रकृति-चित्रों का बाहुल्य है। परिक्रमा-ग्रन्थ को यदि प्रकृति-चित्रों का संग्रह कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। इसमें वन, उपवन, नदी-तालाब, समुद्र, पर्वत और उन पर्वतों पर बाग-बगीचे जोकि फव्वारों से सिंचित होते हैं आदि का बड़ा सुन्दर वर्णन है। पर यह वर्णन उद्दीपन के रूप में नहीं किया गया है, वरन् परमधाम के विभिन्न भागों के वर्णन के रूप में किया गया है। आलम्बन और उद्दीपन के चित्र षटऋतु तथा सिन्धी ग्रन्थ में ही मिलते हैं। गुरु देवचन्द्रजी प्राणनाथजी से रुष्ट हो गये हैं। शिष्य की आत्मा गुरु से मिलने के लिए तड़प रही है, उन्हें अपनी स्थिति शीत रुत के 'पाल' (ओलों) के मारे हुए वृक्षों से अभिन्न लगती है-

'शीत रुते पत्र जेम हारव्या, जेम बसंत बिना वनराए।
रंग ने रूप रुत हर लिए, पछे सूखी ने आखर्यां थाए।।[2]

यदि उन्हें 'आत्मा के आधार' मिल जायें तो वे भी उसी प्रकार खिल उठें जिस तरह बसन्त के समय वन-उपवन खिल उठते हैं। बसन्त आने पर उपवनों में फूल खिलने में

१-सुन्दर मुख मासूक का अंग सब सुन्दर।
सो क्यों छूटे आशिक से, जब चुभे हैड़े अन्दर।।
× × ×
आशिक अटके सब अंगो, देख देख रूप सलूक। सिनगार ग्रन्थ, प्र० १०

२-षट्ऋतु ग्रन्थ, प्र० ४, चौ० ७

भले देर लग जाये, पर प्राणनाथजी कहते हैं कि गुरु से मिलने का सन्देश पाकर मैं तो उसी वक्त ऐसे खिल उठूंगा, जैसा वर्षा का सन्देश पाकर बीर बहूटी खिल उठती है—

बसन्त आवे वन विलम्ब करे, मारो जीव मोरे ततकाल
मूने जेणी क्षणे वालोजी मले, हूं तेणी क्षणे लेऊं रंग लाल॥१७॥
जेम रंग लिए रे ममोलो, मेह बूठे ततकाल
तमने मले हूं रंग एम लेउं, इन्द्रावती ना आधार ॥१८॥[1]

बसन्त ऋतु उन्हें विशेषकर कष्टदायिनी है, क्योंकि इसी ऋतु में उनका गुरु से मनमुटाव हुआ था, वह बसन्त ऋतु पुनः आ गयी है, बसन्त जैसी ऋतु में भी 'आत्मा' को अपना आधार नहीं मिला—

तमे पर्दा पाछा कीधा पछी, वली आवी ते आ बसन्त
ते पछी तमसूं रमवांमी, लागी छे खरी मूने खन्त ॥२॥
ऋतु माहें ऋतु बसन्त घणी रुड़ी, जेमां मोरे बनराए
विध विधना रंग लिये रे बेलड़ियो, बन तणे कंठ वलाए[2] ॥२॥

कृष्ण के मथुरा गमन पर सखियों के विरह-वियोग का जो वर्णन किया गया है, उसमें भी प्रकृति का चित्रण आलम्बन व उद्दीपन के रूव में मिलता है—

पिउजी तमे शरद नी ऋते रे सिधाव्या, हां रे मारा अंगडामां विरह बनवाव्या
ए बन क्षण क्षण कुपलियो मूके, हां रे मारूं तेम तेम तनड़ सूके
हो श्याम पीऊ पीऊ करी रे पुकारूं
वाला मारा भादरबे नदी नाला भरियां पिउजी मारा निर्मल जल रे उछलियां
वाला मारा गिरी डूंगर खलखलियां, पीयुजी तमे एणे समय हजिए न मलिया
हो स्याम पीऊ पीऊ करी रे पुकारूं

१-षटऋतु ग्रन्थ, प्र० ४
२-वही, प्र० ५

रे वाला मारा शियालियो सुखणीयो मागे, पीयुजीना सुखड़ा मां सारी रात जागे
वालाजी ने विलसे रे बड़ भागे, अमने तो मन्दरियो मसाण थई लागे
हो स्याम पीउ पीउ करी रे पुकारूं

वाला मारा तट जमुना वृन्दावन हां रे टाढ़ी छांयड़ी तले रे कदम
पीयुजी इहां देता रे पावलिये पदम, ते अमे विलखं छूं वाला ने वदन
हो स्याम पीउ पीउ करी रे पुकारूं

वैशाख फूलियो रे वेलड़िए वेहेकार. भमरा मदया करे रे गुंजार
पंखीड़ा अनेक कला रे अपार, वाला वन विलस्या तणी आ वार
हो स्याम पीउ पीउ करी रे पुकारूं

रे वालाजी श्रावणियो सलसलियो, आंभलियो आवी ने भोमे लड़सड़ियो
चहूं दिशा चमके गरजे गलीयो, पीयुड़ा तु हजीए कां अमने न मलियो
हो स्याम पीउ पीउ करी रे पुकारूं[१]

षट्ऋतु के इस उदाहरण से स्पष्ट है कि प्राणनाथजी ने रासो से जायसी तक चले आने वाले षट्ऋतु वर्णन और बारहमासा की प्रणाली का निर्वाह भी अपनी रचनाओं में किया है। उल्लेखनीय है कि उनकी रचनाओं में विशेषतः 'षट्ऋतु' में संयोग के नहीं वियोग के ही चित्रण हैं और अधिकांश स्थलों पर ये चित्रण उद्दीपन के रूप में ही उपस्थित हुए हैं।

सिन्धी में भी प्रकृति के कुछेक चित्र मिलते हैं। षट्ऋतुमें ये चित्रण 'कृष्ण-गोपी' तथा 'गुरु-शिष्य' प्रसंग में मिलते हैं और 'सिन्धी' में 'पूर्णब्रह्म' और ब्रह्मसृष्टि' के प्रसंग में। ब्रह्मसृष्टि अपने अंशी से कहती है कि. 'हे माशूक, जब विभिन्न ऋतुएं आती हैं तो हमें आपकी याद बहुत सताती है; पर हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि आप अकेले परमधाम में किस तरह समय विताया करते हैं। हम सब बारह हजार सखियां श्यामा-जी सहित इस संसार में आ गयी हैं आप कहते थे कि मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता, पर अब तो ऋतुएं-पर-ऋतुएं व्यतीत होती जा रही हैं, आप वहां अकेले कैसे बैठे हैं—

१-षट्ऋतु, बारहमासी, प्र० ६

हिन अरस जे बाग में, आयूं मूदियूं मींह ।
हिन बेरा असां के, जुदयूं राख्यूं कींह ॥ ३ ॥
चढ़ीनी आइयूं सेरड़ियों, कपरियों गरजन ।
हे सुख डिनो रूहन के, बन में विजयूं खेवन ॥ ६ ॥
आगूं अरस जे बाग में, करे कोयलड़ी टहुंकार ।
ढेली मोर कणकियां, जमुना जोए किनार ॥ ९ ॥[१]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्राणनाथजी की रचना में प्रकृति के चित्र भी अंकित हैं। कहीं ये चित्र प्रकृति के विराट रूप को व्यक्त करते हैं तो कहीं विरहणियों के साथ आत्मीयता का भाव रखते हैं और कहीं वियोगनियों के घाव पर नमक छिड़कने का भी कार्य करते हैं अर्थात् उन्होंने प्रकृति के प्रत्येक रूप का चित्रण किया है।

अप्रस्तुत विधान –

अप्रस्तुत विधान से अभिप्राय अप्रस्तुत वस्तुओं के उस उपयोग से है जिनसे सूक्ष्म अनुभूति में रमणीयता आती है, कल्पना को आधार मिलता है, भावों की अभिव्यक्ति में मूर्तिमत्ता आ जाती है और 'प्रस्तुत' की श्रीवृद्धि होती है। इसलिए इसे अलंकरण भी कहा जाता है। काव्य में प्रस्तुत का होना अनिवार्य है, भले ही वह सांकेतिक रूप में हो, पर अप्रस्तुत का होना अनिवार्य नहीं।

जैसा कि पहले देखा जा चुका है, प्राणनाथजी ने अधिकांशतः अभिधा का सहारा लिया है। अभिधा अथवा स्वभावोक्ति में अप्रस्तुत विधान के लिए बहुत ही कम स्थान होता है। इसीलिए उनकी रचना में केवल उपमा, उत्प्रेक्षा तथा रूपक के ही कुछ उदाहरण मिलते हैं। उन्होंने काव्य के बाह्य स्वरूप को रमणीय बनाने के लिए अप्रस्तुत की योजना नहीं की। उनकी रचना में अतिशय मूलक विधान का सर्वथा अभाव है, केवल साम्य-मूलक अप्रस्तुत का ही विधान है। प्रस्तुत और अप्रस्तु में यह साम्य कहीं गुण का है, कहीं रूप का है और कहीं प्रभाव का—

धर्म अथवा गुण साम्य : ''बंके नैन मरोरत माशूक, सब अंग भेदत हैं अनियांरे ।
रस उपजावत रंग सो, मानो अति कामनगारे ॥[२]

१–सिन्धी, प्र० २

२–सिनगार ग्रन्थ, प्र० १३, चौ० ६, १०

रूप साम्य : दोऊ नेत्र टेढ़े कमल ज्यों, अनी शोभा दोऊ अनन्त ।
जब पापन दोउ खोलत, जानो कमल दोउ विकसत ।।[१]

प्रभाव साम्य : बड़े लम्बे टेढ़क लिए, अति अनिया शोभे ऊपर ।
शीतल करें, अमीय झरे, मदरंग भरे सुन्दर ।।

शोभित छैल छबीले, कहा कहूं मलूक ।
ए नैना निरखे पीछे, हा हा जीव न होत भूक भूक ।।

दया सिन्धु सुख सागर, इश्क गंज अपार ।
शराब पिलावत नैन सों, 'साकी' ए सिरदार ।।[२]

प्रथम उद्धरण में माशूक के 'नेत्र' और कामनगारे (कामन गारे) में गुण-साम्य है क्योंकि दोनों ही 'अंग अंग भेदत' तथा 'रस उपजावत' हैं। दूसरे में नेत्र विकसित कमल है और तीसरे में ये 'साकी' और 'अमीय' इसलिए हैं कि देखनेवाले को 'मस्त' कर देते हैं और उन्हें (माशूक-परमात्मा-के नेत्रों को) देखने पर आत्मा अमरत्व को प्राप्त होती है 'भूक भूक नहीं होती, अर्थात् 'नेत्र' 'अमृत और साकी' में प्रभाव-साम्य है। परम्परागत अलंकारशास्त्र की शब्दावली में प्रथम दो उद्धरण उत्प्रेक्षा के और तीसरा रूपक का है। रूपक का प्रयोग इनके काव्य में, अन्य अलंकारों से अधिक हुआ है[३]।

काया बेड़ी समझ समर, सायर लख संसार ।
मालम जीव जगाए साथी, मेहराज पुन्नो पार ।।[४]

अर्थात् संसार सागर को पार करने के लिए शरीर-रूपी नाव में बैठे हुए जीव-रूपी मल्लाह का प्रवुद्ध होना आवश्यक है। २४ चौपाई के इस प्रकरण में सांग रूपक का पूर्णतः निर्वाह किया गया है।

१-वही, प्र० २२, चौ० १५१

२-वही, प्र० १४, चौ० १३-१५

३-कलस, प्र० ९, 'विरहाका प्रकरण' तथा प्रकाश ग्रन्थ, 'कातनी का प्रकरण'

४-कीरन्तन ग्रन्थ, अंतिम प्रकरण
तथा मुक्ति मार्ग, अन्तिम पृष्ठ

फेरे चरखा उतावला, दिल बांध तांत के साथ ।
रातों भी करें उजागरा, सूत होसी तिन के हाथ ॥
सूत वाली सुहागनी, तिन पायो मान घनी ।
सैयों भी कहे धन धन, और दियो मान धनी[१] ॥

यहां भी 'सूत' और 'भजन' का सांग रूपक दर्शनीय है ।

कुछेक प्रकरण ऐसे भी हैं जहां अप्रस्तुत का अभाव है, पर प्रस्तुत का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि उससे साम्यमूलक अप्रस्तुत का आभास मिलता है। यथा-

नैनो की गति क्यों कहूं, गुणवन्ता गंभीर ।
चांचल चपल ऐसे लगे, सालत सकल शरीर ॥
जब खेंचत भर कशीश, तब मुतलक डारत मार ।
इन विध-भेदत सब अंगो, मूल तन मिटत विकार[२] ॥

यद्यपि इस पद में 'तीर' का उल्लेख नहीं हुआ, फिर भी उसका आभास मिलता है।

विरोधमूलक अप्रस्तुत योजना –

साम्यमूलक अलंकार समता द्वारा भावों को रमणीय बनाते हैं तो विरोधमूलक अलंकार वैषम्य द्वारा भावों को चमत्कृत करते हैं और इनमें उक्ति का चमत्कार प्रधान होता है। इसके भी पर्याप्त उदाहरण उनकी रचनाओं में मिलते हैं—

(क) निपट बांकी छबि नैनन की, नूरै के तारे कारे[३] ।

पुतलियां नूर की होती हुई भी काली हैं । 'नूर' (लाल) और काले में विरोधाभास है ।

(ख) विरह माहिं विलसूं, बालैया संगात[४] ।

कृष्ण के वियोग-विरह में जलती हुई सखियां कृष्ण के साथ विलास कर रही हैं । इस उक्ति में देखने में तो विरोध है, पर वास्तव में विरोध नहीं, क्योंकि वियोगजन्य विरह के कारण वे आठों प्रहर कृष्ण का ही ध्यान रखती हैं, इसलिए दूर होते हुए भी कृष्ण उनसे अदूर हैं ।

१-प्रकाश ग्रंथ, 'कातनी का प्रकरण'
२-सिनगार ग्रन्थ, प्र० १६
३-वही, प्र० १५
४-षटऋतु ग्रन्थ, अन्तिम प्रकरण

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि भावों और अगोचर व्यापार के मूर्त रूप उन्होंने सफलतापूर्वक प्रस्तुत किये हैं और ये चित्रण कहीं भी अति अलंकृत नहीं हुए।

उक्ति-वैचित्र्य –

रास की प्रतीति कराने में उक्ति के वैचित्र्य अथवा वक्रता का महत्वपूर्ण सहयोग होता है। कथन के सीधे ढंग को छोड़कर वक्रता का सहारा लेना ही उक्ति वैचित्र्य अथवा वक्रोक्ति है। वक्र कथन के कई रूप होते हैं। जैसे वचन चातुरी उपहास, व्याज निन्दा, कटूक्ति आदि। प्राणनाथजी ने वचन चातुरी का ही अधिकांशतः प्रयोग किया है।[1]

उद्धव-गोपी प्रसंग में कहीं-कहीं उपहास का भी सहारा लिया गया है—

"सखियो हवे समझया संदेशड़े आपन"

सखियां उद्धव का उपहास करती हुई एक-दूसरे से कहती हैं, 'आपके (उद्धव) संदेश को सब ने समझ लिया है न (कि) यदुराय गोपियों का प्रिय नहीं है" —

ए जदुराए नहीं गोपीओनो वालो
सखियो ! हवे ओधव ने गुझड़ी कां आलो[2]

उद्धव ने वचन-रूपी वाण से सखियों के हृदय का जो भेदन किया है, उसका उन्हें जो रोष है और विषाद है, उसका बदला वे उपहास से पूर्णतः नहीं ले सकी, इसलिए कटूक्ति का सहारा लेती हैं—

(क) रे ओधव ! राख तूं कने तारूं डापण
पीउजी नहीं मूकु अमे एवी पापण
ताता ने म दीये वली-वली तापण[3]

(ख) ओधव ! तारे डापणिये रे संतापी, घणुं रे मूरख तूने ए मत कोणे आपी
अमे तूने जान्यो नहीं एवो पापी, तें तो नाख्या अमारा अंगड़ा कापी[4]

१–षट्ऋतु ग्रन्थ, पृ० ७०, ७७
२–वही, पृ० ११२
३–षट्ऋतु ग्रन्थ, पृ० १११
४–वही' पृ० १११

(ग) रे ओथवडा अमारा धणी अम पासे
तारी मत लेई जा रे तूं साथे[१]

कल्पना –

कल्पना में पुराने अनुभवों के नये संयोजन प्रस्तुत किये जाते हैं। काव्य में कल्पना का विशेष महत्व है। प्राणनाथजी साधक थे, उन्होंने अतींद्रिय लोक के जो चित्र दिये हैं, उन्हें काल्पनिक नहीं, साधनात्मक कहा जायेगा। सम्प्रदाय के आचार्यों के अनुसार वे सत्य के साक्षात्कार पर आधारित हैं। जहां तक रस-लीलाओं के चित्र हैं, उसमें उनकी कल्पना-शक्ति है। अप्रस्तुत विधान में भी कल्पना है। परन्तु,

(१) इनकी कल्पना उर्वर नहीं है। नवीन संयोजन बहुत कम है।
(२) इनकी कल्पना में सूक्ष्मता बहुत अधिक है।
(३) इनकी कल्पना अन्य कवियों की कल्पना की तरह प्रकृति की रम्यताओं में लीन नहीं है, लीला के आनन्दात्मक संयोजन में लगी है।

छन्द :

श्री प्राणनाथजी की रचना में छन्द की मात्राओं, लघु, दीर्घ आदि की खोजना भी व्यर्थ है, क्योंकि उन्होंने स्वयं ही कहा है—

लघु दीरघ पिंगल चतुराई, ए तो छे किवना वड़ाई
मारे तो नथी कांई किव नूं काम, ए वचन कहेवा मारे धनी श्रीधाम

यद्यपि 'राग चरचरी छन्द' नाम से उनकी रचनाओं में दो-एक पद मिलते हैं, पर वे छन्द की कसौटी पर खरे नहीं उतरते और ऐसा लगता है कि छन्द शब्द का प्रयोग 'चौपाई' शब्द के प्रयोग की तरह सिर्फ नाम के लिए ही हुआ है जैसे उनके प्रकरणों में चार चरणों पर यति प्राप्त करनेवाले अंश को चौपाई की संज्ञा दी गयी है। इन्हें मात्राओं की कसौटी पर कसना व्यर्थ है।

उलटबांसियां –

प्रायः देखा जाता है कि धर्मावलम्बी अपने धार्मिक सिद्धांतों को सस्ता बनने से बचाने के लिए कुछ ऐसी सांकेतिक उक्तियों अथवा उल्टी बातों का सहारा लेते है जिसे

१–वही, पृ० ११३

अनुभवी, ज्ञानी और जिज्ञासु व्यक्ति ही समझ सकते हैं। ऐसी उक्तियों को 'उलटबांसियां की संज्ञा दी गयी है।

उलटबांसियों के लिए कबीर बहुत प्रसिद्ध हैं, पर इस प्रकार की उक्तियों की परम्परा बहुत पुरानी है। ऋग्वेद में ऐसी उक्तियां मिलती हैं[1]। उपनिषदों में भी इनकी कमी नहीं है[2]। नाथ और सिद्धों में भी योगपरक बातों को उल्टे ढंग से प्रतीक, संकेत अन्योक्ति और पहली के सहारे कहने के उदाहरण मिलते हैं[3]। इन्हीं की तरह अथवा उनसे भी बढ़चढ़ कर कबीर ने अपनी यौगिक अनुभूति और आध्यात्मिक नाना अभि-व्यक्तियों के लिए ऐसी अटपटी, उल्टी और श्लिष्ट भाषा का प्रयोग किया है जिससे उनके बारेमें प्रसिद्ध हो गया है—

'कबीरदास की उल्टी बानी, बरसे कम्बल भीगे पानी'

प्राणनाथजी की रचनाओं में भी ऐसी अनेक उक्तियां मिलती हैं जिसका यदि अभिधामूलक अर्थ लगाया जाये तो उल्टी लगती हैं पर इन उलटबांसियों में गूढ़ ज्ञान है। आध्यात्मिक ज्ञान से वंचित लोगों को दुरूह लगनेवाली इस सांकेतिक वाणी का प्रयोग दो प्रसंगों में किया है—

(क) परमात्मा के समक्ष मन की स्थिति स्पष्ट करने के लिए, और

(ख) संसार की स्थिति समझाने के लिये।

प्राणनाथजी के मतानुसार परमात्मा के सामने मन की वही स्थिति है जो पर्वत के सामने तिनके की अथवा हाथी के सामने चींटी की होती है, पर उन्होंने कहा है कि—

१–ऋग्वेद में ऐसी उक्तिया हैं कि अग्नि अपने पिता का पिता है, जो उसे जानता है, वह अपने पिता का पिता है, तथा इस बैल के चार सींग, तीन पैर, दो सिर, सात हाथ हैं, आदि।

२–तदेजति तन्नैजति, तद्दूरे तद्वन्तिके,

तथा–आसी नो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः

३–बारह बछडा सोलह गाई। धेनु दुहावत रैन बिहाई॥

अचरा चरै धेनु कचरा न खाई। पंच ग्वालनिया कूं मारण धाई॥

आकास की धेनु त्रिभुवन के राया। सींग न पूंछ वाके खुर नहीं काया॥

तथा–बलद वि आएल गविआ बाझे। पिटा दुहिए तीना साझे॥

जो सो वुज्झी सो धनि वुधी। जो सो चोर सोई साधी॥

निते निते बिआला षिहे षिये जूझए। ढेढ पाएर गीत बिरले वूझअ॥

'तिन के पर्वत ढांपया' तथा 'चींटी बैठी हस्ती को निगल'
अभिधा से इनका अर्थ लेने पर ये उक्तियां पूर्णतः उल्टी लगती हैं, पर आध्यात्मिक क्षेत्र में यह प्रयोग उपयुक्त है। मन, जिसकी स्थिति परमात्मा के समक्ष नगण्य है, के कारण ही मानव परमात्मा को पाने में असमर्थ है। इसके चक्कर में पड़कर मनुष्य परमात्मा को पाने में असफल रहता है। इस नगण्य स्थिति वाली वस्तु ने परमात्मा के महत्व को समाप्त-सा कर दिया है।

'ऊपर मूल नीचे डाल' कहकर प्राणनाथजी ने संसारकी तुलना उस वृक्ष से की है जिसकी जड़े तो ऊपर की ओर हैं, पर डाला और पत्तियां नीचे की ओर। परन्तु जहां-कहीं भी इन उलटबांसियों का प्रयोग किया गया है. उसका खुलासा भी उन्होंने कर दिया है[1]।

१- सूईके नाके माहें, कुंजर निकसे जाए[2]
२- चींटी पांव कुजर बांधया[3]
३- एक चढ़े सीढ़ी बिना, वाको दूजी पकड़े कर,
सो खाये दोनों गडथले, ए हांसी है या पर[4]
४- ओंठा लेवे जिमी बिना, पांव बिना दौड़ी जाए
जलबिना भवसागर तामें गोते खाए[5]

यदि यह कह दिया जाये कि उलटबांसियों के क्षेत्र में मध्यकालीन भक्तों में प्राणनाथजी का महत्वपूर्ण स्थान है तो अतिशयोक्ति न होगी।

१-कलश ग्रन्थ

२-संसार की स्थिति सूई के छेद के बराबर है, उसमें धर्म अथवा सम्प्रदायों-रूपी कई हाथी इससे गुजर रहे हैं, पर परमात्मा को पाने में असफल हैं क्योंकि वे इस संसार तक ही सीमित रह जाते हैं जिसकी स्थिति परमात्मा के सामने 'सूई के नाके' से अधिक नहीं।

३-आत्मा रूपी हाथी को चींटी-रूपी संसार ने बांध रखा है।

४-संसार में ऐसे अनेक सम्प्रदाय हैं जो सत्य (परमात्मा प्राप्ति का मार्ग) से दूर हैं ऐसे सम्प्रदायों को कई लोगों का समर्थन भी प्राप्त है। पर ये सम्प्रदाय उतने ही हंसी के पात्र हैं जितना कि सीढी के बिना ही ऊपर चढने का प्रयत्न करनेवाला व्यक्ति।

५-मोह का है सागर भरा, जल नही इसमें एक रती।
थाह अथाह किन्हूं न पाया, कई डूब मरे यति सती॥

काव्य-रूप –

प्राणनाथजी की रचनाओं को उनमें वर्णित विषय के आधार पर तीन भागों में रखा जा सकता है —

(१) विवरण अथवा वर्णनात्मक रचना : इसमें प्रकाश, खिलवत, परिक्रमा, सागर, सिनगार तथा सिन्धी ग्रन्थ को गणना की जा सकती है। इन रचनाओं में परमधाम के विभिन्न भागों का 'श्रीराज श्यामाजी' तथा सखियों का स्वरूप तथा शृंगार वर्णन का और संसारोत्पत्ति का विवरण है।

(२) सिद्धांत प्रतिपादक काव्य : इस श्रेणी में उन रचनाओं को रखा जा सकता है जिसका मुख्य वर्ण्य विषय धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में प्रचलित पाखण्डपूर्ण रीतियों तथा भेदभाव का निवारण कर 'समन्वित सिद्धांत' का प्रतिपादन करना है। इसमें कलस, सनन्ध, खुलासा, मारफत तथा क्यामतनामा की गणना की जा सकती है।

(३) गीति-रचना : इस श्रेणी में रास, षट्ऋतु, कीरन्तन, रचनाओं की मुख्य रूप से गणना की जा सकती है। इन ग्रन्थों की रचना सराग हुई है। इसके अतिरिक्त प्रकाश गुजराती, प्रकाश हिन्दुस्तानी, कलस हिन्दुस्तानी तथा परिक्रमा ग्रन्थ में भी कुछेक पदों की रचना सराग हुई है। इस गीति काव्य में उन्होंने मुख्य रूप से तीस रागों को अपनाया है। मिश्रित रागों का भी प्रयोग किया है जैसे काफी-धमार गौड़ी-रामग्री आदि। इन रचनाओं में सराग छन्दबद्ध पद भी हैं पर बहुत हो कम।

श्री प्राणनाथजी के गेय पद –

प्राणनाथजी के गेय पदों को दो भागों में रखा जा सकता है :

(क) जिनमें रागों का उल्लेख हुआ है,

(ख) जिनमें रागों का उल्लेख नहीं, पर निर्वाह हुआ है।

रागों का उल्लेख –

गेय पदों के अधिकांश प्रकरणों में रागों का उल्लेख हुआ है, जिनका विवरण इस प्रकार है :

(१) रास –

रास के पदों की जो गायन-युक्त परिपाटी (तानसेन के गुरु) हरिदास ने चलायी थी, उसका परिचालन प्राणनाथजो की इस (रासतो) की रचना में देखा जा सकता है।

इसके ४७ प्रकरणों में से अधिकांश प्रकरण रागबद्ध हैं जिसमें पांच पद संयुक्त रागों के और चार प्रकरण छन्दबद्ध हैं ।

(२) प्रकाश गुजराती- इसमें केवल छः पद रागयुक्त हैं ।

(३) प्रकाश हिन्दुस्तानी- इसमें चार पद सराग हैं ।

(४) षट्रूती- इसमें समस्त पद रागयुक्त हैं । इसमें सर्वाधिक (पन्द्रह पदों में से आठ में) प्रयुक्त राग मल्लार है । मल्लार राग का प्रयोग वर्षा और वियोग में विशेष रूप से हुआ है । अधिकतर रागों का प्रयोग समयानुकूल हुआ है । जैसे बसन्त वर्णन में बसन्त-राग का, वर्षा वर्णन में 'मल्लार राग' का शीत ऋतु से सम्बन्धित पदों के लिए 'धनाश्री' आदि रागों का प्रयोग ।

(५) कलस हिन्दुस्तानी –

इसमें आठ पदों का सराग उल्लेख है जिसमें चार पद (३,४,६,८ प्रकरण) संयुक्त राग के हैं ।

(६) कीरन्तन [कीर्तन]–

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इसमें अधिकांश गेय पद हैं । १३१ प्रकरणों में में से १०५ पदों में राग-रागनियों का उल्लेख हुआ है । ६८वे प्रकरण में दो रागों-धोल धन्या, का एक साथ प्रयोग हुआ है । १२३ वां पद चरचरी छन्द का है ।

(७) परिक्रमा –

इसमें केवल एक और तेरहवां पद क्रमशः धन्यासरी और राग मारू में मिलता है । 'धाम की रामतें' छन्दों में हैं । एक पद चरचरी-राग (अथवा चरचरी-छन्द) का है ।

उपर्युक्त रचनाओं के लगभग १७५ पद सराग हैं जिनमें ९-१० पद संयुक्त रागों के हैं । ये संयुक्त राग हैं-धौल-धन्या (१), गोड़ी-रामग्री (१), काफी धमार (१), सिंधूड़ो-कड़खा (१), धन्या-मेवाड़ो (१), धन्या-काफी (दो पद), श्री-कालेरो (१), केदारो-चरचरो (१), श्री-काफी (१), पंचम-मारू[1] (१), कल्याण-चरचरी (१), अड़ोल-गोरी[2] (१), बेराड़ी-चरचरी ।

---

१ व २-जिस तरह मल्लार के अनेक भेद हैं-मिया, नर, सूर, मल्लार आदि, उसी तरह पंचम मारू और अड़ौल गौरी भी क्रमश मारू और गौरी राग के प्रभेद हो सकते हैं ।

शेष पद निम्न रागों के हैं –

४९ पद श्री राग के	१५ पद मारू राग के
१२ पद धन्यासरी	११ पद गौरी
७ पद सामेरी	२ पद मेवाड़ो
१ पद धन्या	१ पद चरचरी
५ पद कालेरो	६ पद सिन्धूड़ो
८ पद केदारो	४ पद बसन्त
५ पद आसावरी	१ पद कल्याण
११ पद मल्लार	१ पद परज
१ पद गौड़ी	२ पद बेराड़ी
२ पद रामग्री	५ पद धनासरी
१ पद धवल	२ पद देसाख
१ पद सोख मल्लार	२ पद काफी
१ पद सारंग	२ पद विलावल
२ पद नट	१ पद कटको
२ पद सोरठ	१ पद जेतसी
१ पद धौल राग	१ पद रामकली राग

(क) कहीं-कहीं सूर की तरह राग और छन्द का संयुक्त रूप से भी प्रयोग हुआ है। जैसे राग धन्या-छन्द।[1]

(ख) इन उपर्युक्त रागों में प्राणनाथजी ने केवल एक राग-'रागश्री' का प्रयोग किया है और शेष रागनियां हैं।

(ग) यद्यपि मल्लार के अनेक भेद हैं, जैसे-मियां मल्लार सूर मल्लार, मोरा मल्हार आदि। परन्तु मल्हार के एक विशिष्ट रूप 'सोख मल्हार' का प्रयोग प्राणनाथजी ने किया है, जिसका उल्लेख संगीत शास्त्र में कहीं नहीं मिलता।

निम्न तालिका में उपर्युक्त राग-रागनियों का जिन-जिन रागों से सम्बन्ध है, उसका तथा इनके गाने के समय आदि पर प्रकाश डाला गया है –

१-रास, प्र० ४३

क्रमांक	राग	रागनी	किस-किस से मेल	पुत्र	पुत्रवधू	गाने का समय	गाने का ऋतु
१	२	३	४	५	६	७	८
१	भैरव						
(क)		भैरवी	शुद्ध बैडारि शुद्ध ललित सारंग पंचम विलावल से.		सोरठ	सुवह	शरद
(ख)		वैरारि	देशकार टोडितर बन से मेल है.	विलावल ललित देवसाख	मूहा रन्दाही विलावली	सूर्योदय तीसरा पहर चौथा पहर (दिन)	
(ग)		सिन्धवी	आसावरी अहैरी से मेल है.				
(घ)		मधुमाधवी					
(ङ)		बंगाली					
२	मालकोश					३ बजे रात	शिशिर (माघ-फागुन)
(क)		टोड़ी					
(ख)	गौरी		गुजरी जैजैवन्ती आसावरी सोरठ से, बाज के नजदीक शुद्ध व सम्पूर्ण है और दो तरह की है। शुद्ध गौरी, चैती, गौरी, बाज के नजदीक बजाय गौरी के धौलश्री और धनाश्री,	वरपछन सहाना	गंधारी भीम पलासी	शाम	
(ग)		गुनकली					

१	२	३	४	५	६	७	८
(घ)		खम्भातो					
(ङ)		ककुभ					
३.	श्री राग		बड़हंस तक गौरी से मेल है	श्री मन गुलाहल संक्रोण	विजया धंनजय कुंभ	शाम	हेमन्त (अगहन, पुस)
(क)		धनाश्री	धनाश्री का मेल आसावरी टोड़ी मारू से मेल	देसकार	सदासती	शाम	
(ख)		आसावरी	शुद्ध है। दो प्रकार को-शुद्ध आसावरी, जोगिया आसावरी, गौरी परज आसावरी			दोपहर	
(ग)		मारू (यामालव)	सोरठ से मेल	सामन्त	सरू	चौथा प्रहर	
(घ)		वसन्त	देवगिरी नट मलार सारंग विलावल से मेल है.	षट्राग बड़हंस	खेम शशिरेखा	पहले पहर से दो पहर तक	
(ङ)		मालश्री				तीसरा पहर	
४.	मेघराज					सुबह या रात का प्रथम पहर	वर्षा-ऋतु

१	२	३	४	५	६	७	८
(क)		भूपाली				रात प्रथम-पहर	
(ख)		गूजरी					
(ग)		देसकार					
(घ)		मल्लार	सारंग सोरठ विलावल से या मेघराग और सारंग से । ११ तरह की हैं- शुद्ध, गौड़, धूरिया, हौन, रामदासी, सूरदासी, सामन्त, मेघावली, वसन्ती, हिंडोली, साम रीमच.	कान्हरा	मांझ	आधी रात	
(ङ)		तिलंग					
५.	हिंडोल					दोपहर	वसन्त (चैत वैसाख)
(क)		रामकली	विभास देली पंचम से मेल है। चार प्रकार की हैं-बहार, केदारा, मारुला, ममती	बकहा	—	सुबह	
(ख)		ललित					
(ग)		पदंमजरी		कुसल धौल	देवगिरी सरस्वती चैना	आधी रात	
(घ)		विलावल	चौदह तरह की हैं-शुद्ध गुल्व, अलहिया, सुकल, खंमाची, जैजैवन्ती, शंकरा, कजरी, दमन, कमोदी मधुर, रसिया, सखिया, भागसूहा.	मारू		पहला पहर (दिन)	

१	२	३	४	५	६	७	८
(ङ)		देवसाख (देसाख)	शंकराभरण शुद्ध । मलार कान्हरा से मेल है । चार निम्न भेद हैं-देवसाखो; कन कच्छ, भंवर			दिन का प्रथम	
६.	दीपक						ग्रीष्म (जेठ-आसाढ़)
(क)		नट	शुद्ध है । सात प्रकार का है-केदारा, मलार, नारायण, अहेरो, मारू, सामेरी, सुद्ध.			श्याम	
(ख)		कान्हेरा					
(ग)		कामोद					
(घ)		देशो					
(ङ)		केदार	विलावल, पूर्वी ककुल से मेल है। पांच तरह का है-शुद्ध, श्याम, नट, लकना, मारू.	रहस्य, मंगला, कुसुम आदि	इमन, भोपाली, आदि	आधी रात	

नोट . यह तालिका गगोली के रागाज और रागिनी तथा भावखण्डे के संगीतशास्त्र तथा अजयगढ महाराज द्वारा लिखित संगीत-शास्त्र की पुस्तक के आधार पर बनायी गयी है और केवल उन्हीं रागों का सविस्तर उल्लेख किया है जिनका प्रयोग प्राणनाथजी की रचनाओं में हुआ है ।

प्राणनाथजी ने अधिकांशतः परम्परागत रागों को ही अपनाया है। उन्होंने विशिष्ट राग का प्रयोग तो नहीं किया, पर अधिकांश स्थलों पर रागों का प्रयोग भावानुकूल तथा समयानुकूल हुआ है। जैसे बसन्त ऋतु और वर्षा ऋतु के पदों में क्रमशः बसन्त और मल्हार रागों का प्रयोग हुआ है।

गीति तत्व :

प्राणनाथजी का काव्य अधिकांशतः लोक-मंगल की भावना से ही युक्त है। यह लोक-मंगल की बौद्धिकता शुद्ध गीतों के लिए बाधक है। स्मरणीय है कि बौद्धिक प्रधान रचनाओं में उन्होंने रागों का प्रयोग नहीं किया। इनका प्रयोग तो मुख्यतः संयोग वर्णन (रास) अथवा वियोग वर्णन (षट्ऋतु) में ही हुआ है, जहां भावात्मकता का स्थान है। 'हो श्याम पीऊ पीऊ करी रे पुकारू'' तथा 'आठो जाम विरहनी स्वांस लियो हूक हूक' में बाह्य जगत् की अपेक्षा अन्तर्जगत ही अधिक ध्वनित होता है।

रास ग्रन्थ के अधिकांश गीत घनीभूत अनुभूति के व्यंजक हैं, उनमें वैविध्य है और है भाव की संक्षिप्ति। एक पद एक ही भाव को चित्रित करता है।

साधारणतः गीति की आत्मा टेक में समायी रहती है, शेष पद उसका विस्तार होता है। टेक पद्धति का निर्वाह करने वाले पद कीरन्तन में ही हैं, 'षट्ऋतु' तथा 'रास ग्रन्थ' में ऐसे पदों का प्रायः अभाव-सा है। दूसरा कीरन्तन में कुछेक ऐसे गीत भी हैं जिसमें विस्तार बहुत अधिक है। रास और कीरन्तन के गीतों का तीसरा अन्तर है भाव और चिन्तन तत्व। कीरन्तन के अधिकांश गीत चिन्तन-प्रधान हैं जबकि रास के भाव ही नहीं, भावावेश-प्रधान[1]।

दूसरी तरह के वे गीत हैं जिनमें रागों का उल्लेख नहीं, वरन् निर्वाह है। इसमें प्रकाश के एक प्रकरण को कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं –

'पुकार चले मेरे पीऊ जी, मैं तो नींद ही में उरझी
सो सज्जन कित पाइए, तलफे मेरा जीव जी'

१-रास ग्रन्थ, प्र० १५-१७

कीरन्तन के अधिकांश गीतों में संक्षिप्ति के अभाव का कारण यही है कि प्राणनाथजी के गीत साधक के गीत थे, कवियों अथवा संगीतज्ञों के गीत नहीं। उनके गीत हरिदास, गोपाल नायक, तानसेन और बैजू जैसे संगीतज्ञों, कवियों से भिन्न हैं। जिनके पदों में संगीत साध्य है और काव्य संयोगवश प्राप्त 'बाई-प्रोडक्ट'। प्राणनाथजी का साध्य न तो संगीत ही था और न काव्य ही, उन्हें अपने धामधनी के गुणों का गान करना था, पूर्णब्रह्म के साक्षात्कार की आत्मानुभूति को व्यक्त करना था, इसलिए कहीं रागों के उल्लेख के बिना ही रागों का निर्वाह हो गया है[1] और कहीं रागों का उल्लेख होने पर भी गीति-तत्वों-गेयता, भावुकता, संक्षिप्ति (और आधुनिक कवियों की तरह) कल्पना आदि का निर्वाह नहीं हुआ और कहीं लोकगीतों की लयें भी उनके पदों में घुलमिल गयी हैं। 'रास की रामतें' तथा कृष्ण के जन्म व बधाई-सम्बन्धी पद लोकगीत की लय से युक्त हैं। अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्राणनाथजी ने यद्यपि रागमय पद लिखे हैं, पर वे राग-लक्षी नहीं वहां भाव साध्य हैं और संगीत साधन।
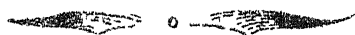
१-पुकार चले मेरे पीऊजी, मैं तो नींद में उरझी।
सो सज्जन कित पाइए, तलफे मेरा जीव जी —प्रकाश ग्रन्थ, प्र० ८

श्री प्राणनाथजी की उपदेश यात्रा
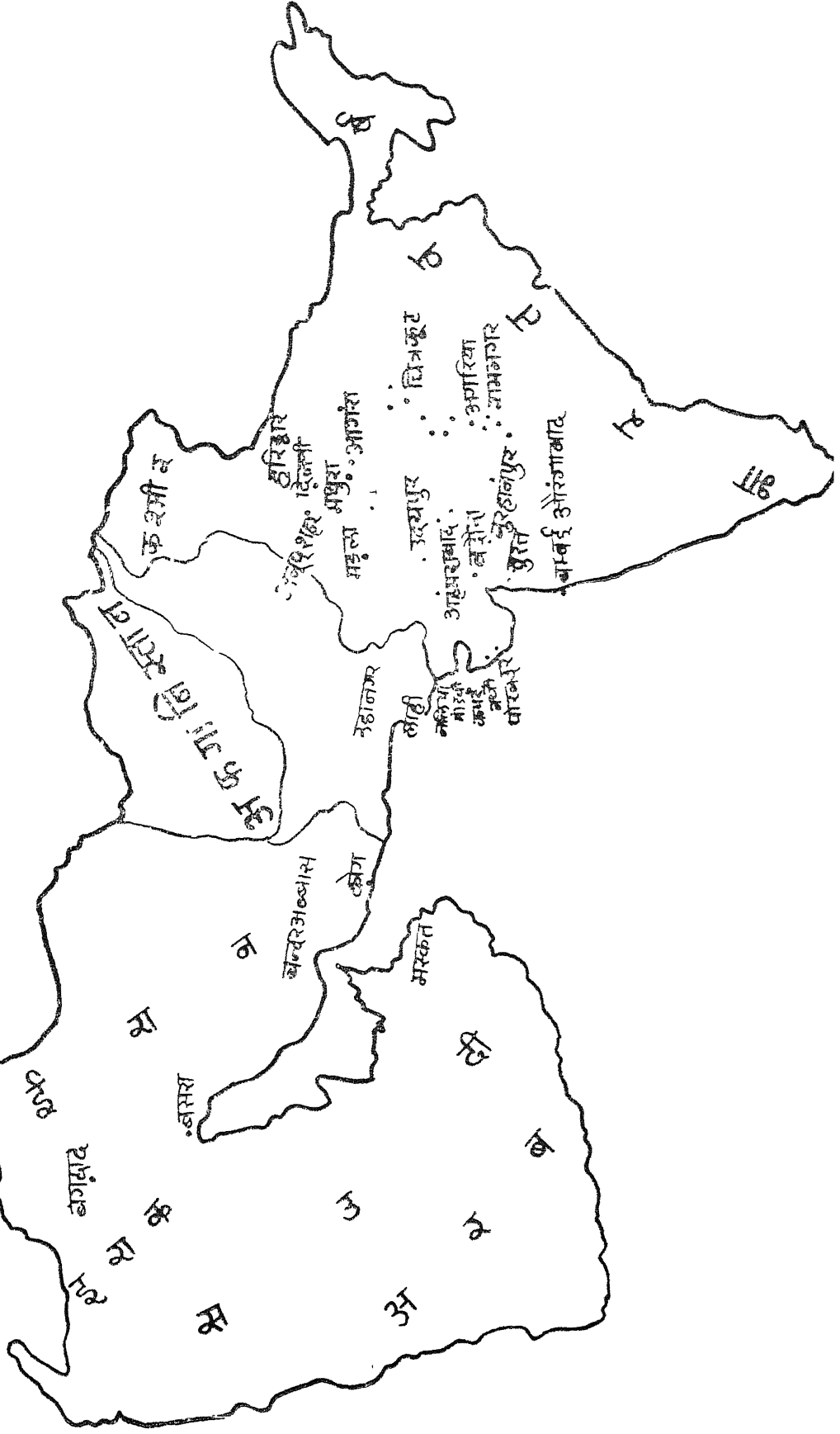
परिशिष्ट

ए ग्यारहवीं बीच बड़ो विस्तार, प्रगटे बिलन्द सब सिरदार
सब न्यामते सिफतें दइयां सितार, जो उतरियां आयतें उस्तवार
छिपा था बुजरक वखत, जाहेर हुआ रोज दिखाई कयामत
ग्यारहवीं सुख ले चले सिर्दार, पीछे बारहवीं में जले बदकार
जिन पाई राह रोज कयामत, सो उठे फजर के नूर बखत
फजर पीछे जब उग्या दिन, तब तो तोबा तोबा भई तन तन
तब तो दरवाजा मूंद के गया, पीछे तो नफा काहू को न भया
सब जले जला अजाजील, जाय उठाया असराफील
एक सूरे उड़ाए के दिए, दूसरे तेरही में कायम किए
यूं कयामत हुई जाहिर दिन, महमदें करी उमत रोशन

इस तरह प्राणनाथजी ने ग्याहरवीं सदी को बड़ा महत्व दिया है, क्योंकि यह दौर अवतारों का दौर था। महमद ने कहा था, 'मैं पुनः खुदा के साथ आऊंगा। ईसा ने भी कहा था, 'मैं पुनः आऊंगा।' महमद, ईसा, बुद्धनिष्कलंकावतार तथा इक इसी समय प्रगट हुए हैं।

★

कैलेण्डर फार्मूला

१. शताब्दियों को चार से विभाजित करो। शेषफल को पांच से गुणा करो। गुणनफल को सात से विभाजित करो और जो शेषफल प्राप्त होगा, वह 'शताब्दी दिन' हुए।

२. जिस वर्ष के दिन का पता लगाना है, उस वर्ष से पूर्व के समस्त वर्षों को चार से विभाजित करो। विभाज्यफल को उन वर्षों में जोड़ दो, जिन्हें विभाजित किया गया है। जोड़फल को पुनः सात से विभाजित करो। जो शेषफल बचेगा, वह 'वार्षिक दिन' होंगे।

३. वर्ष के जिस महीने के दिन का पता लगाना है उसके पूर्व के महीनों के समस्त दिनों का तथा उस माह की निश्चित तारीख तक के दिनों का जोड़-फल निकालो और जोड़फल को सात से विभाजित करो। शेषफल 'माह दिवस' कहलायेंगे।

अब शताब्दी दिन, वार्षिक दिन और मासिक दिनों का योग करो और योगफल को सात से विभाजित करो। यदि शेषफल कुछ न बचे तो रविवार होगा, एक बचे तो सोमवार, दो बचे तो मंगलवार, तीन पर बुधवार, चार पर गुरुवार, पांच पर शुक्रवार और छः शेष बचने पर शनिवार होगा।

उदाहरणार्थ—सन् १९६८, दिसम्बर २५ का दिन ज्ञात करने के लिए :
शताब्दी १९ को चार से विभाजित करने पर जो शेषफल तीन बचेगा उसे पांच से गुणा करो तो गुणनफल १५ होगा। पन्द्रह को सात से विभाजित करने पर शेष फल १ होगा। यह एक दिन 'शताब्दी दिन' हुआ।

६८वें वर्ष के दिन का पता लगाना है, इसलिए ६७ को चार से विभाजित करेंगे। विभाज्यफल १६ होगा। ६७ का योगफल ८३ हुआ। ८३ को सात से विभाजित करने पर शेषफल ६ बचेगा। यह 'वार्षिक दिन' हुआ। जनवरी से २५ दिसम्बर तक समस्त दिनों के योगफल को सात से विभाजित करने पर शेषफल तीन प्राप्त होगा। ये तीन दिन 'मास दिवस होंगे।

शताब्दी दिन ३, वार्षिक दिन ६ और मासिक दिन ३ का योगफल १० हुआ। १० को सात से विभाजित करने पर शेष तीन दिन बचेंगे। तीसरा दिन बुधवार होता है, अतः २५ दिसम्बर, १९६८ को बुधवार होगा।

परिशिष्ट ३

आचार्य परम्परा –

निजानन्द सम्प्रदाय के आदि आचार्य श्री देवचन्द्रजी थे। उन्होंने अपनी 'गादी' जामनगर में स्थापित की. जिसके उत्तराधिकारी उनके पुत्र बिहारीजी हुए। बिहारीजी और प्राणनाथजी में मतभेद हो जाने के कारण, प्राणनाथजी के शिष्यों ने बादमें बिहारीजी को 'गादीपति' के रूप में मान्यता नहीं दी, अपितु श्री देवचन्द्रजी के अन्तिम निवासस्थान खीजड़ा मन्दिर (जहां श्री प्राणनाथजी ने दीक्षा ग्रहण की थी) को ही मान्यता दी। इस प्रकार जामनगर में प्रणामी धर्म की दो गादी परम्परायें प्रचलित हुई। चाकला मन्दिर की गादी और खीजड़ा मन्दिर की गादी[1]। क्योंकि विशेष रूपसे प्राणनाथजी के अनुयायियों द्वारा खीजड़ा मन्दिर' की गादी को ही मान्यता प्राप्त है, अतएव यहां सिर्फ 'खीजड़ा मन्दिर' के [श्रीदेवचन्द्रजी के बाद के] आचार्यों का ही उल्लेख किया जा रहा है—

१. आचार्य श्री १०८ श्री केसरबाईजी महात्मा
२. आचार्य श्री १०८ श्री तेजस्वीजी महात्मा
३. आचार्य श्री १०८ श्री ब्रह्मचारीदासजी महाराज
४. आचार्य श्री १०८ श्री ध्यानदासजी महाराज
५. आचार्य श्री १०८ श्री मोहनदासजी महाराज
६. आचार्य श्री १०८ श्री फकीरचन्दजी महाराज
७. आचार्य श्री १०८ श्री अमरदासजी महाराज
८. आचार्य श्री १०८ श्री जीवरामदासजी महाराज
९. आचार्य श्री १०८ श्री बिहारीदासजी महाराज
१०. आचार्य श्री १०८ श्री सुखलालदासजी महाराज
११. आचार्य श्री १०८ श्री धनीदासजी महाराज
१२. आचार्य श्री १०८ श्री धर्मदासजी महाराज

१–चाकला मन्दिर की गादी गृहस्थी गादी है और खीजड़ा मन्दिर की गादी त्यागियों का।

क्यामतनामा ग्रन्थ का एक पृष्ठ

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग में प्राप्त

वड़ा क्यामतनामा के पक पृष्ठ का चित्र

वि० सं० १९०० की प्रति का एक पृष्ठ

प्रणामी मन्दिरों की सूची

मध्य प्रदेश :

श्री कृष्ण प्राणनाथ मन्दिर, श्री पद्मावती पुरी धाम, पन्ना
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, ग्राम रानीपुर, पो० पन्ना
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, ग्राम मुकरवा, पो० मऊ सहानिया, जिला छतरपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, ग्राम महेवा, पो० मऊ सहानिया, जिला छतरपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, भांडेर, वाया दतिया
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, पुराना पड़ाव के पास, सतना
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, ग्राम दुवगमा कुटी, पो० रघुनाथगंज, जिला रीवां
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, ग्राम गूड़ा, पो० हटा, जिला दमोह
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर उर्दू पुरा, उज्जैन
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, गोरा कुंड, इन्दौर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, माणो कुंवा, रतलाम

गुजरात :

श्री खीजड़ा मन्दिर, श्री '५ नवतनपुरी धाम जामनगर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर' हर्षदपुर, पो० चेला, जि० जामनगर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, ग्राम जोड़िया, जि० जामनगर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, ग्राम धाफा, पो० पानेली, जि० जामनगर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, चित्रावड़, पो० भायावदर, जामनगर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, ठे० जुनुं खडपीठ, लाखाजी रोड, राजकोट
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मेंगणी, रीवड़ा स्टेशन
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, ठे० प्लोट मु० उपलेटा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, तणसवा, वाया उपलेटा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, जुना दरबार गढ़ के पास, पोरबन्दर
श्री खीजड़ा मन्दिर, कालवा दरवाजा बहार, जूनागढ़
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० दात्राणा, वाया मेंदरड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० आंबलीया, पो० बांटवा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मैयारी, वाया बांटवा

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, अवाणीया, वाया हाटी न माड़ीया हाटी
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मेदरड़ा, वाया लुशाणा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० गोरहडमतीया, वाया तालाला
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, साजीआवदर, वाया अमरेली
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, वाड़िया, पो० चलाला
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० अमृतपुर, पो० सरसीआ, धारी स्टेशन
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० हीपावडली, वाया जेसर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० अमृतबेल, पो० डुंगर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० वणांकवारा, दीव बन्दर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० दीव बन्दर, ड्यू
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, कन्या शाला के पास, मांगरोल बन्दर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० बंगला, पो० राजपरा, वाया रीवड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मोटा मन्दिर, सैयद वाड़ा, सूरत
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, बहुचराजी, पो० सिंघनपुर ग्राम टुंको
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, गोपी पुरा, घोघाराणा को शेरी, सूरत
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, जुनुं मन्दिर, खंभात
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, पीरजपुर, खंभात
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, लखावाड़, नडीयाद, जिला खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, बालापीर दरवाजा, खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर (सेठानी मुड़ीबाई का) झारोडा टेकरो खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० वरसोला, ता० नड़ीयाद, जिला खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० लींगड़ा, वाया उमरेठ
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, पीपलाता, ता० नड़ीयाद, जि० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० कण्झरी, वाया आणंद, जिला खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० चीखोदरा, ता० आणंद, जिला खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० टीम्बा, ता० गोधरा, जिला पंचमहाल
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, गोधरा, जिला पंचमहाल
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० हरकुण्डी, ता० गोधरा, पो० महेलोल
श्री कृष्ण प्रणामी, मन्दिर, मु० सुंदलपुर, वाया ओड़, ता० आणंद

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० जेसापुर, ता० आणंद
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० सोहोरा, ता० पांड
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० बेचरी, रतनपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, पोणवाडलिया, मु० कालोल, पंचमहाल
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० अजुपुरा, सदाना पुरा स्टेशन
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर मु० मांघरोली, पो० महेलोल, नड़ियाद, जि० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० अजरपुरा, आणंद, जि० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० अरेरा, ता० नड़ियाद, जि० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मांकवा, महेदाबाद
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० बड़थाल, ता० नड़ियाद, जि० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० जाणीया, ता० नड़ियाद, जि० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० सिंहुज, महेमदाबाद
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० रुदण, महेमदाबाद
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० वासणा, देहेगाम
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, सारंगपुर दरवाजा, अहमदाबाद
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० सोजितरा, पेटलाद, जि० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० बालिण्टा, पेटलाद, जि० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० भलाड़ा, मातर, जि० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० मल्लावाड़ा, ता० पेटलाद, जि० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० सोड़पुर, नड़ियाद, जि० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० अंधारी आमली, नड़ियाद, जि० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० मित्राल, नड़ियाद
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० रास बोरसद
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर; मु० अलिंदरा, मातर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० ओड़, आणंद, ता० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० नार, पेटलाद, ता० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० धर्मज महम्मद वाड़ो, बड़ोदरा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, हेरफतेपुर, सोनासण, अहमदाबाद

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० सीमरढ़ा, पेटलाद, जि० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० मांछेल, ता० मातर, जि० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० जसापुरा, ता० मातर, जि० खेड़ा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, ग्राम कुंडाशण, अहमदाबाद
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० बागीडोर, बांसवाड़ा, जालौद
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० गणदेवी, जि० वलसाड़
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० मोटी छीपवाड़, वलसाड़, सूरत
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, नानूं दमण, वापी
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, भोलेश्वर रोड, बम्बई–२ (महाराष्ट्र)
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, सोनगीर, धुलिया (महाराष्ट्र)

कच्छ :

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० अन्जार
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० सिनोगरा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० भद्रेश्वर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० मेगपुर, पो० अंजार
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० मुंद्रा

राजस्थान :

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, प्रणामी ब्लाक, आदर्श नगर, जयपुर–४
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, तलोद स्टेशन, डुंगरपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर पो० पदमपुर, गंगा नगर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, सूरत गढ़, जि० गंगानगर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, पो० चूनावड़, जि० गंगानगर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, पो० श्री कर्णपुर, जि० गंगानगर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० मेड़ता, मेड़ता रोड
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, भडारियों की गली, मु० नागौर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, प्रेमी द्वार, सूर्यपोल, उदयपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, प्रेमी द्वार, मु० कुड़ावड़, वाया उदयपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० ईसरवास, पो० सलुम्बर, उदयपुर
श्री राजजी का मन्दिर, माणेक चौक, मु० अजमेर

पंजाब :

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, खेमसिंह की गली, अमृतसर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, माईजो का मन्दिर, अम्बाला शहर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, पो० फाजिलका, फिरोजपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, नं० १८१७, माडल टाउन करनाल
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, नं० १०२६, मुक्तसर, फिरोजपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, नीम वाला चौक, लुधियाना
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, शेखां वाला बाजार, डब्ल्यु ई, १७, छोटा आली मोहल्ला, जालन्धर शहर

दिल्ली :

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर नल वाली गली, नया मोहल्ला पुलबंगश दिल्ली

उत्तर प्रदेश :

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० मजाहिदपुर, पो० सलावा, जिला मुजफ्फरनगर
श्री निजानन्द आश्रम मु० शेरपुर पो० जड़ोदा पांडा, जि० सहारनपुर
श्री निजनन्द आश्रम, मढ़िया मोहल्ला, नाला पार, सहारनपुर
श्री प्राणनाथ आश्रम, खरखरी गली, स्टेशन भीम गोड़ा, हरद्वार
श्री निजानन्द आश्रम, भगवानपुरा, मु० ऋषिकेश, देहरादून
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, नई बजरिया, जालौन
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० सुरान, औरैया, इटावा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मिर्जापुर
श्री कृष्ण प्रणामी, मन्दिर, मु० माल्हेपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, वृन्दावन, गढ़पारौली, फतिहाबाद
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, सदर बाजार, जमुना बाग के पास, मथुरा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, नौवस्ता, लोहा मण्डी के पास, आगरा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, खपड़ा मोहल्ला, कानपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, ब्लाक न० ७, गोबिन्द नगर, कानपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, ग्राम इसोली, आगरा (१५ मील पूर्व)
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, ग्राम सिगरौली, जिला उन्नाव (कानपुर सड़क पर]

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मलिहाबाद, लखनऊ (२४ मील लखनऊ पश्चिम)
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मनीखेरा, उन्नाव (गंगा किनारे)
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० कंचनपुर, मटियारी, चनहट, लखनऊ
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० बलाखेरा, भिलवल, बाराबंकी
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० सोनाई, पो० गोरखपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० बेनीगंज मेजबल, बाराबंकी
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० होलखापुर, मेजबल, बाराबंकी
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० मुंशी गंज बाराबंकी
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, भिखारीदास का मोहल्ला, ठठेरी गली, बनारस
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० संझाई, गोरखपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, ग्राम भैयां, पो० पसना, तह० मेजा, इलाहाबाद
श्री खोजड़ा मन्दिर, श्री २२४ मुट्ठीगंज, इलाहाबाद
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर' मु० मऊ, पो० बाबा का बाजार, जि० आजमगढ़
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, नेहरू नगर, अटाला, इलाहाबाद
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० ककरासो, पो० बेल्थरा रोड, जि० बलिया
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० रजनवली, सिरसी, बस्ती
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० विशुनपुरा, भागलपुरा, गोरखपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० जगदीशपुर, पो० कुसमी, गोरखपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, पुराना मठ, धुरिया, पो० कशया, गोरखपुर

बिहार :

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, राजापुर, पटना
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, सादिकपुर, पटना
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मुहल्ला काजीबाग, पटना
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० गोखुला, नरकोटयागंज, चम्पारन
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० गंगापुर, पो० झंझारपुर, जि० दरभंगा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० तरही, पो० लोकही बाजार, दरभंगा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० अवधापुर, पो० कल्याकचहरी, आदापुर, चम्पारन
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० सूखी, खजौली, तिरहुत, दरभंगा

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० परसाही, पो० खटोना, जि० दरभंगा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर. मु० गोखुला, पो० नरकटियागंज, चम्पारन
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० बजड़ा, पो० अमोलवा, जि० चम्पारन
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० अभुई, पो० दारोदा. जि० छपरा

बंगाल :

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, इन्छे बस्ती कालिंगपुंग, दार्जिलिंग
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, कालिंपुंग बाजार, कालिंपुंग, दार्जिलिंग
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० पुबंग बस्ती, पो० जोर बंगला, दार्जिलिंग
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर. मु० पोखरे बुंग, सुखियापोखरी, दार्जिलिंग
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० सिंगृताम कमान, दार्जिलिंग
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० तिकपुरकमान, पो० सिंगमाड़ी, जि० दार्जिलिंग
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० पोशक कमान, पो० टीस्टा, जि० दार्जिलिंग
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० पुलुंगदुंग बस्ती, पो० सुखिया पोखरी, दार्जिलिंग
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० खैरबारी बस्ती, मादारीहाट, जि० जलपाईगुड़ी

आसाम :

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० रांगखाली बस्ती, पो० जनता, जि० तेजपुर-दरांग
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० भ्रलाबारी चार माइल. जिला तेजपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० कमालिया, पो० विश्वनाथ, जि० तेजपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० सुकलाईखटी, अतारी खाट, जि० दारांग
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० खगड़ाबारी, पो० अतारी खाट, जि० दारांग

नेपाल देश :

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, दिल्ली बाजार, काठमांडू
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, फंगुवा, मु० आठराई ईवा, सिमले, रू० तापले जुंग, पकसचेंज विराटनगर, पो० फारबीसगंज, पूर्णिया
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० छथर फलेक, हु० धनकुट्टा, पकसचेंज विराटनगर, पो० फारबीसगंज, जि० पूर्णियां
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, नरदेवी टोल, काठमांडू
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, दुखर्क, काठमांडू (२० कोस पूर्व तरफ)
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० हुक्से-काठमांडू

श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० धरान विराट नगर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० झांगाझोली
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० कालीमाटी
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० थापा ग्राम
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० तिगाऊं
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० लिङ्ग
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर,मु० बल्थूम
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० काशीपोखरा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० जनकपुर
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० ओखल ढूंगा
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० आहाले
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० ग्राम मल्लिम
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० सिक्कोम
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, मु० पाक्कोन बस्ती
श्री कृष्ण प्रणामी मन्दिर, चितवन भरतपुर, नेपाल

❋—❋—❋

सहायक ग्रन्थों की सूची

हिन्दी ग्रन्थ	ग्रन्थकार
कलस हिन्दुस्तानी	श्री प्राणनाथजी
कयामतनामा बड़ा	श्री प्राणनाथजी
कयामतनामा छोटा	श्री प्राणनाथजी
कीरन्तन ग्रन्थ	श्री प्राणनाथजी
कुलजमस्वरूप निर्देशिका	मिश्रीलालजी 'दुष्यन्त'
खिलवत ग्रन्थ	श्री प्राणनाथजी
खोज रिपोर्टें	नागरी प्रचारिणी सभा
खुलासा ग्रन्थ	श्री प्राणनाथजी
गोस्वामी तुलसीदास	रामचन्द्र शुक्ल
गुरु-शिष्य संवाद	स्वामी मुकुन्ददासजी
चरित्र दिग्दर्शन	आचार्य श्री महाराज धर्मदासजी
छत्र प्रकाश	गोरे लाल
छत्रसाल बावनी	राजकवि पं० हरनाथजी
श्री जुगलदास प्रणीत पत्री	श्री जुगलदासजी
तारतम की पुकार	श्याम बिहारी दुबे
तीस-सम्बन्ध	छबीलदासजी कामदार (संकलनकर्ता)
दिव्य आलोक भूमिका की समीक्षा	पं० प्यारेलाल
दूसरा प्रणाम	प्रो० जायसवाल
धर्म-अभियान	आचार्य मुरलीदासजी
नवरंग स्वामी-कृत बीतक	स्वामी मुकुन्ददासजी
श्री निजानन्द कल्पद्रुम	पं० कृष्णदेव शास्त्री
निजानन्द चरितामृत	श्री कृष्णदत्त शास्त्री
परमहंस चरितामृत	बाबा चन्द्रिकादासजी
परिक्रमा ग्रन्थ	श्री प्राणनाथजी
प्रकाश हिन्दुस्तानी ग्रन्थ	श्री प्राणनाथजी
प्रथम प्रणाम	प्रो० एम० बी जायसवाल

हिन्दी ग्रन्थ	ग्रन्थकार
श्री प्राणनाथ वचनामृत का संक्षिप्त परिचय	विमला मेहता
प्राणनाथ सन्देश	श्याम बिहारी दुबे
बुन्देल केसरी महाराजा छत्रसाल बुन्देला	डा० भगवानदास गुप्त
बुन्देल वैभव भाग-२	गौरी शंकर द्विवेदी
ब्रह्माण कल्पलता	कृष्णदेव मित्र
वृतान्त मुक्तावली	बृजभूषण
भागवत सम्प्रदाय	बलदेव उपाध्याय
भारतीय दर्शन	उमेश मिश्र
मध्ययुगीन साधना धारा	क्षितिमोहन सेन
महाप्रभु प्राणनाथजी	प्रणामी ट्रस्ट सोसायटी
महामति प्राणनाथ मार्ग	श्याम बिहारी दुबे
महाराज छत्रसाल	राघवेन्द्र सिंह भारतेन्द्र सिंह
मीराबाई	डा० सी० एल० प्रभात
प्रणामी धर्म और महाराजा छत्रसालजी का संक्षिप्त परिचय	महंत कृष्णदास शास्त्री
मारफत सागर	श्री प्राणनाथजी
मिश्रबन्धु विनोद	मिश्रबन्धु
मिहिरराज चरित्र	बख्शी हंसराज
मुक्तिपीठ	दुष्यन्त
मोक्ष-प्राप्ति मार्ग	राजकिशोरदास प्रणामी
रोशननामा	स्वामी मुकुन्ददासजी
लालदास-कृत बीतक	श्री लालदासजी
विज्ञान सरोवर	महन्त श्री कृष्णदासजी शास्त्री
वैराट निरुपण	श्री जुगलदासजी
संगीत शास्त्र	भातखण्डे
संगीत शास्त्र	महाराजा एवं महारानी अजयगढ़
सम्प्रदाय सिद्धान्त	पं० कृष्णदत्त शास्त्री

ग्रन्थ	प्राप्ति–स्थान
मसौदा	पन्ना
वेदों की प्रणालिका	पन्ना
स्नेह सखी-कृत बीतक	जामनगर
शेखजी मीरजी का किस्सा	पन्ना (पाठशाला)

अन्य भाषाओं के ग्रन्थ

आनन्द सागर	(संस्कृत)
गीता	,,
ब्रह्म विज्ञान भास्कर	,,
परमार्थ दर्शन (दूसरा भाग)	(गुजराती)
श्री परमपद मार्गदर्शक	,,
श्री परमधाम प्रणालिका	,,
पातालथी परमधाम	,,
रास ग्रन्थ	,,
प्रकाश-गुजराती-ग्रन्थ	,,
श्री प्रगट वाणी	,,
षट्ऋतु	,,
बेहद वाणी	,,
कलस-गुजराती-ग्रन्थ	,,
वर्तमान दीपक	,,
वैराट पट दर्शन	,,
श्री सृष्टि विज्ञान वर्णन	,,
सिन्धी ग्रन्थ	(सिन्धी)
मुक्ति मार्ग	,,

पत्र–पत्रिकाएं

कल्याण (भक्ति अंक, बत्तीसवें वर्ष का विशेषांक)
संतवाणी अंक (उन्नीसवें वर्ष का विशेषांक)
प्राणनाथ सन्देश
प्रणामी धर्म पत्रिका
भजन माला
सेवा-पूजा का 'गोटा'
पद्मावतीपुरी

E N G L I S H

	Title	Author
1.	An Indian Ephemeris	S. Pillai
2.	Asiatic Society of Bengal-Vol 1	F. S. Groios
3.	Cambrige History of India-Vol IV	W. Haig
4.	Divine House of Swami Shree Pran Nathji	Board of Trustees
5.	Gazetteer of Bundelkhand	
6.	Gujrat and its literature	K. M. Munshi
7.	History of Aurangzib	Uadunath Sarkar
8.	Hindu Religion	H. H. Wilson
9.	Influence of Islam on Indian Culture	Dr. Tarachand
10.	Medieval Mysticism of India	K. Sen
11.	Monograph on the Religious Sects in India among the Hindus	D. A. Pai
12.	Ragas and Raginis	O. C. Gangoli
13.	Some aspects of social life during Mugal Age	
14.	Society and State in the Mugal Period	D. Tara Chand
15.	Tribes & Castes of the Central Provinces of India Vol I	R. B. Russel & Hiralal

STATEMENT UNDER UNIVERSITY RULES NOS.0412 and 0.413

I HEREBY DECLARE :

1. That the work ombodied in my thesis on 'Saint Pran Nath and his Poetry' prepared for Ph. D. Degree has not been submitted for any other degree of thesis or any other University on any previous occasion.

2. That, to the best of my knowledge no work has been reported on the above subject since I have discovered now relations of facts of the History of Hindi literature. This work can be considered to be contributory to the advancement of study of literature; and

3. That all the work presented in thesis is original and wherever references have been made to the work of others it has been clearly indicated as such and the source of information included in the bibliography.

Countersigned by the guiding teacher :

S/d
C. L. Prabhat
12.4.68

S/d
Raj Bala Sidana